संवर्ग-1 : प्राचीन काव्य

इकाई-1

आदिकाल

संरचना

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 हिन्दी भाषा और साहित्य

1.3 साहित्य के इतिहास का स्वरूप

1.4 काल-विभाजन का आधार

1.5 आदिकाल या वीरगाथा काल

1.6 आदिकाल की कालावधि और विद्यापति

1.7 आदिकाल की पूर्वपीठिका

1.8 आदिकालीन हिन्दी साहित्य : अपभ्रंश का विकसित रूप

1.9 मूल हिन्दी प्रवेश में साहित्य रचना का अभाव क्यों ?

1.10 आदिकालीन हिन्दी साहित्य की प्रमुख प्रवृतियाँ

1.11 हिन्दी साहित्य के आदिकाल की भाषागत प्रवृत्तियाँ

1.12 आदिकालीन भाषा का स्वरूप विवेचन

1.13 सारांश

1.14 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको हिन्दी के इतिहास की पूर्वपीठिका से परिचय प्राप्त कराना है। यह दृष्टिपात कराना भी कि दसवीं से चौदहवीं शताब्दी के साहित्य में वीरत्व का एक नया स्वर मुखरित हुआ साथ ही अन्य साहित्यिक प्रवृत्तियाँ भी, जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस इकाई में आप आदिकाल की भाषागत प्रवृत्तियाँ के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप हिन्दी साहित्य के -

- इतिहास का स्वरूप
- इतिहास का काल विभाजन
- इतिहास का नामकरण एवं
- आदिकाल के नामकरण पढ़ेंगे।

इस इकाई में आप आदिकाल में प्रयुक्त भाषा प्रयोग के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। और किस प्रकार आदिकाल में प्रत्येक उस प्रवृत्ति का प्रयोग हुआ है, जिसका विस्तार हम आधुनिक काल तक देख पाते हैं।

1. 2 हिन्दी भाषा और साहित्य

साहित्य शब्द नवीन नहीं है। इसका अर्थ प्राय: 'रचनात्मक साहित्य' के अर्थ में ही होता आया है। साहित्य की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से होती है। यहां हम हिन्दी भाषा में उद्‌भूत एवं विकसित साहित्य की परम्परा का अध्ययन कर रहे हैं। आचार्य डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'हिन्दी भारतवर्ष के एक बहुत विशाल प्रदेश की साहित्यिक भाषा है। राजस्थान और पंजाब राज्य की पश्चिमी सीमा से लेकर बिहार के पूर्वी सीमान्त तक तथा उत्तर प्रदेश के उत्तरी सीमान्त से लेकर मध्य प्रदेश के मध्य तक के अनेक राज्यों की साहित्यिक भाषा के हम हिन्दी कहते आये हैं।' हिन्दी शब्द की व्यापकता का स्वरूप स्पष्ट करते हुए आचार्य द्विवेदी जी लिखते हैं- 'इस प्रदेश में अनेक बोलियां प्रचलित हैं।' सब का भाषाशास्त्रीय ढ़ांचा एक जैसा ही नहीं है। साहित्य में भी किसी एक ही बोली के ढ़ांचे का मदा व्यवहार नहीं होता या फिर भी हिन्दी साहित्य की चर्चा करने वाले सभी देशी-विदेशी विद्वान् इस विस्तृत प्रदेश के साहित्यिक प्रयत्नों के लिए व्यवहृत भाषा या भाषाओं को हिन्दी कहते हैं। वस्तुत: हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'हिन्दी' शब्द का व्यवहार बड़े व्यापक अर्थों मे होता रहा है। उपर्युक्त विवेचन से दो शब्दों- साहित्य और हिन्दी- की स्थिति तो स्पष्ट हो चुकी है। अब इतिहास शब्द को समझना भी आवश्यक है।

1. 3 साहित्य के इतिहास का स्वरूप

आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में जनता की चित्तवृत्तियों की परम्परा के साथ साहित्य-परम्परा का सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' बतलाया है। उनके शब्दों में- 'जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्तिका संक्षिप्त प्रतिबिम्ब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अन्त तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य-परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है। जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है। अत: कारण स्वरूप इन परिस्थितियों का किंचित् दिग्दर्शन भी साथ ही साथ आवश्यक होता है।'

शुक्लजी का काल विभाजन- इसी दृष्टिकोण से रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के 600 वर्षों के इतिहास को चार कालों में विभक्त किया गया है :-

(क) आदिकाल- (वीरगाथा काल संवत् 1050-1375)

(ख) पूर्व-मध्यकाल- (भक्तिकाल, संवत् 1375-1700)

(ग) उत्तर-मध्यकाल- (रीतिकाल, संवत् 1700-1900)

(घ) आधुनिक काल- (गद्यकाल, संवत् 1900-1985)

1. 4 काल-विभाजन का आधार

आचार्य शुक्लजी ने अपने काल-विभाजन एवं नामकरण का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा है, 'यद्यपि इन कालों की रचनाओं की विशेष प्रवृत्ति के अनुसार ही इनका नामकरण किया गया है, पर यह न समझना चाहिए कि किसी काल में और प्रकार की रचनाएं होती ही नहीं थी। जैसे भक्तिकाल या रीतिकाल के लें तो उसमें वीर रस के अनेक काव्य मिलेंगे, जिनमें वीर राजाओं की प्रशंसा उसी ढंग से की गई है जिस ढंग की वीरगाथा-काल में हुआ करती थी।' किसी विशेष प्रवृतिमूलक रचनाओं के प्राचुर्य से यह अभिप्राय है कि शेष दूसरी प्रवृतिमूलक रचनाओं में से यदि किसी एक प्रकार की रचनाओं के ले तो वे संख्या में उनके समान न हो; यह नहीं कि और सब ढ़ंग की रचनाएं मिलकर भी उनके समान संख्या में न हो। जैसे, यदि किसी काल में चार ढ़ंग की रचनाएं 10, 8, 3 और 2 के क्रम में मिलती हैं तो जिस ढ़ंग की पुस्तकें अधिक प्राप्त हैं, उसकी प्रचुरता कही जायेगी, यद्यपि अन्य पुस्तकें मिलकर संख्या 12 में हो। इस काल विभाग का दूसरा आधार ग्रंथों की प्रसिद्धि है। जिस काल के भीतर एक ही प्रवृति वाले बहुत से प्रसिद्ध ग्रंथ हैं, उस प्रकार के ग्रंथ उस काल के लक्षण के अन्तर्गत माने जायेंगे, चाहे और अनेक प्रकार के अप्रसिद्ध और साधारण कोटि के ग्रंथ इधर-उधर पड़े हों।

Jainvishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रसिद्धि भी किसी काल की लोक-प्रवृति की परिचायक है। सारांश यह है कि उक्त दो सिद्धान्तों को सामने रखकर ही विद्वान् लेखक साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन एवं नामकरण करते हैं। आचार्य डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार कालों में बांटा है, किन्तु नामकरण के संबंध में शुक्ल जी से उनका कुछ मतभेद है। द्विवेदी ने हिन्दी के 1000 वर्षों के साहित्य के इतिहास के निम्नलिखित चार कालों में बांटा है :-

1. हिन्दी साहित्य का आदिकाल- 10वीं से 14वीं शताब्दी।
2. भक्ति साहित्य- 14वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी का मध्य भाग।
3. रीति काव्य- 16वीं शताब्दी के मध्य भाग से 19वीं शताब्दी के मध्य भाग तक।
4. आधुनिक काल- 19वीं शताब्दी ने मध्य भाग से आज तक।

1.5 आदिकाल या वीरगाथा काल

हिन्दी साहित्य के आदिकाल का नाम शुक्लजी ने 'वीरगाथा काल' रखा है। शुक्लजी के बाद आदिकालीन साहित्य की गहरी खोज हुई है। आज के ज्ञान के आलोक में वीरगाथा काल का नाम उपयुक्त नहीं ठहरता। शुक्लजी ने इस काल के साहित्य की 12 पुस्तकों का उल्लेख किया है। वे ये हैं- विजयपाल, रासो, हम्मीर रासो, कीर्तिलता, कीर्तिपताका, खुमान रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, जयचन्द प्रकाश, जयमयंक-जस-चन्द्रिका, परमाल रासो, खुसरो की पहेलियां और विद्यापति पदावली। इनमें विजयपाल रासो, खुमान रासो और बीसलदेव रासो परवर्तीकाल की रचनाएं सिद्ध हो चुकी है; जयचन्द प्रकाश, जयमयंक-जस-चन्द्रिका, हम्मीर रासो नोटिस मात्र है; विद्यापति पदावली और कीर्तिपताका- प्रेम, श्रृंगार और भक्तिरस से अनुप्रमाणित हैं। अमीर खुसरो की पहेलियों से वीरगाथा का कोई संबंध नहीं है। पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो अर्द्ध प्रामाणिक रचनाएं हैं, किन्तु इनमें वीरत्व का एक नया स्वर सुनाई पड़ता है। कीर्तिपताका में भी यह स्वर विद्यमान है। इस प्रकार शुक्लजी के नामकरण की आधारशिला ही खिसक चुकी है। इतना ही नहीं, कुछ नवीन ग्रंथों की खोज हुई है और शुक्लजी ने जिन ग्रंथों को धर्म से संबंधित देखकर साहित्य-कोटि से निकाल दिया था, उनको भी साहित्य परिधि के अन्दर ले लिया गया है। उक्त समूचे साहित्य का अध्ययन करने पर हमें चार प्रवृतियों के दर्शन होते हैं :-

1. बौद्ध, नाथ सिद्ध तथा जैन मुनियों की उपदेशमूलक रूक्ष रचनाएं।
2. वीरत्व के नवीन स्वर के मुखरित करने वाले चारण-चरित काव्य।
3. लौकिक रस से अनुप्राणित अन्य रचनाएं; जैसे- विरहकाव्य (संदेश रासक)।
4. फुटकल अन्य विषयों की कविता, जैसे- अमीर खुसरो की पहेलियां।

इन प्रवृतियों का अध्ययन करने पर हम इस काल का नामकरण 'आदिकाल' रख सकते हैं। 'आदिकाल' नामकरण से इस काल की साहित्य रचना की प्रवृतियों का लक्षण निरूपण नहीं होता है। यह तो हिन्दी भाषा के साहित्य का आदिकाल है। साहित्य की परम्परा तो पूर्ववर्ती परिनिष्ठित अपभ्रंश के साहित्य में ढूंढ़ी जा सकती है, जिसका बढ़ाव आदिकालीन साहित्य में मिलता है। परिनिष्ठित अपभ्रंश की साहित्यिक रूढ़ियां एवं परम्पराएं आदिकालीन साहित्य में सुधर रूप में प्रतिफुलित हुई हैं। इस प्रकार दसवी शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक के साहित्यिक प्रयत्नों का अध्ययन करने के लिए पूर्ववर्ती अपभ्रंश भाषा के साहित्य की परम्परा का अध्ययन आवश्यक है।

1.6 आदिकाल की कालावधि और विद्यापति

आदिकाल के संबंध में दूसरी महत्वपूर्ण बात है, इसके उद्भव की। यह कहना कि कब से अपभ्रंश रूढ़िग्रस्त होकर साहित्यिक मरण को प्राप्त हुई और उसका स्थान लोकभाषा या देशभाषा ने लिया, बड़ा कठिन है। साधारणतया आदिकाल का प्रारम्भ दसवीं शताब्दी से ही माना जा सकता है। एक बात और है, विद्यापति की रचनाओं का संवत् 1460 के लगभग का माना जाता है, जो आदिकाल की कालावधि से बाहर निकल जाता है, फिर भी शुक्लजी तथा अन्य इतिहास लेखक उन्हें आदिकाल के भीतर मानते हैं।

Jan Vishwa Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वस्तुत: विद्यापति की रचनाओं में अपभ्रंश की परम्परा भी है और देशभाषा का स्वरूप भी स्पष्ट हुआ है। ये रचनाएं अपभ्रंश परम्परा और हिन्दी की देशभाषा परम्परा का सुन्दर सामंजस्य प्रस्तुत करती है। शुक्लजी अपभ्रंश की परम्परा की समाप्ति आदिकाल में ही कर देना चाहते थे, अत: इनका विवेचन आदिकाल में कर दिया है। इसके अतिरिक्त विद्यापति हिन्दी साहित्य में भक्ति और श्रृंगार की धारा के प्रवर्तक माने जाते हैं, जिसका भली-भांति स्फुरण क्रमश: भक्ति काल और श्रृंगार काल में हुआ। अत: यह भी संभव है कि शुक्लजी ने हिन्दी की भक्ति और श्रृंगारिक धारा का मूल स्रोत आदिकाल में दिखाने के लिए ही विद्यापति का इस काल में उल्लेख किया हो। कुछ विद्वानों ने विद्यापति के भक्तिकालीन कवियों में भी स्थान दिया है।

1.7 आदिकाल की पूर्वपीठिका

हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने दसवीं से चौदहवीं शताब्दी के हिन्दी साहित्य के रचना काल को हिन्दी साहित्य का आदिकाल कहा है। दसवीं शताब्दी से पहले साहित्यिक प्रयत्नों का विकास परिनिष्ठित अपभ्रंश भाषा में हुआ था। यह परिनिष्ठित अपभ्रंश भाषा में रचित साहित्य पर्याप्त विकसित एवं सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यंजना करने वाला है। इसी का विकसित रूप दसवीं से चौदहवीं शताब्दी के देशभाषा या लोकभाषा के साहित्य में मिलता है। भाषा की दृष्टि से परिनिष्ठित अपभ्रंश का स्थान लोकभाषा या देशभाषा ने ग्रहण कर लिया था, किन्तु साहित्यिक प्रवृतियों की दृष्टि से आदिकाल का साहित्य अपभ्रंश साहित्य का ही बढ़ाव है।

अपभ्रंश से देशभाषा की ओर- भाषा परिवर्तन की दृष्टि से ही इस काल का विशेष महत्व है। दसवीं शताब्दी से पूर्ववर्ती साहित्य में देशभाषा का स्वरूप पूर्णतया स्पष्ट नहीं हुआ। जब अपभ्रंश भाषा परिनिष्ठित होकर साहित्यिक भाषा के पद पर आसीन हुई, तब उससे उद्भूत तथा व्याकरण के नियमों की कठोर श्रृंखला से मुक्त बोलचाल की एक भाषा प्रचलित हुई। धीरे-धीरे इस लोकभाषा का व्याकरण संस्कार हुआ, सभ्य समाज एवं साहित्य में इसका प्रयोग हुआ और क्रमश: इसने परिनिष्ठित अपभ्रंश 'साहित्यिक मरण' को प्राप्त हुई तब उसके स्थान पर बोलचाल की भाषा विकसित होकर साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। इस भाषा का नाम देशभाषा या लोकभाषा तभी से पड़ गया। अपभ्रंश के विरोध में यह लोकभाषा के नाम से प्रसिद्ध हुई। आचार्य डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने अपने हिन्दी साहित्य में लिखा है- 'दसवीं से चौदहवीं शताब्दी तक के समय में लोकभाषा लिखित जो साहित्य उपलब्ध हुआ है, उसमें परिनिष्ठित अपभ्रंश से कुछ आगे बढ़ी हुई भाषा का रूप दिखाई देता है। दसवीं शताब्दी की भाषा के गद्य में तत्सम शब्दों का व्यवहार बनने लगा था, परन्तु गद्य की भाषा में तद्भव शब्दों का ही एकछत्र राज्य था। चौदहवीं शताब्दी तक के साहित्य में इसी प्रवृति की प्रधानता मिलती है।' विद्यापति की कीर्तिलता में इस प्रवृति का पूर्ण परिचय मिलता है। हिन्दी साहित्य को आदिकाल की भाषा के संबंध में आचार्य द्विवेदी जी ने लिखा है कि दसवीं से चौदहवीं शताब्दी के उपलब्ध, लोकभाषा साहित्य के अपभ्रंश से थोड़ी भिन्न भाषा का साहित्य कहा जा सकता है। वस्तुत: वह हिन्दी की आधुनिक बोलियों में से किसी-किसी के पूर्वरूप के रूप में ही उपलब्ध होता है। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखक दसवीं शताब्दी से इस साहित्य का आरम्भ स्वीकार करते हैं। इसी समय से हिन्दी भाषा का आदिकाल माना जा सकता है।'

1.8 आदिकालीन हिन्दी साहित्य : अपभ्रंश का विकसित रूप

यहां तक तो भाषा की दृष्टि से विचार हुआ। वस्तुत: हिन्दी भाषा का साहित्यिक उपयोग दसवीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ और इसी आधार पर हिन्दी भाषा के साहित्य का प्रारम्भ भी दसवीं शताब्दी से माना जाता है। किन्तु जहां तक साहित्यिक प्रवृतियों का संबंध है, दसवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक का साहित्य दसवीं शताब्दी से पूर्ववर्ती परिनिष्ठित अपभ्रंश भाषा के साहित्य का ही बढ़ाव है। आचार्य डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस तथ्य को इन शब्दों में व्यक्त किया है- 'वस्तुत: छन्द, काव्य रूप, काव्यगत रूढ़ियों और वक्तव्य वस्तु की दृष्टि से दसवीं से चौदहवी शताब्दी तक का लोकभाषा का साहित्य परिनिष्ठित अपभ्रंश में प्राप्त, साहित्य का ही बढ़ाव है, यद्यपि उसकी भाषा उक्त अपभ्रंश से थोड़ी भिन्न है।'

1.9 मूल हिन्दी प्रवेश में साहित्य रचना का अभाव क्यों ?

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य' का आदिकाल में लिखा है कि 'यद्यपि हमने अपभ्रंश की अनेक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

रचनाओं की चर्चा की है और हमारा मत है कि ये रचनाएं आदिकालीन हिन्दी साहित्य के काव्यरूपों के अनुमान में सहायक है; परन्तु यह सत्य है कि जिन प्रदेशों में आगे चलकर ब्रजभाषा, अवधी और खड़ीबोली का साहित्य लिखा जाने लगा, उन प्रदेशों की बहुत ही थोड़ी रचनाएं हमें मिलती हैं– बहुत ही थोड़ी। फिर भी माता और विस्तार में अत्यन्त अल्प इन रचनाओं का भी बहुत महत्व है, इन थोड़ी रचनाओं ने भी विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया है और अनेक विद्वानों ने इसके मूल रूप को समझने का प्रयास भी किया है।' वस्तुत: 14वीं शताब्दी के पहले की भाषा का रूप हिन्दी भाषी प्रदेशों में क्या और कैसा था, इसका निर्णय करने योग्य साहित्य आज उपलब्ध नहीं हो रहा है। इस बात का निर्णय करना कठिन है कि अवधी और ब्रज भाषा क्षेत्र में उत्पन्न वहीं की भाषा बोलने वाले लोगों ने किस प्रकार के साहित्य की रचना की थी, जिसके परवर्ती विकसित रूप में अवधी और ब्रजभाषा के साहित्यिक ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं, क्योंकि 10वीं से 14वीं शताब्दी के भीतर इन क्षेत्रों में कोई रचना हुई भी हो तो उसका प्रामाणिक रूप हमें प्राप्त नहीं। यह एक प्रकार से हिन्दी साहित्य का अन्धकार युग है।

1.10 आदिकालीन हिन्दी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

अपने आलोच्य काल की इन प्रमुख पुस्तकों पर विचार करने पर हमें चार प्रकार की प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं–

(1) ऐतिहासिक व्यक्तियों के आधार पर चरित–काव्य लिखने की कहानी प्रथा, जैसे रासक ग्रन्थ, कीर्तिलता इत्यादि। इनमें कवि अपने नायक को भगवतस्वरूप बताकर कहानी में थोड़ा धार्मिकता का पुट देने का प्रयत्न करते हैं। कीर्तिमान में विद्यापति ने इस प्रवृत्ति को इस प्रकार दर्शाया है – पुरुष काहाणी हौं कहौं जसु पत्थावै पुन्नु।

(2) लौकिक रस की रचनाएं लिखने की प्रवृत्ति, जैसे सन्देशरासक, विद्यापति पदावली, कीर्तिपताका, स्वयंभूछन्द इत्यादि। सन्देशरासक की कहानी बहुत सरल एवं मर्मस्पर्शी है। यह एक विरहिणी का सन्देश है। अत: विप्रलम्भ श्रृंगार की सुन्दर व्यंजना करता है। विद्यापति की पदावली एक धार्मिक सम्प्रदाय का धार्मिक ग्रन्थ है, साथ ही उसके पदों में श्रृंगार रस की सुन्दर व्यंजना है। कीर्तिपताका में प्रेम सम्बन्धी कविता है।

(3) बौद्ध एवं नाथ सिद्धों की तथा जैन मुनियों की रूक्ष तथा उपदेशमूलक और हठयोग का प्रचार करने वाली रचना लिखने की प्रवृत्ति। आचार्य डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार हिन्दी साहित्य के इतिहास में इन रचनाओं का महत्त्व दो कारणों से हैं, ''एक तो परवर्ती धार्मिक काव्य–रूपों के विकास में ये सहायक है, और उस धार्मिक पृष्ठभूमि को समझने में सहायता पहुँचाती हैं, जिसके बिना हम परवर्ती काव्य–प्रयत्नों को समझ ही नहीं पायेंगे, और दूसरे, इनके अध्ययन से उस युग की भाषा, शैली छन्दोविधान आदि का अध्ययन सुकर होता है।''

(4) धार्मिक रचनाएं जिनमें उच्चकोटि के साहित्य के दर्शन होते हैं, जैसे– परमात्म प्रकाश, भविसयत्तकहा, पउमचरिउ, हरिवंश पुराण इत्यादि। धार्मिक प्रेरणा एवं आधार को लेकर रचे गये इन काव्य–ग्रन्थों में उच्चकोटि के साहित्य के दर्शन होते हैं। आचार्य डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ऐसे धार्मिक ग्रन्थों को साहित्य–कोटि में लेने के लिए बड़ा सुन्दर तर्क उपस्थित किया है – ''राजशेखर सूरि जैन मत के साधू थे, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार नन्ददास या हितहिरवंश वैष्णव धर्म के साधु थे। राजशेखर ने नेमिनाथ का चरित्र वर्णन करते हुए नेमिनाथ फागु लिखा था और नन्ददास ने अपने उपास्य की लीलाओं का वर्णन करते हुए रास–पंचाध्यायी। दोनों में ही धर्म–भाव प्रधान है और दोनों में कवित्व है। जिस प्रकार 'राधा–सुधानिधि' में राधा की शोभा के वर्णन में कवित्व है और वह कवित्व उपास्य बुद्धि से चालित है, उसी प्रकार 'राजुलदेवी' की शोभा में कवित्व भी है और वह उपास्य–बुद्धि से चलित भी है।''

इन चार प्रमुख प्रवृत्तियों को दर्शाने वाली रचनाओं के अतिरिक्त अन्य प्रकार की रनचाएं मिलती हैं, जैसे–अमीर खुसरो की पहेलियाँ इत्यादि।

उपर्युक्त विवेचन से एक बात स्पष्ट हो गई है, वह यह कि केवल वीरगाथात्मक ग्रन्थों पर दृष्टिपात करके इस काल का नामकरण 'वीरगाथा काल' रखना आज के ज्ञान के आलोक में उचित नहीं जान पड़ता। दसवीं से चौदहवीं शताब्दी के साहित्य में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वीरत्व का एक नया स्वर अवश्य मुखरित हुआ है किन्तु इसके अतिरिक्त अन्य साहित्यिक प्रवृत्तियां भी हैं जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। लेकिन वीर-गाथाकाल नामकरण को अनुपयुक्त बतलाकर तथा वीरगाथात्मक ग्रन्थों की प्रामाणिकता जाँचने में कुछ आलोचकों ने वीरगाथाओं के महत्त्व को भुला दिया है। मेनारियाजी का मत है कि ये रासो ग्रन्थ, जिनको वीरगाथाएं नाम दिया गया है और जिनके आधार पर वीरगाथाकाल की कल्पना की गई है, राजस्थान के किसी समय विशेष की साहित्यिक प्रवृत्ति को भी सूचित नहीं करते, केवल चारण, भाट आदि कुछ वर्ग के लोगों की जन्मजात मनोवृत्ति को प्रकट करते हैं। प्रभुभक्ति का भाव इन जायितों के खून में है और ये ग्रन्थ उस भावना की अभिव्यक्ति करते हैं। मेनारियाजी का यह कथन निराधार है। जिन चारणों-भाटों की जन्मजात मनोवृत्ति की सूचक उत्हसावर्द्धक एवं प्रशंसापरक उक्तियों की ओर मेनारियाजी ने संकेत किया है, उनका चिन्ह भी नहीं मिलता। चारण-भाटों की ऐसी निम्न कोटि की रचना तो उनके मुंह में ही रहती थीं और उनके साथ ही समाप्त हो जाती थीं। ऐतिहासिक चरित-नायकों को उपजीव्य बनाकर रचे गये रासों ग्रन्थ उच्च कोटि के साहित्यिक ग्रन्थ हैं तथा उस युग की राजस्थान की विशेष साहित्यिक प्रवृत्ति के परिचायक नहीं हैं। यह चारण-भाटों की प्रभुभक्ति एवं चाटुकारितापूर्ण प्रशस्ति के परिचायक नहीं है वरन उस युग की साहित्यिक मनोवृत्तियों का परिचय देते हैं। मेनारियाजी ने इन रासक ग्रन्थों को उसी कोटि की रचना समझ लिया है, जो युद्ध में राजाओं के साथ जाने वाले भाटों द्वारा सेना को प्रोत्साहित करने के लिए रची जाती थीं। इस बात को कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता कि आदिकालीन कविता प्रमुख रूप से राज्याश्रय में पल्लवित हुई। राज्याश्रय में पल्लवित वीरगाथाएं उस युग की दरबारी मनोवृत्ति की परिचायक हैं। हिन्दी के आदिकाल में अधिकांश कवि ऐसे हुए हैं जिन्हें समाज को संगठित तथा सुव्यवस्थित कर, उसे विदेशी आक्रमणों से रक्षा करने में समर्थ बनाने की उतनी चिन्ता नहीं थी जितनी अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा द्वारा स्वार्थ-साधन की थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि आदिकाल के कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की वीरता का गान तो उत्साह के साथ किया है किन्तु उनमें वांछनीय राष्ट्रीय भावना का एक प्रकार से अभाव ही रहा है।

1.11 हिन्दी साहित्य के आदिकाल की भाषागत प्रवृत्तियाँ

आदिकाल गद्य का रूप-विद्यापति की कीर्तिलता - यहाँ तक हमने 'आदिकाल' की साहित्यिक प्रवृत्तियों के स्वरूप का संक्षेप में विचार किया और यह भी देखा कि भाषा-परिवर्तन की दृष्टि से यह हिन्दी-भाषा के साहित्य का आदिकाल है अन्यथा दसवीं से चौदहवी शताब्दी तक का लोकभाषा का साहित्य-परिनिष्ठिति अपभ्रंश से प्राप्त साहित्य का ही बढ़ाव है। इस प्रकार आदिकाल में दो भाषाओं का रूप दिखाई पड़ता है - एक तो परिनिष्ठित अपभ्रंश का, और दूसरा उक्त अपभ्रंश से कुछ भिन्न भाषा का अथवा लोकभाषा का। दूसरे शब्दों में लोकभाषा का यह रूप परिनिष्ठित अपभ्रंश से कुछ आगे बढ़ी हुई भाषा रूप है। यह आगे बढ़ी हुई भाषा भी गद्य और पद्य क्षेत्र में भिन्न-भिन्न रूप लिये हुए हैं। गद्य में भाषा की इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। एक उदाहरण पर्याप्त होगा - अथ गद्य। तान्हि करो पुत्र युवराजसिंह माँझ चरित्र, अगणेयगुणग्राम प्रतिज्ञा पद पूरणैक परशुराम मर्यादामंगलावास कविताकालिदास, प्रबल रिपुबलसुभटसंकीर्ण समरसहासदुर्निवार धनुर्विद्यावैदग्व्यधनञ्जयावतार समाचरित चन्द्रचूडचरणसेव समस्तप्रक्रियाविरमान महाराजाधिराज श्रीमद्वीरसिंहदेव।

पद्य की भाषा-देसिलवअना-अवहट्टा- मैथिल अपभ्रंश

परन्तु पद्य की भाषा में तद्भव शब्दों का एकच्छत्र राज्य था। विद्यापति की कीर्तिलता से एक उदाहरण पर्याप्त होगा-

तसु नन्दन भोगीसराए, भोग पुरन्दर।
हुअ हुआसन तेजिकान्त कुमुमाअँह सुन्दर॥

जाक सिद्धि केदार दान पञ्चम वलि जानल।
पिअसख भणि पिअरोजसाह सुरदान समानल॥

पत्ताये दान, सम्मान गुणे जें सब करिअउं अप्पवस।
वित्थरि अकित्ति महिमण्डलहि कुन्दकुसुम संकास जस॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

यह देशभाषा अपभ्रष्ट का शुद्ध रूप है। इसी को विद्वान् आलोचकों ने परिनिष्ठित अपभ्रंश से आगे बढ़ी हुई लोकभाषा या देशभाषा कहा है। यह साहित्यिक बन्धन से जकड़ी हुई परिनिष्टित अपभ्रंश का ही लोक में, बोलचाल में प्रचलित रूप था जिसमें परिनिष्ठित अपभ्रंश के से बन्धन नहीं थे। यह बोलचाल की भाषा थी और काव्य-भाषा के तौर पर उसका प्रयोग दसवीं शताब्दी से प्रारम्भ में ही हुआ था। डॉ. बाबूराम सक्सेना के मत में, कीर्तिलता के पढ़ने से यह विदित होता है कि विद्यापति के समय में आधुनिक भाषाओं का हिन्दी, मैथिली आदि कोई नाम अभी प्रचलित नहीं हुआ था, भाषाएं अभी अपभ्रंश ही कहलाती थीं। नहीं तो, विद्यापति एक ही वस्तु को देसिलवअना और अवहट्टा नहीं कहते। डॉ. वर्मा के अनुसार- कीर्तिकला के अपभ्रष्ट को मैथिली अपभ्रंश कहना उचित होगा।

अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी का विवाद

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी ने साहित्यिक या परिनिष्ठित अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी की संज्ञा दी थी, उनके मत से साहित्यिक अपभ्रंश भाषा लगभग समूचे उत्तर भारत में एक ही थी। किन्तु प्रांतगत भेद के अनुसार उसमें कुछ-कुछ प्रादेशिक पुट अवश्य होते थे। उनको शब्दों में, कविता की प्राय: भाषा सब जगह एक सी ही थी। जैसे नानक से लेकर दक्षिण के हरिदासों तक की कविता की भाषा ब्रजभाषा कहलाती थी, वैसे ही अपभ्रंश को भी पुरानी हिन्दी कहना अनुचित नहीं होगा चाहे कवि के देशकाल के अनुसार उसमें कुछ रचना प्रादेशिक हो। आचार्य डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, ''यह विचार भाषाशास्त्रीय और वैज्ञानिक नहीं है। भाषा-शास्त्र के अर्थ में जिसे हम हिन्दी (खड़ी-बोली, ब्रजभाषा, अवधि आदि) कहते हैं वह इस साहित्यिक अपभ्रंश से सीधे विकसित नहीं हुई है। व्यवहार में पंजाब से लेकर बिहार तक बोली जाने वाली सभी उपभाषाओं को हिन्दी कहते हैं। इसका मुख्य कारण इस विस्तृत भू-भाग के निवासियों की साहित्यिक भाषा की केन्द्राभिमुखी प्रवृत्ति है। गुलेरी जी इस व्यावहारिक अर्थ पर जोर देते हैं।'' द्विवेदी जी आगे कहते हैं - ''जहाँ तक नाम का प्रश्न है, गुलेरी जी का सुझाव पण्डितों को मान्य नहीं हुआ है। अपभ्रंश को अब कोई पुरानी हिन्दी नहीं कहता। परन्तु जहाँ तक परम्परा का प्रश्न है, नि:सन्देह हिन्दी का परवर्ती साहित्य अपभ्रंश साहित्य में क्रमश: विकसित हुआ है। यही कारण है कि दसवीं से चौदहवीं शताब्दी के अध्ययन के लिए हमने ऊपर परनिष्ठित अपभ्रंश के साहित्य का उल्लेख किया है। वस्तुत आदिकाल के साहित्यिक प्रयत्नों को समझने के लिए पूर्ववर्ती अपभ्रंश साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। किन्तु भाषा की दृष्टि से आदिकाल की भाषा हेमचन्द्र के शब्दों में ग्राम्य-अपभ्रंश है। हेमचन्द्राचार्य ने दो प्रकार की अपभ्रंश भाषाएं मानी हैं - एक परिनिष्ठित या साहित्यिक अपभ्रंश जिसका व्याकरण उन्होंने स्वयं बनाया था और दूसरी ग्राम्य अपभ्रंश जो उक्त अपभ्रंश से आगे बढ़ी हुई अपभ्रंश है तथा जिसे लोकभाषा या देशभाषा कहते हैं। इसी में बौद्ध और नाथ सिद्धों के पद और दोहे, सन्देशरासक, कीर्तिलता इत्यादि की रचना हुई है। प्रादेशिक पुट के अनुसार इस लोकभाषा के भी कई रूप दिखलाई पड़ते हैं। जैसे-राजस्थानी मिश्रित लोकभाषा, जिसका नाम डिंगल पड़ा और मैथिली मिश्रित लोकभाषा, जिसका रूप कीर्तिलता में देखने को मिलता है। आगे हम डिंगल के स्वरूप का विस्तार से वर्णन करेंगे।''

1.12 आदिकालीन भाषा का स्वरूप विवेचन

भाषा की दृष्टि से आदिकाल की साहित्यिक सामग्री का विवेचन करने पर हमें देशभाषा के तीन रूप मिलते हैं- राजस्थानी मिश्रित अपभ्रंश या लोकभाषा या देशभाषा। मैथिली मिश्रित अपभ्रंश या देशभाषा या लोकभाषा का नाम डिंगल पड़ा और यह समूचे राजस्थान की साहित्यिक भाषा बनी। इसका छन्द-शास्त्र भी अलग था। इसमें अपभ्रंश से निकली हुई राजस्थानी का रूप मिलता है। वीरगाथात्मक रासक ग्रन्थों में इस भाषा का स्वरूप देखने को मिलता है। वस्तुत: वीररस के लिए डिंगल भाषा ही उपयुक्त थी। भाषा की दृष्टि से डिंगल साहित्य बड़ा अव्यवस्थित है। उसका स्वरूप विकृत हो गया है। उसमें पिंगल का मिश्रण है और अपभ्रंश के प्रभाव के कारण संयुक्ताक्षरों एवं अनुस्वार शब्दों की प्रचुरता है। इसीलिए डिंगल शब्द व्यत्पत्ति खोजने में लोगों में डिम + गंल अर्थात् डमरू की ध्वनि से इसका सामंजस्य बैठाने का प्रयत्न किया है। इसका एक उदाहरण यहाँ अनुपयुक्त न होगा-

धर उप्पर भर परत करत अति जुद्ध महा भर।
कहौं कमध अरु खग्ग कहौं कर चरन अन्तरुरि॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कहौं देत मंत हयषुर उपरि कुम्भ भुसुण्डहिं रुण्ड सब।
हिन्दुवाँन राने भय माँन मुष गह तेग चहुँआन जब॥

हमारे आलोच्य-काल की दूसरी प्रमुख भाषा मैथिली-मिश्रित देशभाषा है। इस भाषा का सुन्दर स्वरूप कीर्तिलता में देखने को मिलता है। विद्यापति की पदावली में मैथिली भाषा का शुद्ध रूप देखने को मिलता है। इसमें अवधी से भी समानता मालूम पड़ती है। पदावली से एक उदाहरण प्रस्तुत है-

कामिनी करए सनाने। हेरतहि हृदय हनए पँचवाने॥ 2॥

चिकुर गरए जलधारा। जनि मुख-ससि डर रोअए अँधारा॥ 4॥

कुच-जुग चारु चकेवा। निअकुल मिलिअ आनि कोन देवा॥ 6॥

ते संका भुज-पासे: बाँधि धएल उड़ि जा एत अकासे॥ 8॥

आदिकाल में राजस्थानी एवं खड़ीबोली मिश्रित देशभाषा का सुन्दर प्रयोग अमीर खुसरो की पहेलियों एवं मुकरियों में हुआ है। यह तत्कालीन जन-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो रही थी। यह दिल्ली और मेरठ की जनभाषा थी। भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग है, पर क्रियाएं हिन्दी की ही हैं।

1.13 सारांश

इस इकाई में आपने जाना कि प्रत्येक युग का साहित्य जनता की चित्तवृत्ति के अनुरूप बनता और परिवर्तित होता रहा है। इसलिए यह कहा जाता है कि 'साहित्य समाज का दर्पण है।' जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है इसलिए किसी भी युग के साहित्य को समझने के लिए उस युग की राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक स्थिति का विश्लेषण अत्यावश्यक है। आपने यह भी पढ़ा कि किन आधारों को मापदण्ड बनाकर हिन्दी साहित्य के इतिहास का कालविभाजन और नामकरण किया गया है। साहित्य में परिवर्तन क्रमशः धीर गति से होता है। अतः उसके विभाजन के लिए कोई निश्चित तारीख नहीं दी जा सकती। उसका एक काल निर्धारित किया जा सकता है।

1.14 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

1. आदिकाल का नामकरण वीरगाथा काल क्यों नहीं किया गया? तर्क सहित उत्तर दीजिए।
2. आदिकालीन भाषा के स्वरूप विवेचन पर एक लेख लिखिए।
3. आदिकालीन हिन्दी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को स्पष्ट कीजिए।
4. आदिकालीन हिन्दी साहित्य : अपभ्रंश का विकसित रूप है। स्पष्ट कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-02

चन्द्रवरदायी

संरचना

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 रासो शब्द की व्युत्पति / पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता

2.3 पृथ्वीराज रासो सामन्य युग का प्रतिनिधि महाकाव्य है

2.4 पृथ्वीराज रासो में कथानकर रूढ़ियों का उपयोग

2.5 पृथ्वीराज रासो की भाषा

2.6 पृथ्वीराज रासो इतिहास ग्रन्थ न होकर काव्य ग्रन्थ है

2.7 महत्त्वपूर्ण काव्यांशों की सप्रंसग व्याख्या

2.8 मूल पाठ

2.9 सारांश

2.10 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

इस इकाई में आप पढ़ेंगे कि किस प्रकार -

- कवि चन्द्रवरदायी सिद्ध कलाकार थे।
- अपने समय की हर वस्तु को उन्होंने देखा, परखा।
- उनके काव्य में जीवन की गहराई मिलती है।
- चन्द्रवरदायी का अपने देश के प्रति कितना प्रेम था।
- पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता, काव्य-सौन्दर्य, भाषा
- शशिवृता का सौन्दर्य आदि।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई में आप पढ़ेंगे चन्द्रवरदायी कृत पृथ्वीराज रासो का एक खंड 'शशिवृता विवाह खण्ड'। 'शशिवृता विवाह खण्ड' पृथ्वीराज रासो का पच्चीसवां समय है। इस इकाई को पढ़कर आप पृथ्वीराज रासो उस समय के सामन्ती समाज की व्यवस्था के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

2.2 रासो शब्द की व्युत्पति / पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता

रासो-काव्य हिन्दी के प्राचीनतम काव्य हैं जो धीरे-धीरे इतिहास की अंधकाराच्छन्न गुहा से निकलकर आलोक में आ रहे हैं। अत्यन्त प्राचीन काव्य होने के कारण न केवल रासो-काव्यों के संबंध में ही अनेक भ्रान्तियों ने जन्म लिया है, अपितु स्वयं 'रासो' शब्द के संबंध में भी अनेक भ्रामक धारणाएं विद्वानों द्वारा व्यक्त की गई हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसिद्ध इतिहासकार गार्सा द तासी के अनुसार रासो शब्द की व्युत्पत्ति राजसूय शब्द से हुई है, परन्तु न सभी चरित-काव्यों में राजसूय यज्ञ का वर्णन है और न संदेशरासक, बीसलदेव रासो आदि काव्यों में। इनमें केवल वीर रस का वर्णन है। (उनमें अन्य रसों का भी समावेश है), अत: यह मत स्वीकार्य नहीं।

नरोत्तम स्वामी ने 'रसिक' शब्द से रासो की व्युक्तत्ति मानी है- रसिक: रासउ: रासो। उन्होंने रसिक का अर्थ कथा या काव्य माना है। यह व्युत्पत्ति रासो के संबंध में तो ठीक है, परन्तु जिन काव्यों का नाम रासक या रास हैं, उनकी संगति इस मत से नहीं बैठती।

कुछ विद्वानों ने 'रहस्य' शब्द से और कुछ ने 'रसिया' शब्द से रासो का संबंध जोड़ा है। पर रासो काव्यों में न तो गूढ़ रहस्यमयता ही मिलती है और न केवल भद्दा स्थूल श्रृंगार ही। ये काव्य न तो एकान्त रूप से श्रृंगारी काव्य है और न रहस्यवादी। अत: ये मत भी उपयुक्त प्रतीत नहीं होते।

आचार्य शुक्ल ने रासो की व्युत्पत्ति के लिए रसायन शब्द प्रस्तुत किया था और प्रमाण के लिए निम्न पंक्ति 'नाल्ह रसायन आरम्भई' प्रस्तुत की थी। उनके अनुसार रसायन का अर्थ था 'काव्य', पर शुक्ल जी का मत भी आज अमान्य हो चुका है।

पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'रासक' शब्द से रासो की व्युत्पत्ति मानी है। उनका कथन है कि जैसे संस्कृत का ''घोटक'' शब्द ब्रज में 'घोड़ों' हो जाता है, उसी प्रकार 'रासक' का 'रासो' हो गया है। उनके अनुसार रासक का अर्थ काव्य था। शुक्ल जी के मत के समान इनका मत भी विद्वानों द्वारा स्वीकार नहीं किया गया।

बैजनाथ खेतान ने रासो का अर्थ राजस्थानी भाषा में ऊधम, युद्ध अथवा प्रेमीजनों का झगड़ा बताते हुए रासो को शुद्ध राजस्थानी शब्द मानते हुए कहा है कि रासो शब्द की व्युत्पत्ति के लिए अन्यत्र जानने की आवश्यकता नहीं। परन्तु डॉ. दशरथ शर्मा ने उनके मत का विरोध करते हुए कहा है कि राजस्थानी में रासो शब्द अपने मूल अर्थ में नहीं बल्कि लाक्षणिक अर्थ में झगड़े के अर्थ में उसी प्रकार प्रयुक्त हुआ है, जिस प्रकार महाभारत शब्द लड़ाई के अर्थ में हुआ है। अत: रासो की व्युत्पत्ति रासो से नहीं, बल्कि किसी अन्य शब्द से मानी जानी चाहिए।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी रासो की व्युत्पत्ति 'रासक' शब्द से मानते हैं, जो एक छन्द विशिष्ट अथवा काव्य-भेद के लिए प्रयुक्त होता था। उनका कथन है कि मूल रूप में अपभ्रंश काव्य इसी रासक छन्द तथा इसी काव्य-भेद में लिखे जाते थे। कालान्तर में किसी भी गेय छन्द वाले वाक्य को रासक या रासो कहा जाने लगा जैसे बीसलदेव रासो। उनके मतानुसार आरम्भ में ये काव्य प्रेम-प्रधान ही होते थे, बाद में इनमें वीरों की गाथाएं भी जोड़ दी गईं।

चन्द्रबली पाण्डेय ने रासो की पुष्पिका में 'रासक' शब्द देखकर यह कल्पना की कि रासो संस्कृत के 'रासक' शब्द से निकला है, जिसका अर्थ **उपरूपक** का एक भेद है। उनका तर्क यह है कि पृथ्वीराज रासो के आरम्भ में चन्द्र और उसकी पत्नी के मध्य उसी प्रकार का वार्तालाप विद्यमान है, जिस प्रकार उपरूपक के आरम्भ में नट-नटी के बीच वार्तालाप होता है। उनके तर्क के विरुद्ध इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि अनेक रासो काव्यों में जैसे 'खुमान रासो' या 'बीसलदेव रासो' में यह नाटकीय पद्धति नहीं है।

इन सब विद्वानों के मतों में चन्द्रबली पाण्डे और हजारीप्रसाद द्विवेदी के मत सर्वाधिक तर्क-सम्मत प्रतीत होते हैं। इन दोनों के अतिरिक्त विश्वनाथ प्रसाद मिश्र भी रासो की व्युत्पत्ति रासक शब्द से मानते हैं। इन सभी विद्वानों के मतों का समाहार बड़ी विद्वतापूर्ण शैली में जो अधिक तर्कपूर्ण है, डॉ. दशरथ शर्मा ने किया है। उनके अनुसार रासो शब्द का प्रयोग कोई आकस्मिक घटना नहीं है, उसका एक क्रमिक इतिहास है और वह इस प्रकार से है- श्रीमद्भागवत, हरिवंश पुराण तथा विष्णु पुराग में रास का उल्लेख मिलता है। यह रास श्रृंगार-गान -अभिनय से युक्त एक प्रकार की नृत्य-लीला होती थी। इन रासों के कालान्तर में तीन भेद हुए- प्रथम जिसमें नृत्य की विशेषता होती थी, जैसे लगुड रास, द्वितीय श्रव्य रास, जैस चरचरी तथा अभिनय रास, जिनमें अभिनय की प्रधानता होती थी। इन तीनों में श्रव्य रास सबसे अधिक जनप्रिय होते थे। अत: जैन आचार्यों ने ऐसे प्रबन्धों की रचना की जिनमें श्रव्य रास के सभी गुण विद्यमान हों। अभिनय रास से उपरूपक का वह भेद आविर्भूत हुआ जिसे 'रासक' नाम दिया गया। अत: हजारीप्रसाद द्विवेदी इत्यादि ने जो रासक से रासो की उत्पत्ति मानी है, वह उचित नहीं। वस्तुत: रास शब्द से रासक शब्द बना है। जहां तक रासो शब्द का प्रश्न है,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वह रास शब्द का ही एक वचनान्त रूप है और इसका प्रयोग प्रबंधों में अनेक बार हुआ है। प्रारंभ में ये प्रबंध काव्य या रासो काव्य गेय और अभिनेय होते थे। उनमें कभी कोमल भाव, कभी पुरुष भाव और कभी दोनों का सम्मिश्रित रूप होता था। इसी परम्परा का विकास रासो-काव्यों में हुआ। कदाचित् आरम्भिक अभिनेय तथा गेय रासों में श्रृंगार वर्णन के साथ-साथ वीरों की पराक्रम तथा शौर्य गाथांए और जोड़ दी गई तथा उन्हीं के विकसित रूप की परिणति रासो प्रबंध-काव्यों में हुई।

पृथ्वीराज रासो हिन्दी साहित्य का प्रथम महान् ग्रन्थ तथा उसके रचयिता चन्द हिन्दी के प्रथम महाकवि माने जाते रहे हैं। परन्तु अब विद्वानों में रासो की प्रामाणिकता के संबंध में मतभेद हो जाने से रासे तथा उनके कवि दोनों ही अपने पूर्व गौरव से वंचित होते जा रहे हैं। रासो की प्रामाणिकता के संबंध में तीन प्रकार के मत हैं। कुछ विद्वान् जिनमें कर्नल टाड, एफ. एस. ग्राउज, गार्सा द तासी, मोतीलाल मेनारिया, जान वीम्स, हार्नले, मिश्रबन्धु, श्यामसुन्दरदास तथा मोहनलाल विष्णुलाल पंडया उल्लेखनीय हैं- इसे प्रामाणिक मानते हैं। दूसरा वर्ग जिसमें डॉ. बूलर, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, शुक्ल जी तथा डॉ. रामकुमार वर्मा प्रमुख हैं- इसे जाली मानता है। तीसरा वर्ग उन विद्वानों का है जो इसे अर्द्ध-प्रामाणिक मानते हैं। इनमें डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी, मुनिजिन विजय, डॉ. दशरथ शर्मा तथा डॉ. हजारीप्रसाद उल्लेखनीय हैं। डॉ. बूलर को कश्मीर में प्राचीन ग्रन्थों की खोज करते हुए जयानक कवि रचित 'पृथ्वीराज रासो' नामक काव्य की एक खण्डित प्रति मिली जिसकी घटनाएं, संवत्, नाम और वंशवलियाँ आधिक इतिहाससम्मत थीं तथा जो 'पृथ्वीराज रासो' में दिए गए तथ्यों से भिन्न थीं। अत: 'रासो' की प्रामणिकता में संदेह प्रकट किया गया। आगे चलकर ओझा जी ने टाड इत्यादि विद्वानों के मत को अस्वीकार करते हुए इसे अप्रामाणिक सिद्ध करने के लिए अथक परिश्रम किया और निम्न तर्क प्रस्तुत किए-

1. पृथ्वीराज रासो के अनुसार आबू के शासक जैन और सबक थे। इसका कोई उल्लेख तत्कालीन शिलालेखों में नहीं मिलता। इतिहास-सम्मत तथ्य तो यह है कि उस समय आबू पर धारावर्ष परमार का शासन था।

2. रासो के अनुसार चौहानों की उत्पत्ति अग्निवंशीय क्षत्रियों से है। किन्तु 'पृथ्वीराज रासो', जिसे डॉ. बूलर ने काश्मीर में उपलब्ध किया और जो निश्चय ही अधिक प्रामाणिक ग्रंथ है, क्योंकि उसमें उद्धृत घटनाएं तथा तिथियाँ शिलालेखों से मिलती हैं, के अुनसार चौहान सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं। फिर संवत् 1460 तक चौहानों को सूर्यवंशी क्षत्रिय मानने के भी प्रमाण हैं।

3. पृथ्वीराज रासो में दी हुई चौहानों की वंशावली ने 'बिजोलिया' के शिलालेखों से मेल खाती है, न 'पृथ्वीराज रासो' में दी हुई वंशावली से और न 'हम्मीर काव्य' से। रासो के लाहौर वाले रूपांतर में चौहानों की उत्पत्ति ब्रह्मा के यज्ञ से मानी है, परन्तु लघु रूपान्तर इसके विषय में कुछ नहीं कहता।

4. रासो के अनुसार पृथ्वीराज की माता का नाम कमला था। परन्तु 'पृथ्वीराज विजय' और 'हम्मीर' काव्य दोनों में उसका नाम कर्पूर देवी मिलता है। इतिहास से यह भी सिद्ध हो चुका है कि पृथ्वीराज की माँ अनंगपाल की लड़की नहीं थी और न जयचंद अनंगपाल का दौहित्र। रासो का यह तथ्य कि अनंगपाल दिल्ली का राजा था और उसने पृथ्वीराज को गोद लिया था, भी गलत है।

5. रासो के अनुसार पृथ्वीराज की बहिन पृथा कुमारी का विवाह मेवाड़ के राजा समरसिंह से हुआ था, परन्तु ऐतिहासिक खोजों से यह गलत सिद्ध होता है। समरसिंह के समय का प्रथम शिलालेख संवत् 1330 का और अन्तिम संवत् 1352 का मिलता है। अत: समरसिंह पृथ्वीराज के लगभग 109 वर्ष बाद तक रहे।

6. रासो के अनुसार गुजरात के राजा भीमसिंह पृथ्वीराज के हाथों मारे गए, पर शिलालेखों में उनका जीवित रहना सं. 1272 तक अर्थात् पृथ्वीराज के 50 वर्ष बाद तक सिद्ध होता है।

7. रासो के अुनसार पृथ्वेराज ने 11 वर्ष से 36 वर्ष तक की आयु में 14 विवाह किए, पर इतिहास के अनुसार पृथ्वीराज की मृत्यु 30 वर्ष की अवस्था में ही हो गयी थी।

8. जयचंद का राजसूय यज्ञ, संयोगिता स्वयंवर आदि रासो में वर्णित घटनायें भी इतिहास-सम्मत नहीं है, क्योंकि शिलालेखों में उनका कोई संकेत नहीं मिलता।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9. रासो के अनुसार चित्तौड़ के रावल समरसिंह का ज्येष्ठ पुत्र कुम्भा न मिलने पर सहायता के लिए बीदर के बादशाह के पास गया था। परन्तु उस समय तक तो मुसलमान दक्षिण में पहुंचे भी न थे। अत: यह भी गलत है।

10. शहाबुद्दीन गौरी का पृथ्वीराज के हाथों मारा जाना भी असत्य है, क्योंकि वह तो गक्खरों द्वारा संवत् 1263 में मारा गया था।

11. रासों में लिखा है कि गौरी आबू की लड़ाई में परमार राजा द्वारा संवत् 1136 में पराजित हुआ। पर गौरी तो गद्दी पर ही संवत् 1230 में बैठा था।

इस प्रकार रासो में उल्लिखित अनेक ऐतिहासिक घटनायें असत्य और कपोल-कल्पित हैं। इतना ही नहीं, रासो में दी हुई तिथियाँ भी गलत हैं। जैसे-

1. रासो के अनुसार पृथ्वीराज का जन्म सं. 1115 में हुआ। परन्तु शिलालेखों तथा फारसी इतिहासकारों के अनुसार उसकी जन्म-तिथि सं. 1217 है। इसी प्रकार पृथ्वीराज की मृत्यु रासो में से . 1158 दी गयी है, जबकि इतिहास सं. 1248 मानता है।

2. इसी प्रकार की तिथि-संबंधी अशुद्धियाँ बीसलदेव के सिंहासनारूढ़ होने, पृथ्वीराज के गोद लिए जाने, पद्मावती विवाह, संयोगिता स्वयंवर, आबू पर भीम चालुक्य का आक्रमण, कैमास की लड़ाई और गौरी की मृत्यु आदि घटनाओं के संबंध में भी पायी जाती है।

रासो की भाषा की परीक्षा करने पर हमें और भी निराशा होती है। रासो में तीन प्रकार की भाषा है-

1. अनुस्वरान्त भाषा जिसमें कोई स्थिरता नहीं है।

2. आधुनिक साँचें में ढली हुई भाषा जो वर्तमान हिन्दी के अत्यंत निकट है।

3. कवित्तों और दोहों की भाषा जो कृत्रिमता रहित है। कदाचित् यही चंद की मूल भाषा है। रासो में अरबी-फारसी के इतने अधिक शब्द है कि विश्वास नहीं होता कि यह इतना प्राचीन ग्रंथ है। ऐसे शब्द प्राय: दस प्रतिशत है और चंद के काल में इतने अरबी-फारसी शब्द किसी भी प्रकार व्यवहार में नहीं आ सकते थे। इसीलिए शुक्ल जी ने कहा, ''यह ग्रन्थ न तो भाषा के इतिहास के और न ही साहित्य के जिज्ञासुओं के काम का है।'' इस प्रकार ओझा जी आदि विद्वानों ने अपनी युक्तियों द्वारा पृथ्वीराज रासो को अप्रामाणिक सिद्ध कियाहै। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी इसे प्रामाणिक नहीं माना।

अपने प्राचीनतम ग्रन्थ को अप्रामाणिक सिद्ध होते देखना कुछ विद्वानों को सहन नहीं हुआ और उन्होंने ओझा जी की युक्तियों के विरोध में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए। इतिहास-संबंधी भ्राँतियों के उन्होंने तीन कारण माने-

1. चंद ने अपने आश्रयदाता के शौर्य और विलास का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया है, जिसके कारण गलतियाँ हो जाना स्वाभाविक है। चंद कवि था, न कि इतिहासकार।

2. ओझा जी ने जिन्हें भ्राँति बताया है, वे भ्राँतियाँ नहीं, क्योंकि उनकी सत्यता 'नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित पट्टे-परवानों से सिद्ध होती है।

3. यदि कुछ भ्राँतियाँ हैं भी, तो उनका कारण क्षेपक हैं, अत: हमें रासो की लघुतम प्रति को ही प्रामाणिक मानना चाहिए।

मिश्र बंधुओं ने रासो को प्रमाणिक सिद्ध करने के लिए कहा- 1. पृथ्वीराज रासो तथा बिजौलिया के शिलालेखा में दी गई वंशावली का अंतर अत्यंत नगण्य है।

2. शहाबुद्दी की कई बार पराजय का उल्लेख यदि फारसी ग्रन्थों में नहीं है, तो वह फारसी इतिहासकारों की बेईमानी है।

3. जिन घटनाओं का रासो में उल्लेख है, इतिहास में नहीं, उनके विषय में मिश्र बंधु कहते हैं कि इतिहास यह भी तो नहीं कहता कि ये घटनायें नहीं हुई थीं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मिश्र बंधुओं के तर्क अत्यंत दुर्बल हैं। अन्तिम दो तो बहुत ही हास्यास्पद हैं, क्योंकि इतिहास केवल उन्हीं घटनाओं अथवा व्यक्तियों का उल्लेख करता है जो हुए हैं।

जहां तक अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन की बात है, वह कवि के लिए स्वाभाविक तो है, परन्तु इतिहास विरुद्ध घटनाओं तथा व्यक्तियों का वर्णन करना किसी भी प्रकार संगत नहीं।

जहां तक क्षेपक का प्रश्न है, कुछ घटनायें जो इतिहास-विरुद्ध हैं, वे रासो की मूल कथावस्तु के साथ इतनी सम्बद्ध है कि उन्हें क्षेपक नहीं कहा जा सकता।

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि रासो के वे 'समय' प्रामाणिक हैं, जिनमें शुक-शुकी संवाद है, पर डॉ. मातप्रसाद उनके विरुद्ध कहते हैं कि प्रक्षेपकार भी तो इन सर्गों की रचना में शुक-शुकी सम्वाद जोड़ सकते थे। उनका कहना है कि रासो का लघुतम पाठ ही प्रामाणिक है। उनमें उक्ति-श्रृंखला और छंद-श्रृंखला की पद्धति अपनायी गयी है।

जहाँ तक भाषा में अरबी-फारसी शब्दों के मिश्रण का प्रश्न है, डॉ. श्यामसुन्दर दास ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि चंद लाहौर का रहने वाला था, अत: अरबी-फारसी के शब्द उसकी कृति में आ जाना स्वाभाविक है। दूसरे, प्रक्षिप्त अंशों में प्रयुक्त अरबी-फारसी शब्दों की संख्या दस प्रतिशत कर दी है। यह तर्क भी कुछ अधिक पुष्ट नहीं है, क्योंकि प्रथम तो यह सिद्ध नहीं होता कि चंद के समय में लाहौर में अरबी-फारसी का प्रचुर प्रचार था। दूसरे, रासो के प्रत्येक समय में अरबी-फारसी के शब्द हैं और यह पता लगाना अत्यन्त कठिन है कि उसमें कितना अंश मूल और कितना प्रक्षिप्त है। मिश्रबंधुओं ने विविध शब्दावली के प्रयोग के संबंध में कहा था कि **अर्वाचीन प्रयोग रासो की अर्वाचीनता के प्रमाण हैं, तो प्राचीन रूप उसकी प्राचीनता के।** परन्तु जब हम एक ही छंद में शब्दों के विविध रूप देखते हैं, तो निश्चय ही कहना पड़ता है कि वे बाद में लिख गए हैं। कुछ विद्वानों ने इसका कारण लिपिकार का दोष माना है, पर प्रत्येक प्रति में शब्द का वैसा ही रूप इस तर्क को भी खंडित कर देता है। इन्हीं सब बातों को केन्द्र में रखकर डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- ''अब तक यही विश्वास किया जाता रहा है कि प्रक्षेपों के समुद्र में से मूल कविताओं के मोती चुन लेना असम्भव ही है।''

मुनि जिनविजय के 'पुरातन प्रबंध संग्रह' में रासों में पाए जाने वाले चार छंद मिले हैं, जिनकी प्रामणिकता असंदिग्ध है। इनकी भाषा परवर्ती अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी के अत्यंत निकट है और उसमें प्राचीन ब्रज के तत्त्व भी प्रचुरता से मिलते हैं। अत: यह तो सिद्ध हो जाता है कि चन्द नाम के कवि पृथ्वीराज के दरबार में थे और उन्होंने पृथ्वीराज से सम्बन्धित ग्रंथ भी लिखा था। रासो का काव्य-रूप भी दसवीं शताब्दी का है और उसमें रासो काव्यों की प्रवृत्तियां-संवाद, कथानक-रूढ़ियाँ आदि उसे प्राचीन सिद्ध करती हैं। शब्दों का संयुक्ताक्षररूप तथा अनुस्वरांत होना भी रासो के प्राचीन होने की ओर संकेत करता है। अत: अब अधिकांश विद्वान् उसे अर्द्ध-प्रामाणिक मानते हैं। उनका मत है कि रासो मूल रूप में अत्यंत लघु ग्रंथ था। रासो की लघुतम प्रतियों के मिलने के बाद तो यह बात और भी सत्य सिद्ध हो जाती है, क्योंकि उसमें सभी अनैतिहासिक बातों का अभाव है। अत: हमारा भी यही मत है कि रासो अपने लघुतम रूप में प्रामाणिक ग्रंथ हैं। विद्वानों ने निरर्थक तर्क-वितर्क के द्वारा इसके संबंध में भ्रांतियाँ उत्पन्न कर दी हैं। इस संबंध में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के निम्न शब्द अत्यंत संगत हैं- ''इस निरर्थक मन्थन से जो दुस्तर फेनराशि तैयार हुई है, उसे पार करके ग्रन्थ के साहित्यिक रस तक पहुँचना हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी के लिए असम्भव-सा व्यापार हो गया है।''

2.3 ''पृथ्वीराज रासो सामन्त युग का प्रतिनिधि महाकाव्य है''

उत्तर -मध्यकाल में लिखे गये प्रबंधकाव्य काव्यरूप की दृष्टि से मिश्रित काव्यरूप थे। उसमें कथा-काव्य, चरित काव्य, आख्यायिका, रोमानी आख्यान (पंवारा) रासो कई रूपों का मिश्रण पाया जाता है। उसमें संस्कृत महाकाव्यों के लक्षण नहीं पाये जाते है, जैसे छंदों का विधान, सर्ग-योजना, नायक आदि। पृथ्वीराज रासो भी प्राकृत-अपंभ्रश भाषाओं में लिये गये प्रबंधकाव्यों की परम्परा में लिखा गया काव्य है। उसमें शुक-शुकी तथा कवि-पत्नी के संवाद कथा-काव्य की तरह है। कथा का नायक कल्पित होता था जैसे बाणभट्ट की 'कादम्बरी' का नायक, जबकि आख्यायिका का नायक ऐतिहासिक होता था जैसे बाणभट्ट के 'हर्षचरित्' का, इस दृष्टि से पृथ्वीराज रासो आख्यायिका है। वह चरितकाव्य है क्योंकि उसमें पृथ्वीराज का जीवन-चरित वर्णित है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यद्यपि कुछ आलोचकों ने पृथ्वीराज रासो को रोमांचक आख्यान कहा है क्योंकि उसके कथानक-विधान में आंतरिक गठन नहीं है, वह असम्बद्ध कथाओं का- नायक के विभिन्न विवाहों और उनसे सम्बद्ध युद्ध आदि प्रसंगों का संकलन है, इनमें विस्तार भी है। इन विवादों और युद्धों में कोई तार्किक प्रवाह या अंत: सूत्रता नहीं है।

प्रश्न उठता है कि इन सब त्रुटियों के होते हुए भी पृथ्वीराज रासो को महाकाव्य का पद और प्रतिष्ठा क्यों प्राप्त हुई। सभी विद्वान मानते हैं कि उसका प्रामाणिक रूप उसका लघुतम पाठ है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा डॉ. माताप्रसाद गुप्त के अनुसार केवल दस प्रसंग ही चन्दबरदाई द्वारा लिखे गये थे, बाद में जोड़े गये अंशों के कारण ही वह वृहदकाय बन गया। यह लघु काव्य महाकाव्य कैसे बन गया ?इसका उत्तर हमें मिलता है इतिहास में, उत्तर भारत के राजनीतिक घटना-चक्र में। पृथ्वीराज चौहान दिल्ली के सिंहासन पर विराजमान होने वाला अंतिम हिन्दू शासक था। मुहम्मद गोरी के हाथों उसकी पराजय से एक युग का अंत हो गया और अन्तिम हिन्दू राजा होने के कारण हिन्दुओं में उनके प्रति आदर, गौरव व प्यार के भाव उमड़ पड़े। वह हिन्दुओं के नायक बन गये, अनेक निजंधरी (लीजेंडरी) कथाएं और किवंदत्तियों उनके साथ जोड़ दी गयीं। परिणाम यह हुआ कि जन-मानस की इस मनोवृत्ति के परिणामस्वरूप रासो के मूल पाठ में अनेक प्रक्षिप्त अंश जुड़ते चले गये। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- वह लोकचित्त की चंचल सवारी करता हुआ विकासशील महाकाव्य (Epic of Growth) बन गया। इस प्रकार इस छोटी सी काव्य-रचना को महाकाव्यात्मक गौरव और गरिमा प्राप्त हुई। यह युग-नायक की गाथा तथा जातीय-राष्ट्रीय इतिहास की महत्त्व रचना बन गया।

महाकाव्यत्व का प्राण है औदात्य। औदात्य का आधार है व्यापकता एवं संघर्ष। पृथ्वीराज रासो में विस्तार भी है, व्यापकता भी है और संघर्ष भी।

'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का सच्चा वीर काव्य है, क्योंकि उसमें सामन्ती वीरयुग अपने सम्पूर्ण गुणों और दुर्गणों के साथ अभिव्यक्त हुआ है। सामन्ती वीर-युग की प्रमुख-प्रेरणा-शक्ति वीरता की थी तथा श्रृंगार एवं धर्म की प्रवृत्ति पूरक रूप में ही आयी। 'रासो' का प्रधान रस भी वीर है, श्रृंगार तथा शांत गौण रस हैं। रासोकार का उद्देश्य पृथ्वीराज का यश-वर्णन करना मात्र नहीं है, वह एक जातीय महाकाव्य है जिसमें 12 वीं और 13 वीं शताब्दी में देशी राजाओं और सामन्तों में झूठी शान तथा व्यक्तिगत स्वार्थों (कन्या-हरण, राज्य-विस्तार) के लिए होने वाले युद्धों तथा विदेशियों से होने वाले अनवरत संघर्ष एवं पराजय कथा अत्यंत ओजस्वी शैली में कही गई है। वीर रस की प्रधानता होते हुए भी उसका उद्देश्य केवल वीर रस का आस्वाद कराना नहीं है बल्कि जातीय जीवन में प्राणों का संचार करना, उसमें स्वातन्त्र्य एवं बलिदान की भावना का मंत्र फूंकना भी है। साथ ही वह देश, जाति और व्यक्ति के गौरव, प्रतिष्ठा और आत्मसम्मान के लिये मर-मिटने का अमर संदेश देता है। शरणागतवत्सलता, क्षमाशीलता, गुणग्राहकता आदि सामन्तयुगीन प्रवृत्तियों का भी प्रतिबिम्ब उसमें पाया जाता है। इस प्रकार 'रासो' का उद्देश्य अत्यंत भव्य, उदात्त और महान् है। यह संदेश रासो में समन्वित प्रभाव में तो निहित है ही, उसके अधिकांश छंदों में भी उसकी प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति हुई है।

किसी महाकाव्य में उच्च उद्देश्य और महान् प्रेरणा की प्रतिष्ठा तभी होती है जब उसके कवि की चेतना विराट् और प्रतिभा सशक्त हो। 'पृथ्वीराज रासो' राजस्थान में व्याप्त युगव्यापी विराट् चेतना एवं स्वातंत्र्य-प्रेम की अटूट परम्परा की देन है, न कि केवल किसी एक दरबारी कवि की कृति। वह केवल सामन्ती वीर-युग का महाकाव्य ही नहीं, कुछ शताब्दियों की सामाजिक भावभूमि एवं जीवन-व्यवस्था का यथार्थ प्रतिबिम्ब उपस्थित करता है। इस प्रकार महान उद्देश्य, महत्ती प्रेरणा-शक्ति और कवि की काव्य-प्रतिभा तथा विराट् चेतना सभी दृष्टियों से रासो को महाकाव्य कहा जा सकता।

रासो के आकार की विशालता उसके महाकाव्यत्व का कारण नहीं है। यह ठीक है कि उसमें शास्त्रीय महाकाव्यों 'रघुवंश', 'किरातार्जुनीय' जैसा अर्थ-गौरव और भाव-गाम्भीर्य नहीं है, पर प्राचीन ज्ञान-भंडार संबंधी विषयों की योजना के कारण उसमें पर्याप्त गुरुत्व और गाम्भीर्य आ गया है। साथ ही यह ज्ञानराशि शुष्क कथन के रूप में नहीं, युग-जीवन की पृष्ठभूमि के रूप में उपस्थित की गयी है। न केवल युग-जीवन के विविध दृश्य ही इसमें पाये जाते हैं, अपितु राजनीति, नीतिशास्त्र, धर्म-शास्त्र, योग-दर्शन, अध्यात्म-विद्या आदि के वर्णन भी उसमें मिलते हैं। जीवन के गम्भीर पक्षों और आभ्यन्तर तथ्यों का उद्घाटन उसमें जगह-जगह सहज रूप में बिना प्रयास आ गया है। उदाहरणार्थ, आपदाओं के बीच साहस, शौर्य और निर्भयता का प्रदर्शन करने वाला जीवन में अनुरक्त पृथ्वीराज

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उस युग का योग्यतम व्यक्ति चित्रित किया गया है। उसके चरित्र की ऊँचाई और विशालता आधुनिक मापदण्ड पर नहीं, सामन्ती मूल्यों पर 'रासो' को गाम्भीर्य और गुरुत्व प्रदान करती है।

'रासो' के कथानक का काल बहुत लम्बा, चरित्र-वैविध्य और कार्य-क्षेत्र (मध्य एशिया से काशी-गया तथा देवगिरी से हांसी तक) बहुत व्यापक है। अत: बाहरवीं-तेरहवीं शताब्दी में उत्तर-भारत के समस्त सामाजिक और राजनीतिक जीवन का प्रतिबिम्ब उसमें दिखाई देता है। 'रासो' के अनेक युद्धों, विवाहों, यात्राओं, मृगया, मंत्रणा, दूत-कर्म आदि के चित्र तत्कालीन सम्पूर्ण समाज को प्रस्तुत कर देते हैं। महाकाव्य में महत् कार्य का अर्थ कोई ऐसी घटना है, जो किसी युग की या किसी महान् चरित्र के जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना हो और जो अपने युग को ही नहीं आने वाली अनेक शताब्दियों को भी प्रभावित कर सके। पृथ्वीराज और सोहम्मद गोरी का अन्तिम युद्ध तथा उत्तरी भारत पर मुसलमानों का अधिकार ऐसी ही महत्त्वपूर्ण घटना है। 'रासो' में सामन्ती युग की विविध सामाजिक हलचलों में भाग लेने वाले सभी प्रकार के पात्र अपना-अपना कार्य करते दिखाई पड़ते हैं। यही नहीं, तत्कालीन लोक-विश्वासों के अनुरूप अतिप्राकृत शक्तियाँ- देवता, राक्षस, गन्धर्व, भूत, बेताल, शुक, हंस आदि भी कथा को आगे बढ़ाने में योग देते हुए दिखाई देते हैं। 'रासो' में सामन्ती वीर युग की सभ्यता, रहन-सहन, मान-मर्यादा, खान-पान, व्रत-त्यौहार आदि का इतना क्रमिक और सच्चा वर्णन हुआ है कि यह महाकाव्य उक्त वस्तु-व्यापारों का काव्यात्मक कोष प्रतीत होता है और युग का सामाजिक इतिहास।

विकासशील महाकाव्य में जीवन के बाह्य रूपों का चित्रण अधिक होता है। वे प्राय: घटना-प्रधान और वर्णनात्मक होते हैं। उनमें वस्तुओं और घटनाओं का विस्तृत एवं क्रमिक वर्णन होता है। 'रासो' में भी वर्णनात्मकता बहुत अधिक है। रासोकार ने स्वयं लिखा है-

उक्ति धर्म विशलस्य राजनीति नवं रसं।
षट् भाषा पुराणं च कुरानं च कथित मया॥

परन्तु उसमें घटनाओं और कथा-प्रवाह का वेग इतना अधिक है कि यह वर्णनात्मक अंश उसकी तुलना में बहुत अधिक तथा अनुपातहीन प्रतीत नहीं होते। रासोकार ने महाकाव्य के शास्त्रीय नियमों का अनुसरण नहीं किया है सन्ध्या, प्रभात, चन्द्रोदय, वन-उद्यान, जल-क्रीड़ा आदि का वर्णन उसमें स्वतंत्र रूप से कहीं नहीं है। इसी प्रकार नदी, पर्वत और सागर के स्वतंत्र चित्र भी उसमें रूढ़ि-पालन के लिए नहीं लिखे गये। केवल युद्ध नगर और दरबारी वातावरण के वर्णन ही जमकर लिखे गये हैं। इससे भी स्पष्ट है कि 'रासो' मूलरूप में वीर-काव्य ही था। प्रथम तो रासो में प्रकृति-चित्रण हुआ ही कम है और जो है भी वह उद्दीपन-रूप में या रूढ़ि-पालन के लिए लिखा गया प्रतीत होता है। कवि की दृष्टि जितनी वस्तु-परिगणन प्रणाली पर है- भोजन, पशु, पक्षी, उद्यान के वृक्ष, नृत्य-संगीत-वाद्ययत्रों आदि के वर्णन इसके प्रमाण हैं, उतनी संश्लिष्ट चित्रण पर नहीं। यही कारण है कि उसके वर्णन सामन्ती वीर युग की सभ्यता पर प्रकाश डालते है किन्तु अधिक प्रभावशाली नहीं हैं।

विकासशील महाकाव्य की कथावस्तु में कसावट, अन्विति और समानुपात या तो कम होता है या बिल्कुल नहीं होता। 'पृथ्वीराज रासो' का कथानक ऐसा ही है। उसमें नाटकीय अन्विति नहीं है। उसकी अधिकांश अवान्तर कथाएं अपनी आप में स्वतंत्र हैं। वे आधिकारिक कथा को आगे बढ़ाने में बहुत कम योग देती हैं। आधिकारिक कथा घटनाओं की भीड़ में खो गई है। 'रासो' का कथानक बिखरा हुआ प्रतीत होता है। साथ ही किसी एक कवि की कृति न होने के कारण उसमें कथानक की सुनिश्चित योजना भी नहीं है, पर शिथिल तथा क्षीण प्रवाह युक्त कथानक होते हुए भी उसमें सक्रियता और जीवन्तता बहुत अधिक है। उसकी शक्ति कथा-प्रवाह में नहीं, बल्कि घटनाओं, संघर्षों और वर्णनों में है। इसीलिए डॉ. शम्भूनाथ सिंह ने उसकी तुलना समुद्र से करते हुए लिखा है, ''महानद की मन्द गति में जो प्रचण्ड शक्ति होती है और सागर की शत-शत तरंगों में महाघोष और अनवरुद्ध-अनाहत धूमधाम होती है, वह शक्ति और धूमधाम रासो में ही दिखाई पड़ती है।'' उसका कथानक नाटकीय संधियों से युक्त और सुसंघटित नहीं है। इसीलिए इस दृष्टि से उसकी तुलना अंग्रेजी के महाकाव्य Beowulf से ही जा सकती है।

सभी जानते हैं कि महाकाव्य का नायक महान् होना चाहिए। भीले ही वह धीरोदात्त और सर्वगुण सम्पन्न न हो, पर यदि नायक किसी महान् उद्देश्य के लिए बलिदान करता है, तो भी वह नायक हो सकता है। रासो का नायक पृथ्वीराज सामन्ती वीर-युग की दृष्टि से महान् नायक है, जिसमें वीरता, बाहुबल आदि के गुण प्रधान हैं, भले ही नैतिकता न हो। वह नायक इसलिये नहीं है कि वह धीरोदात्त

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है, (उसके कितने ही कार्य अनैतिक और असामाजिक हैं- वेश्यागमन, छिप कर मंत्री का वध, भोगविलास की अतिशयता, बहुविवाह, कन्या-हरण आदि) बल्कि इसलिए है कि वह काव्य के महान् उद्देश्य को पूरा करने वाला और सम्पूर्ण घटनाओं तथा व्यापारों का केन्द्र-बिन्दु है। 'रासो' में चरित्र-वैविध्य नहीं है क्योंकि सभी पात्र एक सांचे में ढ़ले वीर प्रतीत होते हैं। स्त्री-पात्रों में भी कोई पात्र इतना गरिमा-मंडित नहीं जिसकी तुलना सीता-सावित्री या मंदोदरी से की जा सकें। वे सामंती युग के अनुरूप केवल पुरुष के भोग-विलास का साधन मात्र हैं। महाकाव्य की शैली गरिमामंडित और उदात्त होती है। 'रासो' अलंकृत महाकाव्य न होकर विकासशील महाकाव्य है, अत: उसमें कृत्रिम सौन्दर्य, अलंकारों की प्रयत्न साध्य-योजना, भाषा का परिष्कार और उक्ति-वैचित्र्य नहीं है। परन्तु अपनी सहजता एवं क्रांति के कारण उसकी शैली महाकाव्योचित है। उसमें प्रसंगानुकुल गुण मिलते हैं- वीर रस के प्रसंग में ओज-गुण है, तो श्रृंगार के प्रसंग में माधुर्य। अनुस्वरान्त और संयुक्त वर्ण वाले शब्दों के प्रयोग से यह शैली और भी रसानुरूप हो गई है। फिर भी उसका सौन्दर्य अनगढ़पन और सहजता का सौन्दर्य है, हिमालय जैसा विषम और विराट् सौन्दर्य है, मुगलगार्डन जैसा प्रयत्न-साध्य, सुकोमल गीतात्मक सौन्दर्य नहीं है। यदि उत्प्रेक्षा और सांगरूपक की अधिकता है, तो उसका कारण वीरयुगय का दरबारी वातावरण है।

'रासो' में परम्परागत महाकाव्यों के और भी कई लक्षण मिलते हैं, जैसे सर्ग-बद्धता (69 समयों में विभक्त है), मंगलाचरण, संवाद-रूप में कथा लिखने की पद्धति (शुक-शुकी संवाद), वस्तु-निर्देश, कथानक-रूढ़ियाँ, सज्जन-प्रशंसा और दुर्जन-निन्दा, काव्य-ग्रन्थ का महत्त्व और आश्रयदाता का उल्लेख आदि। इसका कारण भी यही है कि यह कृति वीर युग के पठित समाज के प्रभाव में विकसित हुई।

रस की दृष्टि से भी यह काव्य महाकाव्य कहलाने का अधिकार है। भले ही इसका अंत करुण रस में हुआ हो, परन्तु समग्र प्रभाव की दृष्टि से वह वीर रस प्रधान काव्य है। श्रृंगार, करुण और शांत आदि रस उसमें अंग रूप में दिखाई पड़ते हैं। स्वयं कवि ने भी इस रचना के वीर रसात्मक प्रभाव का उल्लेख किया है-

''पृथ्वीराज गुन सुनत करब संग्राम स्यार रन''

अत: रासो को वीर-काव्य heroic epic कहना ही उचित होगा, क्योंकि उसमें एक महान् वीर की जन्म से मरण पर्यन्त वीर गाथा प्रस्तुत की गयी है।

महाकाव्य में जीवनी शक्ति और प्राणवत्ता का होना आवश्यक है और 'रासो' में जीवनी शक्ति एवं प्राणवत्ता पर्याप्त मात्रा में हैं। इसका बड़े से बड़ा विरोधी भी यह बात अस्वीकार नहीं कर सकता। भले ही 'रासो' में अलंकृत महाकाव्यों के सभी लक्षण न पाये जाते हों, किन्तु वह सामन्ती वीर युग का विकासशील महाकाव्य है, इसमें संदेह नहीं। उसमें देश-काल का विस्तार, शैली की उदात्तता, युग का सजीव प्रतिबिम्ब, राष्ट्र की समग्र चेतना का निरूपण तथा प्राणवत्ता सभी विशेषताएँ उसे अमर महाकाव्य बनाती हैं। चूंकि उसमें वीर वीर रस प्रधान है, एक ऐतिहासिक वीर की जीवन-गाथा है, वीर-युग का चित्रण है, वीर-युग का व्यक्तिवाद और सामाजिक संगठन है, उसकी शैली सामंत युग के काव्यों की सी है, अत: उसे सामंती वीर-युग का महाकाव्य कहने में हमें कोई संकोच नहीं होता।

2.4 पृथ्वीराज रासो में कथानक-रूढ़ियों का उपयोग

परम्परा का अभियान जीवन की एक प्रेरक शक्ति है। जिस प्रकार कुल जाति और संस्कृति की प्रेरणादायिनी शक्तियों के निर्माण के पीछे एक प्रशस्त और गौरवशाली इतिहास रहता है, वैसे ही साहित्य की सुनिश्चित परम्पराओं के पीछे भी सर्वत्र लम्बे अतीत का उज्ज्वल इतिहास, अगणित मनीषियों का अपार बुद्धिवैभव और अनेकों प्रतिभाओं का नव-नव भावोन्मेष अपनी सजीवता, जागरूकता एवं संवेद्यता में सतत क्रियाशील परिलक्षित होता है। पूर्व-रचित साहित्य में उपलब्ध सौंदर्य की अनुपम विधाएं, चमत्कार की अद्भुत प्रणालियाँ और संस्कृति की जीवन-मान्यताएं इतर साहित्यिकों द्वारा अनुकृत होकर साहित्य की परम्पराएं बन जाती है। ये परम्पराएं कालान्तर में बहु-व्यवहृत और बहुजन-प्रयुक्त होकर रूढ़ियों का रूप धारण कर लेती है। अंतर केवल इतना है कि परम्परा का निर्वाह समझ-बूझ कर, विकल्प-बुद्धि द्वारा ग्रहीत करके किया जाता है, जबकि रूढ़ि का प्रयोग अन्धाधुन्ध, बिना तर्क के उसे यथावत् स्वीकार करके किया जाता है। परम्परा का अनुगमन इच्छानुरूप होता है, रूढ़ि का अनजाने में भी हो सकता है। कृष्ण-भक्तों में राधा-कृष्ण को नायक-नायिका रूप में चित्रित करने की परम्परा थी, परन्तु रीतिकाल में यही परंपरा रूढ़ि बन गई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अंग्रेजी में कथानक-रूढ़ि को 'मोटिफ' कहते है। 'मोटिफ' की परिभाषा देते हुए शिपले लिखते हैं, 'मोटिफ'- एक शब्द अथवा विचार-क्रम है, जिसकी समान स्थिति में पुनरावृत्ति होती है अथवा जो युग की किसी एक अथवा विभिन्न कृतियों में समान मानसिक दशा उत्पन्न करने के लिए आता है।''

राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार महामहोपाध्याय गौरी शंकर हीराचंद ओझा के अनुसार ''इस तरह हमने जाँच कर देखा कि पृथ्वीराज रासो बिल्कुल अनैतिहासिक ग्रंथ है। उसमें चौहानों, प्रतिहारों और सोलंकियों की उत्पत्ति संबंधी कथा, चौहानों की वंशावली, पृथ्वीराज की माता, भाई, बहिन, पुत्र और रानियाँ आदि के विषय की कथाएँ तथा बहुत सी घटनाओं के संवत् और प्राय: सभी घटनाएं तथा सामंतों आदि के नाम अशुद्ध और कल्पित हैं। कुछ सुनी सुनायी बातों के आधार इस वृहत् काव्य की रचना की गई है... । भाषा की दृष्टि से यह ग्रंथ प्राचीन नहीं दीखता'' (हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी से उद्धृत)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का विचार है ''ऐतिहासिक तथ्यों के साथ बिल्कुल मेल न खाने के कारण अनेक विद्वानों ने पृथ्वीराज रासो के नायक पृथ्वीराज के समसामयिक किसी कवि की रचना होने में पूरा संदेह किया है और 16 वीं शताब्दी में लिखा हुआ एक जाली ग्रंथ ठहराया है। रासो में चंगेज, तैमूर आदि पीछे के नाम आने से संदेह और भी पुष्ट हो जाता है।

पृथ्वीराज रासो रासक काव्य परंपरा का सर्वाधिक विख्यात काव्य है। पृथ्वीराज रासो में मध्यकालीन प्रबंध काव्यों में प्रचलित अनेक कथानक रूढ़ियों का उपयोग किया गया है। कथानक-रूढ़ियों से अभिप्राय ऐसे घटना-प्रसंगों से है जो कथानक को आगे बढ़ाने के लिए मध्यकालीन प्रबंध काव्यों में प्राय: इस्तेमाल किए जाते हैं। ऐसे घटना-प्रसंग एक प्रकार से इन प्रबंध रचनाओं में रूढ़ि की तरह प्रयुक्त होते हैं अतएव इन्हें कथानक रूढ़ि कहा जाता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन कथानक रूढ़ियों पर 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' में सम्यक् विचार किया है। आचार्य द्विवेदी ने जिन कथानक रूढ़ियों की सूची दी है उनमें कुछ इस प्रकार है-

1. कहानी कहने वाला सुग्गा
2. स्वप्न में प्रियदर्शन, चित्र-दर्शन, कीर्ति-श्रवण से अनुराग
3. मुनि का शाप
4. रूप परिवर्तन
5. परकाय प्रवेश
6. आकाशवाणी
7. षड्ऋतु-बारहमासा
8. हंस-कपोत से संदेह-कथन आदि।

रासो में कहानी कहने वाला सुग्गा, गुण-श्रवण से अनुराग, रूप-परिवर्तन, षड्ऋतु वर्णन आदि तो हैं ही, इनके अतिरिक्त, सेना-वर्णन, युद्ध-वर्णन, नख-शिख वर्णन, कन्या-हरण, वयस्संधि वर्णन आदि कथानक रूढ़ियों का भी उपयोग किया गया है।

'पृथ्वीराज रासो' का कथानक इतिहास और कल्पना के मिश्रित सूत्रों से निर्मित है। एक ओर उसमें ऐतिहासिक व्यक्ति और उनसे सम्बद्ध ऐतिहासिक घटनाओं और प्रसंगों का वर्णन है, तो दूसरी ओर कल्पना का वैभव और उसके द्वारा प्रस्तुत किए गए चमत्कारपूर्ण प्रसंग भी हैं। रासोकार चन्दबरदाई राज्याश्रित दरबारी कवि था, अत: अपने आश्रयदाता पृथ्वीराज चौहान तथा उनसे सम्बद्ध वीरों के शौर्य, पराक्रम और प्रणय की गाथा भास्वर रंगों में चित्रित कर उन्हें अद्भुत व्यक्तित्व प्रदान करना उसके लिए स्वाभाविक था। इसके लिए उसने कथानक-रूढ़ियों का प्रयोग किया। भारत में ऐतिहासिक व्यक्तियों के संबंध में जो भी प्रबंध-काव्य लिखे गए हैं उनमें इतिहास, कल्पना और काव्य-कला का मधुर सम्मिश्रण मिलता है। कहीं-कहीं तो इतिहास की पूर्ण उपेक्षा की गयी है और कल्पना-तत्त्व ही प्रधान हो उठा है। अपने नायक के गौरव की रक्षा के लिए इन कवियों ने ऐसी घटनाओं और प्रसंगों की योजना की है जो उसके

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

व्यक्तित्व को असाधारण बना सकें और साथ ही पाठक के लिए उद्वेगपूर्ण भी हों। ये प्रसंग चमत्कारपूर्ण हैं और इनकी योजना के लिए कथानक-रूढ़ियों का आश्रय लिया गया है। पात्रों को निजन्धरी कथाओं के पात्रों की ऊँचाई तक ले जाने की प्रवृत्ति ने भी कथानक-रूढ़ियों के प्रयोग की प्रेरणा इन कवियों को दी है। सारांश यह है कि कथा को रसमय एवं अद्‌भुत तथा पात्र को विशिष्ट औदात्य प्रदान करने की कामना के फलस्वरूप 'पृथ्वीराज रासो' में अनेक कथानक-रूढ़ियों का प्रयोग हुआ है। रासों में कई प्रकार की रूढ़ियाँ प्रयुक्त हुई हैं। सर्वप्रथम हम उन प्रेम-संबंधी कथानक-रूढ़ियों का उल्लेख करेंगे, जिनके समावेश से कवि पृथ्वीराज के शौर्य और प्रणयपूर्ण व्यक्तित्व का उद्‌घाटन हो सका है। इनमें सर्वप्रथम रूढ़ि है नायिका की प्रशंसा सुन कर नायक का उसकी खोज में जाना। यादव-कुल की कन्या शशिव्रता के रूप की प्रशंसा सुन कर पृथ्वीराज उसे पाने के लिए प्रस्थान करता है। यह कथानक-रूढ़ि अत्यन्त प्राचीन है क्योंकि निजन्धरी कथाओं में इसका बहुत प्रयोग मिलता है। इसी प्रकार शिव-पूजन के समय नायक-नायिका का मिलन, स्वप्न में नायक द्वारा नायिका के दर्शन, गन्धर्व का स्वर्ण हंस बन कर पहले शशिव्रता के पास और बाद में पृथ्वीराज के पास पहुँच कर दोनों के बीच प्रेम-संबंध स्थापित करना, शशिव्रता का पूर्व-जन्म की अप्सरा होना तथा कन्या-अपहरण आदि ऐसी ही कथानक-रूढ़ियाँ हैं जिनका प्रयोग परम्परा से भारतीय साहित्य में होता रहा है।

कथा-उपस्थापन के लिए पक्षियों के संवादों की योजना भी अत्यन्त प्राचीन काल से भारतीय कथा-साहित्य में होती रही है। 'महाभारत' में यदि परीक्षित को भागवत् सुनाने वाले शुकदेव जी महाराज हैं, तो 'कादम्बरी' में भी शुक-शुकी संवाद मिलता है। रासोकार ने भी कथा-उपस्थापन के लिए शुक-शुकी संवाद का प्रयोग किया है। हजारी प्रसाद द्विवेदी का तो यह कहना है कि 'रासो' का वही भाग प्रामाणिक है जो शुक-शुकी संवाद के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

'रासो' में कुछ कथानक-रूढ़ियों का प्रयोग कथानक को गति देने के लिए किया गया है। पूर्व-जन्म की स्मृति, स्वप्न-दर्शन या संदेश-प्राप्ति के बाद जब नायक-नायिका एक-दूसरे से मिलने को आतुर होते हैं, उस समय पक्षी ही उनकी सहायता करते हैं और कथा को गति प्रदान करते हैं। 'रासो' में तोते और हंसा का उपयोग इसी रूप में किया गया है। वहां तोता दो बार प्रणय-दूत के रूप में भेजा जाता है- एक तो 'पद्‌मावती समय' में समुद्र शिखर गढ़ की राजकुमारी पद्‌मावती के साथ पृथ्वीराज का प्रणय और विवाह-संबंध स्थापित करने के लिए और दूसरी बार इसका प्रयोग इंच्छिनी-संयोगिता की प्रतिद्वन्द्विता के समय होता है जब तोता इंच्छिनी की विरह-व्यथा का संवाद लेकर राजा के पास जाता है और उसकी दयनीय स्थिति की सूचना राजा को देता है। एक अन्य स्थल पर तोता भेदिये का कार्य करता है। इस प्रकार चन्दबरदाई ने पक्षियों को मानव के समान संदेशवाहक दूत या गुप्तचर के रूप में चित्रित कर परम्परा-प्राप्त कथानक-रूढ़ि का ही प्रयोग किया है और इसके द्वारा कथा को वांछित मोड़ देने तथा चमत्कार उत्पन्न करने में सफलता पायी है। सर्प के फन पर खंजन पक्षी को उड़ते देखना शुभ माना गया है। पृथ्वीराज राज्य-प्राप्ति से पूर्व यह दृश्य देखता है और पाठक को आगे के कथानक के संबंध में 'पूर्व-सूचना' प्राप्त हो जाती है, कथा की गति के संबंध में पता लग जाता है। इस प्रकार 'रासो' में पक्षियों से सम्बद्ध कथा-रूढ़ियों का पर्याप्त प्रयोग हुआ है।

नख-शिख वर्णन, षड्‌ऋतु, वर्णन, बारहमासा वर्णन भी भारतीय काव्यों में परम्परा से चला आ रहा है और नायिका के सौंदर्य-चित्रण, संयोग नायक-नायिका के उल्लास और सुख तथा वियोग में उनके विषाद और विरह का वर्णन करने के लिए क्रमशः इनका उपयोग हुआ है। 'पृथ्वीराज रासो' के रचियता ने भी अपनी रचना में इनका प्रयोग किया है। इंच्छिनी, पद्‌मावती, संयोगिता, शशिव्रता आदि कुमारियों का नख-शिख वर्णन और पृथ्वीराज के वियोग में बारहमासे के माध्यम से इनकी विरह व्यथा का चित्रण इसका प्रमाण है। इसी प्रकार नायक-नायिका की संयोगावस्था में षड्‌ऋतु वर्णन द्वारा ऋतु-परिवर्तन के साथ उनके विलास-वैभव, जल-विहार, नाना प्रकार की काम-क्रीड़ाओं में होने वाले परिवर्तन का बड़ा उद्दीपक चित्र रासोकार ने समुपस्थित किया है। प्रकृति का उद्दीपनकारी रूप भी यहां परम्परागत ही है- एक प्रकार से रूढ़िगत ही है जिसके पीछे कवि की संवेदना और स्वतंत्र अनुभूति कम है, रूढ़ि-पालन की प्रवृत्ति अधिक है।

कतिपय कथानक-रूढ़ियाँ केवल कथा में चमत्कार लाने के लिए लायी गई हैं। परन्तु आज उन पर विश्वास नहीं होता, अतः वे कुछ लोगों के लिए हास्यास्पद हो सकती है, और कुछ उनके प्रयोग को कलागत दोष भी मान सकते हैं, पर जिस युग के पाठकों के लिए यह काव्य रचा गया था, उस युग में लोगों का विश्वास इन बातों में था, अतः उसी समय के युग-बोध के आलोक में उनकी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

समीक्षा होनी चाहिए। 'रासो' के 'कनवज्ज समय' में लिंग-परिवर्तन इसी प्रकार की कथानक-रूढ़ि है। चौरंगी चौहान की पुत्री शिव की आराधना द्वारा पुरुष बन जाती है। ढूंढा नामक व्यक्ति को नरभक्षक बताना और उसके अघोरी कृत्यों का समावेश भी इस प्रकार का है। माणिक्यराज को संभरादेव से वरदान, अनंगपाल की कन्या को ढूंढा द्वारा फल देना जिससे संतानोत्पत्ति होती है, मन्त्र-तन्त्र का युद्ध (महोबा समय में), आकाशवाणी आदि भी चमत्कार लाने के लिए प्रयुक्त काव्य-रूढ़ियाँ हैं।

इन कथानक-रूढ़ियों का उपयोग चन्दबरदाई ने भले ही कथा-उपस्थापन, कथानक को गति देने, उसमें बांछित मोड़ देने, चमत्कार उत्पन्न करने, नायक को अलौकिक या अपार्थिव बनाने अथवा उसकी दुर्बलता के परिहार के उद्देश्य से किया हो, (मुनि के शाप से ही पृथ्वीराज को बाद में चलकर अपनी आँखे खोनी पड़ती हैं। इसके द्वारा लेखक बताना चाहता है कि पृथ्वीराज की पराजय का कारण उसके शौर्य-पराक्रम या सेना-संगठन की त्रुटि नहीं अपितु शाप था और इस तरह उसने नायक के गौरव की रक्षा की है) परन्तु आज का आलोचक उनसे कुछ और ही निष्कर्ष निकालने की चेष्टा करता है। इन कथानक रूढ़ियों में वैज्ञानिक अध्ययन की समाजशास्त्रीय उपयोगिता भी कम नहीं है। उससे आलोचना ऐसी बातों पर प्रकाश डाल सकता है, उन सामाजिक रीति-रिवाजों, विश्वास-आस्थाओं और संस्कृति के उन तथ्यों को अनावृत्त कर सकता है जो समय की धूलि पड़ जाने से धूमिल एवं अस्पष्ट हैं और जो अभी तक दुर्भेद्य बने हुए हैं। अत: उनकी उपयोगिता अनेक दृष्टियों से है। वे समाजशास्त्री, साहित्य के आलोचक व इतिहासकार सभी के लिए उपादेय हो सकती है। उदाहरण के लिए 'रासो' की ऐतिहासिक और उसमें प्रक्षिप्त अंशों के संबंध में ये कथानक-रूढ़ियाँ पर्याप्त प्रकार डाल सकती है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'रासो' में वर्णित पृथ्वीराज के वे ही विवाह-संबंध प्रामाणिक माने जाने चाहिए, जिनका शुक-शुकी संवाद में उल्लेख मिलता है, जैसे इंच्छिनी, शशिव्रता और संयोगिता का विवाह। इसी प्रकार उनके मतानुसार 'रासो' के वही ही अंश ऐतिहासिक हैं, जिनमें कवि ने डटकर कथानक-रूढ़ियों का प्रयोग किया है। ''पद्मावती समय'' को वे इसीलिए प्रक्षिप्त मानते हैं, क्योंकि प्रथम तो शुक-शुकी संवाद में उसका स्थान नहीं है, और दूसरे सिंहलगढ़ को ''उत्तरदिसि'' कहना इस बात का संकेत है कि यह कथा सोलहवीं शताब्दी के बाद 'रासो' में जोड़ी गई है। पद्मावती को सिंहलद्वीप की राजकुमारी बताना ऐतिहासिक सत्य न होकर, कथानक-रूढ़ि मात्र ही समझना चाहिए। इसी प्रकार त्रिया-देश और कजरी-वन को सिंहलद्वीप के साथ उलझा देना, विजयसिंह को सिंहलद्वीप का प्रथम राजा कहना और यादव-कुल का संबंध लंका के जातुधान कुल से जोड़ना मात्र काव्य रूढ़ियाँ हैं, जो परवर्ती काल की विचारगत उलझन की सूचना देती हैं।

इस प्रकार 'रासो' में चन्दबरदाई ने परम्परा से प्रचलित कथानक-रूढ़ियों का प्रयोग कर जहाँ एक ओर परम्परा का निर्वाह किया है और अपने काव्य को सरस एवं कौतूहलवर्द्धक बनाने की चेष्टा की है, वहाँ दूसरी ओर आज का विवेकशील आलोचक इन कथानक-रूढ़ियों के अध्ययन द्वारा 'रासो' की प्रामाणिकता पर भी बहुत कुछ प्रकाश डाल सकता है।

2.5 पृथ्वीराज रासो की भाषा में क्षीयमाण अपभ्रंश भाषा की प्रवृत्तियाँ और उदयमान आधुनिक भाषाओं का मेल है।

रासो की भाषा के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। पृथ्वीराज रासो की भाषा पर टिप्पणी करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- ''भाषा की कसौटी पर कसते हैं तो और भी निराश होना पड़ता है क्योंकि वह बिल्कुल बेठिकाने हैं- उसमें व्याकरण आदि की कोई व्यवस्था नहीं। दोहों की और कुछ-कुछ कतित्तों '(छप्पयों) की भाषा तो ठिकाने की है, पर त्रोटक आदि छोटे छंदों में तो कहीं-कहीं अनुस्वारांत शब्दों की ऐसी मनमानी भरमार है जैसे किसी ने संस्कृत प्राकृत की नकल की है।''

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा रासो की भाषा के व्याकरणिक ढाँचे को ब्रजभाषा का मानते हैं। डॉ. दशरथ शर्मा तथा मीनाराम रंगा इसे 'प्राचीन राजस्थानी' मानते हैं।

डॉ. नामवर सिंह का विचार है ''वस्तुत: अपभ्रंश के बाद प्राय: पश्चिमी भारत में दो मुख्य भाषाएँ उत्पन्न हुई- दक्षिणी-पश्चिमी राजस्थान में डिंगल तथा पूर्वी राजस्थान और ब्रजमंडल में पिंगल। काव्य-परंपरा की दृष्टि से डिंगल में रचना करने वाले प्राय: चारण हुए और पिंगल के कृती कवि प्राय: भाट। पृथ्वीराज रासो पूर्वी राजस्थान में मूलत: ''चंदबलिद्द भट्ट'' द्वारा अपभ्रंशोत्तर युग में रचा गया और अनेक प्रक्षेपों के साथ अपने विभिन्न रूपांतरों में भी वह पिंगल की रचना है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पश्चिमी भारत को किसी बोली पर आधारित भाषा मध्यदेश की परिनिष्ठित एवं काव्य-भाषा रही है। प्राचीन ब्रजी, पूर्वी राजस्थानी कहने से यही बाम प्रकट होती है। वस्तुत: पृथ्वीराज रासो मूलत: अपने रचना-काल की परिनिष्ठित मध्यदेशीय काव्य-भाषा में रचा गया होगा, जिसका व्याकरणिक ढाँचा अनेक प्रेक्षपों के बावजूद अभी भी सुरक्षित है।

वस्तुत: 'पृथ्वीराज रासो' अपने वर्तमान रूप में किसी एक कवि की रचना नहीं है। वह विकसनशील महाकाव्य (epic of growth) है। अत: उसमें प्रेक्षपों का घटाटोप इतना अधिक है कि भाषा का रूप विकृत हो गया है। शब्दों के संस्कृत से लेकर आधुनिककाल तक जितने रूपांतर हुए हैं, उन सबका प्रयोग रासो में मिलता है, शब्दों को इच्छानुसार तोड़-मरोड़ा गया है, उन्हें संयुक्त या असंयुक्त बनाया गया है। लिपिकारों और सम्पादकों की असावधानी ने भी उसकी भाषा को अव्यवस्थित बना दिया है। भाषा की इसी अव्यवस्था और परिवर्तनशीलता ने रासो की भाषा का अध्ययन कठिन बना दिया है। आचार्य शुक्ल ने झुँझलाकर कहा था- ''न तो यह भाषा के इतिहास के और न साहित्य के जिज्ञासुओं के ही काम का है।''

'पृथ्वीराज रासो' की भाषा के संबंध में दो मत प्रमुख हैं। एक मत के अनुसार 'पृथ्वीराज रासो' की रचना एक निश्चित भाषा में हुई है। इस मत में भी विद्वानों के दो वर्ग हैं- एक वर्ग डिंगल को रासो की काव्य-भाषा मानता है, तो दूसरा वर्ग पिंगल को। अधिक बल पिंगल पर ही दिया गया है। अपभ्रंश के बाद पश्चिमी भारत में दो मुख्य भाषाएँ प्रचलित हुईं- दक्षिणी-पश्चिमी राजस्थान में डिंगल तथा पूर्वी राजस्थान और ब्रजमंडल में पिंगल। चन्दबरदाई पूर्वी राजस्थान के भाट थे। राजस्थान की अनुश्रुति या परम्परा के अनुसार 'पृथ्वीराज रासो' की रचना पिंगल में हुई है। डॉ. उदयनारायण तिवारी का कहना है कि लन्दन की रायल एशियादिटक सोसायटी में सुरक्षित 'पृथ्वीराज रासो' की हस्तलिखित प्रति के ऊपर फारसी में लिखा है- 'चन्दरबरदाई लिखित पिंगल भाषा में पृथ्वीराज का इतिहास।' इस अनुश्रुति की पुष्टि फ्रांसीसी विद्वान् गार्सा द तासी ने भी की है। उन्होंने रासो की रचना कन्नौजी बोली (ब्रज) में मानी है। रासों की भाषा के संबंध में बीम्स ने जो कुछ कहा है, उसका सारांश देते हुए डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है- (यद्यपि) शब्द-समूह में अपभ्रंशाभास और डिंगल रूपों का प्रयोग रासो में बहुत हुआ है। यह एक शैली मात्र थी जिसका प्रयोग वीर रस संबंधी स्थलों पर अनेक समकालीन कवियों ने किया है। युद्ध-प्रधान ग्रंथ होने के कारण ही रासो में इनका प्रयोग आद्योपान्त और अधिक मात्रा में मिलता है। इस शब्दावली के कारण ही रासो की भाषा के डिंगल अथवा अपभ्रंश होने का संदेह पाठकों को होने लगता है। वस्तुत: किसी ग्रंथ की भाषा का निर्धारण शब्द-समूह के आधार पर न होकर व्याकरण के ढाँचे के आधार पर होता है और इस दृष्टि से रासो की भाषा पिंगल ही है।

दूसरे मत के अनुसार चन्दबरदाई उन्मुक्त प्रकृति के कवि थे और उन्होंने छन्द-योजना और भाषा के प्रयोग में उन्मुक्त दृष्टि अपनाई। इसी उन्मुक्त दृष्टि के कारण रासो की भाषा में कई भाषाओं के शब्द आ गये हैं। विकसनशील महाकाव्य होने के कारण भी उसमें भाषा के स्तर-भेद स्वभावत: आ गये हैं। इसी कारण कुछ विद्वानों ने रासो की भाषा को पंचमेल या खिंचड़ी भाषा कहा है। अपने मत की पुष्टि के लिए ये विद्वान् चन्द की इस पंक्ति को उद्धृत करते हैं- ''षट्भाषा पुरानं च कुरानं च कथितं मया।'' चन्द की इस उक्ति में छ: भाषाओं की ओर संकेत है- संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पैशाची, मागधी और शौरसेनी। इन भाषाओं के अतिरिक्त रासों में प्राचीन राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी आदि भारतीय आर्य-भाषाओं के तथा अरबी, फारसी और तुर्की जैसी विदेशी भाषाओं के शब्द भी मिलते हैं। उसमें देशज शब्दों की भी संख्या पर्याप्त है। यद्यपि 'षट्भाषा' वाला पद्य किसी-न-किसी रूप में सभी रूपान्तरों में प्राप्त होता है, लेकिन मध्ययुग में संस्कृत आलंकारिकों, प्राकृत वैयाकरणों तथा कवियों में 'षट्भाषा' शब्द रूढ़ हो चला था। भिखारीदास ने षड्भाषा का उल्लेख करते हुए लिखा है-

ब्रज मागधी मिलै अमर नाग यवन भाषान।
सहज फारसी हू मिलै षड् विधि कहत बखान॥

षड्भाषा का अर्थ है जीवित भाषा, जिसमें सर्जनात्मक सम्भावनाएँ हों और जो जन-बोली का स्पर्श लिए हो। इसके अतिरिक्त रासो के उक्त छन्द में भाषा वैविध्य की ओर संकेत नहीं है, बल्कि षड्भाषा में रचित साहित्य के सार-ग्रहण करने की घोषणा है। उक्ति में प्रयुक्त पुराण और कुरान के उल्लेख का भी यही प्रयोजन है। कोई भी काव्य एक निश्चित भाषा में लिखा जाता है, कोई कवि अपने रचना को भाषाओं का अजायबघर नहीं बनाना चाहता, उसमें शैली-भेद तो हो सकता है, पर भाषा-भेद नहीं। अत: रासो की भाषा खिचड़ी भाषा न होकर एक सुनिश्चित भाषा है और वह है-पिंगल।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

'पृथ्वीराज रासो' को पिंगल की कृति मानते हुए भी विद्वानों के सम्मुख यह आरोप आड़े आता है कि उसमें व्याकरण की कोई व्यवस्था नहीं है और उसकी भाषा का रूप बिखरा हुआ है। पर यदि ध्यान से देखा जाए तो रासो में व्याकरण की व्यवस्था है। यदि उसमें थोड़ी बहुत कमजोरी है भी, तो हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि रासो काव्य-ग्रन्थ है, व्याकरण ग्रन्थ नहीं। जब रससिद्ध कवि गोस्वामी तुलसीदास के धर्म-ग्रन्थ की तरह पूज्य तथा सुरक्षित 'रामचरितमानस' में भी एक शब्द के अनेक रूप मिलते हैं, तो मौखिक परम्परा में रूपान्तरित इस राजप्रशस्ति-मूलक रचना में शब्द-रूपों की किंचित् अव्यवस्था स्वाभाविक ही है।

रासों में एक ही शब्द के विभिन्न रूपों को देखक बींम्स ने उसके दो कारण बताये हैं-छन्दानुरोध और भाषा की संक्रमणशीलता। वस्तुत: रासो ऐसे युग की भाषा का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें तद्भव शब्दों का रूप स्थिर नहीं हो सका था। फलत: एक शब्द के अनेक रूप प्रचलित थे। रासो के तद्भव शब्दों में होने वाले ध्वनि-विकार संबंधी सामान्य नियम ये हैं-

छन्द के अनुरोध से लघु अक्षर को गुरु बनाने के लिए कहीं स्वर का दीर्घाकरण हुआ है, जैसे कमलनु>कमलानु, कहीं समास-रचना अथवा वीप्सा में व्यंजन द्वित्व हो गया है, जैसे दहदिसी> दहद्दिसी और कहीं शब्दान्त में अनुस्वार आया है, जैसे कामं कला।

छन्द के अनुरोध से गुरु अक्षर को लघु बनाने के लिए कहीं ह्रस्वीकरण किया गया है, जैसे काया-कंथा, कहीं द्वित्व व्यंजन का सरलीकरण हुआ है, जैसे अप्पने>अपने और कहीं अनुस्वार का अनुनासिकीकीरण किया है-कंपइ>कँपे।

छन्द के अनुरोध से संयुक्त रेफ का स्थान-विपर्यय भी कर दिया गया है, जैसे धर्म>ध्रम्म।

छन्द के अनुरोध के इतर ध्वनि-परिवर्तनों में अपभ्रंशोत्तर युग की दो विशेषताएँ-उद्वृत्त स्वर का संकोचन और व्यंजन द्वित्व का सरलीकरण-रासो में व्यापक रूप से दिखाई पड़ती हैं, जैसे नगर>नग्गर>नयर>नेर और किज्जइ>कीजइ।

इसके अतिरिक्त स्वरागम-सब्द>सबद, स्वर-लोप-भगिनी>भग्नी, योगीकरण>अनेग (अनेक), ख और क्ष के स्थान पर ष का प्रयोग-खोरि>षोरि, क्षिति>षिति, ण के स्थान पर न-दर्पण>द्रप्पन, ध्य और ह्य के स्थानय पर झ-संध्या>संझ, सह्य, सज्झ के प्रयोग भी मिलते हैं।

पृथ्वीराज रासो में छंदानुरोध से लघु को गुरु और गुरु को लघु बनाने की प्रवृत्ति है जैसे कमलनु को कमलानु और आहार को अहार। अनुस्वार की अधिकता की ही तरह व्यंजन को द्वित्व बनाने की प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है जैसे दिष्षियत, गज्जन। रूपगठन की दृष्टि से सर्वाधिक उल्लेखनीय बात लुप्त-विभक्तिक पदों का प्रयोग है- ले सब दासि सुजान (सभी सुजान दासियों को लेकर)। पृथ्वीराज रासो के शब्द-समूह में सर्वाधिक संख्या तद्भव शब्दों की है। इसके पश्चात् संस्कृत और फिर फारसी आदि के शब्दों की। कनवज्ज समय (लघुतम संस्करण) में कुल 3500 शब्दों का प्रयोग है। इसमें 500 शब्द तत्सम हैं, 20 फारसी के, शेष तद्भव हैं, कुछ देशी शब्द भी अवश्य होंगे।

रासो में सर्वनामों के प्राचीन रूप मिलते हैं, जैसे उत्तमपुरुष हौं, हों (मैं), मुहि (मोहि), मध्यम पुरुष तुहि, तुहिं (तू), अन्यपुरुष सो (वह), ते, तेउ (वे), दूरवर्ती निश्चयवाचक वह>अह, निकटवर्ती निश्चयवाचक इह >इहु, सम्बन्धवाचक जु>जो, प्रश्नवाचक का>व्याकरणिक दृष्टि से संज्ञा शब्दों की कारक-रचना में निर्विभक्तिक रूप, सविभक्तिक विहारी रूप तथा स-परसर्ग रूप तीनों ही विधियाँ दिखाई पड़ती हैं, जैसे-चंद, चंदु, चंदहि, चंदह। परसर्गों में ने को छोड़कर एक-एक कारक के लिए कई कारण चिन्हों का प्रयोग हुआ है। जैसे अपादान कारक के चिह्नों हैं- सम, सौं, सों, से।

क्रियापद सामान्यत: ब्रजभाषा के हैं। अनेक स्थलों पर क्रिया नहीं प्रयुक्त की गई है और बहुधा धातु में ह्रस्व इकार लगाकर उसको इच्छानुसार भूत, भविष्य और वर्तमानकालों के अर्थ में व्यवहार किया गया है- सुनाइ, जाइ। भूतकाल में करिग, चलिग, झरिग जैसे विशिष्ट रूप भी मिलते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' में जहाँ श्लोक आये हैं वहां संस्कृत शब्द और संस्कृत वाक्य-विन्यास भी मिलता है-

उक्ति कर्म विशालस्य राजनीति नवं रसं।
षट्भाषा पुरानं च कुरानं च कथितं मया॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

गाहा या गाथा छन्द में प्राकृत, अपभ्रंश या अपभ्रंश-मिश्रित हिन्दी का प्रयोग है। शेष छन्दों में भाषा की कोई रोक-टोक नहीं है। रासो की भाषा को अपभ्रंश से भिन्न करने वाली हिन्दी की तीन व्यावर्तक प्रवृत्तियाँ हैं- क्षतिपूरक दीर्घीकरण, परसर्गों का प्रयोग और संस्कृत शब्दों का प्रयोग। उदाहरण- अज्ज का आज।

कलि भञ्झिल जग्गु को करइ आज

परसर्गों का बहुत प्रयोग-एक ही पंक्ति में

'के', 'ते', 'से', का प्रयोग

ससि के मुख ते महि से निकसे

शब्द-भण्डार की दृष्टि से रासो में तत्सम और तद्भव शब्दों के अतिरिक्त देशज शब्दों का भी अपरिमित भण्डार है। इनका प्रयोग अब नहीं होता, अत: उनके प्रयोग से रासो काव्य कुछ दुरूह हो उठा है। जैसे-जूक, गुदरन, बिसाहन। रासो में प्रयुक्त विदेशी शब्दों का भी बाहुल्य है। उसमें फारसी (मस्त, जवानी), तुर्की (तोप, सौगात) और अरबी (कैद, हाल, नूर) के शब्द प्रयुक्त हुए हैं। हिन्दी-इतर भारतीय भाषाओं में पंजाबी के शब्द भी खुलकर प्रयुक्त हुए हैं- रहंदी, हनंदे। इस प्रकार शब्द-भण्डार की दृष्टि से रासो में प्राचीन भारतीय भाषाओं, मध्यकालीन भारतीय भाषाओं के शब्द-समूह के अतिरिक्त विदेशी शब्दों और देशज शब्दों का अपार भण्डार मिलता है।

संक्षेप में भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से पिंगल को ही रासो की काव्य-भाषा कहा जा सकता है जिसमें नवोदित भारतीय आर्य-भाषा हिन्दी की विशेषताएँ लक्षित होती है। रासो की भाषा परवर्ती काल में मध्यदेश की सामान्य काव्य-भाषा का पूर्व रूप है जिसमें प्राकृत और अपभ्रंश की प्रवृत्तियाँ भी सुरक्षित हैं। अन्य भाषाओं के शब्दों का सम्मिश्रण देख डॉ. विपिन बिहारी त्रिवेदी उसकी प्रशंसा करते हुए लिखते हैं- ''भाषाशास्त्री को यदि भारत की गौड़ी भाषाओं की अभिसन्धि देखनी हो तो रासो से अधिक चमत्कृत करने वाला दूसरा कोई काव्य-ग्रंथ उसे न मिलेगा।''

2.6 पृथ्वीराज रासो इतिहास-ग्रन्थ न होकर काव्य-ग्रन्थ है।

हिन्दी के आदि कवि चन्दबरदाई का 'पृथ्वीराज रासो' ऐतिहासिक-अनैतिहासिक वृत्तों से आच्छादित, पौराणिक कथाओं से लेकर कल्पित कथाओं का अक्षय, तूणीर, प्राचीन काव्य-परम्पराओं तथा नवीन का प्रतिपादक, भौगालिक वृतों की रहस्यमयी गुफा, प्राकृत-अपभ्रंशकालीन सफल छंदों की विराट् पृष्ठभूमि, हिन्दी, गुजराती और राजस्थानी भाषाओं की संक्रान्तिकालीन रचना, समकालीन युग का सांस्कृतिक प्रमाण, उत्तर भारत का आर्थिक मानचित्र, विभिन्न मतावलम्बियों के दार्शनिक तत्त्वों का आख्याता तथा मानव की चित्तवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषक, यह अपने ढंग का एक अप्रतिम महाकाव्य है।

रासो काव्य-ग्रन्थ है और काव्य में इतिहास की अनुकृति न होकर केवल उसका आधार ग्रहण किया जाता है। अत: रासो का मूल्यांकन, जैसा कि डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा है काव्य-सौन्दर्य के आधार पर ही होना चाहिए। 'रासो' विशालकाय चरित्र-काव्य है, जिसमें प्रबन्धात्मकता, युगानुरूप जीवन-मूल्यों का चित्रण, रस-परिपाक, अद्भुत चित्रण-शक्ति और सुन्दर अलंकार-योजना पायी जाती है प्रबंध-काव्य की दृष्टि से भी वह एक सफल रचना है।

'पृथ्वीराज रासो' के रचयिता चंद भी पृथ्वीराज के सखा, सामन्त और दरबारी कवि बताए जाते हैं। वह अपनी वीर रस पूर्ण कविता से यौद्धाओं को भी प्रोत्साहित नहीं करते थे, अपितु स्वयं भी रणांगण में उतर कर शत्रु से लोहा लेते थे। अत: रक्त-बिन्दुओं के अक्षरों में लिखे गए उनके सैन्य एवं युद्ध-संचालन के वर्णन कोरी कल्पना मात्र न होकर प्रत्यक्ष अनुभव पर आश्रित सजीव एवं गतिशील चित्र हैं।

चन्द अपने वस्तु वर्णन और भावाभिव्यंजना के लिए विख्यात हैं। वस्तु-वर्णन की कुशलता प्रबंध रचना के इतिवृत्तात्मक अंशों को भी सरस बना देती है। रासोकार वस्तु-वर्णन की दृष्टि से अत्यंत सफल कवि हैं। महाभारत से प्राप्त परम्परा का आधार ग्रहण कर

Jan Vikas Bharati Institute (Deemed University) Dehradun

उसने व्यूह-वर्णन के अत्यंत सजीव चित्र प्रस्तुत किए हैं। वीर रस के उद्दीपक रूप में उसने सेनाओं, अस्त्र-शस्त्रों, घोड़ों, हाथियों आदि का विशद् वर्णन किया है। गौरी की सेना का एक चित्र देखिए-

रुहंगी फिरंगी हलम्बी समानी
ठठी ठट्ठ बल्लोच ढालं निसानी
मंजारी चखी, मुक्ख जम्बुक लारी
हजारी हजारी इक्के जोध भारी।

सेना का पड़ाव डालते समय का चित्र अथवा रंणागण में रणोद्धत वीरों की तस्वीर भी देखने योग्य है-

सुण्डाल काल आग्गे धरे
कढ़े दोइ कलहन्त किय
चालन्त बाण गौरे प्रबल
मानहु अन्ध कि मार दिय

वीर रस के आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव और संचारी भावों की सांगोपांग योजना निम्न पंक्तियों में देखिए-

हयग्गयं सजे भरं। निसान बज्जि दूभरं॥
नफेरि बीर बज्जई। मृदग झल्लरी गई॥
सुनत ईस रज्जई। तनीस राम सज्जई॥
सुभेरी झुंपक घनं। स्त्रवन्न कुहि झंझनं॥
उसाह मध्य ते चले। सखुन्न बंदि जे भले॥

'रासो' में युद्ध-वर्णन दो प्रकार के मिलते हैं- प्रथम तो वीर रस के जिन्हें पढ़ते ही पाठक का हृदय उत्साह से भर जाता है। पृथ्वीराज के लड़ते समय का यह दृश्य इसी प्रकार का है-

उट्ठि राज प्रथिराज बाग लग मनों वीर नट॥
कढ़त तेग मनो वेग लगत मनों बीज झट्ट घट्ट॥
थकि रहे सूर कौतिग गिगन रगन मगन भई स्त्रोन धर॥

दूसरे युद्ध-वर्णन रौद्र और बीभत्स रसों के अंतर्गत आते हैं जिनमें कवि लड़ने वाले वीर सामन्तों की भावना से नहीं, वरन् युद्धस्थल के दर्शक की भावना से वर्णन करता है-

हुँकार हुक्क जोगिनिय डक्क।
मुँह मार-मार बज्जै करक्क॥
नचयौ ईस गौर दरिद सीस।
षप्परि उपट्टि घुट्टे धुरीस॥

इन वर्णनों में वीरों की हुँकार, उनकी दर्पपूर्ण उक्तियाँ, युद्ध-भूमि में भूत-प्रेतों के नृत्य, योगिनियों का रुधिर-पान, कबन्धों से रक्त-प्रवाह, गिद्धों का झपटना आदि पाठक के हृदय में बीभत्स रस की सृष्टि करते हैं। इन वर्णनों को पढ़ते समय क्षण भर के लिए हम भूल जाते हैं कि हम किसी पुस्तक से सैन्य एवं युद्ध के वर्णन पढ़ रहे हैं, वरन् पढ़ते समय लगता है जैसे हम सेनाओं की पदध्वनि, सैनिकों की हुँकार, हम प्रत्यक्ष सुन रहे हैं। इन चित्रों की सजीवता को देख हम कुछ समय के लिए रासो की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता का प्रश्न भूल काव्य-रस में अवगाहन करने लगते हैं।

छंदों का चुनाव भी कवि ने युद्ध की स्थिति के अनुकूल किया है। जहाँ युद्ध की सजावट आदि का वर्णन है, वहाँ तो धीमी गति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वाले और पूर्ण प्रभाव वाले छंदो–कवित्त, छप्पय, कुण्डली आदि का प्रयोग किया गया है। किन्तु जहाँ युद्ध तेजी पकड़ता है, वहाँ वर्णन भी द्रुत प्रभावकारी शीघ्र गति वाले पद्धरी, नाराज, बिज्जू–माली आदि छंदों में है, इन छंदों की भाषा भी ओजपूर्ण है।

रासों में वीर रस प्रधान है, पर श्रृंगार भी उसके साथ आया है क्योंकि युद्ध–वीर स्वभावत: रति–प्रेमी होते हैं। पृथ्वीराज के समय में अधिकांश युद्ध कामिनी को लेकर होते थे। राजा या सामन्त का किसी सुन्दरी पर आसक्त हो जाना और फिर उसकी प्राप्ति के लिए युद्ध करना एक सामान्य घटना थी। स्वयं पृथ्वीराज ने अनेक विवाह किए थे। चन्द ने इन विवाहों तथा विलास का विशाल वर्णन किया है। रासो में विवाह से पूर्व और उसके बाद सुन्दर राजकुमारियों के नखशिख–वर्णन, काम–क्रीड़ा और सहवास के अनेक चित्र मिलते हैं। नायिका के रूप और सौन्दर्य का चित्र निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है–

मनहु कला ससि भान कला सोलह सो बन्निय
बाल बैस ससिता समीप, अमृत रस पिन्निय

पृथ्वीराज रासो इंछिनी, पृथाकुमारी आदि रानियों के नखशिख वर्णन और सोलह श्रृंगार वर्णन से भरा पड़ा है। इन्द्रावती का सोलह श्रृंगार वर्णन देखिए–

''सिंघार षोडस कें, सुहस्त द्रप्पन धरे
बसन्त बासि बासनं, तिलक्क भाल भासनं
दुनैन ऐन अंजए, जल चलंत षजए
सुहंत श्रोन कुण्डलं, ससी रवी कि मंडलं''

रासो में वय–संधि के चित्र भी अत्यन्त आकर्षक हैं–

''त्यों सरिता अरु सिंध सन्धि मिलत दुहून हिल्लोर
त्यों सैसव जल संधि में जोवन प्रापत जोर''

श्रृंगार रस को पुष्ट करने के लिए ही कवि ने षड्ऋतु और बारहमासा का वर्णन किया है। उदाहरण के लिए, कनवज्ज खण्ड में षड् ऋतुओं का ललित वर्णन मिलता है। ये चित्र यद्यपि उद्दीपन की दृष्टि से प्रस्तुत किए गए हैं, पर वे रासो–कार के ऋतु विषयक ज्ञान, निरीक्षण–शक्ति और वर्णन–कौशल के भी परिचायक हैं। संस्कृत कवियों जैसा प्रकृति का सांगोपांग और संश्लिष्ट वर्णन तो रासो में नहीं है फिर भी कुछ वर्णन बहुत ही सुन्दर बन पड़े हैं। वर्षा वर्णन का यह चित्र दृष्टव्य है–

''घन–घटा बधि नभ मेघ छाय
दामिनिय दमकि जामिनिय जाय
बोलंत मोर गिरवर सुहाय
चातिग्ग रटत चिहुँ ओर नांव''

इसी प्रकार का विभावांतर्गत शरद् का वर्णन भी रासो में मिलता है। बसन्त ऋतु का एक भाव सापेक्ष्य चित्र भी द्रष्टव्य है–

भवरि अंब फुल्लिग कदंब रयनी दिध दीसं॥
भवर भाव भुल्ले भ्रमन्त मकरन्दय सीसं॥
बहत बात प्रज्जलति मौर, अति बिरह अगिन किय॥
कुहुकुहुन्त कल कन्ठ पत्र राषस अति अग्गिय॥

इस प्रकार चन्दबरदाई वस्तु–वर्णन की दृष्टि से अत्यंत कुशल कवि हैं। उनके पट्टन, कन्नौज, दिल्ली और गजनी के सुन्दर नगरों और दुर्गों के वर्णन, पनघट, उत्सव, ज्योनार आदि के वर्णन भी इसके प्रमाण हैं। पट्टनपुर के पनघट का यह चित्र देखिए–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सरोवंर समानयं परीन रम्भ जानयं
बतक्क सार संमयं, अनेक हंस क्रम्मयं
भरै सु नीर कुम्भयं।

चन्द के इसी वर्णन-कौशल की प्रशंसा करते हुए डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, ''वे केवल कल्पना-विलासी ही नहीं, निपुण मंत्रदाता के रूप में भी सामने आते हैं। चाहे रूप और शोभा का वर्णन हो, चाहे ऋतुवर्णन की उत्फुल्लता का प्रसंग हो, या युद्ध की भेरी का प्रसंग हो, चन्दबरदाई सर्वत्र एक समान अविचलित और प्रसन्न दिखायी देते हैं। रूप और सौंदर्य के प्रसंग में तो उनकी कविता रुकना ही नहीं चाहती।''

वस्तु-वर्णन के साथ ही चन्द की भावाभिव्यंजना भी अत्यंत हृदयग्राही और रसमय है। उन्होंने नारी के बाह्य रूप का ही वर्णन नहीं किया है, उसके मन में उठने वाली भावोर्मियों का भी चित्रण किया है। वय: सन्धि के समय किशोरी के मन में उठने वाली भाव-तरंगों का चित्रण पूरी मनोवैज्ञानिकता के साथ किया गया है, तो गुरुजनों के मध्य बैठी नायिका के हृदय में नायक के प्रति उठने वाले भावों का चित्रण भी-

गहलवाल पिय पाति सुगुरुजन से भरे।
लोचन मोचि सिरंग मुदमसु बहि परे॥

नायक-नायिका के प्रथम दर्शन के समय नायिका के काम-विह्वल होने एवं नायक के आग्रह पर उसके साथ घोड़े पर बैठते समय के भावों का चित्रण भी उत्कृष्ट भावाभिव्यंजना के उदाहरण हैं। सखी से कहने पर जब संयोगिता नदी-तट पर मछलियों को मोती चुगाते पृथ्वीराज को देखती है तो काम-विह्वल हो उठती है-

मदन सरलारी विविहा जिव्हा रटर्पति प्रान पानेज।
नयन प्रवाहति विवहा मह वाया कंत कथ्थयं॥

जब पृथ्वीराज उसे घोड़े पर बैठने का आग्रह करता है तो उसका मन नारी-सुलभ संकोच एवं भय से भर जाता है-

किय हय पुट्ठिहि भार हौं घटि दल संगह राज।
भरि परत जो तजि चल्यौ तब मो भावै लाज॥

इसी प्रकार जब पृथ्वीराज पहलीं बार शशिव्रता का हाथ पकड़ता है तो नायिका की शारीरिक और मानसिक दशा का वर्णन भी अत्यंत मनोहर है-

गहत बाल पिय पानि सु गुर जन संचरे
लोचन मोचि सुरंग सु भजु बहे खरे
अपभंगह जिय जानि सु नैन मुख बही
मनो खंजन मुख मुत्त मरकत नरं वह।

पात्रों के मन की दुविधा, असमंजस, अंतर्द्वन्द्व के चित्रण में भी कवि की मनोविज्ञान दृष्टि झलकती है। चाहे वय:संधि के समय नायिका की दुविधा हो, चाहे पृथ्वीराज के साथ दिल्ली जाने के लिए घोड़े पर बैठती संयोगिता की दुविधा और चाहे पृथ्वीराज से एकांत में मिलने जाने की तैयारी करती हुई शशिव्रता के मन का द्वन्द्व हो सबका चित्रण अत्यन्त मार्मिक है।

'रासो' में विप्रलम्भ श्रृंगार के चित्र विरल हैं, और जो हैं भी उनमें हृदय की वह तल्लीनता, गम्भीरता और अनुभूति की तीव्रता के कारण वियोग-चित्रण मर्मस्पर्शी हो उठता है। केवल एक-दो स्थल ही अपवाद हैं-

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

देखन्त नैन सुझ्झै न दिसि परिय भूमि सन्धार।
संजोगी जोगिन भयी जब बजिग धरि चाल॥

आचार्य शुल्क ने लिखा है कि जिस कवि को जीवन के मार्मिक स्थलों की जितनी गहरी पहचान होती है और वह उनका जितना मार्मिक चित्रण करता है वह उतना ही महान् कवि होता है। इस दृष्टि से भी रासो एक महान काव्य है। 'कैमास वध' में कैमास का वध होने पर उसकी पत्नी का निर्वेद भाव शोकाकुल पत्नी के हृदय की व्यथा का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करता है–

जउ जीवन साई मधन उ नृपति बहुत बच्चनह मनु।
सुक्क सरोवर हंस गउ सुकिलि उडड़ अंधार मनु।

यहां निर्वेद भाव का औदात्य देखते ही बनता है, इसी खंड में कैमास का शव उसकी पत्नी को सौंपने के बाद चन्द और पृथ्वीराज का मिलन, गौरी के बंदीग्रह में चन्द और पृथ्वीराज के मिलन का चित्र मन को आनंदित कर देते हैं–

नेहनीर सकि कंठ कवि, नैन भाल झलकमति पानि
बिन बोलत बोल्यो नृपनि चंद चिति बरवानि

इस प्रसंग की मार्मिकता पर विचार करते हुए डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं–

वह प्रसंग कितना मार्मिक है जब अंधा नरेश अपने प्रिय सहचर चंद का स्वर सुनता है। पहले वह पहचान नहीं पाता। फिर थोड़ी देर बाद स्वर के सहारे पहचान लेता है। उल्लास होता है, लेकिन फिर न जाने कितने भाव मन में उठते हैं। शायद यह कि आज इस विरुद के उपलक्ष्य में पहले की तरह पुरस्कार देने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है, शायद यह कि आज यह विरुद्ध व्यंग्य की तरह चुभता है, शायद यह कि अपना यह विपन्न रूप चंद को दिखाने के लिए मैं क्यों जीवित हूँ, शायद यह कि डूबते को तिनके का सहारा मिला और बहुत दिनों के बाद परदेश में स्वजन का स्वर सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। पृथ्वीराज कुछ नहीं बोलता। महाकाव्य में घटनाओं का ही विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं होता, पात्रों के चरित्र के गुण-दोष भी बताये जाते हैं। अधिकांश मध्यकालीन प्रबंध काव्यों के नायक-नायिका साँचे में ढले होते हैं– नायक आदर्श पुरुष तथा नायिका अपूर्व सुन्दरी और आदर्श प्रेमिका। पृथ्वीराज रासो में चरित्रों के गुण भी हैं और दोष भी। पृथ्वीराज निर्भीक, उदार, दृढ़ चरित्र, वीर, पराक्रमी, साहसी, कुशल योद्धा भी है और विलास में डूब जाने वाला रसिक नायक भी। आज की भाषा में वह आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी पात्र है। इस काव्य की संवाद-योजना भी सुखद आश्चर्य प्रदान करती है। 'कनवज्ज समय' में जयचंद और कवि का संवाद मनोरंजक एवं विदग्धापूर्ण है। जब जयचंद कवि चंद के बरद्दिय उपाधि पर व्यंग्य (बरदाई और वरद बैल) करते हुए पूछता है वह दुबला क्यों है तो चंद उत्तर देता है– पृथ्वीराज ने दुष्ट शत्रुओं को पराजित किया। वे वन में पत्ते, डाल, मूल, वृक्ष पकड़ कर छिप गये। अनेक दाँतों में तिनके और दूब रखकर चौहान की शरण में गए। इससे पत्तों, दूब की कमी पड़ गई और वह दुबला हो गया।

सभी कवि अपनी कविता-कामिनी को अलंकृत करते हैं। चन्द की रचना में भी अलंकारों की छटा दर्शनीय है। शब्दालंकारों में रासोकार ने अनुप्रास और यमक का प्रयोग कुशलता से किया है। कहीं म और मधु का अनुप्रास है, तो कहीं मधुरित शब्द में श्लेष है। अनुप्रास तो बहुत ही स्वाभाविक ढंग से उनके काव्य में आ गया है–

जुग जुरन जालिम जुझार भुज सार भार भुअ।

अर्थालंकारों के अंतर्गत उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति का प्रयोग बहलता से हुआ है। जहाँ उपमा के प्रयोग में कवि ने काव्य-परम्परा का ध्यान रखते हुए सुप्रसिद्ध, प्रचलित उपमानों का प्रयोग किया है, वहाँ कहीं-कहीं उनके उपमान नए और कवि की मौलिक उद्भावना-शक्ति के भी परिचायक हैं। शिशु का वर्णन करते हुए उन्होंने जो उपमान प्रस्तुत किये हैं, वे अभिनव और अत्यंत प्रभावशाली हैं–

मिली बाल जाल कवि रही केलि
बढ़ि रही दन्दु बीज बेलि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चंदबरदाई रूढ़ उपमानों के उपयोग से सौंदर्य वर्णन में श्रृंगार को अद्‌भुत से पुष्ट भी कर सकते हैं। प्रसंग पृथ्वीराज द्वारा संयोगिता का प्रथम दर्शन है। पृथ्वीराज ने देखा–

कुंजर के ऊपर सिंह। सिंह के ऊपर दो पर्वज। पर्वत पर भौंरें। भौरों पर चन्द्रमा। चन्द्रमा के ऊपर एक तोता बैठा है। जिस पर दो हिरण है हिरन पर दो धनुष और धनुष पर कंदर्प।

कंजर उप्पर सिंघ, सिंघ उप्पर दुई पव्वय।
एलय उप्पर भृंग भृंग उप्पर ससि सुभ्भय॥
सरि उप्पर इक कीर कीर उप्पर मृग दिट्‌ठौ॥
मृग उप्पर कोवंड संघ कन्द्रप्प बयट्‌ठौ॥

कहने की आवश्यकता नहीं कि ये नख–शिख के रूढ़ उपमान हैं जिन्हें चंद ने अपने ढ़ग से प्रस्तुत करके अद्‌भुत को श्रृंगार का सहायक बना दिया है। इसी प्रकार वे यथाअवसर वीभत्स और भय को वीर का सहायक बनाते हैं।

कवि ने अप्रचलित और अप्रसिद्ध उपमान भी साहस के साथ रखे हैं। ये नवीन उपमान अर्थ–सुलभता के साथ अर्थ–गौरव की भी वृद्धि करते हैं। उपमा के प्रयोगों द्वारा रासोकार ने अपना अभीष्ट सिद्ध करने में अपूर्व सफलता प्राप्त की है। उपमा के बाद 'रासो' में रूपक का स्थान है। वैसे तो उसके सभी विभेद उसमें मिलते हैं, परन्तु कवि को सांगरूपक विशेष प्रिय था और इस के प्रयोग में उसे आशातीत सफलत भी प्राप्त हुई है। रासो के आरम्भ में ही निम्नलिखित रूपक इसका प्रमाण है–

''काव्य-समुद्र कवि चन्द्र कृत मुगति समप्पन ज्ञान।
राजनीति बोहिथ सफल पार उतारन यान॥''

कवि ने शशिव्रता के कैशोर आगमन का चित्रण शिशिर में अचानक वसंत आ जाने के बिम्ब–रूपक से किया है–

पुराने पत्ते झड़ गए। कोमल अंकुर निकलने लगे। शैशव उतर रहा है और कैशोर चढ़ रहा है शीतल मंद सुगंध वायु के साथ अचानक ऋतुराज आ गया। रोमराजि, कुच, नितम्ब कोमलता वृद्धि पा गए। शीत के सामन कटि बढ़ती नहीं बल्कि निरंतर क्षीण हो रही है। पत शब्द का श्लेष करते हुए कवि कहता है– (पत-पत्ता और मर्यादा, लज्जा)

पत्ते ढंक नहीं पाते तने को, वह प्रयास करने पर भी शरीर को ढंक नहीं पाती। वसंत ने वन को मत्त कर रखा है, कैशोर ने शशिव्रता के मन को मतवाला कर दिया है।

पत्त पुरातन झरिग पत्त अंकुरिय उट्‌ठि तुछ।
ज्यों सैसव उत्तरिय चढ़िय बैसव किसोर कुछ॥

सीतल मंद सुगंध आइ रितुराज अचानं।
रोमराइ अंग कुच नितम्ब तुच्छ सरसानं॥

बढ्‌ढै न सीत कटि छीन ह्वै लज्जामान ढकत फिरै।
ढक्कहि न पत्त ठकै–कहै वन बसंत मत्त जु करै॥

इनके अतिरिक्त उसमें उत्प्रेक्षाओं की भी भरमार है, यद्यपि यहाँ भी अप्रचलित और अप्रसिद्ध उपमानों का प्रयोग कवि ने दिल खोलकर किया है।

चौहान हथ्थ बाला गहिय को ओपम कवि चन्द कहि।
मानौ कि लता कंचन लहरि मत्तवीर गजराज गहि॥

अथवा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हय संजोगि आरुहिय पुट्ठि लग्गी वाय नृप।
पति राका पूरन प्रमान अरक बैठे सु सूर बिप॥

इनके अतिरिक्त भ्रान्ति, अतिशयोक्ति, श्लेष, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास के भी सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। इस प्रकार रस और अलंकार की सफल योजना के फलस्वरूप रासो के अनेक अंश मार्मिक और प्रभावशाली बन सके हैं।

भाषा- चन्द का भाषा पर असाधारण अधिकार है। उनमें भावों के अनुरूप भाषा को ढालने की अद्‌भुत क्षमता है। भावानुकूलता और तीव्र गति उनकी भाषा की प्रमुख विशेषता है। चंदबरदाई एक कुशल कवि हैं। भाषा पर उनका अधिकार असाधारण है। उन्होंने पहले से चली आ रही काव्य-परंपरा को एक ऊंचाई प्रदान की। कवि में भावों के अनुरूप भाषा को मोड़ने की अद्‌भुत क्षमता है। भावानुकूलता और तीव्र सौंदर्यात्मकता चंद की भाषा की प्रमुख विशेषता है।

रासो का कवि अनुनासिक प्रयोग से प्राय: झंकार उत्पन्न करता है। चाहे श्रृंगार हो या वीर अनुनासिक झंकार रासो में अबाध गति से सुनाई पड़ती है। झंकार स्थिति को ध्वनित करके गुंजा देता है। द्वित्व व्यंजनों का प्रयोग प्रधानत: युद्ध वर्णन में और सामान्यत: सर्वत्र मिलता है। रासो का कवि अपने समय की काव्य-परांपरा का रस-सिद्ध कवि है। उसने स्वयं लिखा है-

रासउ असंभु नव रस सरस छंदु चंद किय अमिय सम।
श्रृंगार वीर करुन विभच्छ मय अद्‌भुतइ संत सम॥

चंद की काव्य-भाषा में अनुस्वार द्वित्व मिश्र की ध्वनियाँ प्रवाह-अवरोध नहीं करती। वे चंद के भाषा-कौशल द्वारा अभूतपूर्व प्रवाह उत्पन्न करती हैं। प्राकृत-अपभ्रंश की काव्य परंपरा में चंद का ध्वनि-प्रवाह अद्वितीय है। ध्वनि-प्रवाह अपभ्रंश के महान कवि स्वयंभू में चंद से कम नहीं किन्तु चंद का काव्य-प्रवाह द्वित्व एवं अनुस्वार के साथ गूंजता हुआ गतिशील होता है। चंद चाहे देवी देवताओं की स्तुति करें, युद्ध का वर्णन या नारी-शरीर का सौंदर्य या विनोद-यह अनुस्वार द्वित्व सहित प्रवाह सर्वत्र दिखाई पड़ता है। वे वर्णानुप्रास के भी सिद्ध कवि हैं। उनके भाव नाद-प्रवाह में रूपांतरित हो जाते हैं। काव्य के प्रारंभिक अंश में सरस्वती वंदना में स्वर व्यंजनों की मैत्री से उत्पन्न ध्वनि की आवर्तें चंद की शैली का ठेठ उदहारण हैं।

मुलाहार विहार सार सुबुधा अब्धा बुधा गोपिनी
सेतं चीर सरीर नीर गहिरा गोरी गिरा जोगिनी
बीना पानी सुबानि जानि दधिजा हंसा रसा आसिनी
लंबोजा चिहुरार भार जघना बिश्ना धना नासिनी

यह प्रवाह चाहे जितना स्वाभाविक लगे, इसके पीछे गहरा लोक-ज्ञान, परंपरा-ज्ञान, संवेदना एवं अभ्यास हैं।

'कनवज्ज समय' में युद्ध के इस वर्णन में युद्धमत्त सैनिकों के हथियारों और कोलाहल का निनाद सुनाई पड़ता है-

बजंत धाय सहकं ननद सद सुंदर।
गरब्बि देखि अग्गि ज्यों विदोष मन्न जे दुरं॥
उठंत दिट्ठ सुर की करूर अंखि राजई॥
भनं कि सौकि बीय दिट्ठ बंकुरीति साजई॥ साजई।

चंदबरदाई छंद के राजा माने जाते हैं। जैसे-जैसे भाव बदलते जाते हैं, वैसे-वैसे कवि छंद की राह बदलता चलता है और आरोह-अवरोह के साथ भाषा संगीतमय लय में गुनगुनाती हुई ठुमकती चलती है। इससे एक संगीत पैदा होता है। चंदबरदाई छंदों के अधिकारी कवि हैं। उन्होंने अपने समय में प्रचलित अधिकांश छंदों का प्रयोग किया है। सबसे ज्यादा मन लगता है छप्पयों में। चंद मार्मिक चित्रण छप्पयों में करते हैं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि वे अन्य छंदों में मार्मिक उक्तियाँ नहीं कहते। गाथा का उपयोग वे प्राय: कथा को आगे बढ़ाने के लिए करते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

रासों में अड़सठ प्रकार के छन्द पाये जाते हैं, जिनमें अधिकांश अपभ्रंश-कालीन मात्रिक छंद हैं। अभिव्यंजना के विचार से इन छंदों का चुनाव कवि की दूरदर्शिता एवं कुशल शिल्पी होने का परिचायक है। चन्द का भाषा पर पूर्ण अधिकार था, और शब्द उनके इशारे पर नाचते चलते थे। उनकी भाषा में संस्कृत, अपभ्रंश और देशभाषा सभी के शब्द हैं। डॉ. विपिन बिहारी त्रिवेदी के शब्दों में ''भाषा-शास्त्री को यदि भारत की गौड़ी भाषाओं की अभिसंधि देखनी हो तो 'रासो' से अधिक चमत्कृत करने वाला दूसरा कोई काव्य-ग्रन्थ उसे न मिलेगा।'' यद्यपि यह भाषा कलात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से कहीं-कहीं दोषपूर्ण है, तथापि विभिन्न रसों की धारा बहाने में वह सक्षम है। वस्तुत: 'रासो' का महत्त्व भाव-सौन्दर्य के कारण है, न कि भाषा-सौन्दर्य के कारण।

रासो का हिन्दी साहित्य के इतिहास में अविस्मरणीय स्थान है। रासो अपनी पूर्ववर्ती काव्य-धारा और परवर्ती साहित्य-विकास का सेतु है। उसमें पूर्ववर्ती काव्य-प्रवृत्तियों का साधन मिलता है तो परवर्ती प्रवृत्तियों के रूप। पृथ्वीराज रासो के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए डॉ. नामवर सिंह ने ठीक ही कहा है-

रासो मानव जीवन की विविध परिस्थितियों और भाव दशाओं का महासागर है। यही वह विशेषता है जिससे युग के सभी काव्यों में रासो को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। निश्चय ही यह उस युग की सांस्कृति परिस्थितियों तथा पूर्व परम्पराओं का बृहद्कोश है और मध्ययुगीन भारतीय समाज का एक काव्यात्मक इतिहास है।

कथासार-शशिवृता विवाह-खण्ड, पृथ्वीराज रासो का पच्चोसवां समय है। इसमें पृथ्वीराज और शशिवृत्ता का परस्पर रूप गुण आदि सुनकर अनुरक्त होने, शशिवृत्ता की सगाई उज्जैन-नरेश कमधज्ज के भतीजे से निश्चित होने पर उसके द्वारा चुपचाप पृथ्वीराज चौहान के पास हंस रूप दूत भेजकर अपना हरण करने का सन्तव्य देने, चौहान का अपने सात सहस्र कपटधारी सैनिकों सहित आकर देवगिरि के देवालय से शिव पूजन हेतु आई हुई राजकुमारी को लेकर चल देने तथा युद्ध में यादवराज और कमधज्ज की संयुक्त वाहिनी को परास्त कर दिल्ली पहुँच जाने का प्रसंग हैं।

कथानक का विश्लेषण-शुक-शुकी के संवाद से कथानक का प्रारम्भ - शशिवृता विवाह खण्ड के कथानक का प्रारम्भ शुक-शुकी के संवाद से होता है। देवगिरि की राजकुमारी शशिवृत्ता का सौन्दय एक नट द्वारा सुनकर पृथ्वीराज उस पर आसक्त हो, उसकी प्राप्ति की चेष्टा करते हैं और कामातुर हो उसके विरह में लीन मृगयारत हो जाते हैं, जहां वन में एक वाराह का पता बताने वाले बधिक के साथ अपने अनुगामियों सहित तुपकधारी राजा के वर्णन के बीच में अनायास शुक शुकी से कह बैठती है कि दिल्लीश्वर से गन्धर्व-विवाह की कहानी सुनाओ। शुकी शुक से यह जानना चाहती है कि शशिवृता पूर्व जन्म में कौन थी, तथा इस जन्म में पृथ्वीराज से उसका विवाह किस प्रकार हुआ। शुक इस प्रसंग को विस्तार से सुनाता है-

पुच्छ कथा सुक कहौ। समह गन्धवी सप्रेमहि॥
स्त्रवम, मंमि संजोगि। राज रसम धरी सुनेमहि॥
इम चितित्य मन मड्डिअ। (चत्र सुख गन्धब ईसह)॥
(कै) करो पति जुग्गनि। ईस पुज्जै सु जग्गीसह॥

शुक शुकी के पूछने पर कहता है कि देवगिरि (देवास) का नट दिल्ली दरबार में आता है और पृथ्वीराज द्वारा पूछने पर कि वहां की कुमारी शशिवृत्ता का विवाह किसके साथ निश्चित हुआ है बताता है कि उज्जैन के कमधज्ज राजा के यहां सगाई ठहरी है। परन्तु राजकुगारी को उक्त वर पसन्द नहीं है। फिर उससे शशिवृता का मेनका सदृश रूप सुनकर पृथ्वीराज उस पर अनुरक्त हो गये और नट से उसकी प्राप्ति का उपाय पूछने लगे। नट ने यह कहकर कि हे राजेन्द्र! मैं कुठ उठा न रखूंगा, उनसे विदा ली। राजा ने शिव से अपना मनोरथ सिद्ध होने का वरदान पाया, तथा वर्षा और शरद ऋतुएं शशिवृत्ता के विरह की काम-पीड़ा में बिताई और देवगिरि जाने का निश्चय किया।

उधर जयचन्द्र के भ्रातृज वीरचन्द के साथ शशिवृता की सगाई का समाचार पाकर एक गन्धर्व देवगिरि गया और वन में जहाँ शशिवृता अपनी समवयस्काओं के साथ क्रीड़ा कर रही थी, वह हेम-हंस के रूप में एक स्थान पर विश्राम लेने लगा। राजकुमारी बड़े आश्चर्य से उस स्वर्ण-हंस को देखती है और उसे पकड़ लेती है। वह उससे पूछती है कि तुम कौन हो। तुम्हारा स्थान कहां है और इस

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

रूप में किस माया से आये हो। गन्धर्व उत्तर देता है कि मैं मति प्रधान नाम गन्धर्व हूँ। तुम्हारे हित के लिये ही देवराज इन्द्र ने मुझे यहाँ भेजा है। और हे बाले! मुझमें तीनों लोकों में जा सकने की शक्ति है–

हेम हंस तन धरिय। बिपन मध्ये विश्राम लिय॥
दिष्य तास शशिव्रत। अतिहि अच्चरिज्ज मानि जिय॥
बल कर गयि सु तत्थ। हत्थ लै करि तेहि पुच्छिय॥
कवन देव तुम थान। कवन माया तन अच्छिय॥
उच्चरयौ हंस ससिवृत्त सम। मति प्रधान गन्धर्व हम॥
सुरराज काज आये करन। तीन लोक हम बाल गन॥

हंस का परिचय पाकर शशिवृता उससे अपने पूर्व जन्म के विषय में पूछती है। साथ ही यह भी पूछती है कि उसे कौन वर मिलेगा। हंस उसे उत्तर देता हुआ कहता है कि पूर्वजन्म में वह चित्ररेखा नाम की सुन्दरी अप्सरा थी। अपने सौन्दर्याभिमान में उसने इन्द्र से कलह कर ली इससे इन्द्र ने उसे मृत्यु लोग मे पुङ्ग के घर जन्म लेने का शाप दिया।

गन्धर्व शशिवृता से यह भी कहता है कि उसके पिता ने उसका विवाह कमधज्ज वीरचन्द्र के साथ निश्चित कर दिया है। परन्तु उसकी आयु एक वर्ष ही शेष है। इन्द्र के द्वारा करुणा करके इसीलिए उसे भेजा गया है और मैं तुम्हें सचेत करने के लिए ही आया हूँ।

तेम रहे बर बरष इक्क महि। हय गय अनन्त झु झिझहै समतहि॥
तिहि चार करि तुमहि आयो। करि करुना यह इन्द्र पठायौ॥

स्वर्ण हंस के इस कथन को सुनकर स्वाभाविक ही था कि शशिवृता वीरचन्द्र की ओर से विमुख हो जाता। वह उससे अपने अनूकूल वर पूछती है –

तब उच्चरिय बाल सम तेह। तुम माता सम पिता सनेहं॥
मुज्झ सहाय अवरि को करिहौ। पानिग्रहन तुम चित अनुहरिहौ॥

हंस दूत तो इस अवसर की प्रतीक्षा में ही था। वह वीरों के अधिपति दिल्लीपति पृथ्वीराज का गुणगान करता है। शशिवृता पृथ्वीराज की प्रशस्ति सुनकर हंस से कहती है कि वह उनको बुला लाये। वह उनकी छः मास तक प्रतीक्षा करेगी और इस अवधि तक उनके न आने पर प्राण त्याग देगी–

वहां तुम पिता कृपा करि जाउ। दिल्ली वै अनुराग उपाय।
मांस षटह हों वृत्तह मडौं। तथ्युना आवे तौ तन छंडों॥

इस प्रकार शशिवृत्ता को पृथ्वीराज के अनुराग में पागकर, हँस उसके पास अपनी सुन्दरी को छोड़कर उत्तर दिशा की ओर उड़ चला और योगिनीपुर (दिल्ली) जा पहुँचा। सुवणात्मक शरीर पर अनेक नगों की शोभा हो रही थी–

तब उड़ि चल्यौ देह दिसि उतरि। ढिग ससिव्रत रष्यि निज सुन्दरि॥
जुगिनिपुर आयो दुजराजं। सोवन देह नगं नग साजं॥

इस समय पृथ्वीराज वन में मृगया में लीन थे। वे उस हंस को आश्चर्य से देखकर पकड़ लेते हैं। हंस उनसे सारी कथा कहता हुआ शशिवृता के सौन्दर्य का वर्णन करता है। उसका शरीर सुमेरु पर्वत के समान सुन्दर है। शैशवावस्था उससे विदा हो रही है और किशोरावस्था उसके शरीर में प्रवेश कर रही है। सूर्य तथा चन्द्र के उदय और अस्त के मध्य में वह इस प्रकार शोभित होती है, मानो श्रृंगार का सुमेरु हो–

राका अरु सूरज्ज बिच। ऊदै अस्त दुहु बेर।
बर शशिवृता सोमई। मनों श्रृंगार सुमेर॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

फिर हंस राजकुमारी की बाल्यावस्था व्यतीत होकर किशोरावास्थ के आगमन पर शिशिर और बसन्त का सावयव आयोग करके उस अज्ञात योवना का रूप – चित्र प्रस्तुत करता है–

ससिर अंत आवत बसंत। बालह सैसव गम॥
अलिन पंष कोकिल सुकंठ। सजि गुंड मिलत भ्रम॥
मुर मारुत मुरि चले। मुरे मुरि बैस प्रमानं॥
तुछ कोंपर सिस फुटि्ट। आनि किस्सोर रंगानं॥
लीनी अंमिनक स्याम तन। मधुप मधुर धुनि-धुनि करि॥
नानो न बयन आवन बसत। अग्याता जीवन अरिय॥
पत्त पुरातन झरिग। पत्त अंकुरिय उट्ठ तुछ॥
ज्यों सैसव उत्तरिय। चढिय सैसव किसोर कुछ॥
शीतल मन्द सुगन्ध। आइ रिरिताज अचानं॥
रोमराइ अंग कुचु नितज्ब। तुच्छ सरसानं॥
बढ्ढै न सीत कटि छीन ह्वै। लज्ज मांन ढंकति फिरै॥
ढंके न पत्तं ढंकै कहै। बन बसन्त मन्त जु करै॥

पृथ्वीराज में प्रेत की उत्पत्ति– हंस–दूत द्वारा शशिवृता के रूप और सौन्दर्य का वर्णन सुनकर पृथ्वीराज उसके अनुराग में डूब जाता है। उसे रात्रि भर नींद नहीं आती। किंचित झपकी आने पर वह स्वप्न में शशिवृता को ही देखता है। सवेरा होने पर वह हंस से पुनः शशिवृता का सारा वृत सुनने की जिज्ञासा प्रकट करता है। हंस सबसे पहले शशिवृता की उत्पत्ति का वर्णन करता हुआ कहता कि वह चित्ररेखा अप्सरा का अवतार है। वह कामदेन के साथे हुए बाण के समान है। वह पृथ्वीराज को वर रूप में पाने के लिये नित्य प्रति गौरी का व्रत–पूजन कर रही है। शशिवृता में आपके प्रति पहले से ही श्रवणानुराग उत्पन्न हो चुका है।

राजा भान के आनन्दचन्द नामक मंत्री की बहिन चन्द्रिका का विवाह हिसार में हुआ, किन्तु विवाह के कुछ दिनों बाद उसके पति का स्वर्गवास हो गया। आनन्दचन्द्र चन्द्रिका को अपने यहां ले आता है। चन्द्रिका का प्रवेश कुछ समय अनन्तर राजा भान के अन्तःपुर में हो जाता है। शशिवृता राजा भान के छोटे भाई पुंज की पुत्री है। इसी चन्द्रिका ने शशिवृता के समक्ष आपके गुणों का वर्णन किया है, जिसे सुनकर वह आपके प्रेम में पग गई और उसने आपको पति रूप में प्राप्त करने की प्रतिज्ञा की। वह अपनी अभिलाषा पूर्ण होने के लिये नित्य प्रति भगवान शिव की पूजा करती है। स्वप्न में पार्वती ने शशिवृता को बतलाया है कि शिवाजी के वरदान से पृथ्वीराज उसे पति रूप में प्राप्त होंगे। उसे शशिवृता ने ही भेजा है। वह सेना लेकर उसे विवाहने आयेगा। यहां हंस शशिव्रता के नख–शिख–सौन्दर्य का भी वर्णन करता है–

पीनो रूपीन उरजा, रंभ शशि बदना, पद्म पत्रापताक्षी॥
व्यंबोष्ठी तुंग नासा, गज गति गमना, दसना व्रतनाभी॥
संस्निग्धधा चारू केशी, मृदु प्रथु जघना, वाम मध्या सू देसी॥
हेमांगी कंति हेला, वर रुचि दसना, काम बाना कटाक्षी॥

हंस शशिवृता का नख–शिख के मिस विस्तार से रूप सौन्दर्य वर्णन कर यह भी कह देता है कि शिव के वरदान के अनुसार यह आपको अवश्य प्राप्त होगी। उसका विस्तार आपके लिये ही हुआ है। इस अवसर पर शशिव्रता की माँगनी कमधज्ज को दी जाने, उसके पृथ्वीराज पर अनुरक्त होने, शिव पूजन करने और शिव की आज्ञा से ही स्वयं उन्हें बुलाने की बात हंस पुनः दोहरा देता है।

इस प्रकार हँस दूत पृथ्वीराज को देवगिरि ले जाने के लिए अथक परिश्रम करता है। हंसदूत अपने प्रयास में सफल होता है।

पृथ्वीराज का देवगिरि को प्रयाण–हंस शशिवृता को प्रेम–सन्देश देकर उड़कर चला जाता है। इधर पृथ्वीराज अपने चुने हुए सामन्तों और सेना को लेकर प्रयाण करता है, उधर कमधज्ज वीरचन्द्र भी एक लाख दस हजार सेना लेकर देवगिरि पहुँच जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वीरचनद्र का आगमन सुनकर शशिवृत्ता आत्महत्या के लए उद्यत हो जाती है। इसी समय हँस पहुँचकर शशिवृता पृथ्वीराज के भी आ पहुँचने की सूचना देता है। इस सूचना से उसके हृदय में प्रेम का सागर हिलोरे लेने लगता है।

शशिवृता का देव-पूजन के बहाने हरिसिद्धि नाम स्थान के लिए प्रस्थान- हंस से पृथ्वीराज के आगमन की सूचना पाकर शशिवृता माता-पिता से आज्ञा लेकर देवपूजन के बहाने हरसिद्धि नामक स्थान को चल पड़ती है। वह देवालय चलने से पूर्व अपना भली भांति श्रृंगार करती है। इस अवसर पर कवि विस्तार से शशिवृता के आभूषणों वस्त्रों एवं उसके शारीरिक सौन्दर्य और चित्तवृत्ति का वर्णन करता है। वीरचन्द्र ने देवालय के चारों ओर अपनी सेना लगा रखी है। वीरचन्द्र को देखकर शशिवृता की छाती धड़कती है और वह पृथ्वीराज का स्मरण करती है। वह देव पूजन के लिये पालकी से उतर पड़ती है।

शशिवृता के पिता को पृथ्वीराज और वीरचन्द्र दोनों के आ पहुँचने का पता चल जाता है। अत: वे युद्ध की आशंका से अपनी सेना सजाकर हरसिद्धि नाम स्थान पर पहुँच जाते हैं। राजा भान यह जानकर कि राजकुमारी शशिवृता पृथ्वराज से प्रेम करती है, वह उसके कल्याणार्थ चुपके से अपना दूत पृथ्वीराज के पास भेजता है। इधर पृथ्वीराज अपने चुने हुए सात हजार वीरों को कपाली का वेष धारण कराता है। पृथ्वीराज उनके सहित देवालय में प्रवेश कर जाता है। पृथ्वीराज इस समय रौद्र रूप में है। वह शशिवृता को अपने हाथों से पकड़ लेता है। इस अवसर पर कवि की कल्पना मुखरित हो उठती है और वह कहा है-

चौहान हथ्थ वाला गहिय। सो ओपम कविचन्द कहि।
मानों कि लता कंचन लहरि। मत्त बीर गजराज गहि॥
गहि शशिवृत नरिदं। सिढि लंगत ढहि थोरी।
काम लता कल्हरी। प्रेम मारुत झकझोरी॥

युद्ध - वीरचन्द्र युद्ध प्रारम्भ कर देता है। कवि यहां भीषण युद्ध का वर्णन करता है। राजा पृथ्वीराज कान्ह को युद्ध लड़ने की आज्ञा देते हैं। वह बाज की तरह शत्रु दल पर टूट पड़ता है। इधर से यादव सेनापति भी कान्ह से आकर भिड़ जाता है। युद्ध की विषम स्थिति में शशिवृता के नेत्रों में श्रृंगार-रस, वीरस, सामन्तों में वीर रस, पृथ्वीराज में रौद्र रस, अप्सराओं में हास्य रस तथा देवताओं में भयानक रस देखा जाता है-

भान कुँअरि शशिवृत्ति। नैन श्रृंगार सुराजै।
वीर रूप सामंत। रुद्र प्रथिराज विराजै॥
चन्द्र अद्भुत जानि। भए कातर करुनामय॥
बीभछ अरिन समूह। सांति उप्पनौ मरन भय॥
उप्पज्यौ हास अपछरि अमर। भौ भभान भावी बिगति॥
कूरंभराव पृथिराज कर। लरन मोह चिते तरनि॥

चलते हुए भीषण युद्ध में वीरचन्द की सेना का एक नाई आगे आता है और भंयकरता से युद्ध करता है। अन्त में वह वीरगति को प्राप्त हो जाता है। नाई की वीर गति देखकर वीरचन्द्र भी अपनी मृत्यु निश्चित समझ लेता है। यह भीषण युद्ध प्रारम्भ कर देता है। इतने में रात्रि हो जाती है और दोनों सेनाएं विश्राम के लिए लौट पड़ती है। कवि यहां रात्रि का विस्तार से रोचक वर्णन करता है।

रात में पृथ्वीराज के सामन्त पृथ्वीराज से शशिवृता को लेकर दिल्ली चले जाने का अनुरोध करते हैं, परन्तु पृथ्वीराज ऐसा नहीं करता। पुन: भीषण युद्ध प्रारम्भ होता है। शशिवृत्ता युद्ध की भीषणता देखकर कांप उठती है। वह सतृष्ण नेत्रों से पृथ्वीराज की ओर देखती है। पृथ्वीराज शशिवृता का आशय जानकर युद्ध से हट जाता है और दिल्ली की ओर प्रस्थान करता है। वीरचन्द्र को जब यह पता चलता है, वह आधा कोस आगे जाकर पृथ्वीराज को घेर लेता है। पृथ्वीराज वीरचन्द्र को धर दबोचता है। वीरचन्द्र पर विजय प्राप्त कर पृथ्वीराज दिल्ली की ओर प्रस्थान करता है। उसके आगमन पर दिल्ली में तोरणोत्सव मनाया जाता है। शशिवृत्ता सहित पृथ्वीराज के नगर में प्रवेश करने के साथ शशिवृत:विवाह खण्ड की कथा समाप्त होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.7 महत्त्वपूर्ण काव्यांशों की सप्रसंग व्याख्या

कनवजहे जयचंद चल्यो दिल्लेसुर दिख्यन।
चंद बरदिया साथ बहुत सामंत सूर घन॥
चाहु वान राठोर जाति पुीर गुहिल्लय।
वड गुज्जर पांवर चलै जांगरां सु हल्लय॥
कूरंभ सहित भूति चल्यो उडिय रेण किन्हो नभो।
इक इक्कू लख वीर आंगमइ लिये साथ रजपूत सो॥
राज सगुन साम्हो हुवो ध्रुव नरसिंघ दहार।
म्रिग दक्खिण खिणिखिणि खुरति चरहि न संभरवारि।
सुरति साय सारस सवद उदय सवदलाभानु।
सुरति साय सारस सवद उदय सवदलाभानु।
परनि भज्ज प्रतिहार ज्यूँ करहि त कज्ज प्रवान॥

सुर–दिल्ली का राजा, पृथ्वीराज चौहान। दिख्यन– देखने के लिए। वरदिया–भाट, चारण, विरुद गान करने वाला। घन–बड़े–बड़े। कूरंभ–पृथ्वीराज का एक सरदार। रेणु–धूल। नभो–आकाश में। इक–इक–एक–एक। साम्हो–सामने, सम्मुख, ध्रुव–उत्तर दिशा। दहार–दहाड़ना। मिग–मृग, हिरन। खीर्ण–खीर्ण–पल–पल। खुरनि–खुरों से। संभरवादि–सांभरवाल, पृथ्वीराज। सुरनि–ध्यान, स्मरण। सवद–शब्द, ध्वनि। सवदल–मेघ सहित। भानु–सूर्य। भग्ज–भागना। प्रतिहार–सेवक, दास। कज्ज–कार्य। प्रवान–प्रमाण, सिद्ध होना।

प्रसंग– महाकवि चन्दरबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो के कनकवज्ज समय से उद्धृत इन पंक्तियों में कवि ने राजा पृथ्वीराज के कन्नौज की ओर प्रस्थान करने और यात्रा के आरम्भ में होने वाले शुभ शगुनों का वर्णन किया है।

व्याख्या – संयोगिता स्वयंवर का निमंत्रण न पाने पर दिल्ली के सम्राट पृथ्वीराज ने जयचंद की राजधानी कन्नौज जाने का निश्चय किया। उसके साथ उसका परम मित्र, कवित और भाट चन्दरबरदाई था, अनेक शूरवीर चले। जिन क्षत्रिय जातियों के सरदार, सामन्त और योद्धा उसके साथ चले, वे थे – चौहान, राठौर, पुंडीर, गुहिल, बड़गूजर, पंवार, जांगरा, तथा रोहिल्ला। इन सरदारों के साथ जब पृथ्वीराज की सेना ने कन्नौज की ओर प्रस्थान किया तो पैदल और घुड़सवार सेना के चरणों की धूल से सारा आकाश आच्छन्न हो गया। इस दल में एक–एक वीर में लाखों वीरों की शक्ति और बाहुबल था। इस प्रकार पृथ्वीराज ने दल–बल सहित कन्नौज की ओर प्रस्थान किया।

चलते समय राजा के मित्र और चारण चन्दरबरदाई ने राजा को बताया कि मार्ग में शुभ, मंगलदायक शगुन हो रहे हैं – सिंह उत्तर दिशा की ओर मुख कर दहाड़ रहा है, हिरन क्षण–क्षण हमारी दाहिनी ओर अपने खुरों से पृथ्वी को खूँद रहा है, वह घास नहीं चर रहा है। हमारे सिर के ऊपर आकाश में सारस मधुर स्वर में शब्द कर रहा है, सूर्य बादलों को चीर कर आकाश में अपना तेज विकीर्ण कर रहा है, सारी दिशाएँ आलोक मंडित हो उठी है। तीतर नामक पक्षी अपने पंखों को फैलाए उड़ रहा है। ये सब मंगलदायक शुभ संकेत है तथा निश्चय अपनी यात्रा सफल होगी। आप जिस कार्य के लिए जा रहे हैं वह पूर्ण होगा।

2. लच्छन सहित बत्तीस बरस छत्तीस मास छह।
इन दज्जन संग्रहे राहु जिम चंद सूर गह॥
उब छुट्टे महि दान दुजन छुट्टे ति दंड वहि।
इक्क गहहि गिरि कंद इक्क अनुसरहिं चल गहि॥
चंहुवान चुतर चंहु दिसहि बलि हिंदबानं सब हत्यजिहि।
इम जंपइ चंदु वरद्दिया प्रिथीराज अनुहार इहि॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शब्दार्थ–लच्छन–लक्षण। दुज्जन–दुर्जन, दुष्ट। संग्रहे–बंदी बनाना, कारागार में डालना। जिम–जिस प्रकार। महि दान– अपने राज्य की भूमि देकर। दंड दहि–दंड की यातना सहने के बाद, कठोर दंड भोगने के बाद। गिरि कंद – पर्वत की कंदराओ, गुफाओं। चरन गहि– पैरों में गिरकर क्षमा मांगना। हत्य जिहि–जिसके अधीन जंपइ–कहता है। अनुहार इहि– इश प्रकार का व्यक्तित्व है।

प्रसंग– पृथ्वीराज के दल बल सहित कन्नौज पहुँचने पर उसाक मित्र चन्दरबरदाई कन्नौज नरेश जयचंद के दरबार में जाता है। यहां जयचन्द उससे पृथ्वीराज के विषय में पूछता है। उत्तर में चन्दरबरदाई अपने मित्र और स्वामी की भूरि–भूरि प्रशंसा करता है।

व्याख्या – पृथ्वीराज बत्तीस शुभ लक्षणों से युक्त तेजस्वी पुरुष है। उसकी आयु बत्तीस वर्ष और छह मास की है। वह इतना वीर, पराक्रमी तथा धर्मात्मा वृत्ति का है कि उसने दुष्टों–दुर्जनों को उसी प्रकार अपने कारावास में बंदी बनाकर रख रखा है जैसे राहु चन्द्रमा और सूर्य को ग्रस्त कर उन्हें तेजहीन बना देता है। उशके द्वारा बंधन में डाले गये, बंदी बनाये गये प्रजापीड़िक, दुष्ट राजाओं के बंधन मुक्त होने के केवल चार उपाय हैं– कुछ पृथ्वीराज से समझौता करते हैं, आत्मसमर्पण कर अपने राज्य की कुछ भूमि दंड स्वरूप राजा को सौंप देते हैं। कुछ कठोर दंड पाने के बाद मुक्त कर दिये जाते हैं, कुछ उसके भय से अपना राज्य छोड़कर जंगलों, पर्वतों की कंदराओं में रहने लगते हैं, कुछ पृथ्वीराज के पैर पकड़कर क्षमा मांगते हैं और बंदीगृह से मुक्त कर दिया जाते हैं। इस प्रकार चतुर, नीति कुशल और पराक्रमी पृथ्वीराज ने आसपास के सभी हिन्दु शासकों को अपने अधीन कर लिया है। चन्दरबरदाई पृथ्वीराज के विषय में जयचन्द को यह सब बताता है और कहता है कि पृथ्वीराज का व्यक्तित्व ऐसा ही है।

2.8 मूल पाठ

''पुच्छ कथा सुक कहौ। समह ग्रन्थवी सप्रेमहि॥
स्त्रवम, मंमि संजोगि। राज सम धरी सुनेमहि॥
इम चित्तिय मन मझ्झि। (चित्त सख गन्धव ईसह)॥
(कै) करो पति जुग्गनि। ईस पुज्जै सु जग्गीसइ॥''

''हे हंस तन धरिय। बिपन सथ्थे विश्राम लिय॥
दिष्य तास शशिव्रत। अतिहि अचरिज्ज मानि जिय॥
बल कर गहिय सु तत्थ। हत्थ लै करि तेहि पुच्छिय॥
कवन देव तुम थान। कवन माया तेन अच्छिय॥
उच्चरयौ हंस ससिवृत्त सम। मति प्रधान गन्धर्व हम॥
सुराज काज आये करन। तीन लोक हम बाल गन॥''

''तेहि रहै बर बरष इक्क महि। हम गय अनन्त झुझ्झिहै समतहि॥
तिहि चार करि तुमहि आयो। करि करुना यह इन्द्र पठायौ॥''

''तब उच्चरिय बाल सम तेहं। तुम माता मम पिता सनेहं॥
मुझ्झ सहाय अवरि को करिहो। पानिग्रहन तुम चित अनुहरिहौ॥''

''वहां तुम पिता कृपा करि जाउ। दिल्ली वै अनुराग उपाय।
मांस षटह हों वृत्तह। तथ्युना आवै तो तन छंदों॥''

''तब उडि चल्यौ देह दिसि उत्तरि। ढिग ससिब्रत रष्षि निज सुन्दरि॥
जुग्गिनिपुर आयो दुजराजं। सोवन देह नगं नग साजं॥''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)

''राका अरु सूरज्ज बिच। उदै अस्त दुहु बेर॥
बर शशिवृता सोमई। मनों शृंगार सुमेर॥''

''ससिर अंत आवत बसंत। बालह सैसव गम॥
अलिन पंष कोकिल सुकंठ। सजि गुंड मिलत भ्रम॥
मुर मारुत मुरि चले। मुरे मुरि बैस प्रमानं॥
तुछ कोपर सिस फुट्टि। आनि किस्सोर रंगानं॥

पत्त पुरातन झरिग। पत्त अंकुरिय उद्ध तुछ॥
ज्यों सैसव उत्तरिय। चढ़िय सैसव किसोर कुछ॥
शीतल मंद सुगन्ध। आई रितिराज अचानं॥
रोमराई अंग कुच नितम्ब। तुच्छ सरसानं॥
बद्धे न सीत कटि छीन ह्वै। लज्ज मांन ढंकनि फिरै॥
ढंक न पत्तं ढंकै कहै। बन बसन्त मन्त जु करै॥''
पीनो रूपीन उरजा, सम शशि बदना, पद्म पत्रापताक्षी॥
व्यंबोष्ठी तुंग नासा, गत गति गमना, दसना वृत्तनाभी॥
संस्निग्धा चारु केशी, मृदु प्रथु जघना, वाम मध्या सु वेसी॥
हेमांगी कंति हेला, वर रुचि दसना, काम बाना कटाक्षी॥

''चौहान हथ्थ वाला गहिय। सो ओप्प कविचन्द कहि।
मानों कि लता कंचन लहरि। गत्त वीर गजराज गहि॥''
''गहि शशिवृत नरिदं। सिद्धि लंघत ढहि थोरी।
काम लता कल्हरी। प्रेम मारुत झकझोरी॥''

''भान कुंअरि शशिवृति। नैन शृंगार सुराजै॥
वीर रूप सामंत। रुद्र प्रथिराज विराजै॥
चन्द अद्भुत जानि। भए कातर करुनामय॥
छीभछ अरिन समूह। सांति उप्पनौ मरन भय॥
उप्पज्यौ हास अपछरि अमर। भौ भभान भावी बिगति॥
कूरंभरांव पृथिराज वर। लरन लोह चिंते तरनि॥''

मूल पाठ
पुच्छ कथा सुख कहौ। समह गंधर्वी सुप्रैमेहि॥
स्रवन मंमि संजोगि। राज सम धरी सुनेमहि॥
इम चित्तिय मन मझ्झि। (चित्र सख गधव ईसह)॥
(कै) करो पति जुग्गनि ईस। ईस पुज्जै सु जग्गीसह॥
सुक चित्ति बाल अति लघु सुनत। ततविन बिस उपजै तिहि।
देव सभा न जहद्दव न्नपति। नालकेर दुज अनुसरहि॥ 1॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नालकैर दुज गहिय। द्वार जैचन्द गयो अपु॥
करी षबर हेजमह। अप्प अन्दर बुलाइ न्रप॥
नालकेर दुज आनि। कह्यौ राजन अवधारी॥
देव सो सु गिरि न्रिप भ्रात। पुंज ससिवृत कुमारी॥
सो दइय बंध सृ नृ वीरकहु। लगन मास दिन पंचवर॥
सुनि स्रवन एक गंधब्ब कथ। चल्यौ सु दच्छिन देव घर॥ 2॥

दूहा
चल्यो सु दच्छिन देव गिरि। जहां शशिवृत्त कुमारि।
बिपन मद्धि क्रीड़ा करति। समह बाल चितचारि॥ 3॥

कवित्त
हेम हंस तन धरिय। विपन मद्धे विश्राम लिय॥
दिष्य तास शशिव्रत। अतिहि अचरिज्ज मानि जिय॥
बल कर गहिय सु तत्थ। हत्थ लै करि तिहि पुच्छिय॥
कवन देव तुम थान। कवन माया तन अच्छिय॥
उच्चरयौ हंस ससिव्रत सम। मति प्रधान गन्धर्व हम॥
सुराज काज आए करन। तीन लोग हम बालगन॥ 4॥

कवित्त
कहै बाल सुनि हंस। कवन हम पुब्ब जम्म कह॥
कवन पत्ति हम लहंहिं। शेष बिच्चार लहो इह॥
तबै हंस उच्चरयौ। सुनहि शशिवृता नारी॥
चित्तरेष अपछरि। संगीन अति रूप धरारी॥
तिहि गरब इन्द्र सभ कलह करि। क्रीधि देव बंड़ी सुरम्॥
दच्छिन नरेस नृप तान तान बन्धु। पुंज ग्रहै अवतार तुम॥ 5॥

चौपाई
कहै हंस सुनि बाल विचारी। पंग बधुर वीर सु पुत्तारी॥
तिहि तु दई मातु पितु बंधे। सो तुम जोग नहीं बर कंधं॥ 6॥

तेम रहै वर वरष इक्क महि। हय गय अनत झुझ्झहै समतहि॥
तिहि चार करि तुमहि आयौ। करि करना यह इन्द्र पठायो॥ 7॥

तब उच्चरिय बाल सम तेहं। तुम माता सम पिता सनेहं॥
मुझ्झ सहाय अवकर कब करिहौ। पानिग्रहन तुम चित अनुहरिहौ॥ 8॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चौपाई

तब बोल्यौ दुजराज विचारं। सुनि ससिवृत्त कत्थ इक सारं॥
दिल्लीवै चहुआंन महा भर। सौ तुम जोग चिन्तयौ हमबर॥ 9॥

सत सामंत सूर बलकारी। तिन सम जुद्ध सु देव बिचारी॥
जिन गहिबौ सर वर गज्जनवै। हय गय मंडिछंडि पुनि हियवै॥ 10॥

गुज्जरवै चालुक्क भीमतर। तै दिन रात्रि डरै जंगल धर॥
वरन जोग तुम ते विचारं। सुनि की सुन्दरि हरष अपारं॥ 11॥

तहां तुम पिता कृपा करि जाउ। दिल्लीवै अनुराग उपाउ॥
मांस षटह हों वृत्तह मडों। तथ्थु ना आवै तो तन छडौं॥ 12॥

तब उड़ि चल्यौ देह दिस उत्तरि। ढिग ससिब्रत रष्षि निज सुन्दरि॥
जुग्गिनि पुर आयौ दुजराजं। सोवन देह नगं नग साजै॥ 13॥

कवित्त

वय किसोर प्रथिराज। रम्य हा रम्य प्रकारं॥
सेत पष्य विय चन्द। कलां उहित तन सारं॥
बिपन मध्य चहुआंन। हंस दिष्यौ अप अष्षिय॥
चरन भग्ग दुति होत। मेर पछछी विय लष्षिय॥
आचज्ज देषि प्रथिराज बर। धाइ नपति बर गहिय॥
आपुब्ब दुज्ज गति दूत कथ। रहसि राज सों सब कहिय॥ 14॥

दूहा

बिपन मध्य आचिज्ज इह। दिष्षि राज पृथिराज।
धूत कूत कलधौत तन। हंस सरूप विराज॥ 15॥

संझ सपत्तौ नृपति पै। दूत सु जदव राइ।
वर कग्गद नृप हथ्थ दै। कहि श्रोतान बधाई॥ 16॥

राका अरु सूरज्ज बीच। उदे अस्त दुहु बरे॥
वर शशिवृता सोभई। मनो शृंगार समेर॥ 17॥

इव वै इन रूपह तरुनि। इन गुन आवै मान॥
सो बर, बर कवि चन्द कहि। सुनहु तो कहूं प्रमान॥ 18॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

त्रोटक

वय संधिरु बाल प्रमान ब्रनं। कहि त्रोटक छन्द प्रमान सुनं॥
वय स्यांमऽरु शैशव अंकुरयं। अह अंत विसागम संकरयं॥ 19॥

जल सैसव युद्ध समान भयं। रवि बाल बहिक्रम अत्थमियं।
वर सैसब जीवन संधि अती। सु मिलें जनु षित्तह बाल जती॥ 20॥

जु रही लगि सैसब जुग्गनता। सुमनों ससिरं तन राज हिता॥
जु चलै मुरि मारुत झंकुरिता। सु मनों मुर वैस मुरी मुरिता॥ 21॥

कलकंठ सुकंठय पंष अली। गुन जं पि कवित्त सु चन्द बली॥ 22॥

कवित्त

ससिर अंत आबन बसंत। बालह सैशव गम॥
अलिन पंष कोकिल सुकंठ। सजि गुंड मिलत भ्रम॥
मुर मारुत मुरि चले। मुरे मुरि बैस प्रमानं॥
तुछ कोंपर सिस कुट्टि। आन किस्सोर रंगानं॥
लीनी न अंमिनक स्यांम तेन। मधुर मधुर धुनि करिय॥
जानी न बयन आवन बसत। अग्याता जीवन अरिए॥ 23॥

कवित्त

पत्त पुरातन झरिग। पत्त अकुरिय उद्ध तुछ॥
ज्यों सैसव उत्तरिय। चढ़िय वैसब किसोर कुछ॥
शीतल मंद सुगंध। आय रितिराज अचानं॥
रोमराइ अंग नितंब। तुच्छ सरसानं॥
बढ़ढै न सीत कटि छीन ह्वै। लज्ज मानं ढंकति फिरै॥
ढकै न पत्त ढकै कहै। बन बसंत मंत जु कर॥ 24॥

दूहा

श्रवनन भवं श्रोतान न्रप। मन बंछै चहुआंन।
मनु ससिवृत कुआंरि कौ। पर्‌यौ उद्धर बान॥ 25॥

कवित्त

निसि नरिंद चहुआंन। चित मनोरत्थ विचारै॥
भई दीह सब निशा। निशा सयनंतर धारै॥
सयनंतर ससिवृत्त। चाटु चटु बैन उचरै॥
चारु चारु वर बयन। मान मानिनि संभारै॥
देवान मनोरथ चित्त बर। भव भव छन्नन कह करै॥
भौ प्रात दूत पुच्छै न्रपति। जद्दोवै चितै धरै॥ 26॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दूह्य
बर बंध्यौ ससिवृत्त कौ। अरु अप भान कुंआर।
वे ही दिन कमधज्ज कै। नाम बीरबर भार॥ 27॥

कवित्त
चित्र रेष बाला विचित्र। चंद्री चन्द्रनन॥
स्वर्ग मरा उत्तरी। चित्त पुत्तरि परमानन॥
काम बान सुंजरी। बाल अंजुरी सु लच्छिय॥
मार कलह उत्तरी। पुब्ध अच्छरी सुलच्छिय॥
लछिन बत्तीस लच्छी सहज। रतिपति चित्त संमधरै॥
संग्रहै वृत्त चहुंआंन को। गवरि पुज्ज दिन प्रति करै॥ 28॥

दूह्य
बरनी जोग बरन्न को। बर भुल्लै करतार।
तिहि कारन ढुंढत फिरै। सत्त समुद्रह पार॥ 29॥

जा कारन ढूंढत फिरत। सो पायो दीलीस।
अब जद्दव ससिवृत्त चढ़िय। दीनी ईस जगीस॥ 30॥

हंस कहै राजन्न सुनि। इह उतपति अनुराग॥
श्रवन सुनौ संभरि सु पहु। कहौं वृत्त सलाग॥ 31॥

कवित्त
देवाग्गिरि नृपभान। सोम बंसी संतपै न्नप॥
तिन अनत बल तेज। बहुल है गै पैदल तप॥
नयर मध्य कोटीस। बसै बानिक्क अनंत लछि॥
धर्म तप्प नह पार। न कोऊ दास रहै इछु॥
सा एक लष्ष पयदल पुलतः। षग्ग जोर षूंनं बहै॥
जद्दव नरिंद सब गुन कुसल। धन प्रताप दिन दिन लहै॥ 32॥

कवित्त
जब पित्रिन चंद्रिका। कहै गुन नित चहवानं॥
जेस पराक्रम राज। तेइ वरने दिन मानं॥
राजकुंअरि जब सुनै। तबै उम्भरै रोम तन॥
फिरि पुच्छै ससिवृत। सहि एकंत मत्त गुन॥
जे जे सु पराक्रम राज किय। सोई कहै षित्रिन समथ॥
श्रोतान राग लग्यौ उअर। तो वृत लिनौ सुनौ सुकथ॥ 37॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यों बरष्ष दुअ बित्ति गय। भइय वैस बर ऊंच॥
तब कामनं सु कलेव सुर। करै सेव सुचि संच॥ 38॥

हर सेव नित प्रति करै। मन बाचा क्रम बंध॥
वर चहुआंन सुकामना। सेवा ईस सुगन्ध॥ 39॥

बचन सिवा सिव वाच दिय। पति पावै चहुआंन॥
बर प्रमुदिय प्रमथाधिपति। हुअ सुपनंतर मान॥ 40॥

कै जानै मन अप्पनो। कै षित्रिन कै ईस॥
और शिव सुनि ईस प्रति। किय अस्तुति बर दीस॥ 41॥

कवित्त
हुअ प्रसन्न सिव सिवा। बोलि हूं पठय तुझ्झ प्रति॥
इह बरनी तुम जोग। चन्द जोसना वान वृत॥
ज्यों रुकमिनि देव। प्रीति अति बढ़ै प्रेम भर॥
इह गुन हम सरूप। नाम दुजराज भनिय चर॥
बुल्लिय सुपिता कमधज्ज-नर। व्याहन पठयो सु गुर दुज॥
आवै सु भ्रात जैचन्द सुत। कमध पुंज व्याहन सुकज॥ 42॥

ह्वै प्रसन्न वह पंगुरै। दियौ हुकम गुअ बंध॥
अेरि सथ्थ जब अप्प पर। अति पर घर सुअ नंध॥ 43॥

सज्जि सेन चुरंग नर। देवग्गिरि कज व्याह।
अति अगनित सथ द्रव्य लिय। नर उच्छव करनाह॥ 44॥

दूहा
कह सभारि बर हंस गुनि। कह जहों संकेत॥
कौन थान हम मिलन है। कहत बीच संमेत॥ 45॥

गाथा
कह यह दुज संकेतं। हो राज्यंद धीर ढिल्लेसं॥
तेरसि उज्चल माघे। व्याहन बरनीय थान हरिसिद्धि॥ 46॥

दूहा
तब राजन फिरि उच्चरै। हो देवस दुजराज॥
जो संकेत सु हम कहिय। सो अष्षी त्रिय काज॥ 47॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अरिल्ल

सो अष्षिय हम नेम सु हढ्ढं। तुम अवस्य आवो गढ्ढं॥
सेत माघ त्रयोदसि सावहि। हर सुकलेव थान सुति भावहि॥ 48॥

इह कहि हंस सु उड़ि गयौ। लग्यौ राज श्रोतान॥
छिन न हंस धीरज धरत। सुख जीवन दुख प्रान॥ 49॥

दस सहस्त्र हैवर चढ़ि य। नृप दिल्ली चहुंआंन।
हुकम सद्दि साहन कियौ। दै सूरन बिलहान॥ 50॥

छन्द भुजंगी

दिया कन्ह चहुआंन मानिक्क बाजी। जिनै देषतैं चित्त की गीत लाजी॥
मुषं मझ्झ पायं कढ़ै बात राजं। मनो वग्ग भीषं कृतं कड्ढिपाजं॥ 51॥

दियौ बाजि इंदं बरं जाम देवं॥ दिपै तेज ऐसै चिरं पंष एवं॥
धरै पाइ ऐसे इलं मड्झि जैसे। सुनै जैन ध्रंमं धरै पाइ तैसे॥ 52॥

चढ्यौ राव कैमास चित्तं तुरंगी। रहै तेज पासं छहंत अंगी॥
चमक्कतं नालं बिसालं खुरंगी। मनो बीज छिब्बी कि आभा अनंगी॥ 53॥

उड़े झार झारं पयं नाल झारी। सर्म बूंद धावै मनौं चार तारी॥
चढ़े राजहंस चूमाण्ड जोठं। मनो तेज बंधी मुनी बाई मोटं॥ 54॥

डुलै कंन नांही सिलीका सुग्रीवं। मनों जोति बंधी सुनिर्वात दीवं॥
चढ्यौ राज षीची प्रसंगं पहूपा। उड़ै बास ज्यों वास वग्गै अनूपा॥ 55॥

बंधै चौरं चिंत चमक्कंत चाहं। हरद्वार छुट्टै की गंगा प्रवाहं॥
चढ्यौ राज पट्टं अजानंत बाहं। कही कब्बिराजे उपम्माति चाहं॥ 56।

दियै बीचतारी कोई नाहि पुज्जै। बलंतहि दिष्षै सरिता अमुज्झै॥
दियौ मृग्गरांजं चढ्यो देवराजी। उड़े पंखि पाजी रही पच्छ लाजी॥ 57॥

चढ्यौ निड्डुरं राइ अंगं अभंगं। छुट्टै जाति तारान के व्योम मग्गं॥
चढ्यौ हाहूलीराइ जंबू नरिदं। बढ्यौ बांन ज्यौं तेज कम्मान चदं॥ 58॥

चढ्यौ लंगरी राव लंगा सुबीरं। किधौं वाय बढवौ बुअं जानि धीरं॥
चढ्यौ राज गोइंद आहुट्ठ राजं। किधौं वाय बुंदं स छुट्टीय साजं॥ 59॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चढ्यौ राव लष्णांषु लष्षं पंवारं। भ्रमें अंग ऐसे उपम्मा विचारं॥
किधों अग्गि दंडं ब्रजं बाल फेरैं। किधों भोर हथ्थं किधों चक्र हैरं॥ 60॥

किधों राति बोहिथ्य भ्रम भोरनारं। कही चंद कब्बी उपंमाति चारं॥
चढ्यौ चंद पुंडीर राजीव नामं। तिनं ओपमा चंद देषी विरामं॥ 61॥

जिनैं गत्ति जीती सयन्नं पगारं। चली अषि के पंष चितं बधारं॥
चढ्यौ अत्त ताई उतंगं तुरंगा। मनौ बीज की गत्ति आभा अनंगा॥ 62॥

चढ्यौ राव रामं रघुवंस बीरं। गति सूर जित्ती मृगं चंद भीरं॥
चढ्यौ दाहिमं देव नरसिंघ कैसे। मनौं चित्त की अर्थ की गत्ति जैसे॥ 63॥

वढ्यौ भोज राजं पहारं त्रिनैतं। फुटै सद्द तेजं आवाजं त्रितेत॥
चढ्यौ वीर जोद्धं कनक्कं कुमारं। चली कृत्य पूरन्न आचार पारं॥ 64॥

चढ्यौ राव पज्जून कूरंभ वीरं। बढ़ै लौह अग्गं धनं जैतपूरं॥
चढ्यो सामलौ सूर सारंग ताजी। गही होड बंधी बय वामपाजी॥ 65॥

चढ्यौ अल्हनं बीर बंधव्व पानं। चढ्यौ वान ज्यौं ग्रहंनं जुद्ध वानं।
चढ्यौ लष्षलष्षी सलष्षं बघेला। चढ्यौ नेत ज्यौ देह देषै सु हेला॥ 66॥

चढ़ै सब्बं सामंत छलबलत बीरं। मनों भान छुट्टी किरन्नी कि तीरं।
चढ्यौ बाज राजं पृथ्वीराजं राज। तबै पष्परयो बाज साकत्तिसाजं॥ 67॥

उडै सूर ज्यो हंस तुटट कमंधं। बरं ओपमा चंद जपी कविंदं॥
द्रुम ज्यों झरैं शिरं स्वामि हेतं। मयूर कलाबाज रची बंध नेतूं॥ 68॥

जगी जोगमाया सुजग्गीयं थानं। केलीनं प्रलै ज्यों प्रलीनं प्रमानं॥ 69॥

जगे बीर बीरधि डोरूं बजावैं। नचै नद्द नंदी त्रिधाइ त्रिधावै॥छं.॥ 70॥

दूह्य
आगम निगम जांनि कै। चलि वृप सुक्रंबार॥
माह वहि पंचमि दिवस। चढ़ै चलिये तुर तार॥ 71॥

छन्द त्रोटक
कवि चंद सु बंनन राज करं। सोइ त्रोटक छंद प्रमान धरं॥
जिहि च्यार परे सगना सगनं। सुभ अच्छिर लाइ तजै अगनं॥ 72॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विवहार धरै बरनं सु बरं। पढ़ि पिंगल बाहन केन हरं॥
वर चोजन चारु सुरंग इलं। तहां झौरन मौर सुरंग हुतं॥ 73॥

गज उप्पर ढाल ढलक्कि तरं। सुकहों तहां केलि अचिज्ज बरं॥
तहां पल्लव लज्जित रत्त बचं। तहां जे धन दंतिय पंति रचं॥ 74॥

झमकैं बर नंग मयूष कसी। निक्सी तहा केतक सी बिकसी॥
सु चलै बर मंद सुगंध प्रकार। बढ़ी दिसी दस्स स उज्जल मार॥ 75॥

बजै बहु रंग सु गंधन भ्रंग। बजै सहनाइ नफेरि उपंग॥
हलैं बर लत्तपवन्न झकोर। घरघ्घर होहि पिलप्पित जोर॥ 76॥

बुलैं कल कंठ सु कंठह सद्द। तहां चढ़ कब्बि बसीठ उवद्द॥
सकेस कुसंम रु अंकुसृ पानि। हने हर काम असो गज जानि॥ 77॥

अतसी बर पुप्फसु बाढहिं भृंग। बजै गज पांनि सु इंदुव रंग॥
लता ललिताह हलावन ढाल। ज्हां जम लग्गय रूपतिताल॥ 78॥

विकसित केसर कुंकुम कांम। सरोज सुरंभ अनूपम नांम॥
ज्हां मिटि ताम तरंगिनि कांम। ज्हां चलि ते निय ना तिहि ठांम॥ 79॥

ज्हां बरहा जनु उत्परि केल। किने तब ढीठ हिया छबि मेल॥
हले जनु नेजै षजूर बनन्त। ढली बनराइ सुढालह मैल॥ 80॥

तजी बर बाल सुरंग सुभेस। चल्यौ प्रथिराज सु दष्यिन देस॥
विरदैं चहु विप्र कहै कविचन्द। सही चहुआंन प्रथी पर इन्द॥ 81॥

दुहा
चढ्ढि चलिय प्रथिराज वर। देवग्गिरिधर राज॥
तब सुकन्ह बरदाय बर। पुच्छिय बिगत सुकाज॥ 82॥

कवित्त
एक लष्ष दस अग्ग। सेन सज्जै कमधज्जं॥
वीय सहज वारुन्न। सत्त हज्जार फवज्जं॥
अद्ध लष्ष पैदल्ल। अद्ध साइक्क बहंतं॥
सजि समूह चतुरंग। दिसा दच्छिन पसजंतं॥
सुनि श्रवन कुअंरि शशिवृत लिय। सुनि अवाज बर बीर घन॥
चहआंन वृत्त लीनी अध्रम। प्रान हीन कद्धन सुमन॥ 83॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दूहा

बाल प्रान कढ्ढत सुपुनि। सगुन एक मन मान।
बढि आवाज चहुआंन की। अली सुन्यौ अप कान॥ 84॥

यों सु सनियं नृप भांन नै। पुत्रि प्रलय ब्रत कीन॥
चर पिष्षिय चहुआंन पै। जद्दव मोकल दीन॥ 85॥

कवित्त

दुहूं पास नृप नयर। राग दिष्षै प्रति राजं॥
मनों हथ्थ बर नयर। राग संमुह प्रति साजं॥
कोट कठिन मेखलसुं। कोटि द्रिग पलक उघारिय॥
राज कित्ति संभरन। गोष श्रवनन संभारिय॥
किंकिन सुपाइ घुंघर सु गज। राज निसान सबद्द प्रति॥
चहुआंन राव आगम सुव्रत। कमल होय बढ्ढिय सुरति॥ 86॥

दूहा

यों करंत दुत्तिय लियौ। कथा श्रवन सुनि मंत॥
जाको तै पतिवृत्त लिय। सो आयो अलि कंत॥ 87॥

श्रवन नयन को मेल कै। भय चंचल चल चित्त॥
श्रोतानं दिष्टानं अरु। मिलि पच्छै होई मित्त॥ 88॥

चंद्रायना

कनं प्रयंत कटाछ सुरंग विराजही॥
कछु पुच्छन को जाहि पै पुच्छत लाजही॥
नैन सेंन में बात जू स्रबनन सौं कहै॥
काम किंधों प्रिथिराज भेद करि ना लहै॥ 89॥

दूहा

नैन श्रवन्नन पूछई। तुम जानो बहु मंत॥
मेरे जीय अंदेस है। कही न भै पिय जंत॥ 90॥

श्रवनन सन नैना कही। तुम जानौ चहुआंन॥
काम नृपति को रुपधरि। आवत है इन थांन॥ 91॥

ताम हंस आयो समषि। कह्यो अहो शशिवृत।
चाहुआंन आयो प्रछन। मिलन थांन हर सित्त॥ 92॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कवित्त
घेरि गांम जद्दव नरिंद। उम्भे चिहुं पासं॥
पल नंपिय रंभा सु। करन आरंभ प्रवासं॥
एक एक गुन करहि। सब्ब फूले सत पत्रं॥
तिन मध्यम शशिवृत। भई कम्मोदनि मत्रं॥
पित पुच्छि पुच्छि परिवार सब; पुच्छि वंध रज्जन सकल॥
आबृत तात अग्या सुग्रहि! भइय बाल बुध्या विकल॥ 93॥

दूह्य
बिकल बाल जहं सकल हुअ। बुद्धि विकल प्रति साज॥
भान बचन सच्चै सुकरि। जिन अर्प्पी प्रथिराज॥ 94॥

गाथा
बीरं चन्द सुव्याहं। सो व्याहं जोगनी पुरयं॥
संभरि क्रन शशिवृत्तं। अगम वीराय मंजनं तनयो॥ 95॥

पुच्छि मात पित पुच्छि। पुच्छि परिवार ग्रेह सब॥
मैं पृत्त लियौ निबद्ध। गवरि पुज्जन बाल जब॥
तिन थांनक सब देव। नीति आरंभ ब्रज लीनौ॥
तब प्रसाद उप्पनो। मोहि इच्छा व्रत कीनौ॥
तिन काल व्रत लीनौ सु मैं गवरि प्रसाद सु पुज्ज फल॥
बारंज बात तुअ मोह हुअ। कहै और अबलहि अफल॥ 96॥

दूह्य
दुष देवल को छंडनह। उर सिंचन अंकूर॥
दीह काल बल बीचि बदि। लिय समान संपूर॥ 97॥

बाला बेनी छोरि करि। छुट्टै चिहर सुभाइ॥
कनक थंभ तें ऊतरी। उग सुता दरसाइ॥ 98॥

छन्द त्रोटक
मय मंजन मंडित बाल तनं। घनसार सुगंध सुवीरि धनं॥
नव लोइन अंजित मंजि चली। कि मनो कस कुंदन षंभ हली॥ 99॥

सुभ वस्त्र सुअंग सुरंगनसी। सुहली मनु साष मदन्न कसी॥
जरि जेहारि पाइ जराइ जरी। सजि भूषन नम्भ मनो उतरी॥ 100॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सिगरी लट यों विथरी विगसै। शशि के मुख तं अहिं सें निकसै॥
रंग रत्त उबट्टन उज्जल कै। तिन में कछु सेत सुधा चलि कै॥ 101॥

नव राजिय रोम बिराज इसी। जमना पर गंग सरस्वति सी॥
परि पान सुकुंकुम मज्जन कै। नव नीरज अंजन नैननि कै॥ 102॥

कुण्डलियां
करि मज्जन सज्जन सुक्रम। अभूषन न समान॥
केहं काके कोहि दिसि। सज सषि नैन कमान॥
सजि सषि नैन कमान। केश बागुरि बिस्तारिय॥
हाव भाव कट्टाच्छ। ढुंकि षुट्टी दिय भारिय॥
बैठि नैन नृप मूल। पेम देषन गह सज्जन॥
मन मृग पिय कृत काज। ताकि बंधन किय मज्जन॥ 103॥

छन्द नाराच
सुगंध केस पासयं। सुलग्गि मुत्त छंडियं॥
अनेक पुष्प बीचि गुंथि। भासिता त्रिषंडियं॥
मनों सनाग पुष्फ जाति। तीन पंथि मंडियं॥
दुती कि नाग चंदनं दुद्ध पंडियं॥ 104॥

सिन्दूर मध्य गुच्छत। भ्रंगमदं विराजयं॥
मनो कि सूर उग्गतें। गहै सु पुंज लाजयं॥
सु तुच्छ सुच्छ पाट आट। पेम बाट सोभिय॥
मनो कि चंद राह वान। बे प्रमान लोभयं॥ 105॥

छंद नाराच
कनक्क काम कुंडिलं। हलंत तेज उम्भरै॥
ससी सहाइ मान भाइ। सज्जि सूर दो करै॥
दुती उपम्म बिंद की। किरन्न चंद दिट्ठयं॥
मनों कि सूर इंद गोदिं। अप्प आनि विट्ठयं॥ 106॥

छंद नाराच
भुवन्न बंक संक जूअ। नैन म्रग्ग जूवयं॥
अद्धता चपल्ल गति। अच्छ आनि ऊवयं॥
कटाच्छ नैन बंक संक॥ चित्त मान बंकयं॥
सुछंडि वै सुकुंचितं। श्रवन्न बान नंषयं॥ 107॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

छंद नाराच
सुगंधता अनेक भांति। चीर चारु मंडियं॥
सु केहरी कटि प्रमान। बीच बंधि छंडियं॥
सुरंग अंग कंचुकी। सुभंत गात ता जरी॥
जोट बनाइ काम पंच वान। ओट जोतलै धरी॥ 108॥

छंद नाराच
सुरंग माल लाल बलि। ता विसाल छंडयं॥
सु पुब्ब वैर जानि काम। अग्गि संभ मंडयं॥
जु भारथी सु गंग लै। सुमेर श्रृंग तें बही॥ 109॥

छंद नाराच
जराइ चौकिक स्याम पाट। रत्ति पत्ति तैं षुली॥
सुरंग तिथ्थ थान मंडि। ईस शीश तें चली॥
सुवनं छुद्रघंटिकादि। षोडशं वषानयं॥
सु मुत्तिता तमोर तन्न। सोदरं बषानयं॥ 110॥

छन्द नाराच
सुगंध गोप चिन्ह मंडि। पीत रत्त जावकं॥
अभूषणं धरंता चित्त मित्त हित्त शावकं॥
बनाइ के चौंडोल लाल। चढ़िला सु सुन्दरी॥
सुदोषिता सुरंग थान। अस्तु तास उच्चरी॥ 111॥

सजि श्रृंगार शशिवृत तन। चढि चौंडोल सरंग॥
पूजन को बर अंबिका। आई बाल सु अंग॥ 112॥

छन्द नाराच
चली अली घनं बनं। सुभंत सथ्थ संघनं॥
बिहंग भगयो पुरं। चलंत सोभ नोपुरं॥ 113॥

अलीन जुथ्थ आवरं। मनो विहंग सावरं॥
चुलंत पत्त रत्त जा। उवंत जानि अंबुजा॥ 114॥

कलिंद सीम केसयं। अनंग अंग लोभयं॥
उठत कुंभ कुच्चयं उपंम कब्बि समुच्चयं॥ 115॥

मनो अरंत बाल की। धरी सु आनि लालकी॥
सुभंत रोम राजयं। प्रपील पंति छाजयं॥ 116॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मनोज कूप नाभिका। चलंत लोभ आलिका।
सुरंभ सोम पिंडुरी। षरादि काम पिंडुरी॥ 117॥

नितंव तुंग सोभए। अनंग अंग लोभए॥
बनो कि रथ्य रंभ के। सुरंभ चक्क संभ के॥ 118॥

नषदि आदि अच्छनं। मनों कि इन्द्र द्रप्पनं॥
वरंत रत्त एडियं। उपम्म कब्बि टेरियं॥ 119॥

मनों कि रत्त रत्तजा। चिकंत पत्र अंबुजा॥ 120॥

गाथा
पढमे रष्षत बाले। लग्गा सेनाय पास चिहुं वीरं॥
धरि धीरं तन दुरयं। रोम राज रोमयं अंचं॥ 121॥

दूहा
बाल धरक्कति बचनि गति। ग्यान मोह विष पार॥
त्यों कमधज्जै देपि कै। बर चितै चहुआंन॥ 122॥

शंकर रस आचार किय। मढ़ विषिय प्रति जोइ॥
मन लग्गिय बंधत सु पय। पेन कंद्रप रस भोइ॥ 123॥

कवित्त
दहति तीन चौंडोल। मध्य चौंडोल बाल भय॥
भमर टोल झंकार। दासि बिंटिय सु पंच सय॥
सित पंच असवार। पंति मंडिय चावद्दिसि॥
अद्ध लष्ष पैदल्ल। सथ्य आयो सुअंग कसि॥
मंगल विपेक विधि उच्चरे। बंधी बंदनमार करि॥
उत्तरी बाल देवल सुढिग। लग्गि पाइ परदच्छि फिरि॥ 124॥

गाथा
जोइज्जै मन चरियं। हरियं एक कग्गयी संबदं॥
सब सेना मन कमधज्ज। विंटे वा बाल सर सायं॥ 125॥

वर जैचन्द सुबंध। प्रोहित पंग रष्षयं आइयं॥
सहचर चारु सुपडियं। हालाहल बालयं मनयं॥ 126॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दूह्य
चढ्यौ पुंज नव साज बर। अरु भर लिन्ने सथ्य।
संभु थांन पूजन मिसह। चलि बर आयो तथ्थ॥ 127॥

तब लगि दल चहआंन के। ग्रह गुपंति कर आइ।
रुक्कि सकै नन मध्य लिये। बोले संमुह धाइ॥ 128॥

कवित्त
सहस सत्त कप्परिय। भेष कीनो तिन वारं॥
गोप तेग गहिं गुपत। कपट कावरि सब भारं॥
किहुन फरस किहुं छुरी। चक्र विन हाथन माही॥
किन त्रिसूल किन डंड॥ सिंग सब सथ्थ समाही॥
सा अंग सिद्ध चाहुआंन लैं। दूतन दूत बताइ हरि॥
सा अग बाल उतकंठ करि। पैं लग्गी पन्दच्छि फिरि॥ 129॥

अरिल्ल
फिरि परदच्छि बाल अपु लग्गी॥
सुमन काम कामना सुयग्गी॥
मन मन बंधि कियौ हथ लेवं॥
सुमन मंत्र प्रारंभ सुदेवं॥ 130॥

दूह्य
उतरि बाल चौंडोल तें। प्रीत प्रात्त छुटि लाज॥
शिवहिं पूजि अस्तुति करी। मिलन करें प्रथुराज॥ 131॥

कवित्त
सह सत्त कप्परिय। भेष कीनों तिन बारं॥
कपट कंध कावरिय। धसिय देवी दरबारं॥
सर्व शस्त्र आरम्भ। हस्त आरंभ सुरी सल॥
धसिय भीर सम्मूह। जूह पाई समंडि कल॥
दलप्रबल उदधिज्यों मयनं कज। भुज सुकिस्न चहुआंन किय॥
शशिव्रत बाल रंभह। मिलिग गंठि बंधन सुहिय॥ 132॥

कवित्त
दिट्ठि दिट्ठि लग्गी समूह। उत्तकंट सु भग्गिय॥
निष लज्जानिय नयन। मथन माया रस पग्गिय॥
छल बल कल चहुआंन। बाल कुअंरप्पन भंजै॥
दोष त्रीय मिट्टयौ। उभय भारी मन रंजे॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चौहान हथ्थ वाला गहिय। सो ओपम कविचन्द कहि॥
माना कि लता कचन लहरि। मत्त वीर गजराज गहि॥ 133॥

चन्द्रायना
गहत बाल पिय पानि। सु गुर जन संभरे॥
लोचन मोचि सुरंग। सु अंसु बहे घरे॥
अपमंगल जिय जानि। सु नेंन मुष बही॥
मनों षंजन मुष मुत्ति। भरक्कत नंषही॥ 134॥

चन्द्रायना
दुह कपोल कल भेद। सुरंग ढरक्कही॥
सज्जन बाल बिसाल। सु उरज षरक्कही॥
सो ओपम कवि चन्द। चित्त में बस रही॥
मनु कनक कसौटी मंडि। भ्रग्ग मद कस रही॥ 135॥

गाथा
मृग मद कसयति चित्ते। मित्तं पुनरोपि चित्तयं बस्यं।
अजहूं कन्ह बियोग। कालिंदी कन्हयो नीरं॥ 136॥

गाथा
गहियं गह गह कंठी। वचनं संजनाइ मिट्ठयो कहियं॥
जानिज्जै सतपत्रं। बंधे सद्दाइ भवरयं गहियं॥ 137॥

गाथा
तपतं दिल में रहियं। अंग तपमाइ उप्परं होइ॥
जानिज्जै कंसु लालं। घटनो अंग एकयो सरिसौ॥ 138॥

गाथा
अपमंगल अल बाले। नेनं नषाइ नष किंसलयौ॥
जानिज्जै धन कृपनं। सपनं तरों दत्तयं धनय॥ 139॥

कवित्त
गहि शशिवृत नरिदं। सिढि लघंत ढहि थोरी॥
काम लता कल्हरी। पेम मारुत झकझौरी॥
बर लीनी करि साहि। चंपि उर पुट्ठि लगाई॥
मन सुरंग सोइ वत्त। कत लगि कान सुनई॥
नृप भयौ रुह करुना सुत्रिय। बीर भोग वर सुभर गति॥
संगपन सुहास बीभच्छरिन। भय भयान कमधज्ज दुति॥ 140॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दूह्य
बीर गत्ति संधिय सुमति। वृत अवृत न जाइ॥
धरी एक आवृत रषि। सुबर बाल अनुराइ॥ 141॥

दूह्य
बाल स बैर स बैर त्रिय। भान विरुद्ध न कीन॥
सकल सेन साधन धरी। कलहंकृत गति चीन्ह॥ 142॥

अरिल्ल
आवृंत्त वृत्त गुह निग्रह राज। देव जुद्ध देवत्तह साज॥
है गै दल सज्जै तिहि बीर। हरे बाल चहुआंन सधीर॥ 143॥

कवित्त
सबर बीर कमधज्ज। अरघ अप्पिय षग मग्गं॥
इष अच्छित उच्छरिहिं। जानि परिमाननमग्गं॥
सार धार पुंषियै। बीर मंगल उच्चारै॥
सबै साथ बंदियहि। सकल पूजा संभारै॥
बर मुक्कि बरन बरनी सुबर। इह अपुब्ब पिष्यौ सयन॥
उप्पनौ बीर सिंगार संग। रुद्र बीर चोरी सयन॥ 144॥

दूह्य
सिर सोहत बर सेहरौ। टोप और अति अंग॥
बगतर बागे केसरे। रुधि भीजत विषमंग॥ 145॥

सकट भग्ग लइ बग्ग बर। कमधज वीर विसेज॥
मिले बीर बीरत्त बर। दोऊ देवत तेज॥ 146॥

दूह्य
चाहुआंन कमधज्ज वर। मिले लौह छुटि छौह॥
धार मुरै मुष ना मुरै। मरट मुच्छ क्रत जोह॥ 147॥

दूह्य
इह कहि कढ्ढिय सार कर। षोलि षग्ग दोउ पानि॥
मानहु मत्त अनंग द्वे। धृत छुट्टै जम जांनि॥ 148॥

छन्द त्रिभंगी
मिले हथ्थ बथ्थ न सथ्थं स धारे। मनों बारुनी मत गज दत न्यारे॥
उडै लौह पत्ती परे श्रोन रुंद। मनो रुद्धि धारा बरष्षत बुंद॥ 149॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

घुमे घाय घायं अघायं अघाय। झुमै झार झारं झनक्कै झकायं॥
करै जोगनी जोग काली कराली। फिरे पेट धाये महा विक्कराली॥ 150॥

परै सूर बाहै बहत्थी कृपान। कढी तांत बाढ़ी मल चारि जान॥
धमां धम्म मत्ती महोमाहि घानों, पिंजारे सतं रूब पीजन्त मानों॥ 151॥

महादेव मालानि में गूथि मथ्थं। कहे वारबाहं बहे सूर हथ्थं॥ 152॥

मुरिल्ली
हाहर रुष कायर प्रकार। छंडीत लज्ज अरु बीर मार।
अभ्यासै सूर जिन सूर रूप। देवत भूप दिष्षै अनूप॥ 153॥

कवित्त
विषम जग्य आरम्भ। बेद प्रारंभ शस्त्र बल॥
है गै नर होमिये। शीश आहुत्ति स्वस्ति फल॥
क्रोधकुंड बिस्तरिय। कित्ति मन्डप करि मंडिय॥
गिद्धि सिद्धि बेताल। पेषि पल साकृत छंडिय॥
तुंबर सु नाग किंनर सु चर। अच्छरि अच्छ सु गावहीं॥
मिलि दान अस्स अप्पन भुगति। भुगति भुगति तत पावही॥ 154॥

दूहा
करि सुचार आचार सब। सपेर कित्ति फल दीन॥
गुरुजन निसि करुना करिय। कायरहाहर कीन॥ 155॥

दूहा
तब चहुआंन सु कन्ह वर। ठढ्डौ करि कुरुराज।
हुवभ लपति छुट्टौति इम। जानु तीतर वर बाज॥ 156॥

कवित्त
मुष छुट्टत लप बैन। नैन दिट्ठौ धावंतौ॥
क्रंम बंध वल मोह। छोह बंध्यो सुवरत्तौ॥
सुबन सेन चहुआंन। सिंग जद्दुनं नवाई॥
जनु मन्दिर विय बार। ढंकि इक बार बनाई॥
तकसरीर करन दोउ अंस वर। कित्ति मग्ग करतव्य कर॥
अथबंत रविह आदित्य दिन। अगनि सार बुद्धिय कहर॥ 157॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

गाथा
मुष छुट्ट नृप बैनं। कै दिट्ठाय धावता नैनं॥
बज्जी बाहु सुबारं। धार ढारि मत्तयौ धरयं॥ 158॥

कवित्त
भान कुंअरि शशिवृत्ति। नैन शृंगार सुराजै॥
बीर रूपं सामन्त। रुद्र प्रथिराज बिराजै॥
चन्द अदम्भुत जानि। भए कातर करुनामय॥
बीभछ अरिन समूह। सांत उप्पनौ मन भय॥
उप्पज्यौ हास अपछरि अमर। भौ भयान भावी विगति॥
कूरं भराव प्रथिराज बर। लरन लौह चिंत तरनि॥ 159॥

छद त्रिभंगी
कवि चन्द सुवरन करै सुरकरनं सूरह लरनं भर भिरनं॥
तिरभंगी छद नाग नरिदं कथ्य करिदं दुष हरनं॥
पढमइ दह मत्ता पुनि अठ मत्ता असुवसु मत्ता रस मत्ता॥
धन घाइ सधता रस सरत्ता मेगल मत्ता करि धत्ता॥ 160॥

छंद त्रिभंगी
बज्जै बर कोहं लग्गै लोहं छक्कै छोह तजि मोहं॥
सूरा तन सोहं स्वामिन दोहं मत्तौ ढोहं रिन डोहं॥
बर वांन बिछुट्टे बगतर फुट्टे पारन बुट्टे अहुट्टे घर तुट्टे॥
तरवारि तुट्टे धम्मर लुट्टे अंग अहुट्टे गहि झुट्टे॥ 161॥

छन्द त्रिभंगी
वीरा रस रज्जं सुर सगज्जं सिन्थुअ बज्जं गज गज्जं॥
अच्छरि तन मज्जं बरै बर जंजं चित्ते बज्जं मन मज्जं॥
कायर रन भज्जं तज्जि सलज्ज स्वामिसु कज्जं भर सज्जं॥
जम दड्ढ सु सज्जे हथ्थह मज्जे छिन्छन छज्जे रिन रज्जै॥ 162॥

दूहा
सुवर वीर षावास षिजि। कड्ढही बंकी असि।
सोभै सीस गयंद के। मनु तेरस को ससि॥ 163॥

कवित्त
सुबर बीर षावास। षिझ्झ बढ्ढी सु बंकि असि॥
सुभै सीस गज राज। अद्ध तेरसि कि बाल ससि॥
मुट्ठि चंपि द्रग पानि। नीर बानं सुद्धारह॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मनु मुत्तिय बारुन्न। बंदु बंधे इन बारह॥
सा मरम देन पावरि धनि। स्वामिसु अंतर फुनि मिलिय॥
जीरन युमास संदेश सदि। गल्ह एक जुग जुग चलिय॥ 164॥

कवित्त
सुबर बीर कमधज्ज। राज संमुह चरि झारिय॥
मरन षूंज षावाज। मरन अप्पन्नौ बिचारिय॥
सब सु सथ्थ पुच्छयो। तंत मंतह उच्चारिय॥
सकल मंत रजपूत। मंत मो देहु सुचारिय॥
हारिये धृमं जित्तै सुसब। ता उप्पर तन रष्षियं॥
मो संत सुनो तो हूं कहूं। दुज्जन दल बल भष्षियै॥ 165॥

गाथा
अस्तमितं बर भानु। पाया नौ परम संतोषं॥
जानिज्जै जस बंधुअं। नव चंदनं तिलकयौ दीयं॥ 166॥

चन्द्रायना
दुरि निसान गत भान भइग बर।
सिंधु संपतौ जाइ तिमिर चढ़ै गुर॥
कुमुद विमुद अंकूर सुरातन धरियं।
मानो तम को तेज सु तत्तउ धरिय॥ 167॥

मुरिल्ल
बर भान संपतौ थांन गुरं। नरसीरुह उद्दित मुदित वरं॥
बर बीर कमोदनि की सुगती। भए रिसिराज उदोतपती॥ 168॥

दूहा
निसि गत बंछे भान बर। भंवर चक्कि अरु सूर॥
मंतह मत्त पयान गति। गर भारथ्थ अंकूर॥ 169॥

कवित्त
कुमुद उघरि मूंदिय। सु बंधि सतपत्र प्रकारय॥
चकिय चक्क बिच्छुरहि। चक्कि शशिवृत्त निहारय॥
जुवती जन चढ़ि कांम। जांहि कोतर तर पंषी॥
अवृत वृत सुंदरिय। काम बढ्ढिय बर अंषी॥
नव नित्त हंस हंसहि मिलै। बिमल चन्द उग्यौ सुनभ॥
सामंत सूर नृप रष्षि कै। करहि बीर बीश्राम सभ॥ 170॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अरिल्ल

तत्त सार प्रति प्रतिपमानं। जाहु राज दिलली चहुआंन॥
गुत बद्धै हम बद्धै सस्त्रं। दुष्ष मानि सुनि सुनिय विरत्तं॥ 171॥

कवित्त

दुष मानि सो रत्त। सुनै सामंत सूर वर॥
चंद उड्गन काम। सर्यो कहूं दिष्षि सूर नर॥
भान काम मन सरै। अरुन जो होइ तेज बर॥
काम राम नन सरै। हनू उद्योत लंकछर॥
नन सरै काम मंगल सुविधि। जो मंगल आकृत तप॥
सामंत सूर इम उच्चरै। कद्धि मोहि झुज्झहुति अप॥ 172॥

दूह्य

मुहि कद्धिरु तुम रहो बर। जियत जांहि उन थान॥
ऐसी रीति अरीत पर। पद्धी नह चहुआंन॥ 173॥

गाथा

अंकुर वीर सुभट्टं। अघटं घट्टाइ क्रौधयौ कलहं।
हय मुक्या चलि बंधी। निद्धुर सथ्थव सठ्यो वीरं॥ 174॥

दूह्य

बीर बीर बीराधि बर। कढै लौह तजि छोह॥
सूर धीर सामंत गति। नहिं माया न हिं मोह॥ 175॥

रसवाल

जिते सूर थत्तौ। लगे लौह तत्तौ॥
नचे सूर छत्तौ। उठे काल तत्तौ॥ 176॥

जुटे जोध पत्ती। उडी रेन गत्ती॥
सहा बै न तत्ती। कला कोटि छत्ती॥ 177॥

ग्रवै ग्राम गत्ती। सुरं पंच छत्ती।
मचै कुह मत्ती। षचे रोम रत्ती॥ 178॥

करै घाव कत्ती। इसे सूर चित्ती।
शिए फल्ल सत्ती। घुमें घाइ घत्ती॥ 179॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भजे भीम भत्ती। हनुमान जत्ती।
अनाभूत अत्ती। दिषै दारु दत्ती॥ 180॥

रुधिं धार रुक्कं। भभक्कै भभक्कं॥
धका धीग धक्कं। बकै मार बक्कं॥ 181॥

इसै चित्त अक्कं। छुटै मत छक्कं॥
डकारंत डक्कं। त्रिलीकंत हक्कं॥ 182॥

मनो मोह थक्कं। हको हक्क बक्कं॥ 183॥

कवित्त
हको हक्कि बंजिय प्रकार। सार बज्जै सु बीर बर॥
सु बुधि बुद्ध आबुद्ध। मत्त लग्गै सु असि बर झर॥
इकत रुद्ध आरुद्ध। नद्द नारद अधिकारिय॥
रंभ सिंभ आरम्भ। सिद्ध बुद्धं दे तारिय॥
धनि धन्नि सूर दिन धनित बल। छल छत्रिय अंकूर रजि॥
कलहंत काल कालह विषम। सुबर बीर बीरत्त रजि॥ 184॥

दूह्य
स्वामि काज लग्गे सुमति। षंड षंड घर धार॥
हार हार मंडै हिंयै। गुथ्थि हार हर हार॥ 185॥

कवित्त
घटिय पंच दिन घट्यो। उमरि आरब्ब पुंज षिरि॥
एक दिना सोउ सेन। मोह डछ्थौ क्रम निक्करि॥
बार गंग पत्तयौ। बीर ग्यारसि दिन सोमं॥
सूर धीर सामंत। सूर उड्डै रन रोमं॥
क्रम काम काज सांई विभ्रम। दल दंतिय पंतिय गमै॥
सामंत सूर सांई विभ्रम। रोम रोम राजी भ्रमै॥ 186॥

दूह्य
रोम राजा राजी भ्रमहि। थोर थनी ढुंढि बाल॥
उतकंठा उतकंठ की। ते पुज्जो प्रतिपाल॥ 187॥

गाथा
आरंभ प्रारंभी। उ कंठा किनयौ वृतयं॥
साधा धरी सुधरयं। नन छुट्टै तीनयौं पनयं॥ 188॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दूह्य
नह चल्लै पृथ्वीराज रिन। लज्ज लपट्टिय पाइ॥
त्रिय जोरैं कर हथ्थ दो। चलि संभरिवै राइ॥ 189॥

दूह्य
तूं वै एकह पन रहै। रंग कसुंभ प्रमान।
हों नन छडों पास तुम। तीनों पनह समान॥ 190॥

दूह्य
तूं लज्जी मो सथ्य है। दान षग्ग अरु रूप॥
मों चल्लै तीनों चलैं। संची चवै न भूप॥ 191॥

दूह्य
परै सुमर दोऊन दल। निद्धर देष्यो बंध॥
कौन भुजा बल जुध करै। सुनि कमधज्ज अमुंद्ध॥ 192॥

दूह्य
बाला लै प्रथिराज मय। गहिय बग्ग कमधज्ज॥
रोस रीस विरसोज भय। रह बाजे अनवज्ज॥ 193॥

कवित्त
अद्ध कोस नृप अग्ग। वीर उद्धौ करि ठद्धौ॥
मद समूह गजराज। छंडि पट्टे बल गद्धौ॥
लाज बंधि संकरिय। बीर बंध्यो सु अष्ट कसि॥
अरिन बौर खंडे न। क्रन्न मंडै दिल्ली दिसि॥
मनमत्थ महावत बंधि अति। मन मत्तौ उन को धरै॥
घन घाइ रुधिर छुट्टै परे। अमर पुहप पूजा करै॥ 194॥

कवित्त
षूब राज प्रथिराज। पूब जैचंद बंध बर॥
षूब सूर सामंत। षूब नृपु सेना पंग बर॥
षूब सेन ढंढोरि। षूब झोरी करि डारिय॥
षूब षेत विधि गाम। बान गंगा पथ झारिय॥
आसरे आस छडिय नृपति। विपति संपति जानी भरय॥
सुठिहार राज प्रथिराज को। धरै सबइ चौंडोल घर॥ 195॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दूह्य
चाहुआंन चतुरंग जिति। निगम बोध रहि राज॥
बर शशिवृत जित्तिगौ। धाम सु ढिल्ली साज॥ 196॥

दूह्य
सारिन चालै पंस बर। सारि पंस बर भोग॥
सुबर सूर सामन्त लै। करि ढिल्ली प्रतिजोग॥ 197॥

दूह्य
जै जै जस लद्धौ सुबर। बैर नृपति सुरतान॥
सुबर बैर बर बड्ढयौ। सुबर जित्त चहुआंन॥ 198॥

अरिल्ल
भई जीति चहुआंन। अरिज भजे अभंग भर॥
जै जै सुर वषान। देव नंषैं सुमन्न वर॥
लै शशिवृता राज। अप्प दिल्ली संपन्नौ॥
अरि अवनि कोन मंडै मनहु। षग्ग दाग अरि षंडइय॥
कवि चंद दंत दारुन कयहि। इक अडंड कारि डंडइय॥ 199॥

2.9 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप जान चुके होंगे रासो शब्द की व्युत्पति कैसे हुई। किस प्रकार से रास शब्द से रासक बना एवं रासक से 'रासो'। रासो काव्य हिन्दी के प्राचीनतम काव्य हैं। पृथ्वीराज के समय के सामन्त युग के बारे में आपने जानकारी प्राप्त की। शशिवृत्ता कौन थी उसके बारे में आपने जाना। आपने पढ़कर यह भी जानकारी प्राप्त की कि पृथ्वीराज रासो कितना रोमांचक आख्यान है। यह औदात्य एवं संघर्ष का महाकाव्य है।

2.10 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

1. रासो शब्द की व्युत्पति तथा पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता के संबंध में विभिन्न विद्वानों के विचार प्रस्तुत करते हुए आप अपना मत बताइये।
2. पृथ्वीराज रासो सामन्त युग का प्रतिनिधि महाकाव्य है। इस कथन की समीक्षा कीजिए।
3. पृथ्वीराज रासो में कथानक रूढ़ियों का उपयोग कवि के काव्य कौशल का परिचायक है। इस कथन पर विचार कीजिए।
4. पृथ्वीराज रासो इतिहास-ग्रन्थ न होकर काव्य-ग्रन्थ हैं। इस कथन के आलोक में पृथ्वीराज रासो के काव्य-सौष्ठव की समीक्षा कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग–2 : पूर्व एवं उत्तर गध्यकालीन काव्य

इकाई–3

मध्यकालीन काव्य : पूर्वमध्यकाल (भक्तिकाल)

संरचना

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 भक्ति आन्दोलन के उदय के कारण
3.3 भक्तिकाल की परिस्थितियां
  3.3.1 राजनीतिक परिस्थितियां
  3.3.2 धार्मिक परिस्थितियां
  3.3.3 साहित्यिक परिस्थितियां
  3.3.4 सांस्कृतिक परिस्थितियां
3.4 भक्तिकाल का स्वरूप
3.5 भक्तिकाल का वर्गीकरण
3.6 निर्गुण भक्ति (ज्ञानमार्गी) स्वरूप एवं विशेषताएं
  3.6.1 निर्गुणकाव्य (ज्ञानमार्गी) की विशेषताएं
  3.6.2 प्रमुख कवि
3.7 निर्गुण भक्ति (प्रेममार्गी) स्वरूप एवं विशेषताएं
  3.7.1 सूफीकाव्य
  3.7.2 सूफीमत
  3.7.3 सूफी साधना का स्वरूप
  3.7.4 सूफीकाव्य की विशेषताएं
3.8 सगुण भक्ति (राम भक्ति) स्वरूप एवं विशेषताएं
  3.8.1 रामभक्ति काव्यधारा का स्वरूप
  3.8.2 रामभक्तिकाव्य की विशेषताएं
  3.8.3 प्रमुख कवि
3.9 सगुण भक्ति (कृष्ण भक्ति) स्वरूप एवं विशेषताएं
  3.9.1 स्वरूप
  3.9.2 कृष्णभक्ति का विकास
  3.9.3 वल्लभ संप्रदाय के कृष्णभक्त कवि
  3.9.4 अष्टछाप का स्वरूप
  3.9.5 अष्टछाप के कवि और उनकी सामान्य विशेषताएं
  3.9.6 अष्टछाप के कवियों का महत्व
  3.9.7 कृष्णभक्ति के प्रमुख कवि एवं संप्रदाय
3.10 सारांश
3.11 उपयोगी पुस्तकें
3.12 महत्त्वपूर्ण प्रश्न
  निबंधात्मक / आलोचनात्मक प्रश्न / लघूत्तरीय प्रश्न / अतिलघूत्तरीय प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.0 प्रस्तावना

हिंदी–साहित्य के इतिहास का काल विभाजन करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आदिकाल के परवर्तीकाल खंड को पूर्वमध्यकाल अथवा भक्तिकाल के नाम से अभिहित किया है। भक्तिकाल की समय सीमा को उन्होंने संवत् 1375 से 1700 स्वीकार किया है। हिंदी साहित्य के इतिहास की यह समयावधि ऐतिहासिक दृष्टि से वरन् ही नहीं, हिंदी कविता के विकास की दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय है। हिंदी कविता का जैसा उत्कर्ष भक्तिकाल में दिखाई देता है, वैसा अन्य किसी काल में नहीं। यही कारण है कि भक्तिकाल को 'हिंदी कविता का स्वर्णयुग' के नाम से जाना जाता है। भक्ति की व्यापक प्रवृत्ति के कारण ही इस युग का नामकरण 'भक्तिकाल' के रूप में किया गया। भक्ति इस काल की राष्ट्रीय प्रवृत्ति बन गई थी।

हिंदी साहित्य के आदिकालीन परिवेश को बहुत उथल–पुथल का काल कहा जा सकता है। सामाजिक वातावरण में एक अशांति का माहौल था। निरंतर युद्ध, लड़ाई, झगड़े, पराजय, फूट, संघर्ष और कलह के कारण तत्कालीन समाज की अस्थिरता का अनुमान सहजता से लगाया जा सकता है। युद्ध करनेवालों की शक्ति का ह्रास हो जाने के उपरांत वे परिस्थितियों के अनुकूल स्वयं को समायोजित करने का प्रयास करने लगे। लोग भी परिस्थितियों के अनुसार जीवनयापन करना ही श्रेयस्कर समझने लगे। समाज में अनवरत युद्ध एवं संघर्ष के वातावरण में काव्य रचना के क्षेत्र में वीरगाथात्मक काव्य का प्रणयन सवाभाविक था। दूसरी ओर युद्ध समाप्ति पर हार के उपरांत शांतिकाल में पराजित मनोवृत्ति स्वाभाविक रूप से किसी ऐसे काव्य प्रणयन की ओर उन्मुख हुई, जिसमें मन को शांत एवं चित्तवृत्तियों की नियोजित करने की शक्ति हो। समाज में आपसी मतभेद भुलाकर सामंजस्य और सहयोग के साथ रहने की आकांक्षा के बलवती होने से इस तरह का वातावरण निर्मित होने लगा कि लोग एक दूसरे के निकट आने को आतुर हो गए। हिन्दू–मुसलमान दोनों में विरोध को छोड़कर एक–दूसरे के साथ मिलने की प्रवृत्ति पनपने लगी थी।

इसके अतिरिक्त एक प्रवृत्ति और भी रही। कुछ लोग अपना धार्मिक व्यक्तित्व अलग रखना चाहते थे। ये लोग मुसलमानों के विरोधी नहीं थे। वे सारे संसार को 'सियाराम मय' जानकार 'जोरि जुग पानी'' प्रणाम करने को तैयार थे, किन्तु वे ऐक्य की वेदी पर अपने इष्टदेवों के प्रति अपनी अन्य भावना का बलिदान नहीं करना चाहते थे। भक्ति के द्वारा मृतपाय हिन्दू जाति में एक नवीन जीवन का संचार करना उनका अभीष्ट था। देश में चारोंओर सगुण भक्ति का आन्दोलन चल रहा था, उससे उनकी हृदयतंत्री झंकृत हो उठी। जो उपदेश श्री रामनुजाचार्य, वल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, तुकाराम आदि सन्तों और महात्माओं ने जनता को दिये थे, वे अब सूर और तुलसी की काव्यमयी धारा में एक नवीन रूप में अवतरित हुए।

इसका यह अभिप्राय न समझा जाए कि हिंदी का भक्तिकाल मुसलमानों से प्रभावित है। हमारे कवियों ने सामग्री तो अपने घर से ही ली– हाँ, उनको कुछ उत्तेजना मुसलमानों से अवश्य मिली। उस समय की परिस्थितियों में मुसलमानों के अस्तित्व की अवहेलना नहीं की जा सकती थी।

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि हार की मनोवृत्ति में मनुष्य उन बातों में प्रवृत्त होता है जिनमें उसकी श्रेष्ठता अक्षुण्ण बनी हुई रहती है। एक ओर श्रेष्ठता दूसरी ओर की गिरावट की क्षति–पूर्ति कर देती है। ऐसी परिस्थिति में दूसरी प्रवृत्ति यह होती है कि विजेताओं के हास विलास में शामिल होकर उनके सान्निध्य में एक प्रकार की समता का अनुभव कर खोये हुए स्वाभिमान को भूल जायें, अथवा स्वतत्र रूप से हास–विलास की मादकता में अपने पराजयजन्य दुःख को विलीन कर दें।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य मध्यकालीन काव्य के पूर्वमध्यकाल (भक्तिकाल) की पृष्ठभूमि से परिचित करवाना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप –

- हिंदी साहित्य का इतिहास के अन्तर्गत भक्तिकाल का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- भक्तिकाल के उदय की परिस्थितियों तथा उसके स्वरूप से भलीभांति परिचित हो सकेंगे।
- भक्तिकाल की प्रमुख विशेषताओं से परिचय प्राप्त सकेंगे।
- भक्तिकाल के प्रमुख कवियों के विषय में जान सकेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3.2 भक्ति आन्दोलन के उदय के कारण

भक्तिकाल के उदय की पृष्ठभूमि में सर्वप्रथम शंकराचार्य का आरंभ बौद्धधर्म के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया के रूप में सामने आता है। शंकराचार्य दक्षिण के बहुत प्रभावी और मेधावी आचार्य थे, जिनमें अपूर्व नेतृत्व की क्षमता थी। शंकराचार्य से पूर्व महर्षी बादरायण ने 300 ई0 में वेदांतसूत्र की रचना की थी, जो अपनी तरह का अपूर्व और विशिष्ट ग्रंथ है। इसी 'वेदांतसूत्र' की शंकराचार्य ने 'ब्रह्मसूत्र' नाम से 8वीं शताब्दी में व्याख्या प्रस्तुत की, जो वेदांत का 'शांकरभाष्य' कहलाता है। बादरायण के 'वेदांतसूत्र' की यह पहली व्याखा है, जो शंकराचार्य ने प्रस्तुत की है। इसी आधार पर शंकराचार्य ने प्रसिद्ध अद्वैतमत की स्थापना की और घोषणा की–

अथातो ब्रह्म जिज्ञासा / सर्व खल्विदं ब्रहम् / ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या / अहं ब्रह्मास्मि

भारतीय साहित्य में भक्ति की आधारशिला यही से रखी जाती है।

भारत में भक्ति आंदोलन को लेकर तीन मत स्वीकृत हुए

1. जॉज ग्रिअर्सन का विदेशी मत
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का देशीय मत
3. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का लोकमत या जनमत।

अब्राहम जॉर्ज ग्रिअर्सन के अनुसार : ''भारत का भक्ति आंदोलन इसाई संतों के भारत में आने एवं उनके प्रभाव के कारण हुआ, साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि कृष्ण का बालरूप, क्राइस्ट के बालरूप से प्रभावित है।'' **आचार्य राचन्द्रशुक्ल के अनुसारः** ''भक्ति आंदोलन निराश, हताश एवं पराहित हिंदू मानसिकता की परिणति है।'' **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसारः** ''इस्लाम के आने से भक्ति आंदोलन का कुछ भी लेनादेना नहीं है, वह तो भारतीय जनमानस की स्वाभाविक उद्‌भूति था।''

इस्लाम ने यहां कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था को छिन्न–भिन्न करने का प्रयास किया, इस प्रकार इस्लामिक आक्रमण के कारण भारतीय जनमानस में निराशा एवं हताश का होना स्वाभाविक है। भक्ति आंदोलन की शुरुआत दक्षिण से हुई, वैसे तो दक्षिण निरापद (शांत) था, लेकिन सामाजिक असंतोष और असंतुलन ने एक आंदोलन का रूप ले लिया। सामाजिक विद्रोह करनेवाले संतों में सबसे पहला नाम आलवार संतों का है। आलवार संतों का विद्रोह केरल में हुआ, वहां की सामाजिक परिस्थितियों में वर्ण व्यवस्था के अनुरूप सवर्ण जातियों के विरुद्ध आलवार संतो ने खुले रूप से विद्रोह किया। भक्ति आंदोलन की चिंगारी सबसे पहले यही से फूटी थी। आलवार संत प्रायः निम्न जातियों से संबंध रखते थे, जिन्हें शुद्र कहा जाता था, इनमें नग्न और सठकोपि जातियों से उनका संबंध था। 5 वी और 6वी शताब्दी में आरंभ हुआ यह आंदोलन धीरे–धीरे फैलकर अखिल भारतीय स्वरूप ग्रहण कर गया। आलवार संतों की संख्या 12 मानी जाती है, जिनमें अंडाला और गोदा नाम की दो महिला आलवार संत भी थीं।

आलवार संतों के बाद दूसरा नाम शंकराचार्य का है, जिन्होंने बौद्ध धर्म के विरुद्ध खडे होकर हिन्दू धर्म को नए रूप में व्यवस्थित और सुगठित करने का प्रयास किया, इसके लिए उन्होंने 'स्मार्तसंप्रदाय' की स्थापना की। शंकराचार्य ने अपने दार्शनिक मत प्रतिपादन के क्रम में 'अद्वैतवाद' का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। शंकराचार्य का बहुत व्यापक प्रभाव तत्कालीन भारतीय समाज पर पड़ा। शंकराचार्य के उपरांत विख्यात संत रामानुजाचार्य ने वैष्णव मत का प्रतिपादन करते हुए वैष्णवधर्म को पुनर्स्थापित किया। रामानुजाचार्य की परंपरा को मध्वाचार्य और निम्बार्काचार्य ने आगे बढ़ाया। निंबार्काचार्य का संबंध गुजरात से था। रामानुजाचार्य द्वारा स्थापित वैष्णव भक्ति को रामानंद ने दक्षिण से उत्तर में लाकर फैला दिया। आचार्य रामानंद उस समय के प्रसिद्ध संत राघवानंद के शिष्य थे। जिस तरह से राममक्ति की गंगा को प्रभावित करने का श्रेय रामानंद जी को है, वैसे ही कृष्णभक्ति की यमुना को प्रभावित करने का श्रेय वल्लभाचार्य को है। ईश्वर की निर्गुण भक्ति को आरंभ करने का श्रेय महाराष्ट्र के प्रख्यात संत नामदेव को है, नामदेव के गुरू ज्ञानदेव जी थी। नामदेव संतमत को स्थापित करनेवाले संत हैं। संतमत एवं निर्गुण संप्रदाय का प्रवर्तन एवं उसे प्रचारित, प्रसारित करनेवाले कबीरदास हैं। भक्ति स्थापना के क्रम में निर्गुण और सगुण नाम से दो प्रमुख संप्रदाय अस्तित्व में आए जिन्हें निर्गुण और सगुण नहीं, निराकार एवं साकार रूप में समझना चाहिए। हिंदी में निर्गुण भक्ति को आरंभ करनेवाले आचार्य नामदेव हैं और इसके सबसे बड़े संत कबीर हं। हिन्दी में सगुण भक्ति (वैष्णव भक्ति का अंश) को आरंभ करनेवाले रामानुजाचार्य हैं, इसके प्रचारक आचार्य रामनंद हैं तथा इसके सबसे बड़े संत तुलसीदास हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रामभक्ति, जिसे वैष्णव मत कहते हैं, के सबसे बड़े संत तुलसीदास है। रामभक्ति का मूलआधार वैष्णव मत है, जो मूल रूप से भागवत (श्रीमद्भागवत) धर्म का अश है। हिन्दु धर्म जिसे वैष्णव धर्म या सनातन धर्म भी कहते है, इसकी स्थापना में वेद पुराण और उपनिषदों का सबसे बड़ा महत्तपूर्ण योगदान है जो हिंदुधर्म और आस्था के आधार हैं। इन आधार ग्रंथों को 'प्रस्थानत्रयी' की संज्ञा दी गई है। इस प्रस्थानत्रयी में भागवत का नाम बाद में जुड़ा जिसके बाद भागवत को सम्मिलत करते हुए इसे 'प्रस्थानचतुष्टय' की संज्ञा दी गई, इस प्रकार 'प्रस्थानचतुष्टय' के अंतर्गत वेद, पुराण, उपनिषद और 'भागवत' के नाम सम्मिलित हैं। यह प्रस्थानत्रयी और प्रस्थानचतुष्टय भारतीय आस्था, संस्कृति और धर्म की नींव हैं।

3.3 भक्तिकाल की परिस्थितियां

भक्तिकाल की विभिन्न परिस्थितियां निम्नवत हैं–

3.3.1 राजनीतिक परिस्थितियां

केन्द्र गें हिन्दू शासन की लगगग सगाप्ति के साथ ही हिंदी के आदिकाल की सगाप्ति हुई। गारतीय इतिहास का वह युग था जहाँ पहुँचकर भारतीय पौरुष कुण्ठित हो गया था और उसने अपनी दुर्बलता के कारण विवश हो आक्रमणकारी मुसलमान शासकों को देश में बस जाने दिया। देश के सम्मुख बहुत दिनों बाद यह एक विचित्र स्थिति उत्पन्न हुई थी। मुसलमान आक्रमणकारियों के आक्रमण काल में परस्पर लड़नेवाले हिन्दू राजाओं ने यह कभी नहीं सोचा था कि मुसलमान यहाँ आकर शासन करंगे और देश पराधीन हो जाएगा। उनका विचार था कि ये धनलोलुप यवन लूटमार करके चले जायेंगे, पर जब उन लोगों ने हांथ–पाँव फैलाना आरंभ कर दिया तो लोगों की आँखें खुलीं, जबकि समय हाथ से निकल चुका था। परस्पर की लड़ाइयाँ और निरन्तर पड़नेवाले आक्रमणों की मार से देश जर्जर हो गया था, जिससे रक्षा कर पाने में देशी शासक पूर्ण असमर्थ सिद्ध हो चुके थे। राजा को ईश्वर या ईश्वरीय माननेवाली आस्थावान हिन्दू जनता विचलित हो गई थी और कुछ काल के लिए वह सर्वत्र शून्यता का अनुभव करने लग गई थी। जिन–जिन तत्वों से वह गौरव, गर्व और उत्साह का अनुभव करती थी, उनकी निस्सारता उसके सामने ही प्रमाणित हो रही थी। छोटे–छोटे स्वतंत्र राज्यों का अस्तित्व भी समाप्त हो चला था। कुछ तो परस्पर की लड़ाइयों में ही टूट गये और जो बच रहे वे भी मुसलमानी शासन के स्थापित हो जाने के कारण हतप्रभ होकर विलीन हो गये। ऐसी स्थिति में न तो देशी दरबार रहे और न तो उनमें खड़े होकर वीरता के गीत गानेवाले वीर रस के कवि। स्थिति भी ऐसी आ गई थी कि वीर गीतों को प्रेरणा प्रदान करने की संभावित परिस्थितियां भी नहीं रह गई थीं और यदि वे लिखे जाते तो बिना लज्जित हुए उन्हें सुननेवाला भी कोई शेष नहीं था।

यह साहित्यिक दृष्टि से अकाल और राजनीतिक दृष्टि से चिन्ता का काल था। मौर्य साम्राज्य के पतन और गुप्त साम्राज्य के उदय के बीच जैसी स्थिति संस्कृत साहित्य की हुई थी ठीक वैसी ही स्थिति हिंदी की हिन्दू साम्राज्य के छिन्न–भिन्न हो जाने पर हुई। जिस प्रकार गुप्त काल के शासकों ने देश की श्रीवृद्धि कर साहित्य और कला को नवजीवन प्रदान किया उसी प्रकार हिन्दी के मध्यकालीन सामन्तों की कला–प्रियता ने साहित्यकारों और कलाकारों को नवीन उत्साह और प्रेरणा प्रदान की। अन्तर केवल देशी और विदेशी का था। भारतीय इतिहास के मध्यकाल के सामन्त हिन्दू थे जिससे उनके द्वारा जिस संस्कृति और सभ्यता का विकास हुआ, वह पूर्णतः भारतीय थी, किन्तु हिन्दी के मध्यकाल के प्रमुख सामन्त, मुसलमान अथवा उनसे संरक्षित थे, जिससे इस काल में जिस कला एवं संस्कृति को प्रोत्साहन मिला उसमें विदेशी मेल है।

बहुत से विदेशी आक्रामणकर्ता तो ऐसे रहे जो भारत में केवल धन लूटने आये थे, राज्य करने नहीं, किन्तु गुलाम और खिलजी वंश के लोगों ने शासन भी किया। गुलाम और खिलजी वंश का भारतभूमि पर शासन (सन् 1200–1412 ई0) लगभग दो सौ वर्षो तक रहा। इतने समय में देशी राजाओं की स्थिति बहुत कुछ बिगड़ चुकी थी। वे बिल्कुल निःशक्त हो गए हों ऐसी बात नहीं थी, किन्तु उनकी सुदृढ़ता पूर्ववत् नहीं रह पायी थी। आपसी फूट का महान् रोग उनकी शक्ति के मूल में लग गया था और सम्राट पृथ्वीराज की पराजय से भी वे होश में नहीं आ सके थे। ऐसी ही परिस्थिति से चतुर सेनानी बाबर ने लाभ उठाकर भारत की स्वाधीनता को दीर्घ काल तक के लिए हथिया लिया। जिस समय बाबर ने भारत पर आक्रमण किया उस समय भी यहां राणासांगा ऐसे वीर मौजूद थे जो प्रत्यक्ष युद्ध में अनेक बार बाबर को पराजित कर सकते थे। पर वे करते कैसे? उन लोगों के ही आमन्त्रण पर तो बाबर आया था और वे भी बेचारे क्या जानते थे कि बाबर आकर फिर जाने का नाम नहीं लेगा। उन लोगों ने तो उसे दिल्ली की मुस्लिम सल्तनत को उखाड़ फेंकने के लिए बुलाया था और सोचा था कि अन्य आक्रमणकारियों की भांति वह भी

Jan Vishwa Bharati Institute (Deemed University) Ladhun

हीरे–जवाहिरात लूटकर अपने देश चला जाएगा। बाबर का स्वप्न और उसके जीवन की कल्पना भारत देश, जिसके लिए वह कब से आशा लगाए बैठा था, उसे पाकर क्या वह छोड़ देता? उसने दिल्ली सुल्तान को पानीपत के मैदान में पराजित किया और अपने पथ के एकमात्र बाधक राणासांगा को फतेहपुर सीकरी के मैदान में सन् 1527 ई0 में। तब जाकर राजपूतों की आंखे खुलीं। समय हाथ से निकल चुका था, क्योंकि राजपूतों का सूर्य राणासांगा ढल चुका था, पराजित हो चुका था।

भारत में मुगल साम्राज्य की नींव उस दिन पड़ी जब शेरशाह द्वारा हारकार भागा हुआ हूमायूँ पुनः भारत लौटा। शेरशाह बड़ा ही योग्य शासक था किन्तु वह अपनी सारी शक्ति राजनीतिक व्यवस्था एवं भूमि सुधार आदि जनहित कार्यों में खर्च करता था और आकस्मिक मृत्यु हो जाने के काण उसे समय भी बहुत कम मिला जिससे उसके शासन काल में साहित्य, कला एवं संस्कृति की कोई विशेष उन्नति नहीं हो सकी। भारतीय साहित्य एवं कला का नवीन प्रभात उसी दिन हुआ जिस दिन दिल्ली के तख्त पर सम्राट अकबर आसीन हुआ। उसने अपने पचास वर्षों के शासन–काल में मुगल साम्राज्य की नींव इतनी सुदृढ़ कर दी कि आगे दो सौ वर्षों तक मुगल सम्राटों ने जमकर सुख भोगा। सम्राट अकबर के शासनारूढ़ होने के पूर्व राजनीतिक जीवन में अस्थिरता थी।

3.3.2 धार्मिक परिस्थितियां

विषम राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव धार्मिक जनजीवन पर भी पड़ा। अनास्था के जिस भाव का संचार भारतीय जीवन में हुआ, उसने अपना प्रभाव धार्मिक भावनाओं के क्षेत्र पर भी डाला। भारत की हिन्दू जनता धर्म से दूर हटने लगी थी और उसकी धार्मिक भावना दबने लगी थी। इस देश की मिट्टी ही ऐसी है कि कभी भी भक्ति की धारा बिल्कुल सूख नहीं पाई पर उसके प्रवाह में मंथरता अवश्य आ गई। महाभारत काल से जिस भक्ति का सूत्रपात होकर पुराण काल तक विकसित होता गया, उसकी भावात्मक अनुभूति में पूर्व का सा वेग तो नहीं रह पाया था पर उसकी क्षीण धारा का प्रभाव बिल्कुल खण्डित नहीं हुआ था। वह बर्फानी सरिता की भांति कहीं लक्षित और कहीं लक्षित होकर बहती भर जा रही थी। भारतीय जनता ने देख लिया था कि उसके स्वत्व की रक्षा न तो उसके धर्म कर सके और न तो स्वयं के उसके पुरुषार्थ। ऐसी स्थिति में पूर्व से ही चले आते वज्रयानी सिद्ध और कापालिक जिनका प्रभाव देश के पूरबी भाग में था और नाथपंथी योगी जिनका विस्तार पश्चिमी भागों की ओर था, अपना प्रभाव डालने लगे। फलतः इन सिद्धों और योगियों के प्रभाव के कारण जनता की दृष्टि आत्मकल्याण और लोककल्याण की ओर से हटी ही, साथ ही वह कर्मपथ से भी विरत होने लगी। नवीन परिस्थिति के मूल में केवल मुसलमानी शासक ही है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। जैसा कि कुछ विद्वानों का कहना है कि जब मुसलमानों ने हिन्दुओं पर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया तो वे कण्ठीमाला जपने लगे, बात ऐसी नहीं है। मुसलमानी अत्याचारों का प्रभाव तो पड़ा, इससे इन्कार नहीं किया जात सकता, पर भक्तिभावना के विकास की भूमिका देश में पूर्व से ही बनने लगी थी। यदि यही मूल कारण होता तो भक्ति का आरम्भ सबसे पहले उत्तर और पश्चिम में होता, जहां मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं के मंदिर तोड़े जा रहे थे, जबकि इसका आरम्भ दक्षिण में हुआ। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि इस समय ऐसे विशाल एवं व्यापक धार्मिक आन्दोलन का उदय हुआ कि जो बौद्ध धर्म के आन्दोलन से भी अधिक व्यापक था। यह धार्मिक आन्दोलन ऐसा नहीं था जो कि किसी एक अंचल विशेष या प्रान्त विशेष तक ही सीमित रहता, बल्कि ऐसा था कि इसकी चपेट में देश का अधिकांश भाग आ गया। इसके लिए सुदृढ़ मुस्लिम शासन ने भी अनुकूल भूमिका प्रस्तुत की। जब तक देश में स्वशासन था, देश अनेक राज्यों में विभक्त हो पारस्परिक लड़ाइयों का केन्द्र बना हुआ था, जिससे देश के स्तर पर एकता की भावना का उदय ही नहीं हो पा रहा था। पराधीन हो जाने के कारण जो नवीन समस्याएं उत्पन्न हुई वे थोड़े बहुत अन्तर के साथ सबके लिए समान थीं। विदेशी सबके शत्रु थे और उनके कारण सभी अपने को अपमानित अनुभव करने लगे थे जिससे परस्पर एकता की भावना का उदय हुआ। इस परिस्थिति में जो धार्मिक आन्दोलन चल पड़ा था, उसका प्रभाव देशी स्तर पर दिखाई पड़ा।

धार्मिक आन्दोलन के आरम्भ का श्रेय जिस दक्षिण को है वह जटिल जाति व्यवस्था के रोग से अत्यन्त ग्रस्त था, फिर भी एक मध्यम मार्ग निकला पर धार्मिक आन्दोलन को आगे बढ़ाने का श्रेय वैष्णव आचार्य श्री रामानुजाचार्य को दिया जा सकता है। आरम्भ में छुआछूत की भावना की उपेक्षा करके साधारण जनता को एक धार्मिक मंच पर इकट्ठा किया गया और कुछ काल बाद आचार्यों ने उसी सर्वसाधारण में प्रचलित धर्म को शास्त्रीय रूप प्रदान किया, जो उत्तर भारत के लिए अनुकरण का कारण बना। उत्तर भारत की जनता में जो धार्मिक भावना पहले से ही वर्तमान थी, वह दक्षिण के भक्ति आंदोलन की टेक पाकर शक्तिशाली रूप में प्रकट हुई। यहां पौराणिक धर्म का प्रचार इस धार्मिक आन्दोलन के पहले से ही था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.3.3 साहित्यिक परिस्थितियां

इस युग में अवतारों को विशेष महत्व प्रदान किया गया। सभी प्रचलित धार्मिक सम्प्रदायों ने किसी न किसी रूप में अवतार की कल्पना की। शिव के अनेक अवतारों की कल्पना की गई। गोरखनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ को, शिव का अवतार माना गया और यहां तक की जिस 'कबीर' ने अवतारवाद की स्वयं घोर निन्दा की भी उनके अनुयायियों ने 'ज्ञानी जी' का अवतार मान लिया। केवल भगवान की नहीं 'सूरदास', 'हितहरिवंशदास' तथा 'तुलसीदास जी' जैसे सन्तों को भी क्रम से 'उद्धव', 'मुरली' और 'वाल्मीकि' का अवतार कहा गया। इसका कारण यह है कि सगुण भक्ति के मूल में ही अवतार की कल्पना है। विविध सम्प्रदायों एवं धार्मिक भावनाओं का इस काल में संगम हुआ और सबका कुछ न कुछ प्रभाव भक्ति आंदोलन पर पड़ा। फलतः इस काल के भक्ति साहित्य में सगुण और निर्गुण दो भक्तियों का विशेष रूप से निरूपण हुआ। इस प्रकार विभिन्न रुचि और विश्वास तथा स्तर के लोगों के लिए साहित्य सृष्टि का संकल्प लेकर भक्त कवियों ने जनता के हृदय को संभाला जो परिवर्तित राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में एक प्रकार की शून्यता का अनुभव करने लग गया था। यह भक्ति आन्दोलन आगे चलकर इतना प्रभावोत्पादक सिद्ध हुआ कि हिन्दू ही नहीं देश में बसनेवाले मुसलमान भी जिनमें सहृदयता थी, इसकी लपेट में आ गए। अवतार की गहती कल्पना ने भक्ति आन्दोलन में आस्था रखनेवाले कवियों को ऐसी शक्ति प्रदान की कि उन्होंने ईश्वर के ऐसे प्रेममय रूप को मानव सुलभ विशेषताओं के साथ सामने रखा कि हिन्दू और मुसलमान का भेदभाव ही मिट गया। दोनों समान रूप से इस ओर आकर्षित हुए। परिणामस्वरूप दक्षिण से धीरे–धीरे चली आ रही भक्तिधारा को उत्तर में परिवर्तित राजनैतिक परिस्थितियों के कारण फैलने का पर्याप्त अवसर मिला।

3.3.4 सांस्कृतिक परिस्थितियां

रामानुजाचार्य ने (सन् 1016 ई0) शास्त्रीय पद्धति से जिस सगुण भक्तिधारा का प्रतिपादन किया था, उस ओर जनता को आकर्षित होने में विलम्ब नहीं लगा। गुजरात में स्वामी मध्वाचार्य ने द्वैतवादी वैष्णव संप्रदाय का प्रचार किया और देश के पूर्वी भाग में 'जयदेव' के कृष्णप्रेम–संगीत की गुंज चली आ रही थी। दोनों ही धाराओं का प्रभाव जनता पर पड़ रहा था। मिथिला के कोकिल विद्यापति ने तो 'जयदेव' के स्वर में ऐसा स्वर मिलाया कि तत्कालीन सारा साहित्यिक वातावरण उससे गूंज उठा था। उत्तर या मध्य भारत में रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में स्वामी रामानन्द ने ईसा की 15वीं शताब्दी में विष्णु के अवतार राम की उपासना पर बल दिया, जिसके प्रभाव में एक सशक्त सम्प्रदाय चल पड़ा। इसी के समानान्तर बूसारी ओर रसवाली बल्लभाचार्य ने प्रेम के अवतार कृष्ण को लेकर जनजीवन को रसमग्न किया। इन भक्तों ने ब्रह्म के सत् और आनन्द स्वरूप को राम और कृष्ण के रूप में जगत के व्यक्त क्षेत्र में साक्षात्कार के निमित्त प्रस्तुत किया। स्वामी रामानन्द के भक्तों की दो श्रेणियां थीं जिनमें एक निर्गुण भाव से राम की उपासना करता था और दूसरा सगुण भाव थे। बल्लभाचार्य ने कृष्ण भक्ति का प्रचार उनके लीला पक्ष पर जोर देते हुए किया जिससे इनके भक्तों में मर्यादा पुरुषोत्तम और दुष्टदलन रूप प्रधान नहीं रह पाया। भक्तिकाल के कवियों की जो सबसे बड़ी विशेषता थी वह यह कि वे या तो स्वान्तःसुखाय रचनाएं कर रहे थे अथवा लोक कल्याण की भावना से प्रेरित होकर। उन्होंने राजाश्रय ग्रहण नहीं किया और न तो चारणों की भाति सम्राटों का यशोगान ही किया। ऐसे सांस्कृतिक परिवेश में भक्तिकाव्य का प्रसार–प्रचार अधिकता से हुआ।

3.4 भक्तिकाल का स्वरूप

भक्तिकालमें भक्ति का स्वरूप बहुत व्यापक था। उसकी अखिलभारतीय सार्वभौमिकता सर्वस्वीकृत हो गई थी। मध्यकाल में भक्ति जीवन की दृष्टि बन गई थी, इस दृष्टि की विराटता में समाहित होने के लिए शताब्दियां सिमट गई थी, धर्म सिमट गए थे, प्रान्त सिमट गए थे, व्यक्ति सिमट गए थे। कश्मीर की लल्लेश्वरी, पंजाब के नानक, उत्तरप्रदेश के कबीर, सूर, तुलसी, रहीम, रसखान और आलम, बिहार के विद्यापति, बंगाल के चैतन्य, असम के शंकरदेव, माधवदेव, उड़ीसा के सारलादास, बलरामदास, राजस्थान की मीरां, गुजरात के नरसी, महाराष्ट्र के एकनाथ और रामदास, कर्नाटक के पंप, कुमारव्यास आंध्र के नन्नय, तिक्कन, ऐर्रन, तमिनाडु के कंबन (कंबर) केरल के एड्डुत्तच्छन, सब भक्त और कवि थे। भक्ति मध्यकाल की राष्ट्रीय प्रवृत्ति बन गई थी। भारत सांस्कृति दृष्टि से एक है। सारे अवतार उत्तर के, सारे आचार्य दक्षिण के दोनों मिलकर एक और भक्ति से बढ़कर इस एकता का परिचायक कोई दूसरा तत्व है ही नहीं। भक्ति मध्यकाल में एकता की प्रतीक बन गई थी, उत्तर–दक्षिण की एकता की, पूर्व–पश्चिम एकता की, हिन्दु–मुस्लिम एकता की, अनुभूतिगत एकता की और बड़ी सीमा तक अभिव्यक्तिगत एकता थी।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Learning

वैष्णव धर्म ने भागवत संप्रदाय के रूप में भारतीय धर्मों का नेतृत्व किया। हिन्दू धर्म के अंतर्गत शैव (शिव के पुजारी), शाक्त, स्मार्त, गाणपत्य आदि सप्रदाय है। दक्षिण में रामानुजाचार्य ने 1073 वि. के आस–पास शास्त्रीय पद्धति पर सगुण भक्ति का निरूपण किया, भक्ति आंदोलन को आगे बढ़ाने का श्रेय इन्हीं को है। 13वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मध्वाचार्य ने द्वैतमत की स्थापना की, इसी समय दक्षिण में विष्णुस्वामी (रूद्र संप्रदाय के प्रवर्तक), आचार्य निम्बार्क (द्वैताद्वैतवाद के प्रवर्तक) भक्ति का प्रचार कर रहे थे। भक्ति का यह प्रवाह धीरे–धीरे उत्तर में आ रहा था, इस प्रकार भक्ति आंदोलन की जो चिंगारी दक्षिण में फूटी थी वह धीरे–धीरे पूरे देश में फैलकर आग का रूप ले सकी। 6वीं शताब्दी में बंगाल के जयदेव ने 'गीतगोविन्द' की रचना की, जिसने राधाकृष्ण की 'रामानुजा भक्ति' को जन्म दिया, इसका प्रभाव विद्यापति की पदावली पर पड़ा। 'गीतगोविन्द' भागवत पर आधारित है। संपूर्ण भारत में उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम तक धार्मिक, सांस्कृतिक एकता की लहर चल रही थी। ''भक्ति आंदोलन की लहर से पूरा भारत धार्मिक, सांस्कृतिक एकता के सूत्र में आबद्ध हो गया, इसी आंदोलन के बल पर भारतीय संस्कृति बरबर, इस्लामी, आक्रान्ताओं के अत्याचार सहन करके भी आज तक काल के प्रवाह में मुस्कुरा रही है।'' वल्लभाचार्य ने हिंदी साहित्य (भक्तिकाल) को सर्वाधिक रूप से प्रभावित किया है, इन्होंने शुद्धाद्वैतवाद और पुष्टिमार्ग को अपनाया। भक्तिकाल पर सबसे अधिक प्रभाव रामानुजाचार्य के 'विशिष्टाद्वैतवाद' का पड़ा। इसी परंपरा में रामानंद हुए, जो कबीर और तुलसी के गुरू माने जाते हैं और जिन्हें भक्ति को उत्तर भारत में प्रचारित करने का श्रेय दिया जाता है।

प्रमुख संप्रदाय	**प्रवर्तक**
अद्वैतवाद	शंकराचार्य
विशिष्टाद्वैतवाद (श्री संप्रदाय)	रामानजाचार्य
द्वैतवाद (ब्रह्मसंप्रदाय)	मध्वाचार्य (आचार्य मधु)
द्वैताद्वैतवाद (हंस या सनकादि संप्रदाय)	निंबार्काचार्य
शुद्धाद्वैतवाद	वल्लभाचार्य
रूद्र संप्रदाय	विष्णुस्वामी
चैतन्य संप्रदाय	चैतन्य महाप्रभु
महापुरुषिया संप्रदाय	शंकरदेव
रामदासी संप्रदाय	रामदासजी
उद्धति संप्रदाय	सहजानंद स्वामी
रसिक संप्रदाय	अग्रदास
स्वसुखी संप्रदाय	रामचरणदास
तत्सुखी संप्रदाय	जीवराम
राधावल्लभ संप्रदाय (सखी संप्रदाय या टट्टी संप्रदाय)	हितहरिवंश
महानुभव संप्रदाय	पुंडलिक
ध्यान संप्रदाय	–भगवान बुद्ध के उपदेश से प्रभावित बौद्धों से उत्पन्न

भागवत संप्रदाय से वैष्णव संप्रदाय का विकास हुआ, निर्गुण एवं सगुण का भी विकास भागवत धर्म से हुआ। सबसे पहले भक्ति आंदोलन के साथ देश के विभिन्न अंचलों में जातीय संगठन की शुरुआत हुई। सर्वप्रथम आलवार भक्तों के माध्यम से तमिल जाति बनी, जो सबसे पहला जातीय संगठन है। 12वीं, 13वीं शताब्दी में कन्नड़ जाति का उदय हुआ। बंगला, गुजराती और हिंदी का उदय लगभग एक साथ 15वीं शताब्दी में हुआ, इसके कुछ पहले मराठी जाति अस्तित्व में आ गई थी। तमिलों का भक्ति आंदोलन ब्राह्मण धर्म की प्रभुसत्ता के विरोध में हुआ। इसलिए तमिल जाति नहीं, बल्कि भाषा और साहित्य है। हिन्दी प्रदेश में भक्ति आंदोलन की शुरुआत कबीर के माध्यम से हुई, ऐसा कबीर जो मुसलमान भी है, हिन्दू भी है, जो वेद नहीं मानता, कुरान नहीं मानता।

उपनिषद–भारतीय दर्शन के आधार पर वेदांत का विकास हुआ, इसे समझने के लिए बादरायण ने 'ब्रह्मसूत्र' की रचना की जिस पर शंकर ने 788 ई0 से 820 ई0 में शारीरक भाष्य' लिखा इसे ही 'शांकरभाष्य' कहा जाता है। वेदांत का अर्थ 'शंकरवेदांत' ही समझा जाता है जबकि यह बादरायण की रचना है। 'शांकरभाष्य' को विकसित और व्यवस्थित और प्रसारित कुमारिलभट्ट ने किया, इन्होंने हमारी चिंतनधारा को बहुत दूर तक प्रभावित किया। परवर्ती आचार्यों ने इन्हीं मतों की व्याख्या, प्रतिव्याख्या के रूप में अनेक मतों की स्थापना की।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध भक्त नामदेव समय 1328 से 1408 वि. हिन्दू–मुस्लिम दोनों के लिए एक सामान्य भक्तिमार्ग स्थापित करनेवाले सत कहे जाते है। महाभारत के शातिपर्व में भागवत धर्म एकांतिक, नारायण, पाचरात्र, सात्वत आदि नामों से जाना जाता है। उत्तरभारत में कृष्णनाम की उपासना के प्रमाण 4वीं 5वीं शताब्दी में मिल चुके थे।

भागवतधर्म धीरे–धीरे चार प्रमुख संप्रदायों द्वारा विकास पाता रहा–

1. विशिष्टाद्वैतवाद	रामानुजाचार्य
2. द्वैतवाद	मध्वाचार्य
3. रूद्र संप्रदाय	विष्णुस्वामी
4. द्वैताद्वैतवाद	निंबार्काचार्य

भागवत पुराण की रचना के समय से ही दक्षिण भारत में भागवत धर्म जोर पकड़ चुका था, भागवत संप्रदाय अति प्राचीन है। वही वैष्णव संप्रदाय के रूप में भक्ति आंदोलन को प्रेरित करता है। सामाजिक भेदभाव के कारण भक्तिआंदोलन दक्षिण में पनपा।

रामानंद के शिष्यों में कबीर, धन्ना, पीपा, धर्मदास, तुलसी आदि प्रमुख है। निर्गुण संप्रदाय को प्रेरित करनेवाले नामदेव है और प्रवर्तक कबीर हैं। कबीर जैसे महान साधक संत का निर्गुण की सीमा में बांधना अच्छा नहीं लगता साथ ही उन्हें केवल ज्ञान मार्गी कहना भी उचित नहीं है।

सिक्खधर्म के ग्रंथ 'गुरूग्रंथ साहब' में संतों की वाणियां संकलित हं, उनमें नामदेव के 60 पद है।

शंकराचार्य के परवर्ती रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य और विष्णुस्वामी आदि ने प्रस्थानत्रयी की बहुत विस्तृत और प्रामाणिक व्याख्याएं प्रस्तुत कीं, उन्होंने शंकराचार्य के मत का विरोध भी किया, भक्ति को परम सत्य माना और इस तरह वैष्णवमत की स्थापना में विशेष योगदान दिया।

भक्ति आंदोलन में जिस तरह वर्गभेद में समता लाने का प्रयास है उसी तरह गुरू का महत्व एवं ज्ञान की महिमा भी घोषित की गई है। संत कवियों ने गुरू को सर्वाधिक महत्व दिया है। गुरू का अर्थ ज्ञान देनेवाला नहीं बल्कि अज्ञान को हटानेवाला होता है। 'गु' का अर्थ 'अंधकार' होता है, 'रू' का अर्थ उसको 'हटानेवाला', इस दृष्टि से भक्ति काव्य में गुरू की भूमिका असंदिग्ध रूप से बहुत बड़ी रही है।

''सूर, तुलसी, कबीर जैसे मानव जब साहित्य को अपने स्पर्श से कृतार्थ करते हैं, तब साहित्य पूरा साहित्य न रहकर धर्म, दर्शन, नीति, पुराण सब कुछ हो जाता है। कबीर, सूर, तुलसी, आदि का साहित्य केवल साहित्य नहीं है, वह धर्म भी है, दर्शन भी है, नीतिशास्त्र भी है, पुराण भी, सबकुछ है। साहित्य को जो समग्रता हिंदी के भक्तिकाव्य में प्राप्त हुई है वह संसारभर में अतुलनीय है। तुलसी, सूर, कबीर, जायसी और मीराँ ने कविता से नहीं, कविता ने उनसे महिमा प्राप्त की है। यदि यह महामानव कविता नहीं करते तब भी अमर रह सकते थे। यदि हमारी कविता इन्हें न पाती, तो दरिद्र रह जाती।''

भक्तिकाल के महत्त्व को स्वीकार करते हुए डॉ. रामप्रसाद मिश्र के शब्दों में कहा जा सकता है– ''भक्तिकाल में कविता की 200 वर्षों के भीतर जो उन्नति हुई वह हिंदी ही नहीं संसार के इतिहास में महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत साहित्य ने भारतीय इतिहास के स्वर्णकाल (गुप्तकाल) में कालिदास, हरिशेण, वत्स, विशाखदत्त, कुमारदास जैसी महान् प्रतिभाओं को पाकर जो सम्पन्नता प्राप्त की अथवा लेटिन साहित्य ने अपने स्वर्णकाल में वर्जिल, होरेस, केटुलस, प्रॉपर्टियस, टिबुलस, ओविड जैसी महान प्रतिभाओं को पाकर जो सम्पन्नता प्राप्त की अथवा फारसी साहित्य ने अपने स्वर्णकाल में सादी, रूमी, हाफिज जैसे महान कवियों को पाकर जो सम्पन्नता प्राप्त की अथवा अंगरेजी साहित्य ने अपने स्वर्णकाल में शेक्सपियर, बेकन, स्पेंसर, मार्लो जैसी महान प्रतिभाओं को पाकर जो सम्पन्नता प्राप्त की थी अथवा चीनी साहित्य ने अपने स्वर्णकाल में बांगबेई, लीपो, टुफू, पो–चयी को प्राप्तकर जो संपन्नता प्राप्त की थी अथवा सोनी साहित्य ने अपने स्वर्णकाल में सर्वंटीज, लोपेदवेगा, फर्नेडो द हेरेरा, सानपंद्रे व अल्कान तारा, सेंट टेरेसा जैसी महान प्रतिभाओं को पाकर जो सम्पन्नता प्राप्त की थी वैसी ही सम्पन्नता भक्तिकाल में कबीर, जायसी, सूर, तुलसी और मीरां को पाकर हिंदी ने प्राप्त की।''

भक्ति स्थापना के क्रम में निर्गुण और सगुण नाम से दो प्रमुख संप्रदाय अस्तित्त्व में आए, हिंदी में निर्गुणभक्ति को आरंभ करनेवाले आचार्य नामदेव हैं और इसके सबसे बड़े संत कबीर हैं। हिंदी में सगुणभक्ति को आरंभ करनेवाले

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रामानुजाचार्य है, इसके प्रचारक रामानंद है और इसके सबसे बड़े संत तुलसीदास हैं। जिस तरह से रामभक्ति की गंगा को प्रवाहित करने का श्रेय रामानंदजी को है उसी तरह कृष्णभक्ति की यमुनाको वल्लभाचार्य ने प्रवाहित किया था। भक्ति का सर्वप्रथम उल्लेख 'श्वेताश्वेर' उपनिषद में मिला है। ''सम्पूर्ण भारत में उत्तर से दक्षिण और पश्चिम तक धार्मिक, सांस्कृतिक एकता की लहर चल रही थी,। भक्ति आन्दोलन की तरह से पूरा भारत धार्मिक, सांस्कृतिक एकता के सूत्र में आबद्ध हो गया। इसी आन्दोलन के बल पर भारतीय संस्कृति बरबर इस्लामी आक्रांताओं के अत्याचार सहन करके भी आज तक काल के प्रवाह में मुस्करा रही है। इस प्रकार आदिकाल के अंत में भक्ति आन्दोलन का विकास और विस्तार तेज गति से होने लगा था।

श्रेष्ठ साहित्य का सर्जन और भक्ति आन्दोलन के अत्यधिक प्रचार–प्रसार के कारण भक्तिकाल को साहित्य का स्वर्णयुग कहा जाता हैं।

3.5 भक्तिकाल का वर्गीकरण

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिंदी साहित्य का इतिहास में भक्तिकाल का वर्गीकरण इस प्रकार किया है–

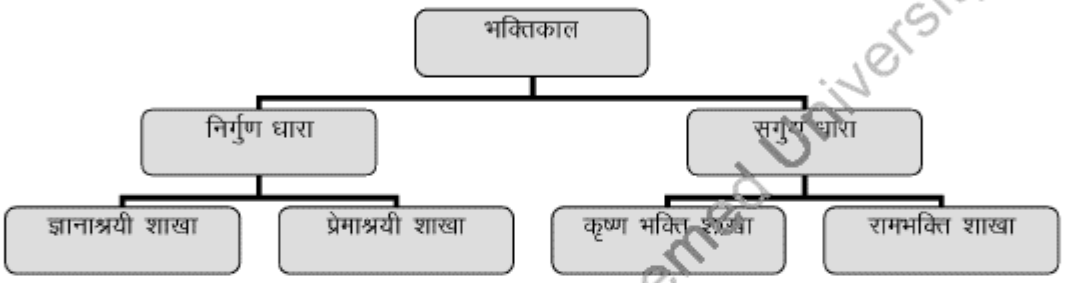

3.6 निर्गुण भक्ति (ज्ञानमार्गी) स्वरूप एवं विशेषताएं

निर्गुण पंथ की सबसे पहली प्रवृत्ति ऊँच–नीच, जाति–पाति के भाव का त्याग और ईश्वर की भक्ति के लिए मनुष्य मात्र का समान अधिकार, इस भाव का सूत्रपात भक्ति मार्ग के भीतर महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश मे नामदेव और रामानंद द्वारा हुआ।

निर्गुण संप्रदाय एवं उसके प्रमुख कवि रामानंद, नामदेव और कबीर हैं। निर्गुण संप्रदाय के प्रेरक नामदेव और प्रवर्तक कबीर में सबसे अधिक विरोधाभास एवं विविधता मिलती है।

3.6.1 निर्गुण काव्य (ज्ञानमार्गी) की विशेषताएँ

1. निर्गुण उपासना
2. रहस्यवाद का उत्कृष्ट वर्णन
3. श्रृंगार के संयोग वियोग का सुंदर समन्वय
4. आस्तिकता
5. अवतारवाद में अनास्था
6. माया के प्रति सचेत
7. हठयोग साधना
8. जाति–पाति का विरोध
9. सूफी मत से प्रभावित
10. समाज सुधार की लालसा
11. रूढ़ियों का उग्र विरोध
12. लोक कल्याण की भावना
13. नारी के कामनीय रूप की निंदा
14. सद्गुरू–नाम स्मरण एवं भजन की महिमा
15. सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16. सामाजिक अन्याय का विरोध

ज्ञानमार्गी संतों की धारणा के अंतर्गत कहा जा सकता है कि –

(1) सिद्धान्त एकेश्वरवादी सूफियों के प्रेम–तत्व, सिद्धों और नाथों के हठयोग एवं शंकर के मायावाद से प्रभावित है।

(2) सद्गुरु की महत्ता–मोक्ष एवं ईश्वर प्राप्ति के लिए सद्गुरु की कृपा आवश्यक है।

(3) जाति–पाँति, बाह्याडम्बर एवं पाखंड का विरोध आवश्यक।

(4) ईश्वर निराकार एवं साकार से परे, प्रेम ही ईश्वर प्राप्ति का प्रधान साधन है।

(5) इन कवियों में अपढ़ जनता में धर्म प्रचार की अद्भुत क्षमता थी।

(6) ये उपदेशक पहले थे और कवि बाद में। इसी से काव्य में पुनरुक्ति एवं वैचारिकता की प्रधानता है। अहं की अधिकता एवम् गर्वोक्तियाँ भी मौजूद हैं।

(7) रस, अलंकार, छन्द पर ध्यान इन कवियों का बिलकुल नहीं था, फिर भी स्वाभाविक रूप से शृंगार, शान्त, वीभत्स और अद्भुत रस की यत्र–तत्र अवतारणा। अलंकारों में उपमा, रूपक उत्प्रेक्षा, अतिश्योक्ति आदि। छन्दों में साखी और पदों का आधिक्य। कवित्त, सवैया, झूलना, हंस, पद आदि का भी प्रयोग है।

(8) भाषा सधुक्कड़ी–अवधी, ब्रजी, अरबी, फारसी, पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती आदि से मिश्रित है।

3.6.2 प्रमुख कवि

कबीरदास :– भक्ति काल के प्रथम क्रांतिकारी कवि भक्तिकाव्य के प्रस्तोता, निर्गुण काव्य प्रवर्तक और संत काव्य के सर्वाधिक समर्थ व्यक्तित्व कहे जाते हैं। सिद्धों के दोहाकोशों और चर्य्यागीतों तथा कबीर की साखियों तथा पदों में समानता है। जाति–पाति का वैसा ही आक्रोशपूर्ण विरोध, आडम्बर के प्रति वैसी ही कड़वाहट भरी फटकारें, आत्मसाक्षात्कार की वैसी ही गर्वोक्ति कबीर में भी थी। "कबीर में सिद्धों की तरह न मांस, मदिरा की ललक थी न प्रज्ञोपाय का वैलक्षण्य, न चमत्कार का प्रदर्शन और न मुद्राओं का अंगीकारण था, फिर भी वे बौद्ध, सिद्धों की अपेक्षा नाथों से अधिक प्रभावित थे। कबीर ने सूफी प्रेम की पीर को भी अपनाया और हिन्दुओं की अहिंसा, प्रपत्ति और अद्वैत को भी। 'कबीर गरीब, शोषित, अपमानित निम्नवर्ग की ओर से खड़े हो गये थे एवं उच्च वर्ग और सामंती शक्तियों पर करारी चोटें की इस प्रकार निम्नवर्ग में आत्म सम्मान का भाव जगा। कबीर को सुधारक कहना उनके महत्व को कम करना है। वे एक ऐसे धर्म की स्थापना करना चाहते थे, जिसमें न कोई हिंदू हो, न मुसलमान, न कोई मौलवी हो न पुराहित, न कोई शेख हो न कोई ब्राह्मण सब मनुष्य हों। यह क्रांतिकारी कदम था न की सुधार।"

कबीर ने एक साथ तीन बड़ी धाराओं उत्तरपूर्व के नाथमत और सहजयान, पश्चिम के सूफी और दक्षिण के वेदान्त भक्ति वैष्णव धम्र के मध्य अपना मार्ग तलाशा। कबीर के हठयोग में इंगला, पिंगला, सुषुम्ना, कुण्डलिनी, षट्दल, त्रिकुटी, ब्रह्मरंध्र, सूर्य चन्द्र आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

कबीर के साधनापक्ष की विशेताओं में परमात्मा की एकता, नाम, स्मरण, गुरू की महत्ता, मध्यम मार्ग का अनुसरण आचरण की शुद्धता, प्रपत्तिभाव (अनन्य) का अनुगमन, हठयोग का मिश्रण आदि सम्मिलित हैं।

कबीर के दार्शनिक पक्ष में ब्रह्म, जीव, जगत और माया का विशद विवेचन एवं उनका सम्यक अनुबोधन मिलता है। रहस्यवाद के अंतर्गत जिज्ञासा की भावना, महत्व प्रदर्शन प्रिय के दर्शन एवं मिलन का प्रयास, भौतिक विघ्न एवं वेदना की विवृत्ति, अव्यक्त एवं अगोचर सत्ता के दर्शन का आभास, सांसारिक ज्ञान एवं अपरोक्ष अनुभूति एवं चिरमिलन आदि की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। बघेलराजा वीरसिंह, बिजली खाँ, धर्मदास, सूरतगोपाल, जग्गुदास और भगवानदास कबीर के शिष्य हैं। 'बीजक' कबीर की रचना है। रमैनी 'बीजक' का महत्वपूर्ण अंश है, रमैनी में सात–सात चौपाइयों के बाद एक दोहा होता है, इसे कबीर पंथी संप्रदाय में साखी कहते हैं।

रैदास :– रैदास का नाम रविदास भी मिलता है। भक्तमाल के आधार पर इनकी जन्म तिथि 1299 ई0 है, जो अनुमान के आधार पर है। रैदास रामानंद के शिष्य थे, उन्हे मीरां का गुरू कहा जाता है। उनकी पत्नी का नाम लोना था। उनकी मृत्यु काशी के गंगाघाट पर हुई थी। रैदास अहंकार और असत्य के विरोधी थे, इनकी भक्ति में प्रेमतत्व की प्रधानता है। बावजूद इसके ये कबीर के व्यक्तित्व के विपरीत कहे जा सकते हैं। रैदास के विचार केन्द्र में सुवर्ण और सवर्ण हिन्दुओं का टकराव स्थित है या वर्गभेद मौजूद है। कबीर में हिन्दू–मुसलमानों का वर्गभेद था। रैदास ने स्वयं अपने को जगह–जगह चमार शब्द से संबोधित किया है :– "कह रैदास चमारा/ है खालिस रैदास चमारा।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed to University) Ladnun

रैदास का सबसे अधिक प्रभाव राजस्थान के मेवाड़ में था, मेवाड़ की झालारानी इनकी शिष्या थीं। 'गुरू ग्रंथ साहब' में इनके 40 पथ संगृहीत हैं। रैदास का नाम मीरा और धन्ना ने बहुत सम्मान से लिया है। रैदास प्रयाग, मथुरा, वृंदावन, भरतपुर, जयपुर, पुष्कर और चित्तौड़ का भ्रमण करते रहे। इनकी रचनाएं 'बानी' नाम से 'संतवाणी सरोज' से संगृहीत हैं। इनकी भाषा में अवधी, राजस्थानी, खड़ीबोली, उर्दू और फारसी का मिश्रण है। कबीर के बाद महत्त्व और प्रभाव की दृष्टि से रैदास ही इस धारा के प्रमुख कवि हैं।

नानक (1469 से 1533 ई0) :– पंजाब प्रान्त के लाहौर के समीप राईभोई (तलवंडी) में इनका जन्म हुआ था, वह स्थान जब नानकाना साहब के नाम से जाना जाता है, जो अब पाकिस्तान में है। नानक के शिष्यों में अंगददेव, अमरदास, रामदास, अर्जुनदेव और तेगबहादुर के नाम उल्लेखनीय हैं। नानक के पिता का नाम कालूचंद था, माता का नाम तृप्ता था, इनके दो पुत्र थे श्रीचंद और लक्ष्मीचन्द। नानक की पत्नी का नाम सुलक्षणा थाा। श्रीचन्द 'उदासी संप्रदाय' के प्रर्वतक थे, उदासी लोग हिन्दू धर्म को अधिक जानते हैं। उनमें नाम की उपासना है, नानक भी नाम की उपासना करते हैं। नानक बड़े सरल हृदय से ईश्वर भक्ति के साथ सदाचार और संगठन की शिक्षा देते हैं। 'जपुजी' नानक दर्शन का सार तत्व है। नानक के पद गुरूग्रंथ साहब में संकलित हैं, जिस हिस्से में संकलित हैं, उसे 'महला' कहते हैं। 'असा–दी–वार', 'रहिरास', 'सोहिला' ये नानक की प्रसिद्ध रचनाएं हैं। ये रचनाएं पंजाबी में हैं। 'नसीहत नामा' नानक की खड़ीबोली की रचना है। नानक खत्री परिवार में पैदा हुए थे, खत्री छत्री का अपभ्रंश है। नानक पहले संत थे जिन्होंने विदेशी आक्रमणकारियों के खिलाफ आवाज उठाई। स्त्री के सम्मानार्थ नानक समूची भक्ति परंपरा में सबसे अलग हैं, क्योंकि नानक ने नारी निंदा नहीं की है, जबकि सभी संतो ने नारी की निंदा की है। कबीर के विषयों को अपनाकर भी नानक, कबीर से संयत और शांत हैं। उन्होंने ब्रजभाषा, खड़ीबोली और पंजाबी का प्रयोग किया है। 'जपुजी' गुरू ग्रंथ साहब का एक अध्याय है। नानक ने ब्रह्म को शब्द या वाणी माना है।

दादू (1554 से 1603 ई0) :– दादू का जन्म स्थान अहमदाबाद और कर्म स्थान राजस्थान है। दादू की मृत्यु नारायण या नरोना (जयपुर) के पास हुई थी। कबीर से प्रभावित अनेक संत संप्रदायों का उदय राजस्थान में हुआ, इनमें निरंजनी संप्रदाय, साधु या साध संप्रदाय, जसनामी संप्रदाय, लालदासी संप्रदाय और दादू संप्रदाय के नाम महत्वपूर्ण हैं।

3.7 निर्गुण भक्ति (प्रेममार्गी) स्वरूप एवं विशेषताएं

3.7.1 सूफी काव्य

सूफी मत का जन्म इस्लाम पर सामी विचार धारा के प्रभव से हुआ, इस विचारधारा के फलस्वरूप जीवन और ब्रह्म के संबंधों का निरूपण, दाम्पत्य भाव और विरह के माध्यम से किया जाता है। सूफी शब्द के विभिन्न अर्थ हैं–

सूफ	ऊन
सूफोस	ज्ञान
सफा	पवित्र

इस काव्य परंपरा में प्रेम काव्यों की रचना हुई है। सूफी के सर्वमान्य अर्थ में सबसे प्रचलित शब्द 'सूफ' है जिसका अर्थ ऊन और पवित्र से लगाया जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 1503 ई0 में कुतुबन द्वारा रचित 'मृगावती' को इस धारा का पहला काव्य मानते हैं।

हजारीप्रसाद द्विवेदी 1501 ई0 में रचित ईश्वरदास की रचना 'सत्यवती कथा' को सूफी प्रेम काव्य धारा का प्रथम ग्रंथ स्वीकार करते हैं। रामकुमार वर्मा मुल्लादाउद–रचित 'चंदायन' को इसका श्रेय देते हैं। कुछ विद्वान असाइत द्वारा रचित 'हंसावली' (सन् 1370) को इस परंपरा का प्रवर्तक मानते हैं।

3.7.2 सूफी मत

सूफी शब्द सूफोस से संबद्ध है, इसका अर्थ ज्ञानी है। सूफियों के अनुसार मोहम्मद साहब की दो प्रकार की वाणियां मिली थीं –

1. इल्म–ए–सकीना– ग्रंथग्रथित ज्ञान जो कुरान के रूप में प्रस्तुत किया गया।
2. इल्म–ए–सीना– जो हृदय में स्थित था।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ltd.

सूफियों ने दूसरे प्रकार की वाणी को अपनाया।

मसनवी शैली की विशेषताएँ :–

1. ईवर की स्तुति
2. शाह–ए–वक्त की प्रशंसा
3. गुरू वंदना
4. आत्म परिचय
5. एक ही छंद का प्रयोग

हिंदी सूफी कवियों की जमीन भारतीय है, जबकि दक्षिणी सूफी कवियों की जमीन ईरानी है। हिन्दी सूफी कवियों की कथाएं यहां की लोक प्रचलित कहानियों पर आधारित हैं, जबकि दक्षिणी सूफी कवियों के कथानक ईरानी काव्य में प्रयुक्त लोक कथाएं हैं। उनका रंग इस्लामी और ढंग ईरानी है। हिंदी सूफी कवियों का काव्य पूर्णतः भारतीय है। भारत में सूफी संप्रदाय का आरंभ सिंध से हुआ, यह चिश्तिया, सुहरावर्दी, काहिरियां और नक्शबंदी संप्रदाय से प्रचलित हुआ।

हिंदी की प्रेममार्गी शाखा, सूफी काव्य, प्रेम काव्य, प्रेम कथानाक काव्य, प्रेमाख्यान काव्य आदि नाम से प्रचलित सूफीमत मोहम्मद के लगभग 200 साल बाद हुआ।

3.7.3 सूफी साधना का स्वरूप

सूफी 'पीर' को महत्व देते हैं। सूफी काव्य में प्रेम को महत्व दिया गया है, यह प्रेम ही इनका सिद्धान्त है, जिसके अनुसार इन्होंने 'अनहलहक' का नारा दिया इसमें ईश्वर और जीव का संबंध भय का नहीं बल्कि प्रेम का मानते हैं। सूफियों ने ईश्वर को प्रिया और स्वयं की प्रियपुरुष माना है।

ईश्वर को प्राप्त करने के लिए विरह ही साधना की सीढ़ी है। अगर विरह की पीर नहीं है, तो ईश्वर रूपी प्रिया नहीं मिल सकती। सूफियों का मूल मंत्र 'इश्क–ए–मजाजी' से 'इश्क–ए–हकीकी' की ओर अर्थात् लौकिक से अलौकिक की ओर प्रयाण करना है। इस्लाम की सामी विचारधारा के अनुसार जीव और ब्रह्म के संबंधों का निरूपण दाम्पत्य भाव एवं विरह के माध्यम से किया जाता है, यानि भौतिक प्रेम द्वारा ईश्वरीय प्रेम का प्रतिपादन।

निर्गुणी संतों ने हिन्दू–मुस्लिम एकता का प्रयास किया और सूफी संतों ने सांस्कृतिक एकता स्थापित करने में बहुत बड़ी सफलता पाई। सूफी लोगों ने ईश्वर को अपने प्रेमपात्र के रूप में स्वीकारा है, उनकी साधना अनहल–हक की साधना है, जिसमें यह अनुभव करना है कि मैं स्वयं ईश्वर हूँ। इसके लिए साधना की आवश्यकता होती है और यह साधना विरह भावना के बिना संभव नहीं है।

सूफीमत में साधना के सात सोपान हैं–

1. अनुताप
2. आत्मसंयम
3. वैराग्य
4. दरिद्रता
5. धैर्य
6. विश्वास
7. संतोष और प्रेम

इन सात सोपानों में **प्रेम** सर्वोपरि है।

सूफी सिद्धान्त में ईश्वर साधना के चार सोपान है :–

1. शरीयत
2. तरीकत
3. मारीफत
4. हकीकत

जो भारतीय परंपरा में आचरण, उपासना, सिद्धावस्था और सत्यबोध के रूप में स्वीकार किये जा सकते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ईश्वर के स्वरूप को जानना और उसकी अनुभूति करना सूफी साधना का महत्वपूर्ण पक्ष है जिसके लिए सूफी मानते है कि ईश्वर तक जाने के लिए अक्ल से भी आगे निकलना पड़ता है :

"तेरी मंजिल तक पहुंचना कोई आसां न था
सरहद–ए–अक्ल से गुजरे तो यहां तक पहुंचे"

सूफियों की साधना में अनहल–हक को स्वयं को अनुभव करना आवश्यक है। इसे समझना आवश्यक है। इसके लिए साधना की आवश्यकता होती है और यह साधना विरह की उत्कृष्ट भावना के बिना संभव नहीं है। ईश्वरीय सौंदर्य की एक झलक साधक को बैचेन कर देती है :

"दुनिया की सुध है ना अपनी खबर मुझे
बेसुध बना दिया है यू तेरे जमाल ने।।"

अनहल–हक कहनेवाला साधक सूफी साधक है। चूंकि वह स्वयं को ईश्वर मान लेता है इसलिए स्वयं में ईश्वर का निवास मानकर वह स्वयं से प्रेम करने लगता है। वस्तुतः जो लोग ईश्वर को अन्यत्र ढूंढने का प्रयास करते हैं उन पर सूफी हंसते हैं और व्यंग्य करते हैं। कबीर ने भी ईश्वर की सर्वव्यापकता का वर्णन किया है।

"कस्तूरी कुंडली बसै मृग ढुंढै बन माय
ऐसे घट–घट राम है दुनिया देखे नाय।"

"तजाहुल से मेरे नाम ओ निशा को पूछन वालो
वही रहता हूं मैं अब तक जहां ढूंढ़ा नहीं तूने।"

3.7.4 सूफी काव्य की विशेषताएं :

1. प्रबंध कल्पना
2. चरित्रांकन
3. लोकपक्ष का चित्रण
4. नारी–प्रेम साधना का साध्य
5. रस वर्णन
6. मंडनात्मकता
7. प्रायः अवधी भाषा का प्रयोग
8. रचना में दोह–चौपाई का अधिकतर प्रयोग

इनके प्रेम–काव्य भारतीय चरित काव्यों की शैली में नहीं वरन् फारसी की मसनवी शैली में निर्मित हैं। इनके प्रारम्भ में ईश वन्दना, पैगम्बरों की स्तुति तथा तत्कालिक शासक की प्रशंसा है। सभी कवि सूफी सम्प्रदाय के मुसलमान हैं। उन्हें हिन्दुओं के रहन–सहन, पर्व, आचार–विचार का साधारण ज्ञान था। लौकिक गाथाओं द्वारा पारलौकिक की अभिव्यंजना। सिद्धान्ततः (अ) ब्रह्म और जीव में तात्विक एकता। (ब) सारी सृष्टि ब्रह्म की अभिव्यक्ति उनका ध्येय था। (स) जीव पति और परमात्मा पत्नी के रूप में। वे मानते हैं जीव प्रेमपूर्ण और परमात्मा सौंदर्यपूर्ण है। सभी प्रेम–काव्य प्रबन्ध–काव्य के रूप में है। कथाएँ हिन्दू जीवन से संबंधित हैं। इनमें जीवात्मा का तीव्र प्रेम तथा साधक के मार्ग की कठिनाइयों (माया) का रूपकमय वर्णन है। गुरू की महत्ता, साधक गुरू की कृपा से ही माया को पार कर भगवत् प्राप्ति करता है। इन मुसलमान कवियों पर भारतीय अद्वैतवाद एवं हठयोग का भी प्रभाव है। ये किसी सम्प्रदाय के खंडन–मंडन से बहुत दूर, केवल अपनी बात कहनेवाले है।

रस – शृंगार की प्रधानता तथा अन्य रस गौण रूप में।

अलंकार – प्रायः सभी प्रचलित अलंकार। अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक एवं मनोरम।

भाषा – ग्रामीण अवधी। **छन्द** – दोहा चौपाई।

बेनफी, कीलर, हर्टेज जैसे यूरोपीय विद्वानों ने यह प्रमाणित किया है कि भारतीय प्रेमाख्यानों की एक शाखा सिकंदर के साथ यूनान पहुंची और वह रोम, इटली, जर्मनी, स्पेन, इंग्लैड की विभिन्न भाषाओं में विकसित होकर पूरे यूरोप में फैल गई। इसी शाखा को विश्व साहित्य में रोमांस काव्य की धारा कह जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

भले ही कुछ विद्वान भांतिवश इस परंपरा को विदेशी घोषित करें, किन्तु यह शुद्ध भारतीय परंपरा है, जिसमें भारतीय संस्कृति के विकास क्रम की रूपरेखा यथार्थ रूप में निहित है। इस परपरा के कवियों ने अपनी रचनाओं मे प्रणय के गंभीर रूप का चित्रण करने के साथ–साथ उनमें परंपरागत ज्ञान–विज्ञान का भी समावेश किया, जिसके कारण उसमें प्रसंगानुकूल भारतीय दर्शन, पुराण, ज्योतिष, शकुनशास्त्र, कामशास्त्र, वैद्यक, संगीतशास्त्र, युद्धकला, पाककला, रीतिशास्त्र आदि के विभिन्न तत्तवों का विवरण विस्तार में उपलब्ध होता है।

सूफी ईश्वर को सौंदर्यज्योति का पुंज मानते हैं और इसे प्रेम के माध्यम से प्राप्त करने की साधना करते हैं। इस्लाम में ईश्वर की साकारता का विरोध है। मोहम्मद साहब ने संगीत, नृत्य एवं कविता के प्रति अरुचि प्रकट की, इसलिए सूफी साधना अरब से चलकर ईरान में फली–फूली।

उदार सूफी साधक जानते थे कि विदेशी होने के कारण लैला–मजनू, शीरी–फरहाद आदि के अफसाने भारत के अतःकारण को छू न सकेंगे। अतः उन्होंने यही की लोक कथाओं को अपना वर्ण्य विषय बनाया। सूफियों के वर्ण्य विषय उनकी लोकोन्मुख प्रवृत्ति के परिचायक है।'

''प्रेमख्यान काव्यकारों में अन्यतम हिंदी के सर्वश्रेष्ठ सूफी कवि भारत के रूमी महाकवि जायसी की नागमती केवल इस संभावना पर ही शरीर को राख कर देने को प्रस्तुत है कि शायद इससे प्रिय के चरणों का स्पर्श प्राप्त हो जाए। जायसी के जिस लिखित अमर दोहे में 'मकु' शब्द भारतीय नारी की अनुपम एवं पावन भावुकता को जितना अधिक स्पष्ट करता है, उतना पतिव्रत धर्म पर एक बहुत भारी प्रवचन भी नहीं कर सकता।''

''यह तन जारौ छार कै, कहो कि पवन उडाव
मकु तह मारग महँ परे, कंत धरै जहँ पाँव।''

सूफी दर्शन की अवधारणा निम्निलिखित पंक्तियों में भी व्यक्त है–

''तूफानो दर्दो गम में न गुल हो सकी मगर
शम्मे हयात सांस के झोंके से बुझ गई।''

''यह सब फरेब है नजर–ए–इम्तियाज का
दुनियां में वरना कोई अच्छा बुरा नहीं।''

''उसके फरोबे हुस्न से झमके है सब में नूर
शम्मे हरम हो या कि दिया सोमनात का ।'' (मीर)

''तुम्हारा ही बुतखाना काबा तुम्हारा
दोनों घरों में उजाला तुम्हारा।''

'क्या हुस्न का अफसाना मेहदूद हो लफ्जों में
आंखों ने जिसे देखा आंखों ने जिसे जाना।''

अपनी स्वाभाविक उदारता, अपनी भावुकतापूर्ण प्रेम साधना, अपनी लोकपरक दृष्टि, अपनी ठेठ अवधी की मिठास और अपने अनूठे विरह वर्णनों के कारण पद्मावत का हिंदी साहित्य में बहुत बड़ा स्थान है। हिंदी के विरह काव्य में नागमती का विरह वर्णन सर्वोत्तम है। सृष्टि के कण–कण में प्रेम का वर्णन करनेवाली जायसी की विशद दृष्टि उन्हें संसार के श्रेष्ठ कवियों की पंक्ति में प्रतिष्ठित कर सकती है।

''सूफी दर्शन ईश्वर को रूप ज्योति का पुंज मानता है और जहां कही असाधारण रूप के दर्शन होते हैं वहां ईश्वरीय ज्योति की अनुभूति करता है, सूफी पुंजरूप परमप्रिय परमात्मा के प्रति तीव्र विरह व्यथा की अनुभूति को ही साधना कहते हैं। जब परमप्रिय प्राप्त होगा तभी जीवन को बंधन व्यथा से मुक्ति प्राप्त होगी, अतएव परमप्रिय के प्रति तीव्र व्यथा सूफियों की सृष्टि से असाधारण वस्तु है।''

3.8 सगुण भक्ति (राम भक्ति) स्वरूप एवं विशेषताएं

3.8.1 रामभक्ति काव्यधारा का स्वरूप

राम–कृष्ण, हिमालय और गंगा भारतीय जीवन में इस तरह व्याप्त हैं कि इनसे देश की अस्मिता पहचानी जाती है। भारतीय साहित्य अपनी व्याप्ति में राम और कृष्ण पर ही टिका हुआ है, उनका उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है। रामकाव्य से कविता की शुरुआत होती है। वाल्मीकि रामायण अपने देश का आदिकाव्य है, यदि दुनिया का भी हो तो आश्यर्च नहीं।

वाल्मीकि रामायण की तरह अनेक रामायण लिखी गईं। तुलसी ने स्वयं कहा है :

"नाना भांति राम अवतारा। रामायण सत कोटि अपारा।"

अध्यात्म रामायण, हनुमंत संहिता, राधोल्लास, भुसुण्डि रामायण, आनंद रामायण, अद्भुत रामायण आदि का तो पता है परन्तु कितनी ही रामायणें लापता हैं। तुलसी की रामायण से पहले विभिन्न रामायणें हैं। तुलसी का रामचरित मानस अध्यात्म रामायण से बहुत अधिक प्रभावी है। कई पुराणों में रामकथा वर्णित है :

बौद्ध जातकों में एक जातक दशरथ जातक भी थे। जैन अपभ्रंश में कई ग्रंथ रामकथा से संबद्ध हैं। दक्षिण के आलवार भक्तों में सठकोपि (नम्मालवार) के 'तिरूवायमेली' में रामकथा वर्णित है। 7वें आलवार केरल के चेरीवंश राजा कुलशेखर राम के अद्भुत भक्त थे। सीता हरण का प्रसंग सुनकर वे इतने भावुक हो गये थे कि अपनी सेना को लंका पर चढ़ाई करने की आज्ञा दे दी। उनके ग्रंथ 'पेरूमलतिरूमेली' में कौशल्या के लोरी गाने और दशरथ विलाप के प्रसंग बहुत मार्मिक हैं। स्वयंभू के 'पउम–चरिउ' और पुष्पदंत के 'महापुराण' में रामकथा का मार्मिक वर्णन है। 'पउमचरिउ' में राम के एक विवाह का उल्लेख है और 'महापुराण में राम के 8 विवाहों का उल्लेख है।

हिंदी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में लिखित रामकाव्य :

1. बंगला में कृतिवासरामायण
2. तमिल की कंबरामायण
3. तेलगु की रंगरामायण एवं भास्कररामायण हिंदी की रामकाव्य परंपरा को प्रभावित करती है।
4. मराठी के संतकवि एकनाथ ने भावार्थरामायण एवं स्वामी रामदास की शिष्या वीणाबाई ने मंगलरामायण, सुंदररामायण, संकेत रामायण आदि प्रसिद्ध रामकथाएं लिखी हैं।
5. असमिया में माधवकंदली, शंकरदेव, माधवदेव, रघुनाथ महंत आदि भक्त कवियें ने पद रामायण, गीत रामायण, कथा रामायण आदि राम कथाओं की रचना की है।
6. गुजराती में गालण, विष्णुदास, गधुरावन और श्रीधर आवि ने राग कथा लिखी है।

तुलसी से पहले हिंदी की अन्य भाषाओं में रामकथा मौजूद है और तुलसी से पूर्व रामभक्त कवियों में विष्णुदास का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जहां इन्होंने महाभारत कथा, रुकमणीमंगल, स्वर्गारोहण आदि ग्रंथों के अतिरिक्त वाल्मीकि रामायण का हिंदी रूपान्तरण भी किया। रामायण कथा जो सागर विश्वविद्यालय के तत्वावधान में प्रकाशित हो चुकी है, रामकथा संबंधी हिंदी की पहली रचना है।

'सैद्धांतिक दृष्टि से श्री ब्रह्म, सनक और रुद्र वैष्णव संप्रदायों ने रामभक्ति को विशेष रूप से पुष्ट किया।

श्री संप्रदाय के प्रथम आचार्य रंगनाथमुनि (824 से 924 ई0) ने आलवार संतों के लोकप्रचलित मतों को 'प्रबंधम' शीर्षक से चार भागों में संकलित किया।

रामकाव्य

रचनाकार	रचना
ईश्वरदास	भरतविलाप और अंगदपैंच
जैन मुनिलावण्य	रावण मंदोदरी संवाद
रामदास और भगवानदास	हनुमानचरित
ब्रह्मजिनदास	रामचरित

नाथमुनि के परवर्ती श्रीसंप्रदाय के फुंडरीकांक्ष, रामाद्रि, राममिश्र और यामुनाचार्य आदि ने अपनी वाणी द्वारा रामभक्ति को पल्लवित किया। रामानुजाचार्य का इस 'आचार्य परंपरा' में अप्रतिम स्थान है। उत्तरी भारत में रामभक्ति का प्रवर्तन आचार्य रामानुज की परंपरा में राघवानंद के द्वारा हुआ, जिनके शिष्य रामानंद ने उसे युगानुकूल भावभूमि पर प्रतिष्ठित किया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हिंदी का भक्तिकालीन काव्य रामानंद के सिद्धान्तों से अनुप्रेरित है। हिन्दी में रामकथा का उल्लेख आदिकालीन साहित्य के 'पृथ्वीराजरासो' में मगलाचरण अथवा स्तुति के रूप में मिलता है। पृथ्वीराजरासो में दशावतारवर्णन, मगलाचरण के रूप में ही है, जहां रामवतार से संबंधित 48 छंदों में रामकथा के विविध प्रसंग वर्णित है। उत्तरी भारत में रामकथा का प्रवर्तन रामानन्द ने किया। रामकाव्य परंपरा के अंतर्गत 'रामरक्षास्तोत्र' इनकी (रामानंद) महत्वपूर्ण रचना है।

विष्णुदास ग्वालियर नरेश डूंगरेन्द्र के राजकवि थे। कहा जाता है कि 'छिताईवार्ता' के रचनाकार कवि नारायणदास इन्हीं के पुत्र थे। इनके द्वारा रचित रामायण कथा को 'भाषा वाल्मीकि रामायण' कहा जाता है।

ईश्वरदास (सत्यवती कथा) सूफी काव्य के रचयिता जो प्रमुख प्रेमाख्यान रचना 'सत्यवती कथा' के प्रस्तोता भी हैं, ने रामकाव्य से संबंधित तीन प्रकार की कथाएं प्रस्तुत की है :

1. रामजन्य
2. भरतविलाप
3. अंगदपैच

इनमें सबसे प्रमुख भरतविलाप है, इस काव्य में जिस दास्यभक्ति का चित्रण है, उससे तुलसी का मानस प्रभावित है। रामकाव्य रचना की दृष्टि से तुलसी पूर्व रामानन्द का स्थान सर्वोपरि है।

3.8.2 राममक्ति काव्य की विशेषताएं

(1) ईश्वर को निराकार एवं साकार मानते हुए भी साकार भक्ति की श्रेष्ठता स्थापित की गयी।

(2) सेवक और सेव्य भाव की भक्ति। भक्ति का स्थान ज्ञान से ऊपर।

(3) राम विष्णु के अवतार, ब्रह्म स्वरूप, शक्ति शील और सौन्दर्य के निधान, राम के लोकपालक एवं लोकरंजक रूपों का चित्रण।

(4) लोकसंग्रह की भावना, रूप काव्य में आदर्श चरित्रों का निर्माण। जीवन के सभी अंगों का आदर्श चित्रण।

(5) राम काव्य में राम की उपासना के साथ ही साथ शिव, गणेश, हनुमान आदि अनेक देवी–देवताओं की वंदना। ज्ञान, भक्ति एवं कर्म में समन्वय।

(6) ये कवि वेदसम्मत वर्णाश्रम धर्म के समर्थ तथा सच्चे लोक धर्म के संस्थापक।

(7) ये कांवे भक्त पहले थे कांवे बाद। कविता इनकी भक्ति का माध्यम थी।

(8) इन कवियों को लोक–सम्मान एवं सम्पत्ति की परवाह नहीं थी। इसी से इन्होंने चारण काव्य परंपरा का निर्वाह नहीं किया। रचना स्वान्तः सुखाय की गयी। काव्य लोक–मंगलकारी था। ये सच्चे अर्थ में जनकवि थे।

(9) इन कवियों ने रामायण, आध्यात्म रामायण, पुराण, रघुवंश, उत्तर रामचरित, हनुमन्नाटक आदि संस्कृत ग्रन्थों से प्रेरणा ली।

(10) ये कवि मूलतः समन्वयवादी थे। अपने समय में प्रचलित सभी झगड़ों एवं मतभेदों को हृदयपरिवर्तन द्वारा सुलझाने के पक्षपाती थे।

(11) अलंकार– उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह, व्यतिरेक आदि इनके प्रिय अलंकार थे। यों स्वाभाविक रूप से प्रायः सभी उत्कृष्ट अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

(12) रस– इनका मुख्य रस शान्त था, पर शृंगार तथा अद्भुत आदि रसों का भी सुन्दर निर्वाह किया गया है।

(13) छन्द– दोहा, सोरठा, चौपाई, कवित्त, सवैया, छप्पय, पद आदि सभी प्रचलित छन्दों का प्रयोग किया गया।

(14) भाषा – साहित्य अवधी एवं ब्रजभाषा । इनमें बुन्देलखण्डी एवं भोजपुरी का भी प्रभाव था। अरबी एवं फारसी के भी शब्द यत्र–तत्र दिखाई पड़ते हैं।

3.8.3 प्रमुख कवि

तुलसीदास– इस धारा के सबसे बड़े कवि तुलसीदास हैं। रघुवरदास द्वारा रचित 'तुलसीचरित्र' के अनुसार अगर माने तो तुलसी की आयु 126–127 वर्ष ठहरती है। प्रमाणित रूप से मिर्जापुर के रामभक्त रामगुलाम द्विवेदी और ग्रिअर्सनवाली तिथि संवत् 1589 सही प्रतीत होती है। जिस तरह से तुलसी के जन्म समय को लेकर विवाद है, उसी तरह से उनके जन्म स्थान को लेकर काफी विवाद है। कुछ लोग उसे सोरो जिला एटा मानते हैं, कुछ लोग राजापुर जिला बांदा मानते हैं। मूल 'गोसाईचरित्र' एवं 'तुलसी चरित्र', 'शिवसिंहसरोज', रामगुलाम द्विवेदी के अनुसार तुलसी का जन्म राजापुर में हुआ था तो लालासीताराम, गौरीशंकर द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी, रामदत्त भारद्वाज तुलसी का जन्म एटा

Jainvishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जिले का सोरो स्थान मानते हैं। तुलसी की मृत्यु सन् 1680, सन् 1632, कहीं–कही 1635 भी मानी जाती है, तुलसी की मृत्यु काशी में हुई थी, जिसे वाराणी कहते है। नरहरियादास को भी उनका गुरू कहा जाता है।

तुलसी की रचनाएं :

1. रामचरितमानस सं. 1631 (सबसे महत्त्वपूर्ण)
2. रामललानहछू सं. 1643
3. वैराग्य संदीपनी सं. 1669
4. बरवैरामायण सं. 1669
5. पार्वतीमंगल सं. 1643
6. जानकीमंगल सं. 1643
7. रामाज्ञाप्रश्नावली सं. 1669
8. गीतावली सं. 1627
9. कृष्णगीतावली सं. 1627
10. विनयपत्रिका सं. 1636–1640
11. दोहावली सं. 1640
12. कवितावली
13. हनुमानबाहु

बरवैरामायण और राललानहछू को मिश्रबंध तुलसी का होने में संदेह करते हैं। इन दोनों की भाषा अवधी है। रामचरितमानस में पश्चिमी अवधी है, जबकि उपर्युक्त दोनों रचनाओं में पूर्वी अवधी है। तुलसी की प्रथम रचना 'रामचरितमानस' है और अंतिम रचना 'हनुमान बाहुक' है। इनकी समस्त रचनाओं में तुलसी की प्रतिभा का आधार 'रामचरितमानस', 'विनयपत्रिका' और 'कवितावली' है। 'रामज्ञाप्रश्नावली' ज्योतिष से संबंधित है।

नाभादास ने तुलसी को 'कलयुग का वाल्मीकि' कहा है। विनसेंट स्मिथ ने उन्हें 'मुगलकाल' का महान व्यक्तित्व घोषित किया, ग्रिअर्सन ने उन्हें 'बुद्ध के बाद सबसे बड़ा लोकनायक' बताया। "आश्चर्य है कि जिस ब्राह्मणसमाज ने जन्म लेते ही उन्हें घर से बाहर कर दिया और अब्राह्मण कहा उसी के वर्णाश्रम धर्म का वे समर्थन करते रहे, तुलसी का यह सबसे बड़ा अतर्विरोध है। रामचरित के माध्यम से उन्होंने लोकवेद की मर्यादा प्रतिष्ठित की। सबसे पहले उन्होंने वर्णाश्रम धर्म को पुनरुजीवित करने का संकल्प किया, उन्होंने संतमत पर इसलिए प्रहार किया क्योंकि वह श्रुतिसम्मत नहीं था तथा वेदनिंदक था।" रामचरितमानस के सातवें सोपान में तुलसी की विचारधार मुखरित हुई है, इसे पूरे मानस का निचोड़ कहा जा सकता है।

"कबीर का आंदोलन विद्रोह मूलक है तो तुलसी का प्रतिरोधात्मक, इस दृष्टिकोण के कारण वे मानस को पौराणिक महाकाव्य बना देते हैं। उनकी मूल विचारधारा वर्णाश्रमधर्म की कोशिका है जो इस देश के सामंतवादी व्यवस्था का मूल आधार है, शुक्ल जी उनके इसी दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं।" नारी के संबंध में तुलसी का और उनका दृष्टिकोण सामंतवाद का पोषक ही ठहरता है।

तुलसी ने लिखा है :

"जिमि स्वतंत्र होई बिगरहि नारी,
केत बिधि सृजी नारि जग माहीं"

– – – –

"पराधीन सपनेहु सुख नाही।"

कहा जा सकता है "दृष्टि को जो प्रसार मानवजीवन के उतार–चढ़ाव को जो अनुभव जिंदगी की जो व्याप्ति, गहराई और वैविध्य रामचरितमानस में मिलता है, वह हिंदी साहित्य के किसी एक काव्य या महाकाव्य में नहीं मिलता है, यही पर वर्णाश्रम धर्म तिरोहित हो जाता है और सामंती अभिजात्य गायब हो जाता है, इसलिए तुलसी जनकवि है।"

जो स्थान धम्र और दर्शन में वेद उपनिषद एवं गीता का है, वहीं स्थान साहित्य एवं कला में रामायण, भागवत एवं रामचरितमानस का है। रामायण हिमालय है, रामचरेतमानस गंगा है। रामायण चंदनवन है, रामचरितमानस त्रिविधसमीर। रामायण भारत का हृदय है, महाभारत मस्तिष्क है, रामचरितमानस कंठ है। रामायण कर्म है, महाभारत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ज्ञान है, रामचरितमानस भक्ति है। संसार साहित्य में मानव के नैतिक मूल्यों का सबसे महान ग्रंथ है। मानस में कला की सीमाए भी हैं। मानस एक साथ ही सर्वाच्च कोटि का पुराण धर्मग्रथ, नीतिशास्त्र, भक्तिदर्शन और महानतम श्रेणी की कलाकृति है।

संसार के किसी कवि को वह दुलार प्यार और सम्मान प्राप्त नहीं हुआ जो तुलसी को शताब्दियों से प्राप्त होता जा रहा है। तुलसी के प्रति जनता की भक्ति दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। तुलसीदास संसार के महान जनकवि हैं। भारतीय समाज की सबलता और दुर्बलता, सम्पन्नता और विपन्नता, पाखण्ड और विडंबना, भूख और दरिद्रता आदि को जो चित्र तुलसीदास ने किया है वह अद्वितीय है। स्वस्थ यथार्थवादी दृष्टि से भी तुलसीदास संसार के प्रमुख महान कवियों में हैं। आश्चर्य है कि जो महाकवि, महान पंडित, महान चिंतक, महान साधक, महान सिद्ध और महात्मा है, वह महान जनकवि भी है। तुलसीदास संसार के किसी भी महाकवि के साथ बड़ी आसानी से खड़े किये जा सकते हैं।

नाभादास : तुलसी के समकालीन रामभक्त कवि नाभादास हैं, जिन्होंने 'भक्तमाल' परंपरा का सूत्रपात कर हिंदी जगत को सर्वश्रेष्ठ भक्तमाल दिया। उनके भक्तमाल का रचनाकाल 1596 ई0 है। भक्तमाल वह रचना है, जिसमें सभी भक्तों की जीवनी, प्रामाणिक परिचय और उदाहरण है। नाभादास का जन्म 1570 ई0 में हुआ था। यह अग्रदास के शिष्य थे। नाभादास के भक्तमाल को देखकर लगता है कि उन्हें संस्कृत, काव्यशास्त्र एवं छंदशास्त्र का अच्छा ज्ञान था। 'अष्टयाम' इनकी प्रमुख रचना है। इनके प्रमुख शिष्यों में प्रियादास का नाम सर्वोपरि है।

केशवदास (1556–1617 ई) :– प्रश्न यह है कि क्या रामचंद्रिका के आधार पर केशव को भक्तिकवि माना जा सकता है? इस लांछन से मुक्त होने के लिए केशव ने एक रात में रामचंद्रिका की रचना कर डाली, केशव की इस रचना का अभिप्राय राज्यसभा में बड़प्पन पाने से अधिक न था, रामचंद्रिका (1601 ई0) जैसे प्रबंध काव्य में प्रबंधत्व की कमी है, वर्णचमत्कार की अधिकता है।

डॉ. पीतांबरदत्त बड़थवाल के अनुसार :

''यह फुटकर कविताओं का संग्रह प्रतीत होता है, प्रबंधत्व के सारे विधान रामचंद्रिका में मौजूद हैं, पर आंतरिक प्रबंध टूटा हुआ है।''

केशव ओरछा नरेश महाराजा रामशाह के भाई इंद्रजीत की सभा में समादृत (सम्मानित) थे।

केशवदास द्वारा रचित 7 ग्रंथ निम्नलिखत हैं :

1. कविप्रिय
2. रसिकप्रिय
3. रामचंद्रिका
4. वीरसिंह चरित्र
5. विज्ञानगीता
6. रत्नबावनी
7. जहांगीरजसचंद्रिका

रामचंद्रिका रामकाव्य परंपरा में विशिष्ट कृति है जो 39 प्रकाशों (अध्यायों) में विभाजित है, जिसके अनेक प्रसंग प्रसन्नराघव, हनुमान नाटक और अनर्घराघव, कादंबरी और नैषध से प्रभावित हैं।

सेनापति : सेनापति के 'कवित्त रत्नाकर' में 4थी ओर 5वीं तरंगों (अध्याय) में रामकथा के विविध मधुर प्रसंग वर्णित हैं। ज्ञातव्य है कि 'कवित्तरत्नाकर' हिंदी में भावानुकूल ऋतु वर्णन के लिए प्रसिद्ध है।

अन्य रामभक्त कवि :

1.	प्राणचंद चौहान	रामायण महानाटक
2.	माधवदास चारण	रामरासो और अध्यात्मरामायण
3.	हृदयराम	हनुमाननाटक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4.	नरहरिबारहट	पौरुषेयरामायण
5.	लालदास	अवधविलास
6.	कर्पूरचंद तिरखा	गुरुमुखी लेपि में रामायण

अग्रदास : ये रामानंद की चौथी पीढ़ी में हुए थेः रामानंद, अनंतदास, श्रीकृष्णदास पयहारी, अग्रदास। अग्रदास श्रीकृष्णदास के शिष्य थे जो स्वयं गलतागद्दी के स्वामी थे। अग्रदास को अपने संप्रदाय में अग्रअली के नाम से जाना जाता है।

अग्रदास की तीन रचनाएं हैं :

1. ध्यानमंजरी
2. पदावली
3. कुंडलिया

रैवासा (जयपुर) इस संप्रदाय का सबसे बड़ा तीर्थ बन गया, इसी संप्रदाय में बालकृष्ण, बालअली, रामप्रियाशरण, प्रेमकली, रसमाला, रामप्रपन्न, मधुरप्रिया और सूवकिशोर आदि के नाम प्रमुख हैं।

एक मामा प्रयागदास हुए थे, जो स्वयं को सीताजी का छोटा भाई कहते हैं। इस नाते राम को बहनोई मानते हैं। वे कहते है :

"नीम के आगे खाट पड़ी है, खाट के नीचे करवा
प्रयागदास अलबेला सोवे, रामलला के सरवा।"

रीवानरेश महाराजा रघुवर सिंह रसिक उपासक संत थे। रसिक संप्रदाय में कृपानिवास, रामचरणदास, रामगुलामद्विवेदी, महाराजा विश्वनाथ सिंह, जीवाराम, कास्टजीवा स्वामी आदि प्रमुख संत है।

रामचरणदास (1760 ई) :– रामचरणदास रसिक संप्रदाय में ही हैं, जिन्होंने 'भुसुंडिरामायण' की रचना की है। इन्होंने स्वसुखी भाव की उपासना पति–पत्नि भाव से की है। रामचरणदास की रचना 'रामचरितमानस की टीक' बहुत प्रसिद्ध, ये 'मानस' के पहले टीकाकार हैं। स्वसुखी में भोक्ता का सुख है और तत्सुखी में द्रष्टा का जो स्वयं के लाभ को देखकर जो प्रसन्न होता है वह भोक्ता है और जो दूसरें के लाभ से सुखी हो वह द्रष्टा है।

रहीम (1556–1627 ई) :– रहीम अकबर के दरबार के सम्मानित सदस्य थे। दरबार में रहकर भी यह दरबारी नहीं थे अर्थात् इन्होंने चारण परंपरा का निर्वाह नहीं किया है। अकबर या किसी अन्य प्रशंसा में उन्होंने एक भी शब्द नहीं लिखा लेकिन तुलसी के सम्मान में उन्होंने कहा :

"सुरतिय नरतिय नागतिय अस चाहति सब कोय

गोद लिए हुलसी फिरे तुलसी सो सुत होय।"

3.9 सगुण भक्ति (कृष्ण भक्ति) स्वरूप और विशेषताएं

3.9.1 स्वरूप

भारतीय भक्तिभावना के विकास का चरम उत्कर्ष श्रीकृष्ण के लीलावपु प्रेममय स्वरूप में प्राप्त होता है। कृष्ण की प्रेममयी लीलाओं का अस्तित्व भारतीय लोकजीवन में अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। भक्तों की आत्मा के संगीत के रूप में उसकी अभिव्यक्ति भी बहुत पुरानी है, किन्तु आचार्यों की बुद्धि से अनुशासित उसका शास्त्रीय स्वरूप अपेक्षाकृत कुछ बाद में प्रस्तुत हुआ है। भक्तों ने भागवत धर्म का भावात्मक पक्ष प्रस्तुत किया और आचार्यों ने उसका बौद्धिक पक्ष। कृष्ण की प्रेममयी क्रीड़ाओं की कथा किसी एक कवि की कल्पना की देन नहीं, बल्कि एक दीर्घ विकासशील परम्परा का परिणाम है, जिसमें लोकमानस, भक्तों की भाव साधना और आचार्यों के आत्मानुशासित बौद्धिक प्रयास का योग है। भक्ति के बिन्दु, वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, महाभारत, विभिन्न सूत्रों, संहिताओं, पुराणों तथा शिलालेखों में यत्र–तत्र बिखरे पड़े हुए हैं, जिन्हें अपने भगीरथ प्रयत्न से एकत्र कर रामानुज, मध्व, निम्बार्क और बल्लभ ने भक्ति की गंगा ज्ञान के दुर्गम पर्वत के प्रतिरोध के बावजूद प्रवाहित की। इस भक्ति गंगा की धारा को छूकर

Uttarakhand Open University, Haldwani (A Unit of Vishva Bharati Institute (Deemed University)) Ladhun

बहनेवाली हवा के शीतल झोंकों ने ज्ञानियों के नीरस मानस को भी सरस कर दिया, जिसका फल कृष्ण भक्ति साहित्य है। कृष्ण कथा के सूत्र, छान्दोग्योपनिषद, पतजलि के महाभाष्य, बौद्ध घटजात, महाभारत, हरिवंश, भागवत आदि पुराण और साम्प्रदायिक उपनिषदों के अतिरिक्त अनेक साहित्य ग्रंथों में बिखरे हुए हैं। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर यही ज्ञात होता है कि आलवारों के भक्ति गीतों और रामानुज, मध्व, निम्बार्क तथा वल्लभ आदि आचार्यों के प्रयास से भक्ति गंगा दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित हुई। उत्तर भारत में राधाकृष्ण की भक्ति का शास्त्रीय ढंग से प्रतिपादन का आरम्भिक श्रेय निम्बार्काचार्य को है। उन्होंने अपनी 'दश श्लोकी' में राधाकृष्ण भक्ति का विवेचन किया है। निम्बार्क के प्रेरित इस राधाकृष्ण भक्ति आन्दोलन को उत्तर भारत में बल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु से ही ऐसी शक्ति और गति प्राप्त हुई, जिससे कृष्ण भक्ति आन्दोलन सम्पूर्ण उत्तर भारत में फैल गया।

उत्तर भारत में, विशेषतः ब्रज प्रदेश में, कृष्ण भक्ति के प्रेरणा स्रोत बल्लभाचार्य का जन्म वैशाख कृष्ण 11 रविवार संवत् 1535 (सन् 1478 ई0) में हुआ और देहावसान आषाढ़ शुक्ल 3 संवत् (सन् 1530 ई0) में माना जाता है। बल्लभाचार्य की जीवनी 'बल्लभादिग्विजय' में प्राप्त होती है। इनका जन्म गोदावरी के तट पर 'कारवाड' गांव में 'लक्ष्मण भट्ट' नामक एक तैलंग ब्राह्मण के यहां हुआ था। इनकी माता का नाम 'इल्लमा गारू' था। 10 वर्ष की आयु में ही बालक वल्लभ ने वेद, वेदान्त दर्शन और पुराणों का अध्ययन कर लिया। बल्लभाचार्य ने अनेक बार उत्तर और दक्षिण भारत की यात्राएं की और अनेक स्थलों पर वैष्णव आचार्यों से शास्त्रार्थ करके अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। अपनी दूसरी ब्रजयात्रा के समय ही इन्होंने संवत् 1556 (1499 ई0) में श्रीनाथ जी के प्रकट होने पर उनके मन्दिर की स्थापना की। बल्लभाचार्य जी के दो पुत्र थे गोपीनाथ और विट्ठलनाथ। विट्ठलनाथ ने ही बल्लभ संप्रदाय को संगठित और सुव्यवस्थित किया। वल्लभाचार्यजी के मुख्य ग्रंथ है– 1.) पूर्व मीमांसा भाष्य 2.) उत्तर मीमांसा या ब्रह्म 'सूत्र भाष्य', जो 'अणु भाष्य' के नाम से प्रसिद्ध है। 3.) श्री भागवत की सूक्ष्म टीका और सुबोधिनी टीका 4.) तत्वदीप निबंध, 5.) 16 छोटे–छोटे प्रकरण ग्रंथ। इन ग्रंथों में ही वल्लभाचार्य जी ने अपने दार्शनिक सिद्धान्त, भक्ति के स्वरूप और सेवा भाव के आचरण पक्ष का विवेचन किया है।

वल्लभचार्य जी का दार्शनिक सिद्धान्त 'शुद्धाद्वैत' कहलाता है और उसका आचरण पक्ष 'पुष्टिमार्ग' के नाम से जाना जाता है। वल्लभाचार्य ब्रह्म ओर जीवन की नितांत एकता के पक्षपाती हैं। इनके विचार से ब्रह्म नितांत विशुद्ध और माया के संपर्क से लेशमात्र भी संयुक्त नहीं है। मायाशबल ब्रह्म के माननेवाले शंकर वेदान्त से अपने मत की भिन्नता दिखाने के लिए इन्होंने अद्वैत से पूर्व 'शुद्ध शब्द' का प्रयोग कर अपने मत को 'शुद्धाद्वैत' के नाम से व्यवहृत किया है। शुद्धाद्वैत के नामकरण का कारण है– 'माया के संबंध में रहित होने के कारण ब्रह्म शुद्ध कहा जाता है और यही माया रहित स्वतंत्र ब्रह्म इस संसार में कार्य तथा कारण रूप में सर्वत्र व्याप्त है। इसी कारण यह मत 'शुद्धाद्वैत' के नाम से प्रसिद्ध है। आत्मा और परमात्मा के शुद्ध अद्वैत भाव का प्रतिपादन करने के कारण भी इनका सिद्धांत 'शुद्धाद्वैत' कहलाता है। वल्लभ के मत में ब्रह्म सर्वधर्म विशिष्ट अंगीकृत किया गया है। अतः उसमें विरुद्ध धर्मों की भी सत्ता है। अखिल रसामृतमूर्ति श्री आनन्दकन्द कृष्ण ही परम ब्रह्म हैं।

'सृष्टि' और 'संहार' दोनों भगवान की लीलाएं हैं। वल्लभाचार्य के अनुसार मार्ग के दो प्रकार हैं– (क) मर्यादा मार्ग (ख) पुष्टि मार्ग। मर्यादा वैदिक मार्ग है जिसमें लोकमर्यादा की रक्षा होती है, कर्मानुरूप फल प्राप्त होता है और उसका अन्तिम लक्ष्य है मोक्ष। यह मोक्षफल शास्त्रविहित ज्ञान और कर्म के आचरण से मिलता है। पुष्टिमार्ग श्रीमद्भागवत पुराण के सुन्दर सिद्धान्तों का विलास है। 'पुष्टि' शब्द जो भागवत की ही देन है, उसका अर्थ है– 'भगवदनुग्रह, भगवान का अनुग्रह, भगवान की कृपा'। 'पुष्टि' का प्रधान साधन है भक्ति–प्रपत्ति। पुष्टि मार्ग वही है जिसमें साधक सर्वथा समग्र विषयों को त्याग कर देह, वासना, कामना आदि समस्त पदार्थों का कृष्णार्पण कर देता है। पुष्टि भक्ति चार प्रकार की होती है– 1.) प्रवाह पुष्टि, 2) मर्यादा पुष्टि, 3) पुष्टि पुष्टि 4) शुद्ध पुष्टि। भगवदनुग्रह के बाद भक्त को प्रेमाभाक्ति प्राप्त होती है। प्रेमाभक्ति की विकास की अवस्थाएं हैं– प्रेम, आसक्ति और व्यसन। भक्ति का लक्ष्य राधाकृष्ण की शास्वत लीला में प्रवेश है।

3.9.2 कृष्णभक्ति का विकास

सगुण भक्ति के आराध्य देवताओं में कृष्ण का स्थान सर्वोपरी है। कृष्णकाव्य की परंपरा वैदिकयुग महाभारत, गीता एवं पुराणों में होती हुई कृष्णभक्ति की परंपरा संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश काव्यों में विकसित हुई, जिसे मध्यकाल में वल्लभ, राधावल्लभ आदि संप्रदायों ने अपने –अपने मत के अनुसार कृष्ण भक्ति का विकास किया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ऋगवेद के अष्टमोदशम मण्डल के कुछ सूक्तों (उप अध्याय) के रचयिता ऋषि कृष्ण हैं। यह कृष्ण का प्रथम उल्लेख है। 'छांदोज्ञ उपनिषद' मे आगिरस के शिष्य कृष्ण का उल्लेख है ,जिसे देवकी का पुत्र कहा गया। महाभारत में वर्णित कृष्ण का प्रारंभिक रूप सामान्य मानव का रूप है। बाद के संस्करणों में वे परब्रह्म, विष्णु, नारायण आदि परमदेव के रूप में परिवर्तित हो गये हैं।

युधिष्ठिर धर्म वृक्ष है, कृष्ण उसके मूल हैं। कृष्ण का वास्तविक दार्शनिक व्यक्तित्व 'गीता' में उजागर हुआ है। महाभारत और गीता के बाद पुराणों में कृष्ण का जो रुप विकसित हुआ, उसमें वासुदेव धर्म ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों से ही दक्षिण में पहुंच गया थ।, वहा उसका सम्मिश्रण अमीरों की प्रेममयी बालगोपाल उपासना से हुआ। फलतः गीता के वासुदेव तथा अमीरों के बालगोपालों की अभिन्नता स्थापित हुई। यही से पुराणों में गोपाल कृष्ण की कथाओं का सूत्रपात होता है।

गोपालकृष्ण तथा ब्रजनंदनकृष्ण की लीलाओं का प्रारंभ पुराणों से हुआ। पुराणग्रंथों में श्रीकृष्ण का आध्यात्मिक रूप भी पूर्णरूपेण व्यंजित हुआ है। अन्य अवतारों को अंशावतार और श्रीकृष्ण को पूर्णावतार पुराणों में ही कहा गया। भागवत पुराण में कृष्ण की महिमा का गान करते हुए कहा गया है कि समस्त वेद भगवान कृष्ण की आराधना करते हैं और योग साधना से कृष्ण की प्राप्ति होती है। कृष्ण के पारिवारिक परिवेश का चित्रण भी सब पुराणों की देन है, यह प्रसंग महाभारत में नहीं है। पुराणों के आधार पर एक ब्रजवासीकृष्ण हैं, दूसरे द्वारिकाधीश। दोनों के मध्य महाभारत के कृष्ण हैं। पुराणों के वर्णविषय ब्रजवासी लीलापरायण कृष्ण रहे हैं। पुराणों द्वारा वर्णित कृष्ण के स्वरूप में उनकी रुकमिणी और सत्यभामा आदि पटरानियों के साथ 16000 रानियों का वर्णन तथा हरिवंश और ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा का वर्णन भी यहीं से आरंभ होता है। आश्चर्य है कि राधा का जो महत्व मध्ययुग में है, वह कृष्ण विषयक प्रमुख पुराण भागवत में नहीं है। रासपंचाध्यायी में गोपियों के साथ कृष्ण रास लीलाओं का वर्णन मोहक वर्णन होने पर भी राधा का नामोल्लेखपूर्वक कही कोई संकेत नहीं है। फिर भी धीरे–धीरे मध्ययुग में कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हो गई और राधाकृष्ण शब्द, परब्रह्म की शक्ति का द्योतक बन गया। कृष्णलीलाओं का संस्कृतकाव्य में सबसे पहला उल्लेख अश्वघोष कृत 'ब्रह्मचरित्र' में मिलता है। इसके बाद कविहाल चरित गाहासतसई (गाथासप्तशती) में कृष्ण, राधा, यशोदा, गोपी आदि का उल्लेख है। राधा कैलिकुपित होकर रासलीला से विमुख होने पर कृष्ण के अनुनय, विनय मनुहार का चित्र भट्टनारायण कृत 'वेणीसंहार' नाटक में मिलता है। ये इस तथ्य का प्रमाण है कि कृष्ण की रासलीलाओं का प्रसंग तथा राधाकृष्ण का प्रसंग 8वीं शताब्दी में मिलता है।

जयदेव रचित 'गीतगोविन्द' कृष्णविषयक लीलाओं का प्रमुख काव्य है। कृष्णविषयक काव्यों का प्राचुर्य 12वी शताब्दी के बाद देखने को मिलता है। रूपगोस्वामी द्वारा रचित 'उज्ज्वलनीलमणि' एवं 'हरि भक्तिरससंवतसिंधं' तथा सनातन गोस्वामी कृत 'षट्संदर्भ' कृष्णभक्ति को साहित्य शास्त्र की रस परिपाटी पर स्थापित करने में सफल हुए। मध्ययुगीन कृष्ण कवियों ने इन ग्रंथां से कृष्णभक्ति की सामग्री संकलित की है। आधुनिक समस्त भारतीय भाषाओं में कृष्ण का आरंभ विद्यापति से होता है। राधाकृष्ण की प्रेमलीलाओं का वर्णन 'पदावली' में व्याप्त है। महाराष्ट्र के बारकरी अथवा जयकृष्णीय संप्रदाय में कृष्णभक्ति साहित्य की रचना हुई है। नामदेव के कुछ पदों में कृष्ण का सगुणभक्ति परम रूप उपलब्ध है। बंगाल में वैष्णव सहजिया संप्रदाय में ही राधाकृष्ण भक्ति का वर्णन मिलता है। रस और रति नाम से कृष्ण की राधा का उल्लेख भी इसी संप्रदाय की विशेषता है। विद्यापति के यहां, जयदेव एवं चंडीदास की परंपरा में 14वीं–15वीं शताब्दी में राधाकृष्ण प्रेम की मोहक कल्पना की गई है। उनके पदों को गाते–गाते चैतन्य महाप्रभु भाव–विभोर होकर मूर्छित हो जाते थे। मध्ययुगीन भक्ति संप्रदाय के अंतर्गत वल्लभाचार्य के अनुसार श्रीकृष्ण ही पूर्णानंदस्वरूप पूर्ण पुरुषोत्तम परमब्रह्म है। वे सत्चित् और आनन्द स्वरूप हैं। निम्बार्क संप्रदाय में कृष्ण के वामांगमें सुशोभित राधा के साथ कृष्ण की उपासना का विधान है। समस्त वस्तुओं के मूल स्रोत कृष्णब्रह्म ही है और भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए कृष्ण अवतार धारण करते हैं। राधावल्लभ संपदाय में कृष्ण नहीं राधा प्रमुख हैं। इसमें श्रीकृष्ण का उपास्य नाम राधावल्लभ ही है। राधावल्लभ या हरिदासी संप्रदाय (सखी संप्रदाय या टट्टी संप्रदाय) ललितकिशोर के समय से टट्टी संप्रदाय कहलाया, इसमें कृष्ण का स्वरूप इसी प्रकार वर्णित है। गौणीयसंप्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु है। इन्होंने श्रीकृष्ण को ब्रजेन्द्रकुमार कहा है। 'चैतन्य चरितामृतम' में ब्रजेन्द्रकुमार कृष्ण तथा गोलोक वासी कृष्ण में भिन्नता वर्णित है, यहां किशोरावस्थावाले कृष्ण का वर्णन है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3.9.3 वल्लभसंप्रदाय के कृष्णभक्त कवि

भगवतकृपा (अनुग्रह) को पुष्टि कहा जाता है:

"पुष्टि किम। भेद पोषणम् । पोषणम् किम । तदअनुग्रहः।"

इस पुष्टि पर पुष्टिमार्गी भक्ति अवलंबित है। वल्लभाचार्य ने जिस पुष्टिमार्गीय संप्रदाय की स्थापना की, उसका जिन हिंदी भक्त कवियों द्वारा पल्लवन किया गया उन्हें 'अष्टछाप कवि' कहते है। जिन आठ भक्तों पर आचार्य विट्ठलनाथ ने छाप लगाई, वे अष्टसखा या अष्टछाप के नाम से प्रचलित है। इनमें 4 आचार्य वल्लभ के तथा 4 विट्ठलनाथ के शिष्य है।

वल्लभाचार्य के चार शिष्य :

1. कुम्भनदास
2. सूरदास
3. परमानन्ददास
4. कृष्णदास

विट्ठलनाथ के चार शिष्य :

1. गोविन्दस्वामी
2. नंददास
3. छीतस्वामी
4. चतुर्भुजदास

अष्टयामसेवा, मंगलाचरण, श्रृंगार, ग्वाल, राजयोग, उत्थापन, भोग, संध्याआरती और शयन को इस संप्रदाय में बड़े समारोह से स्वीकार किया गया है। अष्टछाप की स्थापना 1565 ई0 में हुई थी। अष्टछाप की 'अष्टसखान की वार्ता' पर श्री हरिराय की 'भाव प्रकाश' नामक टिप्पणी में आतों सखाओं की लीलाभाव, लीलाशक्ति और विकृति स्वभाव का विस्तार से वर्णन है।

3.9.4 अष्टछाप का स्वरूप

अष्टछाप वल्लभ सम्प्रदाय का ही साहित्यिक रूप है। वल्लभाचार्य के पश्चात् गोसाई विट्ठलनाथ ने वल्लभ सम्प्रदाय को पूर्ण व्यवस्थित और संगठित करने के लिए अष्टछाप की स्थापना की। वल्लभ द्वारा प्रवर्तित पुष्टिमार्ग में अनेक भक्त दीक्षा ले चुके थे। गोसाई विट्ठलनाथ जी ने सर्वोत्तम कवि गायकों को चुनकार 'अष्टछाप' की प्रतिष्ठा की।

गोसाई जी ने चार अपने पिता बल्लभाचार्य के प्रिय शिष्यों और चार अपने प्रिय सेवकों को जो सम्प्रदाय मे प्रभु लीला–गान की दृष्टि से सर्वप्रमुख थे, अष्टछाप में सम्मिलित किया और उन पर अपनी कृपा की छाप लगाई।

अष्टछाप हिंदी की अष्टधातु की मुद्रा है, जिसको अमिट छाप हिन्दी भाष और साहित्य पर बहुत गहरी है। यह अष्टछाप की ही विशेषता है कि मध्यकाल के विद्वेष, घृणा और पारस्परिक वैमनस्य के जलते वातावरण में उसने धर्म, दर्शन, भक्ति, काव्य एंव संगीत आदि कलाओं की ऐसी विमल मधुर स्रोतवाहिनी बहाई, जिससे सहृदय आज तक रससिक्त और आनन्दमग्न होते आए हैं। अष्टछाप की प्रेरणा से समस्त भारतीय जीवन कृष्ण भक्ति के रंग में रंगा गया। चारोंओर मन्दिरों में, कृष्ण–संकीर्तन की पवित्र, मधुर और संगीतमय ध्वनि गूंज उठी। हमारे धार्मिक, साहित्यिक, सामाजिक एवं सम्पूर्ण सांस्कृतिक जीवन में अष्टछाप निःसंदेह एक जीवन संचारिण लहर बनकर आया। इसके प्रवर्तक आचार्यों एवं रस–सिद्ध कवियों का हिन्दी जगत में विशेष महत्व है।

अष्टछाप काव्य का धार्मिक महत्व अक्षुण्ण है। अष्टछाप काव्य का साहित्यिक महत्व सर्वविदित एवं सर्वमान्य है। अष्टछाप की स्थापना के साथ संगीत कीर्तन की उचित व्यवस्था करके उसका प्रचार किया गया। अष्टछाप का सामाजिक महत्व भी कम नहीं है।

3.9.5 अष्टछाप के कवि और उनकी सामान्य विशेषता

अष्टछाप के कवियों में सूरदास, नन्ददास तथा परमानन्ददास की बृहत्त्रयी है। शेष पांच कवियों में क्रमशः कुम्भनदास, कृष्णदास, चतुर्भुजदास मध्यम श्रेणी के और गोविन्दस्वामी एवं छीतस्वामी की रचनाएं साधारण श्रेणी की हैं, परन्तु प्रकाशन की दृष्टि से अष्टछाप के सभी कवि अपना–अपना महत्व रखते हैं। अष्टछाप के कवियों के भक्तिरस से पूर्ण अनेक असंख्य पद आज भी भक्तों को भगवत्प्रेम से रससिक्त करते हैं।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अष्टछाप के सभी कवि संगीत कला के मर्मज्ञ थे। अतः उन्होंने भिन्न–भिन्न राग–रागिनियों में संगीतमय पदों की रचना की। इसके द्वारा सगीत की ध्रुपद आदि शैलियों का बहुत विकास हुआ। तानसेन जैसे विश्वविख्यात गवैये भी सूरदास आदि अष्टछापी कवियों की कला से प्रभावित हुए।

विधर्मी संस्कृति और धर्म के आघातों से जाति की रक्षा का श्रेय निश्चय ही इस सम्प्रदाय एवं इसके कवियों को भी है। समस्त हिन्दू जाति को कृष्ण भक्ति भावना की लड़ी से पिरो कर अष्टछाप कवियों ने 'जातीयता' की भावना को दृढ़ करने तथा जातीय सुरक्षा का महत्वपूर्ण कार्य किया। हिन्दुओं में अपने परम्परागत शास्त्र ग्रंथों, वैष्णव धर्म, अपने अवतारों एवं धार्मिक विचारों के प्रति आस्था, श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न करने के साथ रहीम, रसखान जैसे मुसलमान दरबारियों में हिन्दू भावना एवं कृष्ण प्रेम उत्पन्न करने का महत्वपूर्ण कार्य भी इनके द्वारा हुआ।

ब्रजभाषा काव्य का साहित्यिक प्रसार भी इन्हीं अष्टछाप कवियों द्वारा हुआ। इन कवियों के अनुकरण पर ही वैष्णव धर्म के कई अन्य सम्प्रदायों ने भी ब्रजभाषा काव्य की श्रीवृद्धि की। अष्टछाप के ही प्रसाद से हिन्दी कविता में ब्रजभाषा की ऐसी प्रतिष्ठा हुई कि न केवल भक्तिकाल तथा रीतिकाल, अपितु आधुनिक युग के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जगन्नाथदास 'रत्नाकर' जैसे रससिद्ध कवि अष्टछाप के ऋणी हैं।

ब्रजभाषा के गद्य साहित्य और गद्य रूप की उन्नति का श्रेय भी इन्हें है, क्योंकि इसके प्रासंगिक चरित्र वार्तारूप में ब्रजभाषा गद्य में रचे गए, जिनका भाषागत महत्व होने के साथ–साथ ऐतिहासिक महत्व भी कम नहीं है। अष्टछापी कवियों में भावप्रवणता अत्यधिक मिलती है। अतः अष्टछाप काव्य का भावपक्ष भी बहुत सबल है। अष्टछाप के कवियों ने रति भाव का व्यापक एवं गम्भीर चित्रण किया है। रति के तीन प्रमुख– वात्सल्य, दाम्पत्य एवं भगवद् रति का विस्तृत मनोवैज्ञानिक एवं गम्भीर चित्रण मिलता है। शृंगार रस के विभिन्न प्रसंगों के अनेक सुन्दर शब्दचित्र, भावचित्र और ध्वनिचित्र, सूर, नन्ददास एवं परमानन्ददास के काव्यों में मिलते हैं। नन्ददास की 'रसमंजरी' ने नायिका भेद की स्वतंत्र रचनाओं की परिपाटी को भी प्रोत्साहन दिया। अष्टछाप के कवि भक्त पहले हैं कवि बाद में। भक्ति के प्रायः सभी रूप इनके काव्यों में मिलते हैं। विनयभक्ति, वात्सल्यभक्ति, सख्यभक्ति, माधुर्यभक्ति तथा शान्तभक्ति सभी का आधार पुष्टि मार्गीय भक्ति है, जिसमें प्रभु कृष्ण के प्रति सर्वभक्ति समर्पण की भावना रहती है। अष्टछाप के कवि हिन्दी साहित्य में नई काव्यपरम्पराओं के प्रतिष्ठापक एवं प्रेरक भी हैं। हिन्दी के भ्रमरगीत काव्य की परम्परा इन्हीं के द्वारा विशेष प्रोत्साहित हुई। नखशिख वर्णन, षड्ऋतु वर्णन आदि इनके अनुकरण पर आगे के कवियों ने किया। हिन्दी गीति काव्य भी इन्हीं के हाथों समुन्नत हुआ। हिन्दी में गीति साहित्य को प्रौढ़ एवं पुष्ट करने में सूरदास का विशेष योग है।

– इन कवियों ने भागवत् के दशमस्कंध, विष्णु पुराण एवं वायु पुराण से प्रेरणा ली।

– इन कवियों ने भी भगवान् के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों को स्वीकार किया है। निर्गुण की उपासना दुष्कर समझकर इन्होंने सगुण लीला के पद गाये।

– उपासना पद्धति सख्य भाव की।

– इनके आराध्य महाभारत के योगेश्वर कृष्ण नहीं वरन् भागवत् के लीलाबिहारी कृष्ण हैं। उन्होंने कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन का चित्रण न करके उनके लोकरंजक रूपक का ही – बाल लीला एवं गोपी विरह आदि का वर्णन किया है।

– ये कवि वल्लभाचार्य के पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित थे।

– इन कवियों ने प्रायः चार प्रकार के पद लिखे हैं – (i) विनय के पद, (ii) अवतार–कथा सम्बन्धी, (iii) कृष्ण लीला सम्बन्धी और (iv) दार्शनिक पद। विनय के पदों में गुरु महिमा संत एवं सत्संग महिमा तथा आराध्य के समक्ष आत्मनिवेदन है। अवतार सम्बन्धी पदों में अवतारों का वर्णन है। बाल लीला, मुरली माधुरी, गोपी प्रेम, गोरी विरह आदि का वर्णन लीला सम्बन्धी पदों में है। उपासना की दार्शनिक मान्यताओं का वर्णन दार्शनिक पदों में हैं। वर्ण्य विषय की एकरूपता एवं भावरागय के कारण पुनरुक्ति की बहुलता है।

– प्रायः सभी कवियों ने भ्रमर गीत लिखे हैं।

– इन कवियों ने भी चारण काव्य नहीं लिखा – 'भक्तान को कहा सीकरी सो काम।'

– उनके काव्य में कर्म, ज्ञान तथा योग से भक्ति को श्रेष्ठ बताया गया है।

– प्रेम के समक्ष शास्त्रीय मर्यादाओं की उपेक्षा की गई है। उपासना एवं व्यंग्य की प्रमुखता है।

– काव्य, भक्ति एवं संगीत तीनों का अद्भुत समन्वय है।

– अलंकार – प्रायः सभी अलंकारों की स्वाभाविक योजना है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह, अतिश्योक्ति आदि की बहुलता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

– रस– शान्त, अद्‌भुत, शृंगार और वात्सल्य। शृंगार के दोनों पक्ष– संयोग और विप्रलम्भ – का सुन्दर चित्रण है।
– शैली–गेय पदों में मुक्तक रचनाएँ है।
– भाषा–अत्यन्त मधुर ब्रज भाषा है।

3.9.6 अष्टछाप के कवियों का महत्त्व

"भारत के धार्मिक इतिहास में वैष्णवी भावना का प्रचार तथा प्रसार 16वीं एवं 17वीं शताब्दियों में इन अष्ट कवियों द्वारा हुआ। अष्टछाप के कवि संगीतकला के मर्मज्ञ थे, इनके द्वारा संगीत की द्रुपद आदि शैलियों का बहुत विकास हुआ। गायन विद्या और संगीत कला के विकास में इन अष्टछाप कवियों का विशेष योगदान है। ब्रजभाषा काव्य के विकास में अष्टछाप के कवियों का प्रभाव रीतिकाल से आधुनिक काल की भारतेंदु रत्नाकर तक अष्टछाप के ऋणी हैं।"

अष्टछाप के कवियों में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान भक्ति शिरोमणी महाकवि सूरदास का है, जिन्हें स्वामी विट्ठलनाथ ने 'पुष्टिमार्ग का जहाज' कहा है। अष्टछाप के कवियों ने सबसे ऊँची तान सूर की वीणा की थी।

सूर ने अपनी रचनाओं का आधार 'श्रीमद्‌भागवत पुराण' से ग्रहण किया है। भागवत के कृष्ण शक्ति के प्रतीक हैं और सूर के कृष्ण के चरित्र में प्रेम और मधुरता की प्रमुखता है। सूर ने कृष्ण के जीवन के उत्तरार्द्ध का वर्णन नहीं किया है। सूर के काव्य में गोचारण युग की संस्कृति की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति हुई है।

श्री हरिराय कृत 'प्रकाशावली चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में लिखा है कि सूरदास का जन्म दिल्ली के निकट ब्रज की ओर स्थित सीही नाम गांव में सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वैराग्य लेने के बाद में ये गौघाट पर निवास करते थे, जहां वल्लभाचार्य से उनका साक्षात्कार हुआ था।

भागवतपुराण को उपजीव्य (आधारग्रंथ और स्रोत) मानकर सूरदास ने राधाकृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन सूर सागर में किया है। भागवत की द्वादश स्कंधों की एकरूपता के कारण कुछ लोग इसे भागवत का अनुवाद समझने की भूल कर बैठते हैं। सूर की भक्तिपद्धति का मेरुदण्ड पुष्टिमार्गीय भक्ति है। राधा को कृष्ण की शक्ति का प्रतीक माना गया है। पुष्टिमार्ग में स्वीकृत रागानुरागभक्ति ही उन्हें इष्ट रही है और उनके दोनों पक्षों कामरूपा और संबंधरूपा का वर्णन किया है। शान्त एवं वात्सल्य रसों का सख्य एवं माधुर्य भक्तिरस समन्वित सफल वर्णन सूर की वाणी से अभिव्यक्त है। सूरसागर में विनय के पदों को प्रथम स्कंध में रखा गया है। सूरदास की प्रतिभा का चरम उत्कर्ष सूरसागर के 10वें स्कध में दिखाई पड़ता है। 10वें स्कंध में कृष्ण की बाललीलाएं तथा यौवन की लीलाएं प्रमुख है। इसमें मुख्य रूप से 5 विषयों पर उनका ध्यान केंन्द्रित है :

1. बाललीला
2. गोचारण
3. बंशीवादन
4. रास
5. भ्रमरगीत, इसका प्रसंग सबसे विस्तृत और मर्मस्पर्शी है।

3.9.7 कृष्ण भक्ति के प्रमुख कवि एवं संप्रदाय

कुम्भनदास :

कुम्भनदास के जीवन चरित्र का आधार वार्ता साहित्य है। इनका जन्म संवत् 1525 (सन् 1468 ई0) में हआ था। ये क्षत्रीय थे। जीवन के आरम्भिक काल रो ही काव्य रचना और रांगीत गें इनकी रुचि थी। कुम्भनदारा रांवत् 1556 (सन् 1499 ई0) के करीब वल्लभाचार्य के शिष्य हुए थे। ये अष्टछाप के कवि और संगीतज्ञ थे। वार्ता साहित्य के आधार पर ऐसा ज्ञात होता है कि कुम्भनदास के संगीत और काव्य रचना की ख्याति सुनकर अकबर ने फतेहपुर सीकरी में कुम्भनदास को बुलाया जहां अकबर के सामने उन्होंने यह पद गाया–

"संतन को कहा सीकरी सों काम
आवत जात पनहियां टूटी बिसरी गये हरि नाम।
जिनको मुख देखे दुख उपजत तिनको करिबे परी सलाम।
कुम्भनदास लाल गिरधर बिनु और सबै बेकाम।"

इस पद से कुम्भनदास की निर्भीकता और दृढ़ भक्तिभावना का परिचय मिलता है।

Rashtriya Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

परमानन्ददास :

इनका जन्म संवत् 1550 (सन् 1493 ई0) की मार्गशीर्ष शु0 7 सोमवार की कन्नौज में हुआ था। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। बचपन से ही काव्य और संगीत से प्रेम था। संवत् 1577 (सन् 1520 ई0) में ये बल्लभाचार्य जी के शिष्य हुए। ये अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि और कीर्तनकार थे। संवत् 1641 (सन् 1580 ई0) में इनका देहावसन हो गया। परमानन्ददास ने विशेषतः कृष्ण तथा राधा विषयक फुटकल पदों की रचना की। सूरदास के अतिरिक्त अष्टछाप के कवियों में वात्सल्य के ये दूसरे प्रसिद्ध कवि हैं। परमानन्ददास ने श्रृंगार के पदों की भी रचना की है, जिनसे उनकी भक्ति भावना और कवि निपुणता का परिचय मिलता है। परमानन्ददास द्वारा रचित निम्नकिंत ग्रंथ कहे जाते हैं–

1.) परमानन्द सागर, 2.) परमानन्ददास जी को पद, 3.) दान लीला, 4.) उद्धवलीला, 5.) ध्रुव चरित्र और 6.) संस्कृत रत्नमाला। इन ग्रंथों में केवल परमानन्द सागर ही उनकी स्वतंत्र एवं प्रामाणिक रचना है। बाल लीला का निम्न पद दर्शनीय है–

रहि री ग्वालिनि ! जोबन मद माती।
मेरे छगन मगन से लालहि कत लै उछंग लगावत छाती।
खीझत तें अबहीं राखे हैं नान्हीं उठत दूध की दाँती।
खेलन दै घर जाहु आपने, डोलत कहा इतौ इतराती।
उठि चली ग्वालि लाल लागे रोवन तब जसुमति लाई बहु भांती।
परमानन्द ओट दै चंवल फिरि आई नैन मुसिक्याती।

कृष्णदास :

कृष्णदास का जन्म संवत् 1553 (सन्1496 ई0) में गुजरात के 'चिलोतरा' नामक ग्राम में हुआ था। कृष्णदास संवत् 1537 (सन् 1510 ई0) में वल्लभाचार्य जी के शिष्य हुए। कृष्णदास के अतिरिक्त एक कुशल प्रबन्धक भी थे। इसलिए ये श्रीनाथ जी के मन्दिर के अधिकारी। ये आजीवन अविवाहित थे। कृष्णदास ने श्रीनाथ जी के मन्दिर से बंगाली पुजारियों को हटाकर अत्यन्त चतुरता से उस पर अधिकार किया। कृष्णदास के जीवन और मन्दिर संबंधी कार्यकलापों के विवरण से लगता है कि उनमें भक्त की भावुकता और उदारता कम, प्रशासक की दृढ़ता और कुशलता अधिक थी। कृष्णदास को गुजराती भाषा की प्रारम्भिक शिक्षा अपनी जन्मभूमि में प्राप्त हुई होगी, किन्तु ब्रजभाषा काव्य और संगीत का ज्ञान इन्हें ब्रज प्रदेश में ही हुआ। कृष्णदास, प्रायः सूरदास की प्रतियोगिता में पदरचना करते थे। अतः सूरदास के पदों के भाव और शैली का इन पर पर्याप्त प्रभाव है। रासलीला में इनकी विशेष आसक्ति थी। अतः इनके अधिक पद श्रृंगार परक हैं–

तेरे चपल नैन जो खंजन तै नीके।
ताप हरन अति विदित बिस्व महि देखत सब दल लागत फीके।
स्याम स्वेत राते अनियारे गिरधर कुंजर रसद सुख जी के।
कृष्णदास सुरति कौतुक बस प्यारी दुलरावति आपने पिय के।

गोविन्दस्वामी :

गोविन्दस्वामी का जन्म संवत् 1562 (सन् 1505 ई0) में वर्तमान भरतपुर के 'आन्तरी' ग्राम में हुआ थ। वे सनाढ्य ब्राह्मण थे। कुछ समय तक गृहस्थ जीवन बिताने के पश्चात् सांसारिक प्रपंचों से विरक्त होकर वे भगवत भजन करने लगे। इन्होंने काव्य और संगीतशास्त्र का अध्ययन किया था। वे संगीत के आचार्य और उच्चकोटि के गायक थे। संवत् 1592 (सन् 1535 ई0) में गोविन्दस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य हुए। इनके संगीत ज्ञान और गायन कला पर तानसेन भी मुग्ध थे। कहा जाता है कि विट्ठलनाथ जी के देहावसान का समाचार सुनकर गोविन्द स्वामी ने संवत् 1642 (सन् 1585 ई0) में ही शरीर त्याग किया। गोविन्द स्वामी जितने अच्छे गायक थे उतने अच्छे कवि नहीं थे। राधाकृष्ण के श्रृंगारलीला विषयक पदों की रचना इन्होंने की है। इनके कुछ बाल–लीला के पद भी उपलब्ध हैं।

श्रृंगार लीला विषयक एक पद देखिए–

पिय जु करत मनुहारी समुझि देखि री पिय प्यारी।
कुंज के द्वार कब के बैठे सोहन, ललना निठुर वृषभानु दुलारी।।
अलक संवारन के मिसि भामिनि, फिरत पिया तक नैन निवारी।
गोविन्द प्रभु रूप देखि पिया को सुख भयो तन दृष्टि सों भरत अंकवारी।।

Jawaharlal Nehru Bhartiya Institute (Deemed University) Ladnun

छीतस्वामी :

इनका जन्म संवत् 1572 (सन् 1515 ई0) के लगभग मथुरा में हुआ था। अपने आरम्भिक जीवन में ये बड़े दुष्ट प्रकृति के व्यक्ति थे। आरम्भ में ये शैव थे। विट्ठलनाथ जी के प्रभाव से इनका हृदय परिवर्तन हुआ और संवत् 1592 (सन् 1535 ई0) में ये पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित होने के बाद ये गोवर्द्धन के पास ही रहने लगे। ये अष्टछाप के एक अच्छे कवि थे। इनका देहावसान संवत् 1642 (सन् 1585 ई0) के करीब हुआ। इन्होंने किसी सुव्यवस्थित काव्य ग्रंथ की रचना नहीं की, किन्तु इनके कुछ फुटकल पद मिलते हैं।

कृष्ण आसक्ति विषयक इनका एक पद इस तरह है–

मेरी अंखियन के भूषन गिरधारी।
बलि बलि जाऊँ छबली छबि पर, अति आनन्द सुखकारी।
परम उदार चतुर चिंतामनि, दरस परस दुःख हारी।
अतुल सुभाव तनक तुलसी दल मानत सेवा भारी।
'छीतस्वामी' गिरिधरन विसद, जस गावत है कुल नारी।
कहा वरन गुन नाथ के श्री विट्ठल हृदय बिहारी।

चतुर्भुजदास :

इनका जन्म संवत् 1585 (सन् 1530 ई0) के लगभग गोवर्द्धन के पास 'जमुनावती' ग्राम में हुआ था। ये अष्टछाप के कवि कुम्भनदास के सबसे छोटे पुत्र थे। बचपन से ही श्रीकृष्ण भक्ति में इनका मन रमा था। संवत् 1697 (सन् 1640 ई0) में विट्ठलनाथ जी से दीक्षित होकर वे सम्प्रदाय में प्रविष्ट हुए। बचपन से ही इन्हें काव्य और संगीत की शिक्षा मिली थी तथा काव्य रचना में भी इनकी प्रवृत्ति और गति थी। सम्प्रदाय में इनका सम्यक् सम्मान था। सम्भवतः संवत् 1642 (सन् 1585 ई0) में इनका देहावसान हुआ। चतुर्भजदास ने कीर्तन के स्फुट पदों की रचना की थी। अपने पदों में उन्होंने श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर गोपी विरह तक की ब्रजलीला का गायन किया है–

प्रानपति बिहरति जमुना कूले।
लुब्ध मकरंद के बस भयो भँवर ज्यों, देखि रवि उदय मानो कम फूले।
करत गुंजार लै मुरली ज साँवरो, सुनत ब्रजवधु तन–सुधि जू भूले।
चतुर्भुजदास प्रभु जमुने प्रेम सिंधु में लाल गिरधरन राखि कूले।

नन्ददास :

नन्ददास का अष्टछाप के कवियों में सूरदास के बाद महत्वपूर्ण स्थान है। इनका जन्म संवत् 1950 (सन् 1893 ई0) के लगभग 'सूकर क्षेत्र' के पास 'रामपुर' ग्राम में हुआ। ये सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम जीवाराम था। कहा जाता है कि ये रामभक्त गोस्वामी तुलसीदास जी के छोटे भाई थे और दोनों भाइयों ने एक साथ नरसिंह पण्डित से शिक्षा प्राप्त की थी। जीवन के प्रारम्भिक काल में यद्यपि ये भक्ति शास्त्र से परिचित थे, पर भक्तिभावना से भावित नहीं थे। ये प्रारम्भ में अत्यन्त रागी व्यक्ति थे, किन्तु बाद में इन्होंने अपने सम्पूर्ण रागों का कृष्णार्पण कर दिया और कृष्ण भक्त बन गए। संवत् 1608 (सन् 1550 ई0) में ये विट्ठलनाथ जी के शिष्य हो गये और पुष्टि सम्प्रदाय में सम्मिलित हुए। काव्य निपुणता के कारण शीघ्र ही सम्प्रदाय में इन्हें सम्मान प्राप्त हुआ। पृष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित होने के पश्चात् भी एक बार वे गृहस्थ जीवन बिताने के लिए गांव में रहने लगे। सम्भवतः पहली बार नन्ददास जी की वासनाएं दमित थीं। उनका क्षय नहीं हुआ था। कुछ दिनों के गृहस्थ जीवन के बाद वे पुनः गोवर्द्धन चले आए और श्रीनाथ जी की सेवा में लग गए। संवत् 1640 (सन् 1583 ई0) के लगभग इनका देहान्त हुआ। नन्दास ने फुटकल पदों एवं अनेक ग्रंथों की रचना की है। उनके ग्रंथ हैं– 1.) अनेकार्थ मंजरी (अनेकार्थ नाममाला अनेकार्थ भाषा), 2.) मान मंजरी (नाममंजरी, नाममाला, नामचिंतामणि माला), 3.) रसमंजरी, 4.) रूपमंजरी, 5.) विरहमंजरी, 6.) प्रेम बारहखड़ी, 7.) स्यामसगाई, 8.) सुदामाचरित्र, 9.) रुक्मिणी मंगल, 10.) भंवरगीत, 11.) रासपंचाध्यायी, 12) सिद्धान्त पंचाध्यायी 13) दसम स्कंध भाषा, 14) गोवर्द्धन लीला और 15) पदावली।

नन्ददास के साहित्य से ज्ञात होता है कि इन्हें काव्यशास्त्र और दर्शन का अच्छा ज्ञान प्राप्त था। 'अनेकार्थ भाषा' और 'नाममाला' जैसे कोष ग्रंथों की रचना से उनका भाषाविषयक ज्ञान प्रमाणित होता है। ऐसा ज्ञात होता है कि अपने ग्रंथों के साथ 'मंजरी' शब्द लगाना उन्हें विशेष प्रिय था। 'रूपमंजरी' और 'रंसमंजरी' चौपाई छन्द में लिखी गई

Rani Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रचनाएं हैं। 'रस मंजरी' में नायिका भेद का सांगोपांग वर्णन है। 'रूपमंजरी' और 'रसमंजरी' ये दो पुस्तकें रीतिकाल की भूमिका प्रस्तुत करती है।

नन्ददास की काव्यकला की विशेषताएं हैं– भाषा की मधुरता और शब्दों की सजावट। वे उपयुक्त शब्दों की कलात्मक ढंग से सजाने से सिद्धहसत थे, इसलिए 'और कवि गढ़िया नन्ददास जड़िया' की उक्ति प्रचलित है। नन्ददास भाषा और साहित्यशास्त्र के पंडित थे। इनके साहित्य में माधुर्य और प्रसाद दो गुणों का उत्कर्ष हुआ है। भक्तमाल में नाभादास जी ने नन्ददास के लिए ठीक ही लिखा है–

"लीला–पर रस–रीति, ग्रंथ रचना में नागर।
सरस उक्ति जुत जुक्ति, भक्तिरस गान उजागर।"

राधा वल्लभ सम्प्रदाय :

राधावल्लभ संप्रदाय का प्रवर्तन हितहरिवंश गोस्वामी ने 1534 ई. में वृंदावन में किया था, इसमें प्रेम को ही भक्ति तथा संप्रदाय का मूल आधार माना जाता है, इस संप्रदाय में न मुक्ति की कोई कामना है, न मुक्ति के लिए कोई स्थान है। मुख्य रूप से 'नित्यविहारदर्शन' ही सहचरी का उपास्य भाव है, जिसकी प्राप्ति केवल प्रेम से ही हो सकती है, नित्यविहार के विधायक केवल चार तत्व हैं :

1. कृष्ण
2. राधा
3. सहचरी
4. वृंदावन

प्रेम में सत्सुखी भाव को स्थान देने की जैसी चेष्टा यहां है वैसी अन्यत्र कहीं नहीं।

हितहरिवंश गोस्वामी की 2 रचनाएं हैं :

1. हितचौरासी
2. स्फुटवाणी

विट्ठलनाथ को लिखे कुछ पत्र भी उपलब्ध हुए हैं।

राधावल्लभ संप्रदाय से संबधित नाम :

1. दामोदरदास
2. हरिरामव्यास
3. चतुर्भुजदास (अष्टछाप से अलग)
4. ध्रुवदास

निम्बार्क संप्रदाय :

निम्बार्क संप्रदाय के आदि उपदेष्टा श्री हंस भगवान हैं, उनसे सनक और सनकादि को उपदेश मिला। इस उपदेश को नारदमुनि ने ग्रहण किया। नारदमुनि ने इसे ग्रहण करके निम्बार्काचार्य को दिया। निम्बार्काचार्य का जन्म मैसूर प्रदेश के वेल्लारी जिले के निंबापुर में हुआ था। शैशवकाल में इनका नाम नियमानंद था। निंबार्क का अर्थ नीम के पेड़ पर बैठकर सूर्य का दर्शन करानेवाला है।

निंबार्काचार्य की रचनाएं :

1. वेदांतपारिजात सौरभम् (ब्रह्मसूत्र पर लिखित भाष्य)
2. दशश्लोकी
3. श्रीकृष्णस्तवराज
4. मंत्ररहस्यषोड्सी
5. प्रपन्न कल्पवल्ली

Jainvishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

निम्बार्क संप्रदाय के प्रमुख संत श्री भट्ट हैं। इनकी रचना का नाम 'युगलशतक' (जुगलशतक) है। इनके शिष्य हरिव्यासदेव है। जिनकी रचना 'महावाणी' है। इसमें पाचसुखों (अध्याय) में विभक्त राधाकृष्ण के दार्शनिक रूप की व्याख्या मिलती है। पांच सुखों (अध्याय) के नाम हैं–

1. सेवा सुख
2. उत्साह सुख
3. सुरत सुख
4. सहज सुख
5. सिद्धान्त सुख

हरिव्यासदेव के शिष्य परशुरामदेव थे। ये निंबार्क संप्रदाय की गद्दी को ब्रज से सलेमाबाद ले गए। राजस्थान में निंबार्क संप्रदाय के प्रचार का श्रेय परशुराम को ही है। उनकी प्रमुख रचना का नाम 'परशुराम सागर'' है।

हरिदासी संप्रदाय या सखी संप्रदाय :

हरिदासी या सखी संप्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास हैं। यह संप्रदाय बहुत समय तक निंबार्क संप्रदाय की एक शाखा के रूप में ही प्रतिष्ठित रहा। सखी संप्रदाय की शिष्य परंपरा में बिहारिनदास, नागरीदास और सरसदास आदि इसे हरिदास से जोड़ते हैं। इस हरिदासी संप्रदाय के एक रीतिकालीन कवि भक्त रसिक हैं। 'टट्टी संप्रदाय' का नाम मिश्रबंधुओं द्वारा दिया गया है। स्वामी हरिदास से लगभग 200 वर्ष बाद ललितमोहन जी ने वृंदावन में जो स्थान बनाया उन्होंने उसके चारोंओर बांस की टट्टियां बना दी। इसलिए यह स्थान 'टट्टी संप्रदाय' के नाम से प्रचलित हो गया और इसके प्रवर्तक स्वामी हरिदास जी कहे जाने लगे। वस्तुतः यह सखी या हरिदासी संप्रदाय ही है। बिहारिनदास गुरूदेव नाम से प्रसिद्ध हैं। सखी संप्रदाय की शिष्य परंपरा के संत नागरीदास की रचना का नाम बिहारिन जी की वाणी है।

चैतन्य या गौणीय संप्रदाय : चैतन्य या गौणीय संप्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु हैं। चैतन्य महाप्रभु का समय 1486–1533 ई. है। इनका जन्म बंगाल में हुआ था। चैतन्य महाप्रभु के बचपन का नाम विश्वम्भर या निमाई था। सुंदरता के कारण इनका गौर या गौरांग नाम भी है। चैतन्य मत का दार्षनिक सिद्धान्त 'अचिंत्यभेदाभेद' है। चैतन्य या गौणीय संप्रदाय के प्रचारक–प्रसारक निम्नलिखित हैं–

1. रामराय
2. सूरदास
3. मदनमोहन
4. गदाधर भट्ट
5. माधवदास माधुरी
6. भगवतमुदित

संप्रदाय निरपेक्ष :

मीरां: मीरां का जन्म मेड़ता के निकट 1498 में कुडकी गांव में राठौड़ वंश की मेड़तिया शाखा में हुआ था। मेड़तिया शाखा के प्रवर्तक रावदूदा थे। मीरां दूदा के पुत्र रावरतन की पुत्री थीं। मीरां ने कृष्ण को 'बालस्नेही' कहा है। मीरां का विवाह राणासांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज से हुआ था। मीरां को युवावस्था में प्राप्त वैधव्य के कारण वैराग्य उत्पन्न हो गया। जीवन की अनेक दुखद घटनाओं ने मीरां को संसार की ओर से हटाया और कृष्ण की ओर उन्मुख किया। मीरां की मृत्यु सन् 1573 में हुई थी।

मीरां की रचनाएं :

1. नरसी जी रो मायरो
2. गीत गोविन्द की हिंदी टीका
3. राग गोविंद
4. सोरठ के पद
5. मीरांबाई का मलार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6. गरबागीत
7. फुटकर पदों की रचना

मीरांबाई के कृष्णलीला विषयक 200 पद प्राप्त हैं। मीरांबाई के पदों का मुख्य विषय उनकी आभ्यांतरिक सघन विरहानुभूति का प्रकाशन है।

मीरां की अन्य रचनाएं :

1. सत्यभानुमरूषणम्
2. गीतगोविंद की टीका
3. नरसी जी का मायरा
4. राग सोरठा पद
5. मलार राग
6. राग गोविन्द
7. मीरां की गरबी
8. रुकमणी मंगल
9. नरसी मेहता की हुंडी
10. चरित और स्फुट पद

इनमें स्फुट पदों को छोड़कर शेष अप्रामाणिक हैं। उनके प्रस्फुट पद मीरांबाई की पदावली नाम से प्रकाशित है। भाव एवं भाषा की अकृत्रिमता मीरां के पदों की विशेषता है। राग–रागिनी पर आधारित उनकी रचना 'मीरा की मलार' है। निम्नलिखित पंक्ति मीरां के सम्पूर्ण जीवन का गुणगान कर देती है। कहा जा सकता है–

''मीरां का सम्पूर्ण जीवन और काव्य वेदना का एक प्रगीत है।''

रसखान :

रसखान का समय 16वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। रसखान का मूलनाम सैयद इब्राहिम था। रसखान की भक्ति पर रीझकर भारतेन्दु ने लिखा था: ''इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिक हिंदु वारिये।'' रसखान का कोई प्रामाणिक वृत्त नहीं मिलता, अपनी रचना 'प्रेमवाटिका' में उन्होंने सदर का संकेत किया है। इस आधार पर उनका समय 1855 ई0 के आस–पास अनुमित किया जाता है। कहा जाता है कि उन्होंने वल्लभ संप्रदाय के स्वामी विट्ठलनाथ से दीक्षा ली थी। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' तथा 'मूलगोसाईचरित्र' में रसखान का उल्लेख मिलता है।

रसखान की प्रमुख रचनाएं :

1. प्रेम वाटिका (वि.सं. 1671)
2. दानलीला

उनकी वाणी का संकलन 'सुजान रसखान' नाम से संकलित है और एक अन्य ग्रंथ 'अष्टयाम', 'कल्याण' के 'संतवाणी' विशेषांक में संकलित है। रसखान का संबंध शाही खानदान से था, पर बाद में ये भौतिक प्रेम से कृष्ण–प्रेम की ओर उन्मुख हो गए। रसखान ने स्वयं कहा है: **छिनही बादिसा बंस की ठसक छाड़ि रसखान।''**

रसखान ने कृष्ण भक्तिकाव्य की पद परंपरा को छोड़कर कवित्त सवैया का मार्ग अपनाया। हिंदी का सबसे प्रिय, सरस, गेय, प्रसिद्ध और मधुर छंद कवित्त और सवैया है। तुलसीदास रसखान के समसामयिक थे। रसखान पहले कवि हैं जिन्होंने कवित्त सवैया में कृष्ण गुणानुवाद किया है। ब्रज की धरती, पशु, पक्षी, वन–बाग आदि के प्रति रसखान जैसा प्रेम सूर को छोड़कर अन्य किसी कवि में नहीं है।

3.10 सारांश

इस इकाई के माध्यम से पूर्वमध्यकाल (भक्तिकाल) पर विस्तृत विवेचन–विश्लेषण करते हुए व्यापक पाठ्यसामग्री प्रस्तुत की गई। इकाई का सारांश निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है –

Jan Vishwa Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- हिंदी साहित्य के अन्तर्गत कविता की विकास यात्रा में आदिकालीन वीरगाथात्मक साहित्यसर्जन के पश्चात् हिंदी कविता का मध्यकाल सामने आया। मध्यकाल, को पूर्वमध्यकाल तथा उत्तर मध्यकाल के रूप में जाना गया।
- पूर्वमध्यकाल को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रवृत्ति के आधार पर 'भक्तिकाल' कहने का आग्रह किया।
- भक्तिकाल का समय सं. 1375 से 1700 वि. तक मना जाता है।
- भक्तिकाल तत्कालीन परिस्थितियों की व्यापक परिणति है, जिनमें राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक प्रवृत्तियां प्रमुख हैं।
- मुगल आक्रमण, आपसी संघर्ष, पराजित मानसिकता, हताशा की भावना आदि की पृष्ठभूमि में भक्तिकाल का उदय हुआ।
- दक्षिण में आलवार संतों का विद्रोह, शंकराचार्य का बौद्धधर्म के विरुद्ध शंखनाद तथा अद्वैतवाद की स्थापना, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, वल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, तुकाराम, एकनाथ, नामदेव आदि के मत सिद्धान्त, भक्ति उपदेश आदि के आलोक में भक्ति आन्दोलन का उदय एवं इस व्यापक आंदोलन के प्रभाव से भक्तिकाल का आगमन हुआ।
- भक्तिकालीन साहित्य को दो वर्गों में रखा जाता है– (1) निर्गुणमार्गी काव्यधारा (2) सगुणमार्गी काव्यधारा।
- निर्गुणमार्ग को पुनः दो रूपों – ज्ञानाश्रयी तथा प्रेमाश्रयी शाखा, में विभक्त किया गया।
- इसी तरह सगुणकाव्य को भी दो रूपों में – कृष्ण भक्ति एवं रामभक्ति काव्यधारा में विभक्त किया गया है।
- भक्तिकाल की सामान्य विशेषताओं में नाम की महत्ता, गुरू का महत्व, भक्तिभाव का प्राधान्य, शास्त्रज्ञान से परे स्वानुभव या आत्मानुभव पर विशेष बल, अहंकार का परित्याग एवं सत्संगति की महिमा प्रमुख हैं।
- निर्गुणकाव्य के अंतर्गत ज्ञानाश्रयी शाखा को संतकाव्य के नाम से भी जाना जाता है।
- निराकार ईश्वर की उपासना, रूढ़ि एवं आडंबरों का विरोध, गुरू को ईश्वर से भी अधिक मानना, जाति–पांति का घोर विरोध, स्वतंत्र अभिव्यक्ति, वैयक्तिक साधना पर बल आदि इस काव्य की प्रमुख विशेषताएं हैं।
- कबीर, रैदास, धर्मदास, नानक, दादू, सुंदरदास, मलूकदास, संतकाव्यधारा के प्रमुख कवि हैं।
- प्रेममार्गी शाखा को सूफी काव्यधारा या प्रेमाख्यान काव्य परंपरा के नाम से भी जाना जाता है।
- इस काव्यधारा के कवि प्रायः सूफी संत थे।
- फारसी काव्यपद्धति से प्रभावित मसनवी शैली में भारतीय चरित–काव्यों की रचना, अवधीभाषा में दोहा एवं चौपाइयों का प्रयोग, हिंदू राजारानियों के जीवन से संबंधित काव्य रचना आदि सूफी काव्यधारा (प्रेममार्गी काव्यधारा) की प्रमुख विशेषताएं हैं।
- कुतुबन, मंझन, जायसी, उस्मान आदि इस धारा के प्रमुख कवि माने जाते हैं।
- सगुण भक्ति काव्यधारा में 'रामभक्ति काव्य' का विशिष्ट स्थान है।
- इस काव्यधारा के कवि राम के सगुण रूप की उपासना करते थे।
- वे दास्य भक्ति के क्रम में ईश्वर की कृपा को विशेष महत्व देते थे।
- वे राजाश्रय की कोई चिंता न करते हुए, भगवत् भक्ति में लीन रहते और काव्य रचना करते थे।
- इन कवियों की भाषा प्रायः अवधी है।
- गोस्वामी तुलसीदास इस काव्यधारा के शीर्षस्थ कवि हैं तथा उनकी रचना 'रामचरित मानस' उसका आधार है।
- नाभादास, प्रियादास, प्राणचंद चौहान, रसिकदास, अग्रदास, सेनापति आदि इस धारा के अन्य कवि हैं।
- हिंदी कविता में कृष्णभक्ति का विस्तार सर्वाधिक है।
- वल्लभाचार्य के प्रयास से कृष्णभक्ति की स्थाना हुई। उनके पुत्र विट्ठलनाथ ने इस धारा को विकसित करने तथा बहुत आगे बढ़ाने में विशिष्ट भूमिका का निर्वाह किया।
- विट्ठलनाथ ने 'अष्टछाप' की स्थाना की जो आठ मुख्य कवियों का एक समूह था।
- सूरदास 'इसी अष्टछाप' के प्रमुख कवि माने जाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- कृष्णभक्ति शाखा के सर्वतोमहान कवि सूरदास हैं।
- कृष्ण भक्ति की विशेषताओं में, कृष्ण की लीलाओं का गान, मधुर उपासना, सख्यभाव का प्राधान्य, ब्रजभाषा का ललित प्रयोग, राधा–कृष्ण की युगल उपासना आदि सम्मिलित हैं।
- सूरदास के अतिरिक्त, नंनदास परमानंददास, कृष्णदास, चतुर्भुजदास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, हितहरिवंश, मीरां, हरिदास, रसखान, वृंदावन, गदाधर भट्ट इस धारा के अन्य कवि हैं।
- व्यापक रूप से प्रवाहित भक्तिकालीन सर्जन हिंदी कविता के विकास में सबसे उत्कृष्ट है। कविता का जैसा विकास इस काल में हुआ वैसा अन्य किसी काल में नहीं।
- कविता की चतुर्दिक उन्नति के कारण इस काल को 'स्वर्णकाल' की संज्ञा दी गई है।

3.11 उपयोगी पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रागचंद्र शुक्ल
2. हिंदी साहित्य का उद्‌भव और विकास – आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
3. हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेन्द्र
4. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – डॉ. रामकुमार वर्मा

3.11 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक /आलोचनात्मक प्रश्न

1. भक्ति आन्दोलन के उदय के कारणों को विस्तार से समझाइए।
2. भक्तिकाल की विभिन्न परिस्थितियों को स्पष्ट कीजिए।
3. भक्तिकाल के स्वरूप पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिए।
4. भक्तिकाल के प्रमुख कवियों का परिचय दीजिए।
5. निर्गुणकाव्य पर एक निबंध लिखिए।
6. सूफीकाव्य का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
7. रामकाव्य परंपरा का उल्लेख कीजिए।
8. रामकाव्य परंपरा में तुलसी का महत्व समझाइए।
9. रामकाव्य की प्रमुख विशेषताएं स्पष्ट कीजिए।
10. कृष्णभक्ति काव्य का विकास समझाइए।
11. कृष्णभक्ति काव्यधारा में सूर का स्थान और महत्व स्पष्ट कीजिए।

लघूत्तरीय प्रश्न

1. भक्तिकाव्य का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. भक्तिकाव्य की राजनीतिक परिस्थिति का उल्लेख कीजिए।
3. भक्तिकाल की सांस्कृतिक – साहित्यिक परिस्थिति का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।
4. भक्तिकाल का वर्गीकरण करते हुए प्रत्येक धारा के प्रमुख कवियों के नाम लिखिए।
5. निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख कवियों के नाम उनकी रचनाओं सहित लिखिए।
6. प्रमुख प्रेमाख्यान काव्यों का नामोल्लेख उनके रचनाकारों सहित कीजिए।
7. रामभक्ति काव्यधारा के कवियों का नाम लिखिए।
8. तुलसीदास की महत्वपूर्ण रचनाओं के नाम लिखिए।
9. कृष्णभक्ति का परिचय संक्षेप में दीजिए।
10. अष्टछाप क्या है उसके कवियों का नाम लिखिए।
11. कृष्णभक्ति के अन्य कवियों (अष्टछाप से अतिरिक्त) के नाम लिखिए।
12. कृष्णभक्तिधारा में मीरा का महत्व बताइये।
13. कृष्णभक्तिधारा में रसखान का महत्व स्पष्ट कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अतिलघुत्तरीय प्रश्न

1. भक्तिकाल की समय सीमा का उल्लेख कीजिए।
2. पूर्वमध्यकाल नाम किसने दिया ? इसका अर्थ क्या है ?
3. भक्ति आंदोलन का आरंभ कहां से माना जाता है?
4. भक्ति को दक्षिण से उत्तर लानेवाले आचार्य कौन हैं ?
5. भक्तिकाव्यधारा को कितने वर्गों में विभाजित किया गया है ?
6. निर्गुण भक्तिकाव्यधारा को अन्य किस नाम से जाता जाता है ?
7. निर्गुणकाव्य के प्रेरक कौन हैं ?
8. निर्गुणभक्तिकाव्य के प्रवर्तक कौन हैं ?
9. निर्गुणभक्ति की सर्वप्रमुख विशेषता कौन सी है ?
10. पद्मावत किसकी रचना है ?
11. सूफ़ी का क्या अर्थ होता है ?
12. तुलसीदास के गुरू का क्या नाम था ?
13. तुलसीदास की तीन प्रमुख रचनाएं कौनसी हैं ?
14. रामचरित मानस में कुल कितने कांड हैं ?
15. रामचरितमानस की भाषा कौन–सी है ?
16. वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धांत का क्या नाम है ?
17. वल्लभाचार्य के भक्तिमार्ग का नाम लिखिए।
18. अष्टछाप की स्थापना किसने की थी ?
19. कृष्णभक्ति के मुस्लिम कवि का नाम लिखिए।
20. कृष्णभक्तिकाव्य की प्रमुख कवयित्री का नाम लिखिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–4

उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल)

संरचना

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 रीतिकाल का नामकरण
4.3 रीतिकाल का समय निर्धारण
4.4 रीतिकाल का प्रवर्तक कौन?
4.5 प्रेरक परिस्थितियां
    4.5.1 राजनैतिक परिस्थितियां
    4.5.2 सामाजिक परिस्थितियां
    4.5.3 सांस्कृतिक परिस्थितियां
    4.5.4 साहित्यिक परिस्थितियां
4.6 रीतिकालीन कवियों का वर्गीकरण
    4.6.1 रीतिबद्ध
    4.6.2 रीतिसिद्ध
    4.6.3 रीतिमुक्त
4.7 रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियां (विशेषताएं)
    4.7.1 शास्त्रीयता
    4.7.2 शृंगारिक भावना
    4.7.3 आचार्यत्व प्रदर्शन
    4.7.4 नारी सौन्दर्य चित्रण
    4.7.5 भक्ति और नीति
    4.7.6 प्रकृति चित्रण
    4.7.7 अलंकारों के प्रति विशेष आकर्षण
    4.7.8 वीरकाव्य की रचना
    4.7.9 मुक्तक काव्य–प्रणयन
    4.7.10 ब्रजभाषा का लालित्य
4.8 रीतिमुक्त काव्य की सामान्य प्रवृत्तियां (विशेषताएं)
    4.8.1 प्रेम का स्वच्छंद और उन्मुक्त चित्रण
    4.8.2 प्रेम के लौकिक पक्ष का निरूपण
    4.8.3 आत्मापरक काव्याभिव्यक्ति
    4.8.4 प्रेम की अकृत्रिम सरलता
    4.8.5 परंपरागत काव्य पद्धति एवं रूढ़िया का परित्याग
    4.8.6 संयोग और वियोग की मार्मिक अभिव्यक्ति
    4.8.7 सौन्दर्य चित्रण
    4.8.8 प्रकृति का मोहक चित्रण
    4.8.9 अकृत्रिम भाषा का सहज और निश्छल प्रयोग
4.9 रीतिकाल के प्रमुख कवि
4.10 विविध सर्जन
4.11 रीतिकाल का गद्य साहित्य
4.12 सारांश
4.13 उपयोगी पुस्तकें
4.14 महत्त्वपूर्ण प्रश्न
    निबंधात्मक/आलोचनात्मक प्रश्न/लघूत्तरीय प्रश्न/अति लघूत्तरीय प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.0 प्रस्तावना

रीतिकाल से पहले भक्तिकालीन काव्य रचना का अवलोकन करें, तो कविता ईश्वर के निर्गुण (निराकार) तथा सगुण (साकार) रूपों का आख्यान प्रस्तुत करती है। सगुण में राम और कृष्ण के गुणों का बखान बहुत व्यापक स्तर पर किया गया है। हालांकि राम और कृष्ण को आधार बनाकर रचा गया काव्य बहुत महत्वपूर्ण है, पर जितना अधिक व्यापक और विस्तृत रूप कृष्णकाव्य का है, उतना रामकाव्य का नहीं। कहने का भाव यह कि कृष्णकाव्य का विस्तार रामकाव्य की तुलना में बहुत अधिक हुआ। कृष्णकाव्य में भक्ति और श्रृंगार का भाव आपस में इतना घुला–मिला था कि किसी भी तरह उन्हें पृथक नहीं किया जा सकता था। ईश्वर की आराधना के प्रेम भाव में उनका अंतस्तल छलक–छलक पड़ा है। भक्ति और प्रेम के इस प्रगाढ़ मिश्रण में जो श्रृंगारिक भावनाएं प्रस्फुटित हुई हैं, वह उनकी अटूट भक्ति और निश्छल प्रेम का ही प्रतिफल हैं। धीरे–धीरे भक्ति और प्रेम मिश्रित वह श्रृंगार भावना, जो इष्टदेव की भक्ति का ही एक अंग थी, एक व्यसन के रूप में पर्यवसित हो गई। ईश्वरभक्ति की पावनमयी श्रृंगार और प्रेम की धारा परवर्ती कवियों के हाथों में इस तरह पंकिल हो गई कि राधा और कृष्ण श्रृंगारिक वर्णनों के लिए मात्र आधार बनकर रह गए। भक्तिकाल के कवियों की 'स्वांतः सुखाय' और 'परजन हिताय' कविता आगे चलकर ऐसे रूप में ढल गई कि राम और कृष्ण का बदला हुआ स्वरूप हमारे सामने मूर्तिमान होने लगा। जहां भक्तिकाल के कवियों के लिए भक्ति भाव प्रधान था, वहीं परवर्ती कवियों के लिए कविता प्रधान हो गई। भक्ति तो उनके लिए मात्र बहाना रह गई, जिसके माध्यम से वे अपने श्रृंगारिक वर्णनों पर एक आवरण–सा डालने लग गए। यही कारण है कि भिखारीदास जैसे कवियों को घोषणा करनी पड़ी–

"आगे के सुकवि रीझिहैं तो कविताई,
न तु राधिका कन्हाई के सुमिरन को बहानो है।"

रीतिकाल की कविता भक्तिकाल की कविता की तरह स्वतः स्फूर्त कम, सायास और चमत्कारपूर्ण अधिक हो गई। इस काल का प्रत्येक कवि अपने समकालीन समानधर्मा कवि से कवित्वशक्ति में आगे निकलने की होड़ में कविता को न जाने किस–किस तरह से कृत्रिम ओर सजावटी स्वरूप में ढालने लगा। अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने के क्रम में वह कविता के अभिव्यक्ति पक्ष को इस तरह प्रमुखता देने लगा है कि कविता उसके लिए एक आवश्यकता का विषय बन गई।

भक्तिकालीन कवियों ने अपनी कविता में अलंकार आदि का समावेश जानबूझकर नहीं किया था। ये सब काव्यरचना के क्रम में स्वतः और अनायास ही उनकी कविताओं में चले आए थे। रीतिकालीन कवियों ने अपनी काव्यरचना में बहुत जोर देकर अलंकार आदि तत्वों को आरोपित किया, जिससे उनकी रचनाएं बोझिल और सजावटी अधिक हो गईं। रीतिकालीन लक्षणग्रंथ और काव्यांग विवेचन का जो विस्तृत और व्यापक प्रयास दिखाई देता है, उसका भी सूत्रपात भक्तिकाल में हो चुका था। वस्तुतः रीतिकालीन काव्यरचना एवं काव्यांग विवेचन का जो व्यापक परिवेश निर्मित हुआ, उसके पुष्ट अंकुर भक्तिकाल में आसानी से ढूंढे जा सकते हैं।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य पाठ्यक्रम में प्रस्तावित उत्तरमध्यकाल (रीतिकाल) का सम्यक बोधगम्य परिचय करवाना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपः

- रीतिकाल के सामान्य परिचय के साथ–साथ उसके नामकरण के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- रीतिकाल की प्रेरक परिस्थितियों तथा रीतिकाल के आविर्भाव के कारणों के विश्षय में जान सकेंगे।
- रीतिकाल की समय सीमा पर सम्यक दृष्टि के साथ महत्वपूर्ण विश्लेषण से अभिज्ञ हो सकेंगे।
- रीतिकाल के प्रवर्तन को लेकर विद्वानों में मतभेद है। विभिन्न मतमतांतरों के आलोक में रीतिकाल का प्रवर्तक कवि कौन है? इस संबंध में सम्यक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- रीतिकालीन कवियों के विभिन्न वर्गों के विषय में पूरी तरह जान पाएंगे।
- रीतिकाल की प्रमुख विशेषताओं पर विस्तृत एवं अपेक्षित सामग्री प्राप्त कर सकेंगे।
- रीतिकाल के प्रमुख कवियों से संबंधित सूचनाएं प्राप्त कर सकेंगे।
- रीतिकाल की समय सीमा में रचित हिंदी गद्य लेखन की परंपरा से परिचित हो सकेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4.2 रीतिकाल का नामकरण

कालक्रम की दृष्टि सें ऐतिहासिक काल विभाजन के आधार पर हिंदी कविता के उत्तर मध्यकाल को 'रीतिकाल' के नाम से पुकारा जाता है। यद्यपि 'रीतिकाल' का नामकरण आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा किया गया है तथापि उनसे पूर्व भी अब्राहम जार्ज ग्रिअर्सन ने इस कालखड को रीतिकाव्य की संज्ञा दी है। 'रीतिकाल' को लेकर हमारे सामने कई तरह की कठिनाइयां दिखाई देती हैं। इसके नामकरण इसको समय सीमा का निर्धारण तथा इस काल के प्रवर्तक आदि के संदर्भ में अनेक सम्मतियां और भ्रांतियां उपस्थित हैं। आचार्य शुक्ल ने वैसे तो इसे 'रीतिकाल' ही कहा है पर प्रवृति विवेचन के क्रम में वे अन्यत्र कहते हैं– ''वास्तव में श्रृंगार और वीर इन्हीं दो रसों की कविता इस काल में हुई। प्रधानता श्रृंगार की ही रही। इससे इस काल को इस विचार से कोई श्रृंगारकाल कहे तो कह सकता है।'' यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आचार्य शुक्ल के एक प्रमुख शिष्य आचार्य विश्वनाथप्रसाद ने 'श्रृंगारकाल' कहे जाने पर जोर दिया है। श्रृंगारकाल कहने के साथ–साथ उन्होंने इसे रीतिबद्ध और रीतिमुक्त दो धाराओं में विभक्त कर दिया है। श्रृंगारकाल कहकर किसी काल को एक रस में बांधकर सीमित कर देना किसी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता। मनुष्य की भावना लम्बे अर्से तक एक ही रस में बंधकर नहीं रह सकती। यह सही है कि इसकाल के अनेक कवियों की सर्वाधिक रुचि श्रृंगारपरक काव्य रचने में रही है, पर यह भी सही है कि इसी समय श्रृंगार से अलग भी व्यापक और स्फीत काव्य सर्जन हुआ है। 'श्रृंगारकाल' कहने से श्रृंगार से इतर रचनाओं की उपेक्षा हो जाएगी। इस काल में रचित वीर, नीति और भक्ति विषयक साहित्य इस स्थापना को नकार देता है, क्योंकि भूषण, गोविन्दसिंह, सूदन और चन्द्रशेखर वाजपेयी द्वारा रचित वीरकाव्य, नबी, नूरमोहम्मद, निसार आदि द्वारा रचित प्रेमाख्यान काव्य, वृंद, घाघ, गिरधर, दीनदयाल गिरि आदि द्वारा सर्जित नीतिकाव्य, सुंदरदास, चरनदास, गरीबदास, तुलसीसाहब, जगजीवनसाहब, यारीसाहब, दरियासाहब, गुलाबसाहब, सहजोबाई, दयाबाई, भीखा, पलटू, सरीखे भक्त कवियों द्वारा रचित संतकाव्य, सबलसिंह का 'महाभारत', पद्माकर द्वारा विरचित 'हिम्मतबहादुर विरुदावलि' एवं इसी तरह की अन्य रचनाएं श्रृंगारकाल की परिधि से बाहर हो जाती हैं। यहां तक कि इस काल के सर्वाधिक चर्चित और प्रसिद्ध कवि बिहारी ने स्वयं श्रृंगार के अतिरिक्त नीति के दोहे भी रचे हैं तथा निर्वेदपरक रचनाएं भी प्रस्तुत की हैं। वस्तुतः अव्याप्ति दोष के कारण 'श्रृंगारकाल' नाम एकांगी प्रतीत होता है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन की परंपरा में एक बहुत समादृत नाम मिश्रबंधु का है। उन्होंने इस काल को 'अलंकृतकाल' की संज्ञा दी है, क्योंकि इस काल की कविता में अलंकारों की भरमार दिखाई देती है। बावजूद इसके अधिकतर आचार्य और कवि अलंकार के अतिरिक्त इस दिशा में ध्वनि का भी उचित आदर करते हैं। इस काल के आचार्यों द्वारा संस्कृत के अलंकार, रस आदि संप्रदायों से प्रभाव ग्रहण करने के बावजूद वह प्रभाव इतना व्यापक, गहन और एकरस नहीं है कि किसी एक के आधार पर इस पूरे काल का नामकरण किया जा सके। अतः 'अलंकृतकाल' नाम से इस काल की प्रवृत्तियों का सम्यक बोध नहीं हो पाता। डॉ. रामशंकरशुक्ल 'रसाल' इस काल को 'कलाकाल' कहने के पक्ष में हैं। काव्य की कलात्मक अभिव्यक्ति जैसी इस काल में हुई है, वैसी हिंदी कविता में अन्यत्र नहीं दिखाई देती, पर 'कलाकाल' कहने से काव्य के बाह्यपक्ष का नितांत एकांगी स्वरूप ही स्पष्ट हो पाता है और फिर, कला भी तो एक नहीं होती। उसके कई रूप हैं। वस्तुतः, 'कलाकाल' कहने से भी इस काल का पूरीतरह बोध नहीं हो पाता।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिंदी के इस उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल की संज्ञा दी है। रीतिकाल नाम वैसे तो बहुत सुंदर, संक्षिप्त एवं अर्थसंपन्न है, पर यह नाम कहने से न चाहते हुए भी हमारा ध्यान संस्कृत के 'रीति संप्रदाय' की ओर आकृष्ट हो जाता है। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि संस्कृत की वैदर्भी, पांचाली और गौड़ी रीतियों से हिंदी के रीतिकाल का कोई संबंध नहीं है। काव्य रीतियों के अपने वैशिष्ट्य के कारण आचार्य वामन ने रीति को काव्य का आत्मा (रीतिरात्मा काव्यस्य) माना है तथा विशिष्ट पदरचना (विशिष्टापदरचनारीतिः) को रीति कहा है। इस तरह यदि संस्कृत के आधार पर देखें, तो इस काल का 'रीतिकाल' नामकरण भ्रम उत्पन्न करता है। इस काल में रचित महज़ रीति ग्रंथों के कारण ही शुक्लजी ने इसका नाम 'रीतिकाल' रखा है। संस्कृत के रीति संप्रदाय को ध्यान में रखकर यदि विश्लेषण किया जाए, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि हिंदी के रीतिकालीन कवियों पर संस्कृत के रीति संप्रदाय का प्रभाव नहीं के बराबर पड़ा है। उन पर रस और अलंकार संप्रदायों का प्रभाव तो बहुत है, पर रीति और वक्रोति का नहीं। यदि रीति का अर्थ काव्य रचना की पद्धति बतलानेवाले ग्रंथों से लिया जाए (जैसा कि आज बहुत से लोग मानते भी हैं), तो रीतिकाल नाम बहुत दूर तक उपयुक्त भी लग सकता है, पर इस काल के बहुत से कवियों ने इस आधार पर भी काव्य रचना नहीं की है। रीतिग्रंथ या लक्षणग्रंथों के रचनाबाहुल्य के कारण आचार्य शुक्ल ने इस काल को 'रीतिकाल' तो कह दिया है, पर वहीं दूसरी ओर वे रीतिग्रंथों की महत्वहीनता प्रतिपादित करने से भी नहीं चूकते। इस तरह रीतिकाल नाम युक्तियुक्त या तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता। इस काल में रीतिग्रंथ या लक्षणग्रंथों से

Jan Nishtha Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इतर इतना व्यापक सर्जन हुआ है कि उन्हें देखकर यहा कहा जा सकता है कि वह सर्जन परिमाण या गुणवत्ता की दृष्टि से किसी तरह कमतर नहीं है। सभवतः यही कारण हो सकता है कि इस काल के अनेक नामकरण किए गए है।

'रीतिकाल' नाम हालांकि बहुत काव्यात्मक है, बहुत व्यापक और भाव संपन्न है, पर इस नामकरण से इस काल की कई काव्य प्रवृत्तियां बिल्कुल नजरअंदाज हो जाती हैं। इस काल के अंतर्गत ऐसी काव्य प्रवृत्तियां समाहित हैं, जिन्हें रीति के दायरे में नहीं रखा जा सकता। भक्ति, वीर और नोति जैसे भाव तो रीतिकाल की परिधि में बिल्कुल नहीं आ सकते। रीतिकाल कहने से घनआनंद, आलम, ठाकुर, बोधा सरीखे कवियों के साथ न्याय नहीं हो पाता। यही कारण है कि आचार्य शुक्ल इन्हें फुटकल खाते में रखते हैं, और रीत्किाल के 'अन्य कवि' के रूप में उनका मूल्यांकन करते हैं। बावजूद इसके आचार्य शुक्ल के 'रीतिकाल' नामकरण को व्यापक स्वीकृति मिली हुई है। इधर कुछ विद्वान इस काल को 'शास्त्रीयकाल' कहने के पक्षधर हैं। प्रसिद्ध विद्वान एवं आलोचक डॉ. रामप्रसाद मिश्र के शब्दों में "व्यापक स्तर पर देखें तो यह काल शास्त्रीयकाल था, क्लासिकल पीरियड। शास्त्रीयकाल में रीतिकाल, अलंकृतकाल, कलाकाल, शृंगारकाल प्रभृति अभिधान स्वतः समाविष्ट हो जाते हैं, क्योंकि रीति, अलंकार, कला, शृंगार प्रभृति तत्व शास्त्रीय हैं। ... स्वर्णकाल के अनंतर शास्त्रीयकाल विश्ववाङ्मय का एक व्यापक क्रम है। ... और कोई कालनाम शतप्रतिशत कृतियों को अपने में समाविष्ट नहीं कर सकता, वह काल के सृजन का व्यापक बोध कराता है।"

उत्तर मध्यकाल के उपर्युक्त सभी नामों पर विचर करने के उपरांत यह कहा जा सकता है कि कोई एक नाम इस काल को पूरी तरह परिभाषित नहीं कर पाता। सभी नामों की अपनी सीमा है, जिससे उनकी एकांगिता भी स्पष्ट होती है। बावजूद तमाम असहमति और सहमति के आचार्य शुक्ल, द्वारा प्रदत्त 'रीतिकाल' नाम को जितनी ख्याति और स्वीकृति मिली, उतनी अन्य किसी नाम को नहीं। अनेक तर्क प्रस्तुत करने के बाद भी घुमाफिराकर 'रीतिकाल' नाम ही जुबान पर सहज ही आ जाता है। कोई विद्वान इसे चाहे कुछ भी नाम दे दे, पर अपनी बात स्पष्ट करने के लिए उसे 'रीतिकाल' नाम का सहारा जाने अनजाने लेना ही पड़ता है। वस्तुतः 'रीतिकाल' नामकरण इतना पक्का और मजबूत हो चुका है कि इसके समक्ष और कोई नाम जम ही नहीं पाता।

4.3 रीतिकाल का समय निर्धारण

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के जिस उत्तरमध्यकाल को रीतिकाल कहकर संबोधित किया है, उसकी समग्र सीमा उन्होंने संवत् 1700–1900 वि. निश्चित की है। यह समग्रावधि मोटे तौर पर सन् 1643 से सन् 1843 के रूप में रेखांकित की जा सकती है। रीतिकाल की इस समय सीमा को कई विद्वानों ने कुछ आगे–पीछे खींचकर मानने का आग्रह किया है। कुछ विद्वान इसके लिए सन् 1600 से 1850 ई. का समय निर्धारित करते हैं, तो कुछ इसे सन् 1650 से 1857 ई. के रूप में रखने का सुझाव देते हैं। ध्यान से देखा जाए, तो रीतिकाल की समाप्ति या अवसान की जो समय सीमा कुछ विद्वानों ने तय की है, वह शुक्लजी द्वारा निर्धारित तिथि से कमोबेश मिलती–जुलती है। हां, रीतिकाल की आरंभिक समय सीमा को लेकर अवश्य अंतर और मतभेद दिखाई देता है। इसका कारण यह हो सकता है कि साहित्य की किसी प्रवृत्ति का आरंभ अचानक या यकायक नहीं हो सकता और न ही किसी प्रवृत्ति का एकदम से निश्चित तिथि पर अवसान हो जाता है। साहित्य की किसी प्रवृत्ति विशेष का उद्‌गम बहुत पहले अतीत में ढूंढा जा सकता है। रीतिकाल के संबंध में यह बात पूरी तरह सच है कि उसकी प्रवृत्तियों का उदय यकायक नहीं हो गया था। उसकी भूमिका भक्तिकालीन साहित्य में ही बनने लगी थी। रीतिकाल की शृंगारिक भावना को देखकर विद्यापति का स्मरण होने लगे, तो कोई आश्यर्च की बात नहीं। हिन्दी काव्य की ऐसी कौन सी धारा है, जिसमें नारी का असाधारण स्थान नहीं है? किसी समय में कोई एक ही साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं होती, बल्कि कई साहित्यिक प्रवृत्तियां साथ–साथ चलती हैं। हां किसी काल विशेष में कोई एक प्रवृत्ति प्रमुख होती है, तो किसी अन्य काल में किसी दूसरी प्रवृत्ति की प्रमुखता होती है। रीतिकालीन साहित्य में नायिका और उसका शृंगार विषयक प्रवृत्तियां प्रमुखता से उजागर हुई, उनके स्वरूप के आरंभिक दर्शन हम पूर्ववर्ती काल के साहित्य में कर सकते हैं। कृपाराम द्वारा रचित 'हिततरंगिणी' नायिका भेद की आरंभिक कृति मानी जाती है, जिसकी रचना 1541 ई. में हुई थी। सूर सरीखे कवियों ने शृंगार का वर्णन कम नहीं किया है। नंददास की 'रसमंजरी' नायिका विवरण प्रस्तुत करनेवाली रचना है। रहीम द्वारा रचित 'बरवैनायिका भेद' स्पष्ट रूप में शृंगारपरक रचना है। वस्तुतः रीतिकाल की कविता में नारी और शृंगार विषयक प्रवृत्तियां भक्तिकाल में भी देखी जा सकती हैं। संभवतः इन्हीं कारणों से रीतिकाल के आरंभ की समय सीमा तय करते समय विद्वानों में मतैक्य नहीं रहा हो। बावजूद इसके आचार्य शुक्ल द्वारा निर्धारित समय सीमा (सं. 1700 से 1900) पर किसी को विशेष आपत्ति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियों का पूर्ण विकसित स्वरूप इस कालावधि में दृगत होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.4 रीतिकाल का प्रवर्तक कौन?

रीतिकाल के प्रवर्तन का श्रेय किसे दिया जाना चाहिए, केशवदास या चिंतामणि को? इस प्रश्न को लेकर अलग–अलग राय हैं। यद्यपि कुछ विद्वानों की दृष्टि में केशवदास निर्विवाद रूप से रीतिकाल के प्रवर्तक आचार्य कवि हैं, तथापि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल विवेचन के क्रम में चिंतामणि को रीतिकाल का प्रवर्तक स्वीकार किया है। इस संबंध में लिखते हुए वे कहते हैं– ''हिंदी रीति ग्रंथों की परंपरा चिंतामणि त्रिपाठी से चली, अतः रीतिकाल का आरंभ उन्हीं से मानना चाहिए।'' आचार्य शुक्ल के इस कथन के आधार पर परवर्ती अधिकतर विद्वानों ने शुक्लजी की स्थापना को ही स्वीकार कर चिंतामणि को रीतिकाल का प्रवर्तक मान लिया है। शुक्लजी के अनुसार आचार्य कवि केशवदास ने जिस परंपरा की नींव डाली, परवर्ती कवियों ने उसका अनुसरण नहीं किया। इसके साथ ही उनका कहना है कि रीति ग्रंथों की अखण्ड परंपरा केशव के पचास वर्ष बाद चिंतामणि से आरंभ हुई।

जहां तक रीतिकाल के प्रवर्तन का श्रेय चिंतामणि को दिए जाने की बात है, उस संबंध में विचारणीय है कि आचार्य शुक्ल ने, 'हिंदी साहित्य का इतिहास' लिखने के क्रम में, उपलब्ध सामग्री और सूचनाओं के आधार पर त्रिपाठी बंधुओं में एक चिंतामणि को अवस्था में सबसे बड़ा स्वीकार किया था। उनके अनुसार परवर्ती कवियों ने केशव का अनुसरण नहीं किया इसलिए सभी कवियों में अवस्था में बड़े होने के बावजूद केशव को प्रवर्तक कवि मानने में शुक्लजी को कठिनाई थी। यही कारण है कि उन्होंने चिंतामणि को रीतिकाल का प्रवर्तक स्वीकार किया। इधर नवीन शोध एवं प्रामाणिक अनुसंधान के आधार पर चिंतामणि अपने भाई महाकवि भूषण से भी अवस्था में छोटे प्रमाणित हो चुके हैं। इसके साथ ही इस बात में कोई दो मत नहीं है कि मतिराम निर्विवाद रूप से भूषण से अवस्था में लगभग पांच वर्ष बड़े थे। ऐसी स्थिति में तीनों भाइयों (मतिराम, भूषण और चिंतामणि) में चिंतामणि सबसे छोटे और मतिराम सबसे बड़े प्रमाणित होते हैं। तब प्रवर्तक या प्रथम कवि का श्रेय चिंतामणि को कैसे दिया जा सकता है? अगर यह श्रेय दिया ही जाना है तो सबसे बड़े भाई मतिराम को दिया जाए, जो स्वयं एक अच्छे कवि एवं उच्च कोटि के आचार्य थे।

इस संबध में जहां तक आचार्य केशवदास का प्रश्न है, तो उन्हें रीतिकाल के आरंभकर्ता का श्रेय दिये जाने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। भक्ति काल की सीमा परिधि में आने के बावजूद उन्होंने काव्य के सभी अंगों का सम्यक् और सविस्तार विवेचन किया है। ऐसा करनेवाले वे प्रथम आचार्य हैं। भक्तिकाल के अवसान और रीतिकाल के आरंभ दोनों के मध्य में खड़े आचार्य केशव ने रीतिकालीन साहित्य की पुख्ता और सम्यक प्रस्तावना कर दी थी। हालांकि वे तुलसीदास के समकालीन भी थे, फिर भी प्रवृत्ति की दृष्टि से उनका काव्य रीतिकाल की प्रवृत्तियों का स्पर्श करता है। केशव को रीतिकाल का उद्घाटनकर्ता कहा जा सकता है। अपनी विलक्षण चमत्कारपूर्ण शैली एवं रसिकता के आधार पर उन्होंने भावी रीतिकाल की स्थापना कर दी थी। हिंदी साहित्य में केशव के असाधारण स्थान को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। उनकी 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' जैसी रचनाओं को काव्य मर्मज्ञों और रसिकों के मध्य बहुत आदर प्राप्त हुआ। केशव की प्रतिभा और उनके रचनाकर्म का जो प्रभाव परवर्ती काल पर पड़ा, उसके कारण रीतिकाल के मूल में उनके व्यक्तित्व को ही प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए। श्यामसुंदरदास तथा भगीरथ मिश्र जैसे विद्वानों का भी ऐसा ही मानना है। केशव की काव्य सर्जना को रीतिकाल का प्रेरक तत्व कहा जाना चाहिए। केशव का प्रभाव समूचे रीतिकाल पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जितने व्यापक रूप में पड़ा है, उतना अन्य किसी का नहीं। वस्तुतः रीतिकाल के प्रवर्तन का श्रेय केशव को दिया जाना चाहिए, भले ही रीति ग्रंथों के प्रणयन की अविच्छिन्न परंपरा का आरंभ चिंतामणि (?) या मतिराम से हुआ।

4.5 रीतिकाल की परिस्थितियां

किसी देश–समाज के किसी काल विशेष की परिस्थितियां उस समय में सर्जित साहित्य को बहुत गहराई से प्रभावित करती हैं। दूसरे शब्दों में किसी देश या समाज के साहित्य में उस देश या समाज का पूरा स्वरूप प्रतिबिंबित होता है। इसीलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। साहित्य और समाज आपस में एक दूसरे से इसकदर जुड़े होते हैं कि उनके आपसी रिश्तों का गहन अध्ययन उनके स्वरूप को स्पष्ट करने में सहायक होता है। किसी काल विशेष का साहित्य उस समय की विविध परिस्थितियों की उपज होता है। किसी साहित्य सर्जन के पीछे अवस्थित उन विभिन्न परिस्थितियों का अध्ययन किया जाना अपेक्षित होता है, जिनके कारण वह साहित्य प्रकाश में आ सका। इस दृष्टि से रीतिकालीन साहित्य की विविध परिस्थितियों का अध्ययन–विश्लेषण आवश्यक है, क्योंकि रीतिकालीन समूचा साहित्य उस समय की युगीन परिस्थितियों के कारण अपने उस रूप में अस्तित्व में आया था। यहां रीतिकाल की उन्हीं प्रेरक परिस्थितियों का मूल्यांकन अपेक्षित है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4.5.1 राजनीतिक परिस्थितियां

रीतिकाल के साहित्य पर यदि हम गहराई से नजर डालें, तो यह बात स्पष्ट होगी कि उस काल का साहित्य अपने समय के राजनीति की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करता है। किसी देश और समाज की राजनीतिक परिस्थिति उस काल के साहित्य को किस हद तक प्रभावित करती है, रीतिकालीन साहित्य इस तथ्य का सबसे प्रबल उदाहरण है। रीतिकाल का साहित्य जिस रूप में हमारे सामने आया, उसके पीछे उस काल की राजनीतिक परिस्थितियों का महत्वपूर्ण हाथ रहा है। हालांकि रीतिकालीन साहित्य में उस काल के समाज की दारुण व्यथा एवं करुण कथा के जर्जर चित्र नहीं दिखाई देते, पर शाही और सामंती विलासिता एवं उनके वास्तविक जीवन की जीती जागती तस्वीर को उसमें बखूबी देखा जा सकता है।

रीतिकाल का समय चाहे जब से माना जाए, पर इतना तो निश्चित है कि रीतिकालीन साहित्य में जो अतिशय शृंगारिकता एवं पतोन्मुख विलासिता विद्यमान है, वह तत्कालीन दरबारी संस्कृति और समाज का हिस्सा तो थी ही, उससे पूर्व ही शासन व्यवस्था भी इसे अछूती नहीं थी। रीतिकाल के आरंभ में भले ही राजनीतिक स्थिरता रही हो, पर बाद में धीरे–धीरे चारोंओर अव्यवस्था एवं अस्थिरता का साम्राज्य स्थापित होता गया। यदि हम रीतिकाल की राजनीतिक पृष्ठभूमि का अवलोकन करें, तो पाएंगे कि मुगल साम्राज्य का जो वैभव और प्रभामण्डल अकबर के शासनकाल में अवस्थित था, वह अकबर के बाद धीरे–धीरे क्षीण और अवनति की ओर उन्मुख होने लगा।

अकबर के बाद की राजनीतिक परिस्थितियों का तटस्थ आकलन करें, तो स्पष्ट हो जाएगा कि रीतिकाल की जो प्रमुख प्रवृत्तियां कालांतर में विकसित हुईं, उनके पीछे अकबर से औरंगजेब या औरंगजेब से बाद तक की राजनीतिक पृष्ठभूमि एवं परिस्थितियों का कितना बड़ा हाथ रहा है। रीतिकालीन काव्य में शृंगारिकता एवं विलासिता अचानक या अकारण नहीं थी। यह विशेषता उस काल की राजनीतिक पृष्ठभूमि एवं तत्कालीन परिस्थितियों में विद्यमान थी।

शाहजहां में भी मुगलसम्राट अकबर की सी उदारता एवं व्यापक दृष्टि तो नहीं थी, पर वह बहुत बड़ा कलाप्रेमी और साम्राज्यविस्तार का महत्वाकांक्षी था। कला और साहित्य की बेहद उन्नति, न्यायप्रियता, सामाजिक व्यवस्था आदि के कारण उसके काल को मुगल काल का स्वर्णयुग कहा जाता है। बावजूद इसके शाहजहां की घोर विलासिता एवं अपव्यय की सामंती प्रवृत्ति ने मुगल साम्राज्य को जर्जर और खोखला बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

औरंगजेब के बाद जब मुगलकाल के पतन का समय आ गया, तब भी दरबारी विलासिता में कोई कमी नहीं आई। मोहम्मदशाह 'रंगीला' की विलासिता जग प्रसिद्ध है। नादिरशाह की लूटमार, अहमदशाह अब्दाली का कत्लेआम, अंगरेजों का फैलता जाल। इन सबसे जरा भी प्रभावित नहीं हुई शाही विलासिता। परिस्थिति से अनजान रहना उत्तरमगुलकाल की आदत सी हो गई थी। इन सारी स्थितियां–परिस्थितियों की गहरी छाप रीतिकालीन कविता पर पड़ी थी। उपर्युक्त राजनीतिक पृष्ठभूमि और परिस्थितियों में जन्मी और पली–बढ़ी रीतिकाल की कविता में उस काल का सामंती और विलासी जीवन पूरी तरह परिलक्षित होता है।

4.5.2 सामाजिक परिस्थितियां

रीतिकालीन साहित्य की सामाजिक परिस्थितियों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि उस समय समाज की व्यवस्था जर्जर और छिन्न–भिन्न हुई थी। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि अकबर के बाद के शासकों का दृष्टिकोण अपेक्षाकृत बहुत व्यापक और उदार नहीं रह सका। उनका संबंध साधारण जनता से धीरे–धीरे बिल्कुल कम होता गया और वे केवल विलासी जीवन जीने के अभ्यस्त हो गए। शाही दरबार कलाकारों और सामंतों के लिए इस तरह खुल गया कि शासन का ध्यान लोकजीवन से बिल्कुल कट–सा गया और एक पूर्ण सामंती संस्कृति का आविर्भाव हुआ। हमारे देश के तत्कालीन राजाओं, नवाबों और मनसबदारों ने भी स्वयं को मुगल शासकों की तरह ही ढाल लिया। उनका रहन–सहन और उनके ठाट–बाट के कारण सामंती दरबार का नजारा शेष भारत से बिल्कुल अलग दिखाई देता था। सामंती व्यवस्था से पूरी तरह ओतप्रोत यह एक ऐसा समाज था, जो भारतीय समाज का हिस्सा ही नहीं प्रतीत होता था। एक ओर वैभव और विलासिता में डूबा समाज था, दूसरी ओर आम आदमी की साधारण जिंदगी थी, जिसमें गरीबी और जलालत के सिवा और कुछ नहीं था। कई स्थानों पर तो दाने–दाने के लिए तरसते हुए लोग थे, जिन्हें दो वक्त की रोटी के भी लाले पड़े रहते थे। दूसरी ओर समाज की इस दशा से बेखबर सामंती और शाही दरबार थे, जहां शाही निवाले कटते थे। समाज स्पष्ट रूप से दो वर्गों में विभक्त था जहां एक ओर राजा, नवाब और अमीर शोषक के रूप में मौजूद थे, तो दूसरी ओर किसान और गरीबों का शोषित तबका था। इन दोनों की सामाजिक स्थिति में पूरब और पश्चिम का अंतर था। ऐसी सामाजिक परिस्थितियों के बीच लिखे जानेवाले रीतिकालीन साहित्य में हम राजाओं–महाराजाओं, नवाबों आदि के विलासी जीवन का चित्रण तो देख सकते हैं, पर उसमें तत्कालीन गरीब

Rani Vishwa Bharati Institute (Deemed University), Ranchi

प्रजा की दशा का चित्रण नहीं प्राप्त होता। तत्कालीन कविता केवल दरबारी समाज की ही झांकी प्रस्तुत कर सकी है। कुल मिलाकर इस काल की सामाजिक स्थिति पर विचार करें तो यह निष्कर्ष निकलता है कि राजा और सामतों का जीवन घोर विलासिता से पूर्ण था। आम आदमी गरीब और अशिक्षित था। जनता के ऊपर कई तरह के करों का भार था। नैतिकता और भाग्य की दुहाई देनेवाला गरीब आदमी अंधविश्वासी और धार्मिक आडम्बरों पर विश्वास करनेवाला बन गया था। ऊंच नीच के आपसी भेदभाव भी इस काल में बहुत अधिक बढ़ गए थे।

4.5.3 सांस्कृतिक परिस्थितियां

सांस्कृतिक गौरव एवं उत्थान की जो परंपरा पूर्व म्ध्यकाल में अपने उन्नत स्वरूप में रही, उत्तरमध्यकाल तक आते–आते उसका स्वरूप पूरी तरह बदल गया और उसमें कई तरह की विकृतियां व्याप्त हो गईं। भक्त कवियों की भक्ति भावना में सांस्कृतिक गौरव की जो झांकी आरंभ में दिखाई पड़ती थी, परवर्ती काल में उसका ह्रास होने लगा। पूर्व में कतिपय मुस्लिम शासकों की उदारवादी दृष्टि के कारण संतों और सूफियों के निश्छल प्रयास से जो आपसी भाईचारा और मेल–मिलाप कायम हो सका, उनकी वाणियों तथा उपदेशों से हिन्दु–मुस्लिम संस्कृतियों में जो एक्य और सामंजस्य स्थापित हो सका, औरंगजेब सरीखे कठोर शासकों की अनुदार नीति और कट्टरता के कारण वह लगभग समाप्त सा हो गया। वैभव और विलास के खुले और नग्न प्रदर्शन ने सभ्यता संस्कृति को अपनी लपेट में इस कदर ले लिया कि हर तरफ अराजकता का बोलबाला हो गया। परिणामस्वरूप धर्म के नाम पर अंधविश्वास, पाखण्ड, दिखावा, बाह्य आडंबर और रूढ़ियों का आधिक्य हो गया। पूजापाठ के स्थल भी विलासिता से प्रभावित होकर उसी के अनुगामी होने लगे। सांस्कृतिक और धार्मिक प्रदूषण का ऐसा कुत्सित वातावरण स्थापित होने लगा कि राम और कृष्ण की भक्ति का स्वरूप भी परिवर्तित हो गया। सांस्कृतिक प्रदूषण के इस दौर में संप्रदायों और मठों की आपसी प्रतिद्वंद्विता चरम पर पहुंच गई। धर्म प्रसार और प्रचार के केन्द्र विलास–तृप्ति के साधन बन गए। अनाचार के इस प्रभाव में नैतिकता लगभग मृतप्राय सी हो गई। ऐसी परिस्थिति में रचे जानेवाले रीतिकालीन साहित्य का स्वरूप कैसा हो गया, इसका अनुमान सहजता से लगाया जा सकता है।

4.5.4 साहित्यिक परिस्थितियां

रीतिकालीन साहित्य का जो स्वरूप उस काल में विकसित हुआ, वह एक बारगी अचानक इस रूप में नहीं आ गया, अपितु उसके स्वरूप निर्धारण में उस काल की साहित्यिक पृष्ठभूमि और प्रेरक परिस्थितियों ने उर्वर का काम किया। हालांकि इस काल का साहित्य जिस रूप में है, काव्यकला और साहित्यिक मानदण्डों की दृष्टि से वह बहुत उत्कृष्ट और चमत्कारिक है, पर उदात्त रचनात्मकता की उच्च भावभूमि पर अवस्थित अपने पूर्ववर्ती काव्य सर्जन की अपेक्षा वह कमतर और नैतिकता रहित है। इस युग में साहित्य और कला की असाधारण उन्नति के बावजूद इस काल का साहित्य अपने पूर्ववर्ती युग पूर्वमध्यकाल की तुलना में सामाजिकता से कटा हुआ है। जहां भक्तिकालीन साहित्य एक व्यापक सामाजिक दृष्टि लेकर लोक कल्याण की भावना से अनुप्राणित था, वहीं रीतिकालीन साहित्य एक वर्ग विशेष की विलासी आशाओं और आकांक्षाओं का पोषण कर रहा था। यही कारण है कि अकबर के शासन के बाद हिंदी काव्य की परंपरा में जो एक विशेष परिवर्तन हुआ, उस क्रम में भक्तिकाल और रीतिकाल के साहित्य सर्जन में स्पष्ट अंतर दिखाई देता है। हालांकि ध्यान से देखें तो रीतिकालीन काव्य की श्रृंगारपरक प्रवृत्ति कुछ–कुछ अकबर के समय में ही आरंभ हो गई थी और तभी इस तरह के काव्य सर्जन की भूमिका बनने लगी थी, पर उसका पूर्ण विकास परवर्ती परिस्थितियों में हुआ।

भक्तिकालीन कवियों की लोककल्याण और स्वांत सुखायवाली भावना से प्रेरित होकर जो साहित्य सर्जन पूर्वमध्यकाल में हुआ, वह धीरे–धीरे समाप्त होने लगा। उत्तरमध्यकाल के आरंभ होने से पूर्व ही बदलती हुई काव्य रुचियों का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि तुलसी और सूर सरीखे कवियों ने जिस पवित्र और निश्छल प्रेमभाव की स्थापना की थी, वह अकबर के मीना बाजार तथा जहांगीर द्वारा शेरअफगन की हत्या में दबकर रह गया। उस समय जहां एक ओर अकबर फतेहपुर सीकरी में आंख मिचौली खेल रहा था, वहीं दूसरी ओर केशवदास जैसा भक्तकवि सुंदरियों द्वारा बाबा कहे जाने पर अपने सफेद बालों के लिए अफसोस जाहिर कर रहा था। एक तरफ जहांगीर अपनी सल्तनत को नूरजहां पर डालकर कश्मीर आदि की यात्राएं कर रहा था, वहीं दूसरी तरफ बलभद्र मिश्र नायिका के रूपसौंदर्य पर मुग्ध होकर 'नखशिख' की रचना कर रहे थे। उसी परंपरा में आगे जहां एक ओर शाहजहां मुमताज की याद में ताजमहल बनवा रहा था, वहीं बिहारी जैसा कवि श्रृंगारिकता का राग अलाप रहे थे। जहां संगीत और कला को अपनी नीरस और कट्टर दृष्टि से लगभग समाप्त कर देने वाला औरंगजेब अपनी बीवी की याद में भावुक बनकर औरंगाबाद में बैठा हुआ था, वहीं देव 'चंचल नैन की जाई' और 'चितौनि के चाम के दाम' के गीत गा रहे थे। कुल मिलाकर शासन और साहित्य दोनों में विलासिता और श्रृंगारिकता का परिवेश छाया हुआ था। ऐसी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)

परिस्थिति में क्या आश्यर्च कि शासन उधर शालीमार बाग, निशात बाग, ताजमहल, औरंगाबाद आदि के निर्माण में तल्लीन था, तो काव्य में 'रसिकप्रिया' (केशव), 'नखशिख', 'रसविलास' (बलभद्र मिश्र) 'अलक–शतक तिल शतक' (मुबारक), 'अंग दर्पण' (रसलीन) की सृष्टि हो रही थी।

रीतिकाल की साहित्यिक परिस्थितियों का आकलन करते हुए इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि इस काल का अधिकांश सर्जन राजदरबार की छत्रछाया में हुआ। कवि और कविता के लिए एकमात्र आश्रय राजदरबारों में मिलता था। स्वाभाविक रूप में अपने आश्रयदाताओं की रुचि–अभिरुचि का ध्यान रखते हुए ही कवियों की लेखनी चलती थी। काव्य रचना के माध्यम से चमत्कार पैदा करना तथा वाहवाही और पुरस्कार की उत्कट आकांक्षा में अपनी पूरी प्रतिभा और काव्य क्षमता से कविता को सजावटी और बनावटी रूप में ढाल देना इस समय के कवियों के लिए अनिवार्य हो गया था। श्रेष्ठ से श्रेष्ठ रचनाकारों की प्रतिभा–पूंजी मात्र काव्य कलेवर को सजाने में लगने लगी, जिससे काव्य के अभिव्यक्ति पक्ष में चमत्कारिक एवं आश्चर्यजनक निखार आया, पर काव्य सर्जन के लिए स्वच्छंद प्रवाह में उन्मुक्त भावभूमि की मौलिक चेतना का जो प्रवाह हो सकता था, वह दब सा गया। ऐसी परिस्थितियों में काव्य–सर्जन आश्रयदाताओं की अभिरुचि का अनुगामी बनकर रह गया था।

406 रीतिकालीन कवियों का वर्गीकरण

आचार्य रामचंन्द्र शुक्ल द्वारा दिए गए रीतिकाल नाम के आधार पर रीतिकाल के प्रति अधिक आग्रही विद्वानों ने इस काल के समूचे काव्य सर्जन को 'रीतिकाल' शीर्षक के माध्यम से ही मूल्यांकित करने का प्रयास किया। इसका आरंभ शुक्लजी के एक शिष्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने किया। उन्होंने शुक्लजी के द्वारा ही 'रीतिकाल' के लिए सुझाए गए एक अन्य नाम 'श्रृंगारकाल' के आधार पर इस काल को 'श्रृंगारकाल' कहा तथा उसे रीतिबद्ध और रीतिमुक्त दो धाराओं में विभक्त कर दिया। इसके उपरांत किंचित और परिवर्तन के साथ रीतिकाल के पूरे साहित्य को तीन वर्गों, रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त में विभाजित करने का प्रयास किया गया। यहां विचारणीय यह है कि रीतिसिद्ध कवियों को तो किसी तरह रीति से जोडकर रीतिकाल के अंतर्गत रखा जा सकता है, पर जिनका 'रीति' से कोई संबंध नहीं है और वे पूरी तरह उस बंधन से स्वच्छंद और मुक्त है, उन्हें 'रीतिमुक्त' कहकर भी रीतिकाल में बांधे रखना कितना न्यायोचित है? बावजूद इसके रीतिकाल के कवियों को तीन वर्गों में रखा गया है, जिन्हें रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त के नाम से जाना जाता है।

4.6.1 रीतिबद्ध

रीतिकालीन काव्य परंपरा में कतिपय आचार्य कवियों का एक ऐसा वर्ग था, जो काव्य रचना के नियमों में बंधकर अपने कविकर्म का निर्वाह किया करता था। वे काव्यशास्त्रीय परंपरा के अनुरूप लक्षण ग्रंथों की रचना करते थे, तद्नुरूप वे काव्य सर्जन की प्रक्रिया भी पूरी करते थे। ऐसे आचार्य कवियों की रचनाओं को रीतिबद्ध धारा के अंतर्गत स्थान दिया गया और उन्हीं कवियों को 'रीतिबद्ध' कवि नाम से अभिहित किया गया है। 'रीतिबद्ध' धारा के आचार्य कवियों ने अंलकार निरूपण, रसनिरूपण, नायिकाभेद निरूपण आदि की एक सुदृढ़ परंपरा हिंदी में स्थापित की। संस्कृत में तो रस और अलंकार संप्रदायों में रसनिरूपण, अलंकार निरूपण तथा नायक–नायिक भेद आदि का विस्तृत विवेचन पहले से ही मौजूद था। रीतिकालीन आचार्यों ने संस्कृत साहित्य से प्रेरणा लेकर हिंदी में यह परंपरा आरंभ की, लेकिन उनमें और संस्कृत आचार्यों में स्पष्ट अंतर था। संस्कृत साहित्य में जहां आचार्य लक्षणों का निर्माण करते और उदाहरण संस्कृत के कवियों का देकर उन लक्षणों को स्पष्ट करते थे, वहीं हिंदी के रीतिबद्ध कवि लक्षणों का निर्माण करने के उपरांत उन्हें स्पष्ट करने के लिए स्वयं काव्य रचना भी करते। अपने स्वयं के काव्य उदाहरणों से लक्षणों को स्पष्ट करने के कारण वे संस्कृत आचार्यों से किंचित अलग हो जाते हैं। जहां संस्कृत में आचार्य और कवि अलग–अलग हुआ करते थे, वहीं हिंदी में आचार्य और कवि दोनों एक ही व्यक्ति होता था। यद्यपि यह आवश्यक नहीं कि जो उच्चकोटि का आचार्य हो, वह उच्चकोटि का कवि भी होगा, या जो उच्चकोटि का कवि हो, वह उसी कोटि का आचार्य भी होगा, तथापि हिंदी की रीतिबद्ध परंपरा के आचार्य कवियों को इन दोनों धर्मों (आचार्य धर्म और कवि धर्म) का निर्वाह करना पड़ता था। ऐसा करते समय यह भी होता था कि जिसकी आचार्यत्व प्रतिभा उच्च थी उसके लक्षण तो श्रेष्ठ हो जाते थे, पर उदाहरण काव्य के निकष पर खरे नहीं उतरते। इसी तरह जिसकी काव्य प्रतिभा श्रेष्ठ थी उसके उदाहरण तो अच्छे बन जाते थे, पर लक्षण पूरी तरह निर्दोष नहीं बन पाते थे। बावजूद इसके कुछ कवियों में आचार्यत्व और कवित्व दोनों शक्तियों का संतुलन दिखाई देता था। रीतिबद्ध कवि में आचार्य और कवि का समन्वय होना भी एक बडी महत्वपूर्ण बात है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जिन आचार्यों ने सर्वांग निरूपण के क्रम में कुछ न कुछ सभी पक्षों पर ध्यान दिया उनमें प्रमुखतः चिंतामणि, कुलपति मिश्र, देव, सुरति मिश्र, कुमारमणि शास्त्री, श्रीपति, सोमनाथ, भिखारीदास आदि के नाम लिए जा सकते हैं। अलंकार निरूपण को प्रमुखता से अपनानेवाले कवियों में केशव, मतिराम, जसवंत सिंह, भूषण, गोविन्द, दूलह और पद्माकर के नाम उल्लेखनीय हैं। कला प्रदर्शन की भावना से अनुप्राणित इन कवियों का अधिकांश सर्जन 'कविता करने के लिए कविता' के निकष पर आधृत है, जहां शाब्दिक चमत्कार से काव्य के अभिव्यक्ति पक्ष को समुन्नत बनाना उनका प्रमुख ध्येय कहा जा सकता है। वस्तुतः बुद्धि कौशल के आधार पर निर्मित रीतिबद्ध कविता में बाह्य कलात्मक सौंदर्य तो चरमोत्कर्ष पर पहुंचा हुआ है, पर स्वाभाविक और भावात्मक सौंदर्य की दृष्टि से कविता का पक्ष दबा हुआ सा प्रतीत होता है। बहिरंगपक्ष को चित्रित करने के क्रम में काव्य का अंतरंग पक्ष रीतिबद्ध कवियों से प्रायः उपेक्षित-सा हो गया है।

4.6.2 रीतिसिद्ध

रीतिकाल की काव्यधारा के ऐसे कवि जिन्होंने किसी तरह के लक्षण ग्रंथ की रचना नहीं की, पर वे चाहते तो ऐसा कर सकते थे, क्योंकि उनमें ऐसा करने की क्षमता थी, वे 'रीतिसिद्ध' काव्यधारा में परिगणित किए जाते हैं। रीतिसिद्ध कहने के पीछे यह भी भाव है कि भले ऐसे कवियों ने लक्षण ग्रंथ की रचना नहीं की, लेकिन उनकी कविताओं में रीतिबद्धता के सभी उदाहरण विद्यमान हैं। ऐसे कवि के रूप में बिहारी का नाम लिया जाता है। बिहारी ने किसी लक्षण ग्रंथ की रचना नहीं की। उनकी एकमात्र काव्य रचना 'बिहारी सतसई' के रूप में विख्यात है, तो उनके दोहों का संग्रह है। बिहारी सतसई में रस, अलंकार, नायिका भेद के निरूपण से संबंधित जो उदाहरण प्राप्त होते हैं, उनके आधार पर कोई चाहे तो लक्षण ग्रंथ की रचना कर सकता है। अलंकार और नायिका भेद का तो शायद ही कोई पक्ष हो जिसके उदाहरण बिहारी ने न दिए हों। रीतिबद्ध रचनाओं की लगभग सभी विशेषताएं उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत कर देने के बावजूद बिहारी को 'रीतिबद्ध' नहीं, 'रीतिसिद्ध' काव्य धारा का प्रगुख कवि इसलिए गाना जाता है कि इन्होंने लक्षण ग्रंथ के रूप में अपनी रचनाओं को प्रस्तुत नहीं किया। काव्य रचना एवं उसकी प्रकृति के आधार पर देखा जाए, तो 'रीतिबद्ध' और 'रीतिसिद्ध' कवियों में कोई विशेष अंतर नहीं दिखाई पड़ता है। यदि कोई अंतर है तो यह कि जहां रीतिसिद्ध कवि केवल काव्य रचना में ही लगे रहे, रीतिबद्ध, कवि काव्य सर्जन के साथ अपने आचार्यत्व का भी प्रदर्शन कर लक्षण ग्रंथों की रचना भी करते रहे।

4.6.3 रीतिमुक्त (स्वच्छंद काव्यधारा)

रीतिकाल में प्रवाहित रीतिबद्ध काव्यधारा के समानांतर रीतिमुक्त काव्य की भी एक ऐसी धारा प्रवहमान थी, जिसे 'स्वच्छंद काव्यधारा' के नाम से भी पुकारा जाता है। जैसा कि रीतिमुक्त नाम से ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस काल में रीतिबद्ध परंपरागत काव्य रचना के नियमों से मुक्त ऐसी काव्यधारा जिसकी प्रवृत्ति स्वच्छंद थी और जो कवियों की अंतःप्रेरणा से उन्मुक्त भाव से प्रवाहित हो रही थी। इस धारा से जुड़े हुए कवियों में परंपरागत रीतिबद्ध कवियों के प्रति विद्रोह की भावना भी दृगत होती है। काव्य रचना के क्रम में रीतिमुक्त कवियों ने काव्य शास्त्रीय नियमों एवं प्रचलित साहित्यिक परंपराओं को नकारते हुए अपने नवीन और क्रांतिकारी दृष्टिकोण का परिचय दिया। वे रीतिबद्ध कवियों की तरह निश्चित नियमों में बंधने के स्थान पर उनसे मुक्त होकर काव्य रचना करना पसंद करते थे। उन्हें कविता की बंधीबंधाई परिपाटी, घिसीपिटी उपमाएं तथा काव्य कलेवर को बाहरी तौर पर चमत्कारिक रूप से सजानेवाले अलंकार आदि की भाव भंगिमाएं पसंद न थीं। उन्होंने अपनी अनुभूतियों को कविता के माध्यम से बहुत सहज रूप में अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है। वे बहुत उन्मुक्त और स्वच्छंद भाव से अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के पक्षधर कहे जा सकते हैं। तमाम साहित्यिक रूढ़ियों का परित्याग कर नवीनमार्ग का अनुगामी होने के कारण रीतिमुक्त कवियों की काव्याभिव्यक्ति में जो विशिष्टता आ गई है, वह उन्हें रीतिकाल की अन्य काव्यधाराओं से अलग पहचान दिलाती है। हालांकि रीतिमुक्त कवि भी राजदरबार के आश्रय में रहते थे, पर वे अपने आश्रयदाताओं के अनावश्यक दबाव और उनकी अभिरुचियों से अप्रभावित हुए बिना अपने काव्यकर्म में लीन रहते थे। इस धारा के कवियों ने प्रेम की तीव्र अनुभूति को व्यक्त करने के साधान के रूप में काव्य को एक माध्यम भर माना। उन्होंने कविता करने के लिए कविता नहीं की, वरन् गहन और तीव्र प्रेमानुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए कविता करना उनके लिए एक अनिवार्य विवशता थी। यही कारण है कि उनकी कविता में भाव और कला का सुंदर समन्वय प्राप्त होता है। रीतिमुक्त प्रमुख कवियों में घनआनंद, आलम, बोधा, ठाकुर, द्विजदेव आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

Jagadguru Rambhadracharya Vikalang Vishwavidyalaya (Deemed to be University), Chitrakoot Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4.7 रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियां (विशेषताएं)

रीतिकाल का पूरा साहित्य जिन तत्कालीन परिस्थितियों में निर्मित हुआ यदि उन पर नजर डाली जाए, तो यह बात पूरी तरह स्पष्ट हो जाएगी कि उन परिस्थितियों में साहित्य सर्जन का वह स्वरूप स्वाभाविक ही था। उस काल का समूचा साहित्य राजदरबारों के क्रोड में पला बढ़ा था। राजाओं और सामंतों के आश्रय में आकार पाने के कारण तत्कालीन साहित्य सर्जन आश्रयदाताओं की रुचि–अभिरुचि का अनुगामी बने, यह उसकी अनिवार्य विवशता थी। हालांकि रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों ने इस विवशता को नकारते हुए अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों की स्वाभाविक और सहज अभिव्यक्ति की है, फिर भी उनको भी किसी न किसी रूप में राजाश्रय ग्रहण करना ही पड़ा था। यह अलग बात है कि बाद में किन्हीं कारणों से उन्हें राजश्रय से अलग होना पड़ा। राजदरबार के संरक्षण में रहकर काव्यरचना करने के कारण रीतिकाल के कवियों ने 'कला, कला के लिए' के सिद्धांत पर 'कविता करने के लिए कविता' का आधार अपनाकर अपनी रचनाएं प्रस्तुत की। अपने आश्रयदाताओं की भावनाओं के अनुरूप उनकी रुचि–अभिरुचि का सम्मान करते हुए इस काल के कवियों ने कविता को तद्नुरूप ढालने का भरपूर प्रयास किया। इसका परिणाम यह हुआ कि रीतिकाल का अधिकांश काव्य सर्जन दरबारी नुमाइश की सामग्री बनकर रह गया। इस काल के कवियों को आश्रय देनेवाले राजा या सामंत, जिनमें अधिकतर घोर विलासी और पराजित थे, उनसे ऐसी काव्य रचना की अपेक्षा रखते थे, जो उन्हें मानसिक शांति दे सके और उनके विलासी जीवन को उस दिशा में और अधिक उत्प्रेरित कर सके। यही कारण है कि इस काल की अधिकांश कविता पतोन्मुख विलासिता की भावनाओं का पोषण करती प्रतीत होती है। स्वाभाविक रूप से भोग लिप्सा और कलाप्रियता जैसे विशेषताओं के कारण रीतिकालीन कविता में चमत्कृत कर देनेवाली शृंगारिक प्रवृत्तियां प्रमुखता से छाई रही हैं। आलंकारिक शैली में प्रस्तुत की गई ऐसी कविताएं जिन्हें सुनकर सुननेवाले के मुंह से वाह–वाह की ध्वनि निकल जाए, इस काल में बहुतायत से रची गईं। इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार का सर्जन भी इस काल में हुआ जिसके अंतर्गत नीति, भक्ति एवं वीर रस आदि से संबंधित रचनाएं सम्मिलित हैं। रीतिमुक्त कवियों का तीव्र अनुभूतिपरक सहज और स्वाभाविक सर्जन तो खैर अपना कोई सानी नहीं रखता, जो इसी काल की देन है। वस्तुतः रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियों का विवेचन यहां अपेक्षित है, जो निम्नवत हैं–

4.7.1 शास्त्रीयता

रीतिकाल की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इस काल का सम्पूर्ण सर्जन शास्त्रीयता का आधार अपनाकर किया गया है। भावरहित कतिपय तुकबंदियों को नजरअंदाज कर दिया जाए, तो इस काल की समस्त कविताएं काव्यशास्त्र के व्यापक ज्ञान के बगैर समझ में नहीं आ सकती हैं। इस काल के कवियों द्वारा अधिकांशतः अभिव्यक्तिपक्ष को प्रमुखता देने के कारण काव्य का बाह्य पक्ष काव्यशास्त्रीय तत्वों से बहुत बोझिल हो गया है और कविता में अनुभूतिपक्ष की प्रायः उपेक्षा हो गई है। श्रेष्ठ काव्य में अनुभूतिपक्ष और अभिव्यक्तिपक्ष का सुंदर समन्वय प्राप्त होता है। इस दृष्टि से रीतिकाल की अधिकतर रचनाएं एकांगी हो गई हैं, जिनका बाह्य कलेवर, रस, छंद, अलंकार नायिका भेद आदि के अतिशय प्रयोग के कारण बहुत दुरूह और बनावटी हो गया है। ऐसे काव्य को समझने के लिए काव्यशास्त्र का सम्यक् बोध होना आवश्यक है। इस काल के लगभग सभी अच्छे कवियों को काव्यशास्त्रीय ज्ञान के बिना समझने में कठिनाई होती है। केशव, बिहारी, भूषण, मतिराम, देव, घनआनंद आदि सभी कवियों के काव्य सर्जन में किसी न किसी रूप में काव्य शास्त्रीय पक्षों का समावेश हुआ है। हालांकि घनआनंद सरीखे कवि ने किसी काव्यशास्त्रीय ग्रंथ की रचना नहीं की है, किन्तु उनके काव्य में विरोधाभास और असंगति आदि अलंकारों की भरमार दिखाई देती है, जो अलंकारों का ठीक ज्ञान नहीं रखनेवालों के समझ में कम ही आते हैं। वस्तुतः शास्त्रीयता इस काल की कविता में सर्वत्र भरी पड़ी है, जिसे इसकी प्रमुख विशेषता कहा जा सकता है।

4.7.2 शृंगारिक भावना

शृंगार की प्रवृत्ति रीतिकालीन साहित्य के मूल में है। इस काल का पूरा साहित्य शृंगारिक भावना से अनुप्राणित है। रीतिकालीन आचार्यों द्वारा संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परंपरा के आधार पर या उससे इतर भी रीतिग्रंथ– रचना के पीछे भी यही शृंगारिक भावना काम कर रही थी। हालांकि इस काल के काव्य सर्जन में शृंगार के अतिरिक्त नीति, भक्ति, वीर भावना आदि विषयक रचनाएं भी मिलती हैं, पर उनमें भी किसी न किसी रूप में शृंगारिक प्रवृत्तियां परिलक्षित होती हैं। यहां तक कि भूषण जैसा वीर रस का कवि भी शृंगारिक भावना से स्वयं को मुक्त नहीं कर सका है। चूंकि इस काल के सभी आचार्य, कवि एवं आचार्य कवि शृंगार रस को सर्वोपरि महत्ता देते हुए उसे रसराज मानते थे, अतएवं लगभग सभी ने शृंगार की सर्वोच्च सत्ता स्वीकार करते हुए उसे ही प्रमुखता दी है। रीतिकाल में शृंगार की इसी व्यापक और प्रबल भावना के कारण ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस काल को रीतिकाल के साथ–साथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शृंगारकाल भी कहने का आग्रह किया है– ''वास्तव में शृंगार और वीर इन्हीं दो रसों की कविता इस काल में हुई। प्रधानता शृंगार की ही रही। इससे इस काल को रस के विचार से कोई शृंगारकाल कहे तो कह सकता है।'' शुक्लजी के इसी संकेत के आधार पर परवर्ती अनेक विद्वानों ने 'रीतिकाल' को 'शृंगारकाल' भी कहा है, जिनमें शुक्लजी के ही एक प्रिय शिष्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

राजाश्रय में पनाह पाने के कारण इस काल की समूची कविता दरबारी कविता है। इस दरबारी काव्य में सामंती जीवन की ही झांकी प्राप्त होने के कारण उसका मूल स्वर विलासिता से ओतप्रोत शृंगारी ही है। कवियों को संरक्षण प्रदान करनेवाले आश्रयदाताओं की विलासिता का पोषण शृंगारिक रचनाओं से ही संभव था। इसीलिए कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की इच्छा के अनुसार कविता कामिनी को शृंगार के परिधान में ही पूरी तरह सजाना संवारना उचित समझा। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से रीतिकालीन कवियों ने शृंगार के सभी अंग–उपांग का विवेचन एवं काव्य का विषय बनाकर उसे बहुत व्यापक रूप में प्रस्तुत किया है। रीतिकाल के कवियों ने मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति विशुद्ध रूप से लौकिक आधार अपनाकर की है, जिसके कारण 'राधा और कन्हाई' भी पूरी तरह शृंगार की चपेट में आ गए हैं। उनके शृंगारी रूप को ही काव्य में स्थान देने के कारण यह सर्जन तत्कालीन विलासी संस्कृति के पूरी तरह अनुकूल था, जिसका उस काल में व्यापक स्वागत भी हुआ इस काल में कविता का सारा संसार इस शृंगारिक भावना में ही सिमटकर रह गया था। वस्तुतः शृंगार भावना इस काल के कवियों एवं उनकी कविताओं में व्यापक रूप से समाहित है।

रीतिकाल की अधिकांश शृंगारिक कविता को भारतीय साहित्यशास्त्र की परंपरा में वर्णित शृंगार–काव्य के निकष पर नहीं तोला जा सकता है, क्योंकि रीतिकालीन शृंगारिक काव्य–सर्जन पर इस्लामिक शृंगार–भावना का प्रभाव अधिक पड़ा है, भारतीय शृंगारपरक उदात्त भावना का असर कम। इसके पीछे फारसी–उर्दू साहित्य में वर्णित 'मस्ती का आलम' वाली भावना संभवतः अधिक कार्य कर रही थी। मुगल दरबार में फारसी संस्कृति का बोलबाला होने के कारण उसकी जो नजाकत उर्दू कविता भी आई थी, उसने तत्कालीन परिस्थितियों में रचित हिंदी साहित्य को भी किसी न किसी रूप में प्रभावित किया। ध्यान से देखा जाए तो उर्दू–हिंद दोनों में एक सी खूबियां मौजूद हैं। इधर हिंदी कविता अतिशय शृंगारिकता के प्रभाव में नारी सौंदर्य का बाह्य–स्थूल चित्रण कर वाहवाही लूट रही थी, तो उधर उर्दू कविता भी इश्क और मोहब्बत के तरानों में खोई हुई थी। अगर इस काल की हिंदी कविता भोग–लिप्सा और पतोन्मुख विलासिता में बंधकर रसिकता और मादकता बिखेर रही थी, तो ठीक उसी के समानांतर उर्दू कविता इश्क, मोहब्बत, आशिक, माशूक, दाग, बेताबी, बेकरारी, सुस्ती, हूर, गिलमान, सनम, बेवफा, छाले, फफोले, सैय्याद, सितम, उल्फत, साकी, पैमाना, शराब वगैरह की मस्ती फैला रही थी। स्वाभाविक रूप से शृंगारिक भावना रीतिकाल की पूरी कविता में पूरी तरह परिलक्षित होती है और इसकी एक–एक सांस में शृंगारिकता रची बसी है।

4.7.3 आचार्यत्व प्रदर्शन

संस्कृत साहित्य में रीति निरूपण की सुदृढ परंपरा विद्यमान थी। वहां 'रीतिसंप्रदाय' नाम से काव्यशास्त्र का एक संप्रदाय ही था, जो रीति का सर्वांग विवेचन कर चुका था। रीतिकालीन आचार्यों के सामने संस्कृत की समृद्ध परंपरा विद्यमान थी, जिसका आधार ग्रहणकर हिंदी में भी रीतिग्रंथों की रचना हुई। आचार्यत्व प्रदर्शन एवं व्यापक प्रसिद्ध प्राप्त करने की उच्च आकांक्षा में रीतिकालीन आचार्यों ने संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परंपरा का व्यवस्थित अध्ययन–मनन किया और उसके उपरांत हिंदी में रीति ग्रंथों का निर्माण कर अपनी, विद्वत्ता का व्यापक परिचय दिया। आचार्यत्व का प्रदर्शन इस काल की एक विशेष प्रवृत्ति बन गई थी। इसके कारण अधिकतर कवियों ने किसी न किसी रूप में लक्षण ग्रंथों की रचना कर अपने ज्ञान एवं अपनी कवित्व शक्ति को उजागर करने का प्रयास किया।

आचार्यत्व प्रदर्शन के इस प्रयास में कतिपय आचार्यों ने काव्यों के लगभग सभी पक्षों को सम्यक् विवेचन किया है। हालांकि अधिकतर आचार्यों का विवेचन संस्कृत काव्यशास्त्र का निरा अनुकरण मात्र प्रतीत होता है, पर उन्होंने काव्य के लक्षण, काव्य हेतु, काव्यप्रयोजन, काव्यभेद, काव्य का आत्मा, रस, ध्वनि, अलंकार, रीति, वक्रोति, औचित्य, शब्द शक्ति, नायिका भेद, गुण, दोष, छंद आदि काव्य के सभी पहलुओं को अपने विवेचन का विषय बनाया, जिससे उनके आगध पाण्डित्य का अनुमान लगाया जा सकता है। लक्षण ग्रंथों की रचना करनेवाले अधिकतर आचार्य कवियों का यह विश्वास था कि इस प्रकार के सर्जन से उन्हें बहुत बड़े आचार्य की पदवी मिलेगी। आचार्यत्व प्रदर्शन के इस व्यामोह में कतिपय आचार्यों ने अपने आश्रयदाताओं के आग्रह पर भी लक्षण ग्रंथों का निर्माण किया। आचार्य केशव की 'रसिकप्रिया' और 'काव्यप्रिया' जैसी रचनाएं इसी कोटि की है, जो प्रवीणराय को काव्यशास्त्र की शिक्षा देने के क्रम में लिखी गई थी। यह विचारणीय है कि काव्य के सभी अंगों का सम्यक् विवेचन करनेवाले केशव हिंदी के प्रथम आचार्य है। वस्तुतः आचार्यत्व प्रदर्शन की सार्वभौम प्रवृत्ति इस काल के लगभग सभी आचार्यों में पाई जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4.7.4 नारी–सौन्दर्य चित्रण

वैसे तो, रीतिकाल में विविध प्रकार का साहित्य सर्जन हुआ है, पर शृंगार वर्णन की प्रमुखता ने उसे एक विशेष तरह के स्वरूप में ढाल दिया है। शृंगार का आधार ही नारी है। अतः इस काल की कविता में नारी सौंदर्य का बहुत व्यापक चित्रण प्राप्त होता है। रीतिकाल की कविता के मूल में यदि शृंगार है, तो उसका कथ्य या विषय नारी है। नारी सौंदर्य के विविध चित्र रीतिकाल की कविता में बिखरे पड़े हैं। रीतिकाल की कविता में नारी ओर उसका सौंदर्य भरा पड़ा है। पतोन्मुख विलासिता से परिपूर्ण इस काल की कविता सामंती वृत्तियों का पोषण करने के कारण नारी सौंदर्य के अनेकवर्णी रंगों में सराबोर है। नारी को विलासिता की मूर्ति मानने के कारण इस काल का कवि तत्कालीन परिस्थितियों के वशीभूत होकर समसामयिक प्रभाव में नारी के सौंदर्य चित्रण में अपनी पूरी काव्य प्रतिभा को आजमाने से नहीं चूका है। बावजूद इसके रीतिकाल की कविता में नारी सौंदर्य का स्वाभाविक चित्रण कम ही हुआ। रीतिकालीन साहित्य में साढ़े पांच फिट की नारी को खूब बड़ा चढाकर प्रस्तुत किया गया है। इस काल का कवि नारी के बाह्य रूप लावण्य के अतिरिक्त उसके आंतरिक रूप सौंदर्य को नहीं पहचानता। वह नारी की रूप लालसा के अतिरिक्त उसका अन्य कोई रूप नहीं जानता। रीतिकालीन कवियों की सीमित काव्य प्रतिभा नारी के किसी अन्य रूप से परिचित नहीं है। वहां नारी का केवल प्रियावाला रूप ही प्रमुखता से उभकर आया है। जो उसके शारीरिक सौंदर्य से ऊपर नहीं उठने देता। इस काल के कवि की दृष्टि में नारी केवल मांसल उत्तेजना की वस्तु है। वह नारी को नारी के रूप में नहीं, विलासिता की पुतली के रूप में चित्रित करना चाहता है। इसलिए इस काल की कविता में नारी सौंदर्य चित्र बाह्य एवं स्थूल है।

4.7.5 भक्ति और नीति

रीतिकालीन कविता में नारी और शृंगार प्रमुख होने को बावजूद भक्ति और नीतिपरक कविताएं भी इस काल में बहुतायत से लिखी गईं। भक्ति काव्य की धारा अपेक्षाकृत क्षीण ही सही, पर इसमें वह तेजी नहीं रह गयी थी, जिससे सम्पूर्ण उत्तर भारत रम गया था। बहुत से संत कवियों ने इस भक्ति काव्य परंपरा का निर्वाह करते हुए उसे अक्षुण्ण रखा। ऐसे संत कवियों में सुंदरदास, चरनदास, यारीसाहब, दरियासाहब, तुलसीसाहब, गरीबदास, सहजोबाई, दयाबाई, भीखा, पलटू आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त इस काल के कुछ प्रमुख कवियों ने भक्तिपरक रचनाएं प्रस्तुत की है, पर उनमें किसी न किसी रूप में शृंगार के स्वर भी सुनाई देते हैं।

नीतिपरक काव्य सर्जन भी इस काल में कम नहीं हुआ। बिहारी ने स्वयं नीतिपरक अनेक दोहे लिखे हैं। इस समय नीतिकाव्य लिखनेवाले कवियों में वृंद, घाघ, गिरिधर और दीनदयाल गिरी के नाम विशेषज्ञ उल्लेखनीय हैं, जिनमें घाघ और गिरधर की नीति कविताएं तो आज भी लोगों की जुबान पर हैं। वस्तुतः भक्ति और नीति की दृष्टि से इस काल में उल्लेखनीय सर्जन हुआ है, जो इसकी एक मुख्य प्रवृत्ति कही जा सकती है।

4.7.6 प्रकृति चित्रण

रीतिकालीन कवियों ने प्रकृति चित्रण में रुचि तो प्रकट की है, पर स्वतंत्र रूप से नहीं, बल्कि शृंगार वर्णन में आलंबन और उद्दीपन के रूप में। नायक–नायिका के आपसी प्रेमालाप के समय प्रकृति के उद्दीपक स्वरूप का रसमय चित्रण रीतिकालीन कवियों ने बहुत तन्मयता से किया है। बावजूद इसके देव, पद्माकर, और सेनापति की कविताओं में यत्र–तत्र प्रकृति के रमणीय और स्वाभाविक चित्र भी मिलते हैं। यह अलग बात है कि सेनापति के अधिकांष प्रकृति चित्रण में श्लेष की चमत्कारिक छटा परिलक्षित होती है।

4.7.7 अलंकारों के प्रति विशेष आकर्षण

रीतिकाल की कविता में रस के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व अलंकार है। इस काल के आचार्यों एवं कवियों ने न केवल अपनी कविताओं में अलंकारों की छटा बिखेरी, वरन् अलंकार के सम्यक विवेचन पर उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना भी की। संस्कृत काव्यशास्त्र के संप्रदायों में सबसे प्रमुख माने जानेवाले 'अलंकार सम्प्रदाय' से प्रेरित इस काल में अलंकार विवेचन पर सर्वाधिक ग्रंथ रचे गए। हिंदी के प्रथम आचार्य कवि कहे जानेवाले केशव तो अलंकारवादी आचार्य के रूप में ही विख्यात हैं। अलंकार सिद्धांत पर विषेष श्रद्धा रखने के कारण उन्होंने अलंकार सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्यों, भामह, दण्डी, उद्भट आदि को अपने विवेचन का आधार बनाया। केशव की 'कविप्रिया' अलंकारों के विवेचन से संबंधित है। अलंकार के सैद्धान्तिक पक्ष पर 'भाषाभूषण' (यशवंतसिंह), 'अलंकारमाला' (सुरति मिश्र) आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

रीतिकाल का कोई ऐसा कवि नहीं है, जिसने अलंकार के व्यावहारिक पक्ष को न अपनाया हो। बिहारी, देव, पद्माकर, सेनापति, घनआनंद जैसे महत्वपूर्ण कवियों ने लगभग सभी अलंकारों का मोहक चित्रण अपने काव्य में किया

Rashtrasant Tukadoji Maharaj Nagpur University, Vishwa Bharati Institute (Deemed University)

है। अलंकारों के प्रयोग में रीतिकालीन कवि बेजोड़ हैं, लासानी हैं। बावजूद इसके अलंकारों के अत्यधिक आग्रह के कारण रीतिकाल की अधिकाश कविता बहुत बोझिल और दुरूह भी हो गई है। काव्यकलेवर को सजाने–सवारने के क्रम में रीतिकालीन कवियों ने अलंकारों को आभूषण की तरह प्रयोग में लिया है, जिसके कारण वर्णन कहीं–कहीं अस्वाभाविक भी हो गया है। वस्तुतः अलंकारों का विशेष आग्रह इस काल के सभी कवियों में दृगत होता है।

4.7.8 वीरकाव्य की रचना

रीतिकाल की कविता में श्रृंगार रस के अतिरिक्त यदि किसी दूसरे रस को प्रमुखता दी गई, तो वह वीर रस है। यद्यपि श्रृंगार इस काल की कविता पर सर्वत्र व्याप्त है, तथापि इसी समय भूषण जैसे कवि ने वीर रस में अपनी भावनाएं व्यक्त की हैं। पौरुष और वीरत्व के अमर गायक भूषण का स्थान इस काल के उत्कृष्ट कवियों में परिगणित किया जाता है। भूषण के अतिरिक्त इस काल में वीर भावना से ओत–प्रोत रचनाएं करनेवालों में सूदन, लाल, चन्द्रशेखर वाजपेयी, गुरूगोविन्दसिंह, पद्माकर आदि कवियों ने वीर रस में कविताएं प्रस्तुत की हैं। केशवदास ने भी वीर भावना से संयुक्त कतिपय रचनाएं लिखी है। श्रृंगार की सर्वव्यापी प्रभुता एवं लोकप्रियता के मध्य वीर रस की कविताओं का लिखा जाना एक आश्चर्य जनक तथ्य कहा जा सकता है। जहां सारा आलम श्रृंगार की मस्ती में झूम रहा हो, ऐसे में देशप्रेम, राष्ट्रीयता और जनजागरण की उदात्त भावना से अनुप्राणित वीर रस की रचनाओं के माध्यम से भूषण सरीखे कवि ने जातीय एकता और राष्ट्रीय गौरव की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया।

रीतिकाल में वैसे तो कई कवियों ने राजप्रशस्ति करते हुए अपने आश्रयदाताओं की वीरता का गान प्रशंसात्मक उक्तियों के माध्यम से किया, पर वह प्रशस्तिमूलक अतिशयोक्तिपूर्ण अधिक है, तास्तविक कम। रीतिकाल के अन्य कवियों द्वारा सामान्य स्तर के आश्रयदाताओं की दयावीरता, दानवीरता या युद्धवीरता के संबंध में बढ़ा–चढ़ाकर किए गए अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों की तुलना में भूषण का वीर रत्न वर्णन बहुत श्रेष्ठ और प्रभावशाली है, क्योंकि उनका वीर वर्णन भारतीय समाज के दो महानायकों शिवाजी और छत्रसाल से संबंधित है। वस्तुतः तत्कालीन परिस्थितियों में भूषण आदि सरीखे कवियों की लेखनी से जो ओजपूर्ण कविताएं प्रस्फुटित हुई हैं, वे स्वदेश प्रेम और स्वाभिमान का महत् भाव उजागर करन में पूर्णतया समर्थ है। वीर काव्य रचना की यह प्रवृत्ति रीतिकालीन साहित्य की एक विशेष महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

4.7.9 मुक्तक काव्य–प्रणयन

रीतिकालीन अधिकतर कवियों ने अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति मुक्तकों के माध्यम से की है। इस काल में प्रबंधकाव्य लिखे गए पर बहुत कम। यह काल प्रबंधककाव्य के अनुकूल न था। रीतिकाल का छंद जगत अधिकांशतः सवैया, कवित्त और दोहे तक सीमित है। अपेक्षाकृत छोटे छंदों के माध्यम से चमत्कारिक काव्य की प्रभावी अन्विति इस काल की एक बड़ी विशेषता है। अपनी बात को बहुत प्रभावशाली बनाने के लिए मुक्तक रूप में छोटी–छोटी कविताओं के माध्यम से कवि लोग अपने आश्रयदाताओं को प्रभावित करने में प्रायः सफल हो जाते थे क्योंकि प्रबंधकाव्य न तो किसी को सुनाने की फुर्सत थी, न ही किसी के पास इतना अवकाश था कि वह प्रबंधकाव्य सुने। परिणामतः मुक्तकों की रचना इस काव्य में बहुत हुई। बिहारी ने तो दोहा छंद के जरिए कविता का वह चमत्कारपूर्ण प्रदर्शन किया जिसके माध्यम से श्रोताओं पर अद्भुत प्रभाव पड़ता था। उर्दू के शेर की भांति ये दोहे सीधे दिल में उतर जाने की क्षमता से पूर्ण हैं, जिन्हें सुनकर मुंह से वाह–वाह निकले बिना नहीं रहता। वस्तुतः मुक्तकों की रचना रीतिकाल की एक विशेष प्रवृत्ति कही जानी चाहिए, जिसके संबंध में आचार्य शुक्ल की टिप्पणी विशेष उल्लेखनीय है– "इसमें रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं, जिनसे हृदय कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है। यदि प्रबंधककाव्य विस्तृत वनस्थली है, तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है। इसी से वह सभा–समाजों के लिए अधिक उपयुक्त होता है।"

4.7.10 ब्रजभाषा का लालित्य

रीतिकाल में ब्रजभाषा का जैसा माधुर्य और लालित्य दृष्टिगत होता है, वैसा इससे पूर्व उस रूप में नहीं मिलता। इस काल में ब्रजभाषा का जो संश्लिष्ट रूप हमें दिखाई देता है, वह इस बात का प्रमाण है कि इस समय तक ब्रजभाषा का काव्य सामर्थ्य पूरी तरह विकसित और परिपक्व हो चुका था। इसके स्वरूप को समुन्नत बनाने में रीतिकालीन कवियों ने और अधिक योगदान दिया। बिहारी, देव, सेनापति, पद्माकर आदि कवियों की रचनाओं में ब्रजभाषा का ऐसा मनोहारी और अर्थगांभीर्ययुक्त स्वरूप दृगत होता है कि उसे देखकर आश्चर्य होता है। प्रचलित लोकोक्तियों और मुहावरों के जरिए इस काल के कवियों ने ब्रजभाषा की बहुत प्रभावी प्रस्तुति की है। अपनी अभिव्यक्ति को और अधिक संप्रेषणीय बनाने के लिए रीतिकालीन कवियों ने ब्रजभाषा के स्वरूप को बहुत परिष्कृत रूप में ढाला। इस काल में ब्रजभाषा की चरम उन्नति दिखाई देती है।

Vishva Bharati (Institute (Deemed University) Lanuvo

4.8 रीतिमुक्त काव्य की सामान्य प्रवृत्तियां (विशेषताएं)

रीतिकाल की समूची कविता को जिन दो धाराओं में विभक्त करने का श्रेय आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र को दिया जाता है, वे हैं, रीतिबद्ध और रीतिमुक्त। रीतिबद्धता इस काल की प्रमुख प्रवृत्ति होने के कारण यह तो स्पष्ट है कि रीति या लक्षण ग्रंथों की रचना तथा उनके आधार पर काव्य सर्जन की प्रवृत्ति रीतिबद्ध कवियों की सर्वप्रमुख विशेषता रही है, पर इस काल के जो कवि रीतिबद्ध काव्य रचना की निश्चित परिधि में नहीं आते, उन्हें भी 'रीति' शब्द से विशेष लगाव रखनेवाले विद्वान 'रीतिमुक्त' नाम देकर रीति की लपेट में लेने से नहीं चूके। जिनका रीति (हिंदी साहित्य के रीतिकाल के अर्थों में) से कोई संबंध नहीं, जो उस प्रवृत्ति में बंधे नहीं और उससे मुक्त ही रहे, उन्हें रीति से जोड़कर 'रीतिकाल' के अंतर्गत उनका विवेचन–विश्लेषण कितना तर्कसंगत और न्यायपूर्ण कहा जा सकता है? जो भी हो जिन्हें 'रीतिमुक्त' नाम दिया ही जा चुका, तो स्वाभाविक है कि उनकी सामान्य प्रवृत्तियां 'रीतिबद्ध' कवियों से भिन्न होंगी, भले ही उनकी रचना शैली में कोई भिन्नता नहीं है।

'रीतिमुक्त' कवियों ने स्वयं को काव्य रचना के शास्त्रीय नियमों–बंधनों से सीमित न करते हुए, उन्मुक्त और स्वच्छंद रूप में काव्याभिव्यक्ति की है। रीतिमुक्त कवियों की काव्य रचना की भावभूमि रीतिबद्ध कवियों से निश्चित तौर पर भिन्न है। उनकी कविताएं उनके हृदय से सहज रूप मे फूटी हुई, वे अनुभूतियां है, जिनमें उनके जीवन के विविध अनुभवों की झांकी दृगत होती है। यहां रीतिमुक्त काव्यधारा की सामान्य विशेषताओं का उल्लेख करना अपेक्षित है, जो निम्नवत हैं–

4.8.1 प्रेम का स्वच्छंद और उन्मुक्त चित्रण

रीतिमुक्त काव्य धारा के कवियों ने प्रेम की अनुभूति को बहुत स्वच्छंद और उन्मुक्त तरीके से सहज रूप में अभिव्यक्त किया है। इस धारा के कवियों ने स्वयं एक सच्चे प्रेमी के रूप में उत्कृष्ट प्रेम का अनुभव किया था। यही कारण है कि वे बहुत उमंग और उल्लास के साथ काव्य सर्जन किया करते थे। एक प्रेमी के रूप में इन्होंने प्रेम की भावना को ही काव्य रूप में ढाल दिया है। प्रेम में संयोग–वियोग की जैसे तीव्र अनुभूति इन कवियों को हुई, वही कविता बनकर फूट पड़ी। इनकी कविता रीतिबद्ध कवियों की तरह सायास नहीं, अनायास प्रस्फुटित हुई है। मनोवेग के प्रवाह में रीतिमुक्त कवियों के हृदय से निकलने वाले उद्‌गार में काव्य की सहज अनुभूति दृगत होती है। घनआनंद जैसे कवि ने तो स्पष्ट घोषणा की है–

"लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।"

इस धारा के कवियों का मानना है कि वे कविता नहीं लिखते, वरन् हृदय में अवस्थित प्रेम की पीड़ा ही कविता बन जाती है। प्रेम में विरह की वेदना का आधिक्य ही काव्य रूप में परिषित हो जाता है। कविता तो उनकी भावनाओं के अभिव्यक्त हो जाने का माध्यम है। ऐसा तभी संभव है, जब प्रेम की पीड़ा की तीव्र अनुभूति हृदय में हो। प्रेम की उस पीडा से सीधा संपर्क होने के कारण रीतिमुक्त कवियों ने बहुत स्वच्छंद भाव से उन्मुक्त होकर प्रेम का चित्रण अपनी कविताओं में किया है।

4.8.2 प्रेम के लौकिक पक्ष का निरूपण

रीतिमुक्त कविताओं में प्रेम के लौकिक पक्ष को बहुत सफल अभिव्यक्ति मिली है। इसका कारण है कि इन्होंने प्रेम के लौकिक पक्ष को बहुत व्यापकता के साथ आत्मसात कर लिया था। प्रेम की लौकिकता की अनुभूतिजन्य विवशता और व्यथा का यथार्थ चित्रण बोधा की निम्नालिखित पंक्तियों में स्पष्टतया दिखाई देता है–

"जबते बिछुरै कवि बोधा हितु,
चित नैकु हमारो थिरातो नहीं।
हम कौन सी आपनी पीर कहैं,
दिलदार तो कोई दिखातो नहीं।"

इसी के समानांतर उर्दू कविता (जिसकी प्रवृत्तियां रीतिकाल में समान रूप से मिलती–जुलती हैं) में भी लगभग यही भाव इस तरह व्यक्त हुआ है–

" सभी दक्काक मिलते हैं,
कोई आकिल नहीं मिलता।
किसे अपना बनाएं,
कोई इस काबिल नहीं मिलता।
यहां सरदर्द मिल जाते हैं,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)

दर्दे दिल नहीं मिलता।''

इस धारा का कवि सच्चे प्रेम के मार्ग में आनेवाले कष्टों से भलीभांति परिचित है। वह यह जानता है कि प्रेम के मार्ग में कितनी बाधाएं हैं, कितने अवरोध हैं। बावजूद इसके वह इस पथ का राही बनना स्वीकार करता है। प्रेम की इस कठिन राह को चुननेवाला वह प्रेमी जानता है–

'प्रेम को पंथ कराल महा,
तरवारि की धार पै धावनों है।।

उर्दू कविता में भी यही भाव कुछ इस तरह व्यक्त हुआ, जो यहां पूरी तरह तुलनीय है–

''यह इश्क नहीं आसां इतना तो समझ लेना,
इक आग का दरिया है और डूब कर जाना है।''

वस्तुतः प्रेम की लौकिकता और उसके यथार्थ स्वरूप से परिचित रीतिमुक्त कवि प्रेम की इस कठिन स्थिति को सहज ही स्वीकार करने को तत्पर है।

4.8.3 आत्मपरक काव्याभिव्यक्ति

रीतिमुक्त कवियों ने अपने प्रेम की वैयक्तिक अनुभूतियों को आत्मपरक शैली में अभिव्यक्त किया है। उनके जीवन में गहन प्रेमानुभूति के जो क्षण आए, उन्हें आत्मसात करते हुए बहुत सरलता और सचाई के साथ उन्होंने कविता के माध्यम से प्रस्तुत कर दिया है। विरह, प्रेम, पीड़ा वेदना आदि को तीव्र अनुभूति के स्तर पर ईमानदारी के साथ आत्मपरक रूप से व्यक्त कर देना इस धारा के कवियों की महत्वपूर्ण प्रवृत्ति कही जा सकती है। अपने वैयक्तिक जीवन में विरह की मर्माहत पीड़ा को सहनवाले इन कवियों ने उसी पीड़ा को अभिव्यक्त किया है, जो उनके अपने अनुभव की सच्ची पूंजी है। पीड़ा जब घनीभूत हो जाए, तब वह आंसू में या फिर कविता में ढलकर अंतर्भावों का विरेचन कर देती है। यह बात रीतिमुक्त कवियों से अधिक कौन जान सकता है। उनकी विरह जन्य पीड़ा ही काव्य का स्वरूप धारण कर लेती है। ठीक ''शोकः तस्य श्लोको भवतु नान्यथा,'' की तर्ज पर। विरह के आंसुओं की यह पीड़ामय अभिव्यक्ति रीतिमुक्त कविता की बहुत बड़ी विशेषता है, जहां विरह का एक–एक पल बिताना अत्यंत कठिन है और जहां निरन्तर आंसू बहते रहने से मन को शांति मिलती है–

'घनआनंद मीत सुजान बिना सबही सुख साज समाज टरै।
तब हार पहार से लागत है अब आनि के बीच पहार परै।।

आत्मपरक अभिव्यक्ति की यह शैली हमें उर्दू कविता की याद दिला देती है, जहां आंसुओं की बड़ी कीमत है

'मुत्तकिल रोते ही रहिए तो बुझे आतिशे दिल
एक–दो आंसू तो फिर आग लगा देते हैं।।''

कहने की आवश्यकता नहीं इस तरह की आत्मपरकता उर्दू कविता की बहुत बड़ी विशेषता है, जिसके प्रभाव से हिंदी की रीतिमुक्त कविता भी अछूती नहीं है। रीतिमुक्त कविता में आत्मपरक काव्याभिव्यक्ति के विविध चित्र भरे पड़े हैं।

4.8.4 प्रेम की अकृत्रिम सरलता

रीतिमुक्त कवियों की कविताएं सीधे हृदय की अंतः प्रेरणा से फूटती हैं, जिनमें स्वाभाविक रूप से आंतरिक अनुभूतियों का सहज समावेश है। किसी तरह के बौद्धिक पाथेय का आलंबन ग्रहण किए बिना इस काल की कविता एक अकृत्रिम सरलता से विभूषित है, जिसमें निश्छलता है, सहजता है और भावों को सीधे–सीधे अभिव्यक्त कर देने की क्षमता है–

''अति सूधो सनेह को मारग है जहां नैकु सयानप बांक नहीं।''

4.8.5 परंपरागत काव्य पद्धति एवं रूढ़ियों का परित्याग

रीतिकालीन कविता में जहां एक ओर रीतिबद्ध कवि काव्य की परंपरागत काव्यशास्त्रीय पद्धति का अनुसर करते हुए काव्य रचना में प्रवृत्त हुए, वहीं दूसरी और रीतिमुक्त कवियों ने न केवल परंपरागत काव्य रचना पथ का परित्याग किया, बल्कि काव्य रूढ़ियों आदि से भी पूरी तरह अपने को अलग रखा। रस, छंद, अलंकार, नायिका भेद आदि शास्त्रीय पक्षों का विवेचन विश्लेषण करने के बजाय रीतिमुक्त कवियों ने बिना किसी दिखावे या पाण्डित्य प्रदर्शन के जो कुछ अनुभव किया बिल्कुल सहज रूप में व्यक्त कर दिया। यही कारण है कि रीतिबद्ध कवियों की तरह उनकी रचनाएं बोझिल और बनावटी प्रतीत नहीं होतीं। रीतिमुक्त कवियों में जो अलंकार आदि आए हैं, वे सब स्वतः और अनायास ही आए हैं। वे कविता के सजावट के लिए नहीं, वरन उसके स्वाभाविक और आवश्यक अंग के रूप में आए

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हैं। कहीं–कही तो रीतिमुक्त कवियों की काव्य भाषा इतनी सादगी लिए हुए है, जो अलंकार रहित होकर भी बहुत मोहक और आकर्षक है। ऐसी भाषा से युक्त कविताओं में वह क्षमता है, जो सीधे पाठको के दिल में उतरकर जगह बना ले। रीतिमुक्त कवियों की कविताओं में जो मार्मिकता है, वह परंपरागत काव्य रचना पद्धति एवं रूढ़ियों से मुक्त होने के कारण है।

4.8.6 संयोग और वियोग की मार्मिक अभिव्यक्ति

रीतिमुक्त कवियों ने हालांकि प्रेम के दोनो पक्षों, संयोग और वियोग का वर्णन किया है, पर उनका मन विरह की पीड़ा को अभिव्यक्त करने में अधिक रमा है। विरह की तुलना में वे मिलन को अपनी काव्य कल्पना में कम ही जगह दे सके हैं। एक सच्चे प्रेमी–विरही की तरह विरह वेदना की पीड़ा को ही आत्मसात करनेवाले ये कवि संयोग जानते ही नहीं। यदि संयोग का कोई अवसर भी आया है, तो उसमें भी विरह की पीड़ा मिली हुई है। यही कारण है कि रीतिमुक्त कवियों का संयोग चित्रण भी वेदना मिश्रित भाव प्रकट करता है–

"यह कैसा संयोग न सूझि परै, जो वियोग न क्यों हूँ विछोहत है।"

विरह की पीड़ा में ही निरंतर रहनेवाले ये कवि संयोग को कभी समझ ही नहीं सके। उनके प्रेम की सार्थकता तो विरह की आग में जलकर कुंदन हो जाने से है। निश्छल प्रेम की यह कल्पना हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है। विरह ज्वाल में तपे बिना सच्चे प्रेम की अनुभूति नहीं होती–

" विरह अगिन जरि कुंदन होई,
निरमल तन पावै कोइ कोई।।"

विरह की अग्नि में जलकर ही प्रेम पूर्णता को प्राप्त करता है या जो वियोग के कष्टों को सहन कर लेते हैं, वही प्रेम की पूर्णता को उपलब्ध होते हैं, यह रीतिमुक्त कवियों का सामान्य विश्वास है। विरह की अधिकता के कारण, संयोग का कोई अवसर आ जाए, तो वहे उसे समझ ही नहीं पाते। संयोग में भी अविरल आंसू बहानेवाले ये कवि विरह को ही अपनी नियति मानते हैं। रीतिमुक्त कविता की यह दृष्टि उर्दू कविता से पूरी तरह मेल खाती है, जहां ऐसा विश्वास किया जाता है कि–

"नहीं जो खार से डरते, वही उस गुल को पाते हैं"

यही कारण है कि रीतिमुक्त कवियें के यहां संयोग के चित्र बहुत कम उभरे हैं और जो उभरे हैं, उनमें भी वियोग के रंग बिखरे हुए हैं।

दूसरी ओर, विरह का जैसा मार्मिक चित्रण रीतिमुक्त कवियों ने किया है, वह बेजोड़ है और अन्यत्र दुर्लभ है। यदि यह कहा जाए कि रीतिमुक्त कविता विरह की ही कविता है, तो कोई अत्युक्ति न होगी। जहां रीतिबद्ध कवियों का विरह वर्णन अस्वाभाविक, अतिशयोक्तिपूर्ण, बनावटी और कभी–कभी हास्यास्पद प्रतीत होने लगता है, वहीं रीतिमुक्त कवियों ने बहुत स्वाभाविक और मार्मिक विरहाभिव्यक्ति की है। उनकी कविता में उनकी निजी अनुभूतियां व्यक्त हुई हैं, जिन्हें समझने के लिए विरह की पीड़ा का अनुभव चाहिए–

"समुझे कविता घनआनंद की, हिय आंखिन नेह की पीर तकी।"

अपनी आत्मानुभूतियों को ही कविता में व्यक्त करने के कारण इस काल के कवियों की विरहाभिव्यक्ति बहुत प्रभावी और मर्मस्पर्शी है। विरह जन्य वेदना जब बहुत असह्य हो जाती है, तब उसका एकमात्र उपचार है, वेदना देनेवाले प्रियपात्र की एक झलक पाना, पर वह इतना निर्मम, निर्दय और विश्वासघाती है कि उसे विरही की दशा पर कोई तरस नहीं आता। आखिर विरही क्या करे, बजाय इसके कि कोई उसकी इस दशा का बोध उस विश्वासघाती को करवा दे–

"परकारज देह को धारे फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ,
निधिनीर सुधा के समान करौ सबही विधि सुंदरता सरसौ।
घनआनंद जीवन दायक हौ, कबौं मेरियौ पीर हिये परसौ,
कबहूं वा बिसासी सुजान के आंगन मो अंसुवान को लै बरसौ।"

विरह वेदना के ऐसे अनेक मार्मिक चित्र रीतिमुक्त कविता में जगह–जगह भरे पड़े हैं।

4.8.7 सौंदर्य चित्रण

रीतिमुक्त कवियों ने सौंदर्य का बहुत मनमोहक चित्रण किया है। सौंदर्य को लेकर इन कवियों की भावना रीतिबद्ध कवियों से अलग है। जहां रीतिबद्ध कवियों ने बहुत तड़क–भड़क के साथ सौंदर्य के बाह्य पक्ष पर ही अपना ध्यान केंद्रित किया है, वहीं रीतिमुक्त कवियों ने बहुत निश्छल भाव से आंतरिक सौंदर्य को सराहा है। उनकी सौंदर्यपरक दृष्टि स्थूल नहीं, बल्कि सूक्ष्म है। बाहरी सौंदर्य के स्थान पर आंतरिक सौंदर्य को विशेष महत्व देने के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कारण रीतिमुक्त कवियों ने उसे बहुत बारीकी से समझा हैं और बड़ी कुशलता से अपनी कविता में उसे उतारने का प्रयास किया है। सौंदर्य चित्रण में इन कवियों की दृष्टि बहुत जागरूक और परिष्कृत है। यहा तक कि सुदरता के भेद को जाननेवाला ही उनकी कविता के सौंदर्य को समझ सकने में सक्षम हो सकता है–

"नेही महा, ब्रजभाषा प्रवीन और सुंदरतानि के भेद को जानै।
भाषा–प्रवीन, सुछंद सदा रहे, सो घन हू के कवित्त बखानै।।"

आंतरिक सौंदर्य की पारखी दृष्टि रखनेवाला इस काल का कवि नायिका के प्रत्येक हावभाव में एक मोहक सौंदर्य की कल्पना करता है। उसके बोलने, उसकी चितवन, उसकी हंसी, उसके अन्य हाव भाव में सौंदर्य ही सौंदर्य है। वह नायिका सौंदर्य की एक साकार प्रतिमा है–

"लाजनि लपेटी चितवनि भेद भाव भरी, लसति ललित लोल चल तिरछानि मैं।
छवि को सदन, गोरो बदन रुचिर भाल, रसनिचुरत मीठी मृदु बतरानि मैं।
आनंद की निधि जगमगाति छबीली बाल, अंगनि अनंग रंग दुरि मुरि जानि मैं।

यह प्रिया का आंतरिक सौंदर्य ही तो है कि प्रिय एक पल के लिए उसके अनिंद्य रूप सौंदर्य को विस्मृत नहीं कर सकता। उसकी सारी भावभंगिमाएं इतनी मोहक और सुंदर हैं कि वियोग की दशा में प्रिय को बेचैन किए दे रही हैं। उसकी यह बेचैनी और विवशता कितनी स्वाभाविक है–

"वहै मुस्क्यानि, वहै मृदु बतरानि, वहै
लड़कीली बानि, आनि उर में अरति है।
वहै गति लैन, औ बजावनि ललित बैन,
वहै हंसि दैन हियरा ते न हरति है।।
वहै चतुराई से चिताइ चाहने की छवि,
वहै छैलताई न छिनक बिसरति है।"

निःसंदेह यह आंतरिक सौंदर्य, प्रेम की अनुभूति का सौंदर्य वही समझ सकता है जिसे उसकी पहचान हो, परख हो और जो उस रूप माधुरी का उपासक हो, साधक हो।

4.8.8 प्रकृति का मोहक चित्रण

रीतिमुक्त कवियों ने प्रकृति का बहुत मोहक और लुभावना चित्रण किया है, जिसमें उनकी अंतर्भावना का बहुत उन्मुक्त और सहज भावाभिव्यक्ति हुई है। इस धारा के कवियों के प्रकृतिचित्र ऋतुओं के सजल वर्णन के साथ मिलकर एक विशेष प्रकार की प्राकृतिक सुंदरता की छटा बिखेरते हैं। ऋतु परिवर्तन के साथ प्रकृति के ये चित्र विरही कवियों की प्रेम भावना को उद्दीप्त करने में सहायक है। प्रकृति के ये विविध रूप उनकी विकलता को बढ़ा देते हैं–

'बौरे रसालन की चढ़ि डारन कूकत क्वैलिया मौन गहै ना।
ठाकुर कुंजन, कुंजर, गुंजत, भौरन भीर चुपैबो चहै ना।
सीतल मंद सुगंधित बीर, समीर लगे तन धीर रहै ना।
व्याकुल कीन्हो बसंत बनाय के, जाय के कंतरों कोऊ कहै ना।।"

अथवा

'धनि वै धनि पास की रतियां पति की छतियां लगि सोवती हैं।"

प्रकृति चित्रण में रीतिमुक्त कवि जितने सिद्धहस्त हैं, उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने प्रकृति के साथ ही स्वयं की विरहानुभूति को संबंद्ध कर उसमें और अधिक सजीवता उत्पन्न कर दी है। प्रकृति के साथ तादात्मीकरण करने के कारण प्राकृतिक सौंदर्य की यह छटा उनकी वेदना को बढ़ाकर उन्हें बेचैन बना देती है–

"कारी कूर कोकिला कहां की बैर काढ़ति री,
कूक कूक अब ही करे जो किनकोरि लै।
पैंड़े परे पापी ये कलापी निसि द्यौस ज्यों ही,
चातक रे घातक ह्वै तू हूं कान फोरि लै।"

रीतिमुक्त कवियों के प्रकृति चित्रण में भी उनके अंतकरण की व्याकुलता और विरह वेदना की अधिकता दिखाई देती है, जो बहुत भावप्रवण और सजीव है।

4.8.9 अकृत्रिम भाषा का सहज और निश्छल प्रयोग

रीतिमुक्त कवियों की भाषा अकृत्रिम सरलता और सहजता से विभूषित है। जहां रीतिबद्ध कवियों की भाषा अलंकारों के बोझ से लदी हुई बोझिल और अकृत्रिमता से आच्छादित है, वहीं रीतिमुक्त कवियों की भाषा अलंकारो के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अनावश्यक बोझ से मुक्त है। भावों के अनुकूल सटीक और प्रभावी शब्दों का चयन भाषा की प्रभावी प्रस्तुति के लिए बहुत आवश्यक है। इस दृष्टि से इन कवियों ने भावानुकूल भाषा प्रयोग से काव्य की प्रभावोत्पादकता को बहुत बढ़ा दिया है। कविता में व्यक्त करने के लिए सरल और अकृत्रिम भाषा जितनी समर्थ हो सकती है, उतनी कृत्रिम और बोझिल भाषा नहीं। विरहजन्य वेदना की अभिव्यक्ति के लिए रीतिमुक्त कवियों ने जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह उनके अंतर्भावों को प्रकट करने के लिए बहुत उपयुक्त है। उनकी भाषा में उनकी सारी भावनाएं अनायास व्यक्त हो गई हैं, जिससे उसमें सहज संप्रेषणीयता आ गई है। भाषा का एक निश्छल प्रयोग द्रष्टव्य है–

"प्रेमरंग पगे जगमगे जगे जामिनी के
जोबन की जोति जगी जोर उमगत है।
मदन के माते मतवारे ऐसे घूमत हैं,
झूमत है झुकि झुकि झेंपि उबरत हैं।
आलम सो नवल निकाई इन नैननि की,
पांखुरी पदम वै भंवर थिरकत हैं।
चाहत है उड़िबे को देखत मयंक मुख,
जानत है रैंने ताते ताहि में रहत है।।

भावों के अनुकूल भाषा प्रयोग करते हुए इस काव्य धारा के कवियों ने आवश्यकता पड़ने पर कहावतों और मुहावरों का भी सुंदर प्रयोग किया है, जिनमें अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि अलंकार बहुत स्वाभाविक रूप में अनायास आ गए हैं, जिनके लिए उन्होंने कोई प्रयास नहीं किया है–

'तुम कौन द्यौं पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटांक नहीं।
या
'सुनी है कि नाहीं, यह प्रकट कहावति जू, काहू कलपाय है सू कैसे कलपाय है।"

वस्तुतः भाषा का सहज, सरल और प्रभावशाली मोहक रूप रीतिमुक्त कवियों की बहुत बड़ी विशेषता है, जो अन्य धारा के कवियों से उन्हें पृथक करती है। हृदय से सहज रूप में उमड़े हुए भावों के लिए जैसी अकृत्रिम भाषा की अपेक्षा होती है, वह रीतिमुक्त कवियों की कविताओं में बखूबी दिखाई देती है। भाषा का ऐसा प्रयोग देखकर ही घनआनंद की भाषा के संबंध में आचार्य शुक्ल को कहना पड़ा– "भाषा पर जैसा अचूक अधिकार इनका था, वैसा और किसी कवि का नहीं। भाषा मानों उनके हृदय के साथ जुड़कर ऐसी वशवर्तिनी हो गई थी कि ये उसे अपनी अनूठी भावभंगी के साथ जिस रूप में चाहते थे, उस रूप में मोड़ सकते थे।

उपर्युक्त विवेचन के क्रम में कहा जा सकता है कि रीतिमुक्त काव्य धारा के कवियों की काव्य रचना का फलक बहुत व्यापक और काव्य की उच्च भावभूमि पर अवस्थित है। उपर्युक्त प्रमुख प्रवृत्तियों के साथ–साथ उनमें लोकजीवन से गहरी संपृक्तता, भक्तिभाव का प्रकटीकरण आदि प्रवृत्तियां भी मुखरित हुई हैं, जो उनकी सर्जनात्मक व्यापकता को और अधिक विस्तार प्रदान करती हैं।

4.9 रीतिकाल के प्रमुख कवि

रीतिकाल के प्रमुख कवि एवं उनकी रचनाएं–

1. **आचार्य केशव**– (कविप्रिया, रसिकपिया, रामचंद्रिका, जहांगीरजसचंद्रिका, विज्ञानगीता)
2. चिंतामणि– (काव्यविवेक, कविकुल–कल्पतरू, काव्यप्रकाश, छंदविचार रसमंजरी, पिंगल, रामायण, श्रृंगार मंजरी)
3. जसवंत सिंह– (भाषाभूषण, अनुभव प्रकाश, आनंदविलास, सिद्धांतसार)
4. बिहारी– (बिहारी सतसई)
5. मतिराम– (रसराज, ललितललाम, अलंकार पंचशिका, छंदसार, साहित्यसार, मतिराम सतसई, लक्ष्मणसार)
6. भूषण– (शिवराज भूषण, शिवा–बावनी, छत्रसाल दशक)
7. कुलपति मिश्र– (नखशिख, रसरहस्य, द्रोणपर्व, युक्तितरंगगिणी, संग्रामसार)
8. देव– (भावविलास, रसविलास, अष्टयाम, भवानी विलास, शब्द रसायन, प्रेमचंद्रिका, सुखसागरतरंग, इत्यादि)
9. भिखारीदास– (काव्यनिर्णय)
10. घनआनंद– (सुजानहित, इश्कलता, प्रेमपत्रिका, वियोगवेलि, प्रेमसरोवर)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11. पद्माकर– (पद्माभरण, हिम्मत बहादुर, विरुदावली, जगद्विनोद)
12. सेनापति– (कवित्तरत्नाकर)
13. रसलीन– (अंगदर्पण)

अन्य कवि–

श्रीपति (कविकुल कल्पद्रुम, रससागर, अलंकार गंगा), सोमनाथ (शृंगार विलास), प्रतापसिंह (शृंगार मंजरी), तोष (सुधानिधि), दूलह (कविकुलकंठाभरण), वृंद (वृंदसतसई), आलम (आलमकेलि), ग्वालकवि (कवि दर्पण), लाल कवि (छत्रसाल प्रकाश), सूदन (सुजान चरित्र), बोधा (विरह वारीश), ठाकुर (ठसक), दीनदयालगिरि (अन्योक्ति कल्पद्रुम), द्विजदेव (शृंगार लतिका)

4.10 विविध सर्जन

रीतिकाल में भक्तिपरक काव्य भी पर्याप्त लिखा गया है। बिहारी, सुखदेव मिश्र, देव, मतिराम, पद्माकर आदि शृंगारी कवियों ने भी जगह–जगह अपनी भक्ति विषयक भावनाएं अभिव्यक्त की हैं। राम और कृष्ण से संबंधित रसिक संप्रदायों की कविता का इस काल के विलासितापूर्ण परिवेश में विकसित होना स्वाभाविक ही था। यद्यपि इन संप्रदायों की भक्ति भाव संवलित कविताएं साधारण स्तर से ऊपर नहीं उठ पातीं, तथापि बिहारी आदि की भक्तिपरक कविताएं विद्यापति की भक्तिपरक उद्भावनाओं के समान तलस्पर्शी हैं। इसी काल में कवि नेवाज ने शाकुंतल की कथा का दोहे, चौपाई, आदि छंदों में अनुवाद किया है, जो बहुत प्रसिद्ध रचना है। गुमानमिश्र ने 'नैषधचरित' का अनुवाद प्रस्तुत किया। कवित्रय गोकुलनाथ, गोपीनाथ और मणिदेव द्वारा किया गया विविध छंदों में महाभारत का अनुवाद भी इस काल की प्रसिद्ध रचना है। बिहारी की सतसई के अनुकरण पर लिखी गई रामसहायदास की 'राम सतसई' तथा रामसिंह का 'राम स्वयंवर' राम साहित्य से संबंधित अन्य कृतियां हैं। वस्तुतः इस काल में अन्य विविध सर्जन भी दृगत होता है।

4.11 रीतिकाल का गद्य साहित्य

ब्रजभाषा– भावप्रकाश (हरिरायजी)
भाषायोगवशिष्ठ (रामप्रसाद निरंजनी)
पद्मपुराण (पं. दौलतराम जी)

आरंभिक खड़ी बोली के प्रवर्तकों में–
इंशाअल्लाखां
सदासुखलाल, लल्लूलाल, सदलमिश्र।

हम आज हिंदी साहित्य में जिस खड़ीबोली की बात करते हैं जो वर्तमान में हमारी अभिव्यक्ति (गद्य–पद्य दोनों में) का सशक्त माध्यम है, वह हिंदी के आधुनिक काल की देन है. इसमें दो मत नहीं है। यही कारण है कि काल विभाजन करते हुए आचार्य शुक्ल के आधुनिक काल को 'गद्यकाल' की संज्ञा दी है। सवाल गद्य के एकाध नमूने मिल जाने का नहीं है, क्योंकि खड़ीबोली गद्य के नमूने खुसरो, कबीर में भी मिली जाएंगे और उनके पूर्व भी, सवाल है कोई प्रवृत्ति पूर तरह कब अस्तित्व में आई। इसीलिए कई विद्वान आधुनिक काल से पूर्व खड़ीबोली गद्य को ढूंढने का न तो प्रयास करते हैं और न ही ऐसा करना आवश्यक समझते हैं। वे हिंदी गद्य का आरंभ रीतिकाल की कृतियों, सांप्रदायिक–धार्मिक ग्रंथों एवं वार्ता साहित्य आदि में भी नहीं खोजना चाहते– "यह कहना कि हिंदी साहित्य का आरंभ रीतिकाल (शृंगार काल) की गद्यकृतियों, सांप्रदायिक रूप से रची गोरखनाथ की रचनाओं, वैष्णवों द्वारा रचित वार्ता साहित्य एवं परवर्ती काल में लिखी ब्रजभाषा टीकाओं में ढूंढा जा सकता है, समीचीन नहीं जान पड़ता।"

बावजूद इसके यदि तटस्थ भाव से सम्यक मूल्यांकन किया जाए, तो यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि आधुनिक काल में जिस खड़ीबोली गद्य का विकास अपनी चरम अवस्था में है, उसका उत्स रीतिकाल में ही फूटा था। हिंदी खड़ीबोली गद्य के मूल में जिन चारों विद्वानों, लल्लूलाल, सदासुखलाल, इन्शाअल्लाखां और सदल मिश्र, का उल्लेख किया जाता है और जो खड़ी बोली गद्य लिखने का सूत्रपात करते हैं, उनका कार्य समय रीतिकाल की परिधि में ही आता है। सन् 1800 ई. में फोर्ट विलियम कॉलेज में अपनी सेवाएं देनेवाले उपर्युक्त चारों विद्वानों की रचनाएं आधुनिक काल आरंभ होने से बहुत पहले आ चुकी थीं। वस्तुतः रीतिकाल के क्रोड़ में आधुनिक खड़ीबोली गद्य का आविर्भाव किसी तरह नजरअंदाज नहीं किय जा सकता।

Uttarakhand Open University, Haldwani Institute (Deemed University), Kadnun

इसके अतिरिक्त इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि खड़ीबोली गद्य से पूर्व किसी न किसी रूप में गद्य का अस्तित्व था। भले वह ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी के साथ–साथ राजस्थानी, अपभ्रंश, प्राकृत किसी रूप में रहा हो, पर गद्य व्यापक रूप से लिखित धार्मिक ग्रंथों, टीकाओं और भाष्यों में रहा। अन्य रूप से लिखित व्यवहार में उसका प्रचलन नहीं था। बावजूद इसके आपसी बातचीत ओर विचारों के आदान–प्रदान में गद्य का कोई न कोई रूप तो रहा होगा, क्योंकि हर समय हर बात कविता में कहना न तो संभव है, न व्यावहारिक ही। इस दृष्टि से रीतिकाल में प्राप्त गद्य साहित्य का विवेचन विश्लेषण अपेक्षित है।

रीतिकाल में काव्य सर्जन के साथ गद्य की रचनाएं भी मिलती हैं। वैसे तो गद्य के दर्शन भक्तिकाल तथा उसे पूर्व भी आदिकाल में भी किए जा सकते हैं, पर रीतिकाल में लिखित गद्य कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। रीतिकाल में लिखे जानेवाले गद्य में राजस्थानी और ब्रज का समृद्ध रूप तो दिखाई देता ही है, दखिनी, खड़ीबोली, मैथिली, अवधी, भोजपुरी, मगही आदि बोलियों में भी गद्य लेखन का प्रयास इस समय दृगत होता है। इस काल की लिखित गद्य विधाओं में– कथा, कहानी, वार्ता, चरित्र, वचनिका, जनमसाखी, जीवनी, नाटक, ख्यात, पीढ़ी, टिप्पण, भावना, वार्तिक, वार्ता, व्याख्यानुवाद आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

रीतिकाल में वल्लभ संप्रदाय कें अंतर्गत वार्ता नाम से पर्याप्त मात्रा में गद्य साहित्य उपलब्ध होता है। इस काल में प्रस्तुत ब्रजभाषा गद्य की प्रमुख कृतियों में हरितालिका कथा, अष्टांग योग, मार्कंडेय पुराण, अध्यात्म रामायण, लोककथा और कोकमंजरी के नाम लिए जा सकते हैं। इसी काल में हरिराय द्वारा लिखित 'चौरासी वैष्णवन की भावना वार्ता', दो सौ बावन वैष्णवन की भावना वार्ता' गद्य की उल्लेखनीय कृतियां हैं। इस काल में अनेक टीकाएं भी उपलब्ध होती हैं।

यद्यपि खड़ीबोली गद्य का रूप उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व नहीं दिखाई देता तथापि इसके आस–पास कुछ ऐसी रचनाएं भी प्राप्त होती हैं, जिनमें खड़ीबोली के स्वरूप का आभास मिलता है। ऐसी कृतियों में रामप्रसाद निरंजनी का 'भाषा योग वशिष्ठ' तथा पंडित दौलतराम का 'जैन पद्म पुराण' का अनुवाद विशेष उल्लेखनीय हैं। इस काल की महत्त्वपूर्ण गद्य कृतियों में एकादशी महिमा, सीधा रास्ता, फर्श्नामा, हरिवंशपुराणवचनिका महत्वपूर्ण हैं।

जैसाकि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि सन् 1800 ई० में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना और उसमें लल्लूलाल, सदासुखलाल सदल मिश्र और इंशाअल्लाखां की सेवाएं हिंदी खड़ी बोली गद्य की वह सुदृढ़ पीठिका है, जिसके आधार पर खड़ीबोली की सशक्त धारा निरंतर प्रवाहित और विकसित होती गई। रीतिकाल की परिधि में आने के कारण आधुनिक खडीबोली के विकास में रीतिकाल के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता।

उपर्युक्त चारों विद्वानों की रचनाओं क्रमशः 'प्रेमसागर', 'सुखसागर', 'नासिकेतोपाख्यान' तथा 'रानी केतकी की कहानी' में आरंभिक ही सही खड़ीबोली का स्वरूप दिखाई देता है। इस संबंध में आचार्य शुक्ल का कथन महत्वपूर्ण है– "गद्य की एक साथ परंपरा चलानेवाले उपर्युक्त चारों लेखकों में से आधुनिक हिंदी का पूरा–पूरा आभास मुंशी सदासुखलाल और सदलमिश्र की भाषा में ही मिलता है। व्यवहारोपयोगी इन्हीं की भाषा ठहरती है। इन दो में भी मुंशी सदासुखलाल की साधुभाषा अधिक महत्व की है। मुंशी सदासुखलाल ने लेखनी भी चारों में पहले उठाई, अतः गद्य प्रवर्तन करनेवालों में उनका विशेष स्थान समझना चाहिए।"

वस्तुतः इस काल में जहां एक ओर ब्रजभाषा आदि के गद्य रूप का पर्याप्त विकास हुआ, वहीं दूसरी ओर आधुनिक गद्य का आंरभिक ही सही, महत्वपूर्ण सर्जन भी इस काल में हुआ। गद्य की विकास की दृष्टि से रीतिकाल की उपलब्धियां विशेष महत्वपूर्ण हैं।

समग्रतः कहा जा सकता है कि रीतिकाल काव्य सर्जन की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसमें काव्य का चरमोत्कर्ष दिखाई देता है। युग निरपेक्ष होने के बावजूद इस काल की रचनाएं काव्यत्व की दृष्टि से हिंदी साहित्य में पर्याप्त ऊंचा स्थान रखती हैं। इस काल में न केवल श्रृंगारपरक रचनाओं का पर्याप्त सर्जन हुआ, वरन् काव्य के सभी पक्षों पर विवेचन विश्लेषण भी प्रस्तुत किए गए। श्रृंगार के अतिरिक्त इस काल में वीर रस की पर्याप्त कविताएं लिखी गईं, जो प्रत्येक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त भक्ति, नीति एवं स्वतंत्र काव्य का भी पर्याप्त सर्जन इस काल में किया गया। कविता के साथ–साथ गद्य रचनाओं की दृष्टि से यह युग अत्यंत समृद्ध है। कहा जा सकता है कि रीतिकाल काव्य सर्जन की दृष्टि से श्रेष्ठ है तो गद्य सर्जन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण और उत्कृष्ट। वस्तुतः कविता की कलात्मक प्रस्तुति के कारण हिंदी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल का महत्व और स्थान अक्षुण्ण है।

4.12 सारांश

इस इकाई के माध्यम से उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) पर विस्तृत विवेचन–विश्लेषण प्रस्तुत किया गया। इस इकाई का सारांश निम्नवत प्रस्तुत किया जा सकता है–

Jnanpith Vishwabharati Institute (Deemed University) Lachoura

- पूर्वमध्यकाल (भक्तिकाल) के उपरांत हिंदी साहित्य में जिस काल का उदय हुआ उसे उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) के नाम से जाना जाता है।
- रीतिकाल की समय सीमा संवत् 1700 – 1900 मानी जाती है।
- रीतिकाल नामकरण आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा किया गया। उन्होंने ही इस काल को ' श्रृंगारकाल' कहने का भी संकेत किया था, जिसे आगे चलकर आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इस (श्रृंगारकाल) नाम को स्वीकार किया।
- रीतिकाल को 'अलंकृतकाल' (मिश्रबंधु) एवं 'कलाकाल' (रामशंकर शुक्ल 'रसाल') भी कहा जाता है।
- इस काल में तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप श्रृंगार वर्णन, नायिका भेद, नखशिख वर्णन की अधिकता रही। भक्तिकालीन परिवेश की ाासोन्मुख राधाकृष्ण विषयक श्रृंगारिक परिस्थितियां रीतिकालीन परिवेश में विकसित होकर 'श्रृंगारिकता' में परिवर्तित हो गईं।
- केशव रीतिकाल के सर्वप्रथम कवि हैं, पर आचार्य शुक्ल ने रीतिकाल के प्रवर्तन का श्रेय चिंतामणि को दिया है।
- रीतिकाल में कवियों के तीन वर्ग स्वीकार किए जाते हैं– रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध, रीतिमुक्त।
- रीतिबद्धता, आचार्यत्व, लक्षणग्रंथों की रचना, काव्यांग विवेचन, श्रृंगारिकता, राजाश्रयिता, श्रृंगार के साथ वीर रस वर्णन, कवित्त–सवैया का प्रयोग ब्रजभाषा का उत्कृष्ट ललित रूप आदि रीतिकाल की प्रमुख विशेषताएं कही जा सकती हैं।
- केशव चिंतामणि, मतिराम, बिहारी, भूषण, देव, कुलपति मिश्र, पद्माकर, भिखारीदास, घनआनंद आदि रीतिकाल के प्रमुख कवि हैं।
- खड़ीबोली गद्य की नींव भी रीतिकाल की परिधि में रखी जा चुकी थी।

4.13 उपयोगी पुस्तकें

1. रीतिकाव्य की भूमिका– डॉ. नगेन्द्र
2. हिंदी साहित्य का इतिहास– आचार्य रामचंन्द्र शुक्ल
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास– डॉ. नगेन्द्र
4. हिन्दी सात्यि का इतिहास– प्रो. विजयेन्द्र स्नातक
5. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास– डॉ. बच्चन सिंह

4.14 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबंधात्मक /आलोचनात्मक प्रश्न

1. रीतिकाल के नामकरण को लेकर विद्वानों में क्या मतभेद है? स्पष्ट कीजिए।
2. रीतिकाल का विस्तृत रूप से सामान्य परिचय दीजिए।
3. रीतिकाल की प्रेरक परिस्थितियों का उल्लेख कीजिए।
4. रीतिकाल के प्रवर्तन का श्रेय किसे दिया जाना चाहिए और क्यों?
5. रीतिकाल के कवियों को कितने वर्गों में रखा जाता सकता है? विस्तार से समझाइए।
6. रीतिकाल की प्रमुख विशेषताओं को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
7. रीतिसिद्ध कवि कौन है? उसका काव्य वैशिष्ट्य स्पष्ट कीजिए।
8. रीतिमुक्त काव्यधारा के सबसे प्रमुख कवि कौन है? और क्यों? उदाहरण देकर समझाइए।

लघूत्तरीय प्रश्न–

1. रीतिकाल के विद्वानों द्वारा सुझाए गए विभिन्न नामों का उल्लेख कीजिए।
2. रीतिकाल का संक्षेप में परिचय दीजिए।
3. रीतिकाल की सामाजिक परिस्थिति को समझाइए।
4. रीतिकाल की राजनीतिक परिस्थिति पर टिप्पणी कीजिए।
5. रीतिकाल की साहित्यिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6. रीतिकाल की समय सीमा निर्धारित कीजिए।
7. रीतिकाल नाम की उपयुक्तता पर टिप्पणी कीजिए।
8. रीतिकाल के कवियों की कितनी श्रेणियां हैं?
9. रीतिकाल की प्रमुख पांच प्रवृत्तियों का नामोल्लेख कीजिए।
10. रीतिकाल के प्रमुख 'पांच' कवियों के नाम लिखिए।

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1. प्रवृत्ति के आधार पर उत्तरमध्यकाल को क्या कहा जाता है?
2. रीतिकाल का समय क्या है?
3. रीति का क्या अर्थ है?
4. रीतिकाल नाम किसने दिया है?
5. रीतिकाल को अन्य किस नाम से जानते हैं?
6. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र रीतिकाल को किस नाम से अभिहित करते हैं?
7. रीतिकाल के प्रर्वतक का नाम लिखिए?
8. रीतिबद्ध का क्या अर्थ है?
9. आचार्य शुक्ल प्रथम रीतिबद्ध कवि किसे मानते हैं?
10. रीतिसिद्ध कवि कौन है?
11. कविप्रिया किसी रचना है?
12. मतिराम कितने भाई थे? नाम लिखें।
13. 'गागर में सागर' किसने भरा है?
14. रीतिकाल का कौनसा कवि सर्वाधिक रचनाएं करनेवाला माना जाता है?
15. रीतिकाल में रामकाव्य परंपरा का प्रमुख कवि किसे कहते हैं?
16. बिहारी ने किस राजा को उसके कर्त्तव्य के प्रति सावधान किया था?
17. रीतिकाल के वीररस के सर्वप्रमुख कवि कौन है?
18. भूषण ने किसको आधार बनाकर कविताएं लिखी हैं?
19. रीतिमुक्त का क्या अर्थ है?
20. रीतिमुक्त का सर्वप्रमुख कवि कौन है?
21. प्रेम के पीर का कवि किसे कहते हैं?
22. सुजान कौन थी?
23. घनआनंद किसके दरबारी कवि थे?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग-3

इकाई-05

कबीर

संरचना

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 कबीर के जीवन, व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय

5.3 कबीर का काव्य – उनके युग का दर्पण था।

5.4 कबीर के आध्यात्मिक विचार एवं सामाजिक चेतना।

5.5 कबीर पर विभिन्न धर्म-साधनाओं तथा विचारधाराओं का प्रभाव।

5.6 कबीर के दार्शनिक सिद्धान्त

5.7 कबीर की भक्ति-भावना

5.8 कबीर तथा जायसी का रहस्यवाद – एक तुलना

5.9 कबीर का कवित्व

5.10 कबीर का क्रांतिकारी रूप

5.11 कबीर का काव्य – शिल्प

5.12 कबीर का काव्य – भिाषा

5.13 महत्त्वपूर्ण अंशों की सप्रसंग व्याख्या

5.14 मूल पाठ

5.15 सारांश

5.16 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

इस इकाई में आप-

- कबीर के जीवन, व्यक्तित्व के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- कबीर के दार्शनिक सिद्धान्त
- कबीर की भक्ति-भावना
- कबीर का क्रांतिकारी रूप
- कबीर के आध्यात्मिक एवं सामाजिक चेतना के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त कर सकें।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे—

- कबीर का जीवन और व्यक्तित्व कैसा था।
- कबीर क्रांतिकारी कवि क्यों बने।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- कबीर की मनोवैज्ञानिक धारणाएँ क्या थी।
- कबीर स्वयं को क्या मानते थे।
- कबीर ईश्वर प्राप्ति की तड़प इतनी तीव्र क्यों थो।

5.2 कबीर के जीवन, व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय

भारत में आत्म-कथा, जीवन-परिचय लिखने की वैसी परम्परा नहीं रही जैसी कि पश्चिम के देशों में पायी जाती है। हमारे यहां के महापुरुष अपने विषय में कुछ भी कहने में संकोच करते रहे क्योंकि वह उसे आत्म-प्रशंसा मानकर इस कार्य को मिथ्या गर्व या दंभ का काम समझते रहे। अत: उनके विषय में प्रामाणिक सामग्री का अभाव रहा है। जो कुछ थोड़ी-बहुत जानकारी मिलती है वह यह तो उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र बिखरी सामग्री से, अथवा उनके समकालीन या परवर्ती लोगों द्वारा दिये गये संकेतों से। ये लोग प्राय: इन महापुरुषों के अनुयायी, श्रद्धालु भक्त तथा पंथ-सम्प्रदाय के सदस्य रहे है। अत: उनके द्वारा कही-लिखी गयी बातें प्रामाणिक कम हैं, उनमें अंध श्रद्धा की अभिव्यक्ति अधिक है। इन महापुरुषों को अलौकिक, परम गरिमामंडित सिद्ध करने के लिए जन-समाज में किंवदंतियां, जनश्रुतियां तथा चमत्कारपूर्ण दंतकथाएं भी प्रचलित रही हैं। अत: उनसे तथ्य प्राप्त करना उतना ही कठिन है जितना भूसे के अम्बार से अनाज के दाने पाना।

संत कबीर के संबंध में भी यह सच है। उन्होंने अपने संबंध में बहुत कम कहा है। उनके शिष्यों, भक्तों तथा पंथानुयायियों ने उनके विषय में जो कुछ लिखा है, उसमें सत्य कम, कल्पना तथा अंध श्रद्धा-भाव अधिक है। कबीर ने इन प्रशंसकों ने न केवल उनका प्रशस्ति-गाह ही किया है, अपितु अपनी रचनाओं को कबीर की रचनाएं बताकर उनके नाम से ऐसा साहित्य भी प्रचारित किया है। जिसे पढ़कर पाठक भ्रम में पड़ सकता है। यह साहित्य मौखिक भी है तथा लिखित भी।

कबीर का व्यक्तित्व तथा कृतित्व इतना क्रांतिकारी तथा प्रभावशाली रहा है कि उनको विभिन्न सम्प्रदायों, मतों, पंथों के लोग श्रद्धापूर्वक नमन करते हैं। हिन्दु उन्हें वैष्णव भक्त मानते हैं, मुसलमान पीर कहते हैं, सिक्खें के लिए वह 'भगत' हैं और कबीरपंथी उन्हें ईश्वर का अवतार बताते हैं। नव-वेदांती उन्हें मानवधर्म-प्रवर्तक कहते हैं तो साम्यवादी विचारधारा वाले उन्हें समाज का उत्थान करने वाले, प्रत्येक प्रकार के अत्याचार अन्याय शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने वाले क्रांतिकारी। समाज सुधारकों को उनके समाज सुधार संबंधी विचार आकृष्ट करते हैं तो अद्वैतवादियों को उनके निर्गुण ब्रह्म, माया, संसार की क्षणभंगुरता के संबंध में विचार।

कबीर के जीवन-वृत्त के संबंध में अनेक मत है। उनकी एक काव्य-पंक्ति के अनुसार तो उनका जन्म-स्थान मगहर नामक छोटा-सा कस्बा है जो गोरखपुर से लगभग तेरह मील दूर है तथा जहां आज भी नदी के तट पर एक समाधि बनी हुई है :

पहिले दरसन मगहर पाइयो, पुनि कासी बसे आई।

पर अधिकांश लोग उनका जन्म-स्थान काशी जनपद का लहरतारा नामक स्थान मानते हैं। स्वामी परमानन्द दास कृत 'कबीर मंसूर', लहनासिंह की पुस्तक 'कबीर कसौटी' तथा स्वामी युगलानन्द के चरितबोध उनकी जन्मभूमि लहरतारा ही मानते हैं। प्रचलित दंतकथा भी यही कहती है कि मुसलमान संतान-विहीन जुलाहा दम्पति नीरू और नीमा को कबीर परित्यक्त शिशु के रूप में इसी स्थान पर तालाब के किनारे मिले थे और उन्होंने ही उनका पालन-पोषण किया था। उनका अधिकांश जीवन काशी में बीता था :

बहुत बरस तप कीया कासी।
भस भइया मगहर को वासी॥

उनकी जन्म-तिथि का निधन-तिथि के संबंध में भी विवाद है। केवल अनुमान लगया गया है कि वह संवत् 1455 से लेकर संवत् 1569 तक जीवित रहे। डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने धर्मदास कृत 'द्वादश पंथ' के आधार पर उनका जन्म संवत् 1455 तथा निधन संवत् 1569 माना है।

चौदह सौ पचपन साल गए, चंद्रवार एक ठाठ ठए।
समंत पन्द्रह सौ उनहतरा हाई। सतगुरु चले उठ ऊंसा जाई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उनकी मृत्यु के संबंध में एक किंवदंती है कि उनके शव को लेकर हिन्दू-मुसलमानों में झगड़ा हुआ, दोनों उनका अंतिम संस्कार अपनी-अपनी रीति से करना चाहते थे। विवाद बढ़ा तो पाया गया कि शव के स्थान पर वहां केवल फूल थे। वे बांट लिए गये और दोनों सम्प्रदायों के शिष्यों ने उन्हें अपनी-अपनी रीति से उनका संस्कार किया। जहां तक उनकी कब्र का प्रश्न है, कुछ मानते हैं कि मृत्यू से कुछ पूर्व वह जानबूझ कर काशी से मगहर आ गये थे और वहीं उनकी मृत्यु हुई और वहीं उन्हें दफनाया गया; पर कुछ मानते है कि उनको अयोध्या के निकट रतनपुर नामक स्थान पर दफनाया गया।

प्राय: कबीर को स्वामी रामानन्द का शिष्य बताया जाता है और इस मत की पुष्टि के लिए निम्नलिखित पंक्ति उद्धृत की जाती है।

कासी में हम प्रकट भए हैं, रामानन्द चेताये।

जनश्रुति है कि मुसलमान परिवार में पाले-पोसे जाने के कारण कबीर को वैष्णव धर्म में दीक्षित नहीं किया गया। कबीर को पता था कि स्वामी रामानन्द प्रतिदिन प्रात: झुटपुटे में काशी के गंगा-तट पर स्नान करने जाते हैं, अत: एक दिन वह गंगा-तट की सीढ़ियों पर लेट गये। जब स्वामी जी गंगा-स्नान के लिए सीढ़ियां उतर रहे थे, उनकी खड़ाऊं कबीर के शरीर से टकराईं और उनके मुख से यकायक 'राम-राम' निकल पड़ा। कबीर ने उसे ही गुरु-मंत्र मान लिया और स्वयं को रामानंद का शिष्य कहने लगे।

इस घटना का उल्लेख कई रचनाओं – 'भक्त व्यास', 'कबीर साहब की परचई' तथा नाभादास के 'भक्तमाल' में मिलता है। परन्तु काल-गणना से यह भी केवल मनगढ़ंत घटना सिद्ध होती है क्योंकि रामानन्द का देहावसान संवत् 1456 में हुआ था और तब कबीर की आयु केवल 12 वर्ष की हो सकती है। इतनी छोटी आयु में दीक्षा की बात विश्वसनीय नहीं लगती। इसके विपरीत मौलाना गुलाम सरवर ने अपने ग्रंथ 'खजीनतुल असफिया' में शेख तकी को उनका गुरू बताया है। 'कबीर बीजक' में भी एक पंक्ति है –

मानिकपूर कबीर बसेरी, मदहति सुनी शेख तमि केरी।

अत: लगता है कि कबीर के गुरु शेख तकी ही थे।

कबीर ने हृदय से भक्त तथा मनोवृत्ति से सांसारिक माया जाल से विरक्त होते हुए भी अपना जीवन एक सद्गृहस्थ के रूप में बिताया। वह संन्यासी या विरक्त साधु न बने; पारिवारिक जुलाहे का पेशा अपनाया, करघे पर वस्त्र बुनते रहे और वस्त्र बुनते-बुनते ही काव्य-रचना करते रहे। उन्होंने विवाह किया, कुछ लोगों के अनुसार उनके एक नहीं अधिक पत्नियां थीं। उनकी पत्नियों के नाम भी बताये गये हैं – लोई, रमजनिया, धनिया। गुरु ग्रंथ साहब में पंक्तियां हैं –

मेरी बहुरिया को धनिया नाउ
लै राखिओ रामजनिया नाउ।

हो सकता है कि इस धनिया या रमजनिया से कबीर के स्वभाव का मेल न हो पाया हो और उन्होंने लोई नामक युवती से विवाह किया हो पर अब कबीर की लोई का ही पति माना जाता है तथा कहा जाता है कि उससे उनके एक पुत्र कमाल तथा एक बेटी कमाली हुए। इस संबंध में एक पंक्ति भी है –

बूड़ा वंश कबीर का, उपजा पूत कमाल।

व्यक्तित्व– शरीराकृति की दृष्टि से कबीर का व्यक्तित्व प्रभावशाली, रौबीला या भव्य नहीं था। उनके जो चित्र प्राप्त हैं उनसे लगता है कि वह मंझले कद के, साधारण शरीर वाले व्यक्ति थे, उनका चेहरा लम्बा था। वह अनपढ़ थे, उनकी पोथी-ज्ञान में आस्था भी नहीं थी :

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय।

शास्त्र-ज्ञान से अधिक वह स्वानुभव तथा हृदय की उदारता तथा पवित्रता का महत्त्व देते थे –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आंखों की देखी।

वह भक्ति को, प्राणि-मात्र के प्रति प्रेम को शास्त्र-ज्ञान से अधिक आवश्यक मानते थे -

ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय।

उनके व्यक्तित्व का सबसे प्रमुख गुण था आत्म-विश्वास। उनके अन्य गुण-अक्खड़पन, फक्कड़ स्वभाव, निर्भयवृत्ति आदि इसी आत्मविश्वास के प्रतिफल थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, 'कबीर की घरफूंक मस्ती, फक्कड़ाना लापरवाही और निर्मम अखंडता उनके अखंड आत्मविश्वास का ही परिणाम थी। उन्होंने कभी अपने ज्ञान को, गुरु को और अपनी साधना को संदेह की नजरों से नहीं देखा।'

उनका हृदय अत्यं कोमल, उदार और प्रेमल था। अपने इसी कोमल स्वभाव के कारण वह किसी को कष्ट में नहीं देख सकते थे। प्राणिमात्र के प्रति उनके मन में दया तथा सहानुभूति के भाव थे और अहिंसा को परम धर्म समझते थे।

बकरी पाती खात है ताकी काढ़ी खाल।
जे नर बकरी खात हैं तिनको कौन हबाल॥

धन के प्रति आसक्ति उनके मन में लेश-मात्र भी न थी और कहा जाता है कि वह साधु-संतों के आतिथ्य में कोई कोर-कसर नहीं रखते थे। वह सबके शुभचिंतक थे -

कबिरा खड़ा बजार में सबकी मांगे खैर

मोह-ममता से ऊपर उठ, सच बात कहने में तनिक भी संकोच न करते थे। सत्य के मार्ग पर चलने वाले कबीर की न किसी से दोस्ती थी और न किसी से बैर। अन्याय, अत्याचार, शोषण का विरोध वह निर्भय होकर करते थे। अत: सब उनसे रुष्ट थे, हिन्दू पंडित तथा मुसलमान मौलवी भी। अन्याय का विरोध करने के लिए वह बड़े से बड़ा बलिदान करने को प्रस्तुत रहते थे -

कबिरा खड़ा बजार में लिए लुकाठी हाथ।
जो घर जारै आपनो, चलै हमारे साथ॥

आत्मविश्वास से भरपूर निर्भय कबीर अक्खड़ भी कम न थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं, ''कबीर दास ने यह अक्खड़ता योगियों से विरासत में पायी थी। इसीलिए रूढ़ियों, अंधविश्वासों, धर्माडम्बरों, सामाजिक कुरीतियों की उन्होंने बड़े कठोर, निर्मम शब्दों में भर्त्सना की है तथा हिन्दू तथा मुसलमानों को फटकार लगायी है -

केसनि कहा बिगाड़िया जो मूड़ै सौ बार।
मन को काहि न मूड़िये जामे विषय-विकार॥

या

कांकर-पाथर जोरि के मसजिद लई बनाय।
ता पर चढ़ि मुर्गा बांग दे, बेहरा हुआ खुदाय॥

इस प्रकार कबीर योग और भक्ति के संगम-स्थल थे। एक ओर उनमें योगियों की सी दृढ़ता तथा अक्खड़ता थी तथा दूसरी ओर भक्तों की-सी करुणा तथा परदुखकातरता।

कबीर गृहस्थ-धर्म निबाहते हुए भी मन से विरक्त रहे। वह संसार की क्षणभंगुरता, शरीर की नश्वरता तथा धन-दौलत की झूठी शान की परिचित थे। अत: सदा राम-भक्ति में लीन रहते थे।

कहै कबीर तन झूठा भाई, केवल राम रह्यौ ल्यौ लाई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

करघे पर कपड़ा बुनते समय भी राम का गुण-गान करते थे, अपने बनाये पद गाते थे और कभी-कभी तो इतने तन्मय हो उठते थे कि कपड़ा बुनना भी भूल जाते थे –

तन बुनना तज्यौ कबीर। राम नाम लिखि लियौ सरीर।

या

जब लगि तागा बाहो देही। तब लगि बिसरै राम सनेही।

मीरा की तरह वह भी प्रम-दीवाने थे। उनके विरह-संबंधी पदों तथा 'प्रेम-विरह कौ अंग' में संकलित सख्यिों से उनकी प्रिय-विरह की पीड़ा का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। वह विरह को 'सुल्तान' कहते है :

विरहा बुरहा मत कहौ विरहा है सुलतान।

अन्यत्र भी उन्होंने कहा है –

हमन है इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या।
रहे आजाद या जग से हमन दुनिया से यारी क्या।
जो बिछुड़े हैं पियारे से, भटकते दर-बदर फिरते।
हमारा यार है हममें, हमने को इंतजारी क्या।

प्रेम-मार्ग में उनका अखंड विश्वास था –

कबीर निज घर प्रेम का मारग अगम अगाध।
सीस उतारि अगतलि धरै तब निकट प्रेम का स्वाद।

अथवा

भगति दुहेली राम की नहिं कायर का काम।
सीस उतारै हाथि करि सो लेसी हरि नाम।

कबीर स्वभाव से विद्रोही तथा क्रांतिकारी थे। उनका चिन्तन तथा विचार एक क्रांति-दृष्टा जैसे थे। इसीलिए उन्होंने ऊंच-नीच, जाति-भेद, साम्प्रदायिक वैमनस्य, धर्माडम्बर, सामाजिक कुरीतियों, रूढ़ियों, तथा अंधविश्वासों का विरोध किया, हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए सतत प्रयास किया, विश्व-बंधुत्व की भावना का प्रचार किया और मानव-धर्म की दुहाई दी। ऐसा करते कभी-कभी उनका स्वर अत्यंत कटु और तल्खी-भरा हो उठा है जो उनकी आंतरिक पीड़ा का ही परिचायक है –

जो तु बाम्हन बाम्हनि जाया।
और राह ते काहे न आया॥

कृतित्व – कबीर के नाम से इतना अधिक लिखित तथा मौखिक साहित्य उपलब्ध है कि अनेक विद्वानों द्वारा अनेक वर्षों तक अनुसंधान करने के बाद भी अंतिम रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि वस्तुत: उनके द्वारा लिखा साहित्य कौन-सा और कितना है। इसके अनेक कारण हैं। प्रथम तो अनपढ़ होने के कारण उन्होंने अपनी रचनाएं स्वयं नहीं लिखीं। अत: उनकी स्वयं लिखी हुई कोई पांडुलिपि नहीं मिलती। दूसरे, जो उन्होंने बोला होगा वह उनके शिष्यों तथा भक्तों ने कितना सही लिखा होगा यह भी संदेहास्पद है। तीसरे, उनके नाम से अन्य लोगों ने अपनी कितनी रचनाएं जोड़ दी हैं, यह भी निश्चय करना दुष्कर है।

कबीर-साहित्य के अनुसंधाता तथा मर्मज्ञ विद्वान डॉ. पारस नाथ तिवारी ने अनेक वर्षों के परिश्रम के उपरांत कबीर के 1600 पद, '500 साखियां, 13' रमैनियां प्राप्त कीं जिन्हें कबीर कृत कहा गया है। इस सामग्री का अध्ययन करने के उपरांत उन्होंने कहा कि इस विपुल सामग्री में से केवल 200 पद, 134 रमैनियां तथा 744 साखियों को कबीर की प्रामाणिक रचनाएं माना जा सकता है। कबीर-

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

साहित्य के विद्वानों–डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार कबीर की प्रामाणिक रचनाएं केवल तीन हैं : कबीर ग्रंथवाली (सम्पादक डॉ. श्यामसुन्दर दास) बीजक तथा सिक्खों का धर्म–ग्रंथ 'गुरु ग्रंथ साहिब' में संकलित कबीर की रचनाएं।

काव्यरूप की दृष्टि से उनकी रचनाओं के तीन रूप मिलते हैं –

1. साखी–जिसमें दो पंक्तियों तथा चार चरण होते हैं। यह दोहे का ही रूप है।

2. पद या सबद।

3. रमैनी जिसमें दोहा–चौपाई होती है। यह कबीर का मौलिक काव्य–रूप है। विषय की दृष्टि से उनके काव्य को दो वर्गों में रखा जा सकता है—आध्यात्मिक भाव–बोध, प्रधान रचनाएं तथा सामाजिक भावबोध प्रधान रचनाएं। सबद, रमैनी तथा बहुत–सी सखियों का विषय भक्ति, अध्यात्म, दार्शनिक विचार तथा परम तत्त्व से विरह–मिलन है। साखियों में सामाजिक, धार्मिक बाह्यडम्बर तथा कुरीतियों–रूढ़ियों पर प्रहार किया गया है।

कबीर का एक काव्य–रूप है उलटवासियां। इनमें ऊपर से देखने पर असंगत बात कही गयी है, पर उनमें गूढ़ अर्थ छिपा है। उलटबासियां साखी के रूप में भी मिलती हैं –

समंदर लागी आग नदियां जल कोयला भई।
देख कबीरा जागि पंछी रूखा चढ़ि गईं॥

तथा पदों के रूप में भी।

सारांश यह है कि कबीर का व्यक्तित्व अद्‌भुत था। कबीर एक क्रांतिदृष्टा तथा क्रांतिधर्मी युग–पुरुष थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उन्हें नृसिंहावतार की प्रतिमूर्ति कहा है –

''कबीर नृसिंहावतार की मानव प्रतिमूर्ति थे। नृसिंह की भांति वे नाना असंभव समझी जाने वाली परिस्थितियों के मिलन–बिन्दु पर अवतीर्ण हुए थे। जहां एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर से मुसलमानत्व, जहां एक ओर ज्ञान निकल जाता है और दूसरी ओर अशिक्षा, जहां एक ओर से योगमार्ग निकल जाता है और दूसरी ओर भक्तिमार्ग, जहां से एक तरफ निर्गुण भावना निकल जाती है और दूसरी ओर सगुण साधना, उसी प्रशस्त चौराहे पर वह खड़े थे।'

5.3 कबीर का काव्य– उनके युग का दर्पण था

उत्तर – राष्ट्रकवि 'दिनकर' ने लिखा था, ''हर कवि अपने युग का ही कवि होता है।''

कुछ कवियों की वाणी शाश्वत और कालजयी होती है, वे हर युग में प्रासंगिक होते हैं जैसे तुलसी या जयशंकर प्रसाद, पर सामान्यत: कवि युग की परिस्थितियों से प्रभावित होता है तथा उसकी वाणी में उसका युग प्रतिबिम्बित होता है। वह अपने देश–काल से निरपेक्ष हो ही नहीं सकता।

कबीर के आविर्भाव से कुछ वर्ष पूर्व भारत के इतिहास में एक ऐसी घटना घटित हो चुकी थी जिससे यहां की समाज–व्यवस्था, जीवन–पद्धति तथा चिन्तन–धारा में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। यह घटना थी उत्तर–पश्चिम से भारत पर इस्लाम धर्मावलंबी यवनों का आक्रमण।

राजनैतिक परिस्थितियां – राजैतिक दृष्टि से कबीर का समय अराजकता का युग था। कबीर से लगभग सौ वर्ष पूर्व अलाउद्दीन खिलजी (1277–1316) के हाथों में उत्तर भारत के शासन की बागडोर थी। वह धर्मान्ध, कट्टर, अत्याचारी शासक था, उसने हिन्दुओं पर जजिया कर लगाया, किसानों पर इतना कर–भार लादा कि उनकी आर्थिक दशा दयनीय हो उठी। वह इतना हिन्दू–विद्वेषी था कि हिन्दू न घोड़े पर बैठ कर निकल सकते थे और न अच्छे वस्त्र पहन सकते थे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उसके बाद मुहम्मद तुगलक का राज्य रहा (1351–1379 ई.)। उसने भी कर लगाये, हिन्दुओं को धर्म–परिवर्तन के लिए बाध्य किया और उनके ऐसा न करने पर उन्हें मौत के घाट उतार दिया। सन् 1398 में तैमूर लंग ने भारत पर आक्रमण किया। उसने ऐलान किया कि उसका उद्देश्य काफिरों (हिन्दुओं) को दंड देना, बहुदेववाद तथा मूर्तिपूजा को समाप्त कर गाजी बनाना है। उसने मंदिरों को तोड़ा, भ्रष्ट किया और बड़ी संख्या में हिन्दुओं को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। इन आक्रमणों तथा मुस्लिम शासकों के क्रूर आचरण का परिणाम हुआ – देश में दरिद्रता और निराशा का वातावरण, हिन्दु–मुसलमानों में पारस्परिक विद्वेष की भावना। कबीर के समय सिकंदर लोदी का शासन था। वह भी कम धर्मान्ध तथा हिन्दु–विद्वेषी न था। मुल्ला–मौलवियों की बात मानता था। उनके बहकाने पर उसने कबीर को भी मरवा डालने की धमकी दी थी। इस सबका परिणाम हुआ –

1. विवेकपूर्ण तथा सहृदय, उदारवादी विचारधारा के लोगों द्वारा साम्प्रदायिक वैमनस्य को कम करने तथा हिन्दु–मुस्लिम सम्प्रदायों में सामंजस्य स्थापित करने तथा जातिवाद को मिटाने का प्रयास।

2. सगुणोपासना के स्थान पर निर्गुणोपासना की ओर झुकाव।

3. भक्ति–भावना का प्रसार। आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में ठीक ही लिखा है –

''देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देव–मंदिर गिराए जाते थे, देवमूर्तियां तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा सकते थे, और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया, तब परस्पर लड़ने वाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गये। इतने भारी राजनैतिक उलट–फेर के कारण जनसमुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी सी छाई रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था।''

कबीर के काव्य में ये सभी बातें मिलती है। वह सगुण–मार्ग के उपासक न होकर निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं। यद्यपि उन्होंने राम, गोविन्द, हरि आदि शब्दों का प्रयोग किया है, पर उनका आराध्य निर्गुण, निराकर ब्रह्म ही है –

राम नाम तिहुं लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना॥

उनके राम दशरथ के पुत्र न होकर परम ब्रह्म हैं –

सूक्ष्म बास तैं पातरा ऐसा तत्व अनूप।

कबीर ने हिन्दू–मुसलमानों को उनके दोष बताकर उनमें एकता तथा भाईचारे की भावना उत्पन्न करने का प्रयास किया।

अरे इन दोउन राह न पायी।

राम और रहीम को एक बताया, सभी को परमब्रह्म की संतान कहा और मिलजुल कर रहने का आह्वान किया।

सामाजिक परिस्थितियां – हिन्दू तथा मुसलमान दोनों समाज अंधविश्वासों, रूढ़ियों व सामाजिक कुरीतियों से आक्रांत थे। दोनों धार्मिक आडम्बरों से ग्रस्त थे। असत्य तथा मिथ्यात्व के पुजारी होते जा रहे थे, दोनों में ऊंच–नीच का भेद–भाव था, दोनों में अनेक जातियां तथा उपजातियां थीं तथा सभी में एक–दूसरे के प्रति विद्वेष का भाव था। शूद्रों की स्थिति बड़ी दयनीय थी। स्वामी रामानुजाचार्य तथा रामानन्द के प्रयत्नों से शूद्रों को मंदिर–प्रवेश की अनुमति मिलनी शुरू हो गयी थी। रामावत् सम्प्रदाय में सभी जातियों को समान रूप में स्वीकार किया गया। इस नयी जागृति ने उपेक्षित जातियों के मन में उत्साह का संचार किया, वे हीन–भावना को त्यागने लगे, अपने अधिकार समझने लगे तथा उन्हें अपनी बात कहने का साहस होने लगा। हिन्दी के संत कवि, जिनमें कबीर सर्वोपरि हैं, अधिकतर निम्न जाति के थे और उन्होंने अपनी रचनाओं में ऊंच–नीच, बड़ा–छोटा, ब्राह्मण–शूद्र का भेदभाव मिटाने का प्रयास किया। कबीर ने भी उत्साहित हो काशी के ब्राह्मण को ललकारा –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जो तू बाम्हन बाम्हनि जाया।
और राह से काहे न आया॥

अथवा

तू ब्राह्मण मैं कासी का जुलाहा।

भगवद्भक्ति का अधिकार सबको है, यह घोषणा करते हुए उन्होंने कहा –

जाति-पांति पूछे नहिं कोई।
हरि कौं भजै सो हरि कौ होई॥

उस समय का समाज नाना प्राकर के अंधविश्वासों, जादू-टोने, ज्योतिष, स्वप्न, शकुन-विचार आदि में विश्वास करता था। विलासी शासकों की देखा देखी विलासिता की प्रवृत्ति बढ़ रही थी, नैतिक पतन हो रहा था। लोभ-लालच, चाटुकारिता में सब जकड़े थे; स्वाभिमान की भावना, आत्म-विश्वास, कर्मठता के भाव लुप्त होते जा रहे थे। तथा पराजय की भावना बढ़ती जा रही थी। कबीर इस स्थिति को देखकर अत्यन्त खिन्न हो उठे और उन्होंने अपनी रचनाओं में इस परिस्थिति का उद्घाटन भी किया तथा उसके लिए उत्तरदायी लोगों की भर्त्सना भी की।

धार्मिक स्थिति – प्राचीन काल में वर्ण-व्यवस्था का आधार जन्म नहीं कर्म तथा व्यवसाय था, परन्तु मध्य-काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्णों का आधार जन्म हो गया और इस प्रकार यह व्यवस्था विकृत हो गयी तथा उसके कारण समाज में अनेक दोष आ गये। वर्ण-व्यवस्था की तरह आश्रम-व्यवस्था भी दोषपूर्ण हो गयी। लोग साधु-संन्यासी बनते थे, परन्तु वानप्रस्थ तथा संन्यास लेने की आयु में तथा संसार से विरक्ति के कारण नहीं अपितु भौतिक कष्टों से विचलित होने या केवल परिश्रम से बचने, आलस्य, के कारण मौज-मस्ती से जीवन बिताने के लिए। गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में –

नारी मुई घर सम्पत्ति नासी।
मूंड मुड़ाए भए संन्यासी॥

जटाएं बढ़ाकर, कमंडल लेकर, गेरुएं वस्त्र धारण कर भिक्षाटन करते थे या किसी तीर्थ-स्थान में जाकर रहने लगते थे। अत: ढोंग, आडम्बर, मिथ्याचरण के कारण साधु-संतों का नाम बदनाम कर रहे थे। सभी धर्मों, सम्प्रदायों, मत-मतान्तरों में यह बीमारी फैल गयी थी, सच्ची साधना, भक्ति का लोप हो गया था। धर्म की इस अधोगति को देखकर कबीर का क्षुब्ध होना स्वाभाविक था। अत: उन्होंने लिखा है –

अरु भूले पट दरसन भाई, पाखंड भेष रहे लपटाई।
जैन बौद्ध अरु सांमत सेना, चारवाक् चतुरंग बिहूना॥
जैन बौद्ध को सुधि ना जाने, पाती तोरि देहुरे आने।
महादेव को पंथ चलावै, ऐसो बड़ो महंत कहावै।
हाट-बजारे लावैं तारी, कच्चे सिद्ध ने माया फारी।

कबीर ने धार्मिक आडम्बरों की अपनी रचनाओं के तीखी निन्दा की है –

चली है कुलबोरनी गंगा नहाइन।

अथवा

पाहन पूजै हरि मिलै तो मैं पूजूं पहाड़।
या तै तो चाकी भली पीस खाय संसार॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अथवा

बैस्नो भया तो क्या भया बूझा नहीं विवेक।
छापा तिलक लगाय कर, दग्धा लोक अनेक॥

मुसलमानों के आडम्बर भी उनकी तीखी निगाह से नहीं बचे है और उनकी भी भर्त्सना इतने ही कठोर तथा तीखे शब्दों में की गयी है –

कांकर पाथर जोरि के मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय॥

या

दिन को रोजा रखत हैं रात हनत हैं गाय।
यह तो खून बह बंदगी, कैसी खुशी खुदाय॥

कबीर के समय में हिन्दू धर्मानुयायी अनेक मत-मतांतरों में विभक्त थे तथा परस्पर लड़-झगड़कर वातावरण को विषाक्त करते रहते थे। उस समय छह विचारधाराएं मुख्य थीं :

1. नाथपंथी हठयोगी,

2. वैष्णव भक्ति,

3. निर्गुण मार्ग की ज्ञानाश्रयी धारा,

4. शैव और शाक्त का तंत्राचार,

5. सूफी प्रेममार्गी शाखा,

6. एकेश्वरवाद।

आर्थिक स्थिति – आर्थिक दृष्टि से उत्तर भारत विपन्न था। आये दिन होने वाले युद्धों, धार्मिक तनावों, अराजकता तथा करों के भार के परिणामस्वरूप सामान्य जनता की दशा बड़ी ही दयनीय थी। धन-सम्पत्ति, भोग-विलास के साधन, शक्ति तथा अधिकार केवल कुछ लोगों-शासकों तथा उनके सामंतों के हाथों में जाकर सिमट गया था। एक ओर सामंत वर्ग अपने भोग-विलास, शान-शौकत में डूबा हुआ था तो दूसरी ओर सामान्य जन अथक परिश्रम करने, खून-पसीना एक करने के बाद भी दो जून भरपेट भोजन पाने में असमर्थ था। कबीर की दृष्टि इस दुर्वस्था पर भी पड़ी, उनके संवेदनशील हृदय ने उनकी पीड़ा को समझा और अनुभव किया तथा उनके प्रति सहानुभूति प्रकट की।

निर्धन आदर कोइ न देई
लाख जतन करै ओहू चित्त न धरेई
जो निर्धन सरधन कै जाई
आगे बैठा पीठ फिराई।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कबीर अपने युग के सच्चे प्रतिनिधि थे। उनका काव्य समकालीन जीवन का दर्पण है। यह युग की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक स्थिति की झांकी प्रस्तुत करता है। वे क्रांतिकारी दृष्टा भी थे तथा क्रांति लाने के लिए कटिबद्ध निर्भय, दृढ़व्रती, संघर्षशील सेनानी भी।

वस्तुत: भक्ति-आंदोलन का प्रारंभिक साहित्य एक शुद्ध धार्मिक आंदोलन की अभिव्यक्ति न होकर तत्कालीन सामाजिक-

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आर्थिक यथार्थ की टकराहटों और असंगतियों की सशक्त अभिव्यक्ति है। ईश्वर के सामने सभी वर्गों-वर्णों के मनुष्य समान हैं, इस आंदोलन का ऐसा केन्द्र बिन्दु बन गया जिसने पुरोहित वर्ग और जातिप्रथा के विरुद्ध संघर्ष का बिगुल बजा दिया और आम जनता को अपने चारों ओर एकजुट किया।

5.4 कबीर के आध्यात्मिक विचार तथा सामाजिक चेतना

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखकों ने संवत् 1375 से संवत् 1700 के काल को पूर्व-मध्य काल या भक्ति-काल कहा है। उन्होंने इस काल के काव्य का अध्ययन करने के उपरांत इसे दो काव्य-धाराओं-निर्गुण भक्ति काव्य तथा सगुण भक्ति काव्य में विभक्त किया है। फिर प्रत्येक काव्य-धारा को दो-दो शाखाओं में बांटा है। सगुण काव्य-धारा की शाखाएं हैं - राम-काव्य तथा कृष्ण-काव्य। निर्गुण काव्य-धारा को जिन दो शाखाओं में विभाजित किया गया है, उनके नाम हैं - ज्ञानाश्रयी शाखा तथा प्रेममार्गी शाखा। ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों को संत कवि तथा उनके द्वारा लिखे गये काव्य को संत काव्य कहा गया है। ज्ञानाश्रयी शाखा के संत कवि विद्वान बहुपठित तो नहीं थे, पर बहुश्रुत अवश्य थे। साधु-संगति तथा विद्वानों के संसर्ग के फलस्वरूप उनके आध्यात्मिक तथा दार्शनिक विचार अत्यंत प्रौढ़ तथा गंभीर हैं और उन्हें पढ़कर लगता है कि उनके विचार गीता, उपनिषद्, शंकराचार्य के अद्वैतवाद, बौद्ध दर्शन, नाथ पंथ, सिद्धों, इस्लाम के एकेश्वरवाद तथा सूफियों से प्रभावित थे। संत कवियों में कबीर का स्थान तथा महत्त्व सर्वोपरि है। अत: उनके काव्य में संत-काव्य की सभी विशेषताएं मिलती हैं।

ब्रह्म का स्वरूप - संत कवि निर्गुण निराकर ईश्वर में विश्वास करते थे। उनके अनुसार ब्रह्म अजन्मा, सर्वव्यापक, अनादि-अनंत, निराकार तथा अनिर्वचनीय है। कबीर के ब्रह्म-संबंधी विचार भी ऐसे ही हैं।

निर्गुण राम जपहु रे भाई।
अविगत की गति कछु लखी न जाई॥

यद्यपि उनके रचनाओं में सगुण ईश्वर के वाचक शब्दों-राम, गोविन्द, हरि आदि का प्रयोग पाया जाता है पर उनके राम दशरथ के पुत्र त्रेता में अवतार लेने वाले राम नहीं हैं -

राम नाम तिहुं लोक बखाना
राम नाम का मरम है आना।

उनका ब्रह्म मानव शरीर वाला नहीं है -

जाके मुंह माथा नहीं, नाहीं रूप अरूप
पुहुप वास तैं पातरा, ऐसा तत्त अनूप

यह संसार उसी ब्रह्म से उत्पन्न होता है और उसी में लीन हो जाता है।

पानी ही से हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाय।
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाय॥

कबीर मानते हैं कि परमतत्व सर्वव्यापक है, घट-घट वासी है परन्तु मूर्ख मनुष्य अज्ञान के कारण उसे मंदिरों, तीर्थ-स्थानों, जंगलों में ढूंढता फिरता है।

कस्तूरी कुंडलि बसै मृग ढूढै बन मांहि।
तैसे घट घट राम हैं, दुनिया देखे नाहि॥

कबीर मानते हैं कि इस ब्रह्म की प्राप्ति के लिए भक्ति, अनन्य प्रेम तथा योग-साधना आवश्यक हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)

जीव – कबीर अद्वैतवादियों के समान जीव और ब्रह्म में अभेद मानते हैं। तुलसी के 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी' में जो भाव निहित है, वही कबीर की निम्नलिखित उक्ति में है –

हरि में पिंड पिंड में हरि है

अथवा
जल में उतपति जल में वास
जल में नलिनी तोर निवास
जल में कुंभ कुंभ में जल है भीतर बाहर पानी
फूटा कुंभ जल जलहि समाना यह तत कहौ गियानी।

वह मानते हैं कि अज्ञान के कारण जीव स्वयं को ब्रह्म से भिन्न मानता है, तुच्छ समझता है। अज्ञान का आवरण हटते ही उसकी दृष्टि निर्मल हो जाती है, ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है। इस अज्ञान का मूल कारण अहंकार है। अत: इस अहं भाव को मिटाना होगा, उसके मिटते ही जीव ब्रह्म से एकाकार हो जाता है –

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।
सब अंधियारा मिट गया पी देखत माहि॥

कबीर सांसारिक जीव को क्षणभंगुर मानते हैं –

'पानी केरा बुदबुदा' या 'प्रात:कालीन तारा' कहकर उन्होंने जीव की नश्वरता का संकेत किया है।

जगत् – कबीर के अनुसार यह विश्व ब्रह्म की अभिव्यक्ति तो है परन्तु माया–मोह, अज्ञान, सांसारिक आकर्षणों के कारण वह सांसारिक जीवों को भ्रमित करता है और अज्ञानी लोग उसे सब–कुछ मानकर ईश्वर–भक्ति से विमुख हो जाते हैं। इनके अज्ञान का कारण है माया।

माया – माया के दो रूप हैं – विद्या माया तथा अविद्या माया। विद्या माया ईश्वर की वह शक्ति है जिसके द्वारा वह सृष्टि का सृजन करता है। कबीर ने माया के केवल अविद्या स्वरूप का ही वर्णन किया है, उसकी कठोर शब्दों में निन्दा की है तथा भक्तों को उससे सावधान रहने का उद्बोधन दिया है क्योंकि वह कामिनी तथा कंचन के रूप में ठगती है, जाल में फंसाती है –

माया महा ठगिनि हम जानी

वह कहते हैं कि वह संसार के प्राणियों को प्रवंचित करती है, लूटती है –

रमैया की दुलहिन लूटा बजार

उनके माया–संबंधी विचार उपनिषद्, गीता, शंकराचार्य तथा वेदांत के अनुरूप हैं।

गुरु – संतकाव्य में गुरु को बहुत महत्त्व दिया गया है। परमतत्व का ज्ञान तथा उसकी प्राप्ति के लिए गुरु का होना परम आवश्यक है। सतगुरु की कृपा से ही अज्ञान में भटका जीव भव–सागर को पार कर सकता है –

बलिहारी गुरु आपणे द्यौ हाड़ी कै बार।
जिन मानुष तैं देवता करत न लागी बार॥

'गुरु कौ अंग' की साखियों में कबीर ने बड़ी उच्छ्वसित भाषा में गुरु के माहात्म्य का वर्णन किया है –

सतगुरु की महिमा अनत, अनत किया उपकार।
लोचन अनत उघाड़िया, अनत दिखावणहार॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

एक अन्य साखी में वह गुरु को ईश्वर से भी अधिक महत्त्व देते हैं –

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपणे जिन गोविन्द दियौ दिखाय॥

जाति-पांति का विरोध – बौद्ध धर्म ने सर्वप्रथम ब्राह्मणवादी कर्मकाण्ड के विरुद्ध जनव्यापी विद्रोह का रूप धारण किया। बाद में भक्ति-आंदोलन के प्रारंभिक कवियों – कबीर, रैदास, दादू, आदि निम्न वर्ग (जुलाहा, चमार, धोबी, रंगसाज़) से आये कवियों तथा उनके चलाये गये पंथों-सम्प्रदायों ने ब्राह्मण धर्म की अनुदाता के विरुद्ध व्यापक जनविद्रोह का रूप अपनाया और यह धार्मिक विद्रोह जन-जन में फैल गया। अधिकतर संत कवि-रैदास, मलूकदास, रज्जन, कबीर सब निम्न जाति के थे तथा सवर्ण लोगों के अत्याचारों से पीड़ित रहे थे। भुक्तभोगी होने के कारण उन्होंने ऊंच-नीच, सर्वण-शूद्र, जाति-पांति, वर्ग-भेद का तीव्र विरोध किया तथा बताया कि भक्ति, मंदिर-प्रवेश, शास्त्र-पाठ का अधिकार सबको है। इनकी दृष्टि में मानव धर्म ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है, प्राणिमात्र के प्रति दया, करुणा, सहायता का भाव होना चाहिए। कबीर ने अपनी अक्खड़ वाणी में ब्राह्मणों के आभिजात्य को चुनौती दी –

जो तू बाहम्न वबाहम्नि जाया
और राह ते काहे न आया
अन्यत्र उन्होंने उसे शास्त्रार्थ के लिए ललकारते हुए कहा
तू ब्राह्मण मैं काशी का जुलाहा चीन्ह न मोर गियाना।

बाह्यडम्बर, रूढ़ियों, अंधविश्वासों का विरोध अन्य संत-कवियों के समान कबीर ने भी किया। हिन्दू तथा मुसलमानों दोनों के बाह्यडम्बर, उनकी रूढ़ियों तथा उनके अंधविश्वासों पर कठोर प्रहार किया। इन स्थलों पर उनकी वाणी में तीखा व्यंग्य है, प्रतिपक्ष को धूल चटाने की अपार शक्ति है। सिर मुंड़ाने, तिलक-छापा लगाने, माला फेरने, गंगा-स्नान कर पापों को धोने, तीर्थयात्रा द्वारा स्वर्ग के द्वारा खुलने, मूर्ति-पूजा, पशु-बलि या कुरबानी सब पर कठोर प्रहार किया है। मूर्ति-पूजा पर प्रहार करते हुए कहते हैं –

पाहन पूजै हरि मिलैं तो मैं पूजूं पहार।
ताते तो चाकी भली पीस खाय संसार॥

सिर मुड़ाना – मूंड मुड़ाए हरि मिलैं सब कोई लेय मुड़ाय।
बार-बार के मूड़ते भेड़ न बैकुंठ जाय।

माला फेरना – माला फेरत जग मुआ गया न मन का फेर।

पशु-बलि – बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल
जे नर बकरी खात हैं, तिनकौ कौन हवाल।

रोज़ा रखना – दिन को रोज़ा रखत है
रात हनत है गाय।

नमाज़ पढ़ना – **कांकर पाथर जोरि कै मस्जिद लई बनाय।**
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, बहिरा हुआ खुदाय॥

छापा-तिलक – **छापा तिलक लगाइ कर दगधालोक अनेक**

छूआछूत – **हिन्दू आपन करै बड़ाई गागर छुअन न देई**
वेश्या के पायन तर सोवे, यह देखों हिन्दुवाई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बहुदेववाद तथा अवतारवाद – **अक्षर पुरुष इक पेड़ है, निरंजन वाकी डार त्रिदेव शाखा भये, पात भसा संसार।**
ना दसरथ घर औतरि आया। ना लंका का राव सताया।

शास्त्र–ज्ञान को तुलना में प्रेम–भक्ति की महिमा–कबिर शास्त्र–ज्ञानको अनावश्यक मानते थे –

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढै सौ पंडित होय॥

अन्य संत कवियों के समान वह नाम–स्मरण पर बल देते हैं, पर यह नाम जाप बाहरी न होकर मन का होना चाहिए। कबीर इसे अजपा जाप कहते हैं।

कबीर सुमिरण सार है और सकल जंजाल।
आदि संत सब सोधिया दूजा देखौं काल॥

वह परम सत्ता का स्मरण करते करते उसमें इतने लीन हो जाते हैं कि किसी अन्य का अस्तित्व ही नहीं रहता –

मेरा मन सुमिरै राम कूं, मेरा मन रामहिं आहि।
अब मन रामहि ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि॥

विरह का महत्त्व – कबीर ने ब्रह्म को पति तथा स्वयं को प्रेयसी मानकर अपने प्रेम–संबंध का चित्रण किया है। उनके काव्य में प्रिय–मिलन के चित्र भी हैं –

दुलहिन गावहु मंगलचार
आये है राजा राम भरतार

पर मिलन के पदों की तुलना में विरह की साखियां तथा पद कहीं अधिक हैं, और मार्मिक भी। वह विरह को आत्मा का कलुष दग्ध करने वाला मानते हैं तथा उसे सुल्तान की तरह शक्तिशाली बताते हैं –

विरहा बुरहा मत कहौ विरहा है सुलतान।
जिहि घट विरह न संचरै सो घट सदा मसान॥

प्रिय के विरह में विरहिणी की दशा का वर्णन अत्यन्त मार्मिक है।

अंखड़ियां झांई पड़ी पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियां छाल्या पड़्या राम पुकारि पुकारि॥

अपनी इस दारुण विरह–व्यथा का अंत करने के लिए विरही भक्त सब कुछ करने के लिए, प्राण त्यागने तक के लिए भी प्रस्तुत है :

इस तन का दीवां करौ, बाती मूल्यूं जीव।
लोहो सींचौ तेल ज्यूं, कब मुख देखौं पीव॥

क्योंकि कबीर का विश्वास है कि विरहाग्नि में तपे बिना प्रिय–से मिलन नहीं हो सकता :

हंसि हंसि कंत न पाइये जिनि पाया तिन रोइ।
जौं हंसिहौं हरि मिलै तो नहीं दुहागनि कोई॥

नारी–संबंधी दृष्टिकोण – कबीर को क्रांतिद्रष्टा कहा जाता है, परन्तु उनका नारी–संबंधी दृष्टिकोण पुरातन पंथियों जैसा प्रतिगामी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ही है। कदाचित् इसका कारण उनका दाम्पत्य जीवन और उसके कटु अनुभव हों। वह नारी की निन्दा ही करते हैं, उसे माया का एक अस्त्र मानते हैं :

नारी की झांई परत अंधा होत भुजंग
कबिरा तिन की कौन गति जे नित नारी के संग

या

एक कनक अरु कामिनी दुर्गम घाटी दोय

या

जब जानी तब परिहरी, नारी बड़ा विकार

हां, पतिव्रता नारी की प्रशंसा करने में उन्होंने संकोच नहीं किया है –

पतिव्रता मैली भली काली कुचित कुरूप।
पतिव्रता के रूप में वारौं कोटि सरूप॥

काव्य–रूप, अलंकार, प्रतीक–योजना तथा भाषा–शैली अधिकांश संत कवियों की वाणी, साखी तथा पदों के रूप में मिलती है। कबीर ने इन दो के अतिरिक्त रमैनी भी लिखीं। उन्होंने अलंकारों का प्रयोग किया है पर चमत्कार के लिए नहीं, अपनी बात को स्पष्ट तथा प्रभावशाली बनाने के लिए; उपमा, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, रूपक उनके प्रिय अलंकार है। अपनी रहस्यानुभूति को प्रकट करने के लिए उन्होंने प्रतीकों का प्रयोग किया है। कबीर की भाषा को सधुक्कड़ी, खिचड़ी, पंचमेल भाषा कहा गया है क्योंकि उसमें खड़ी बोली हिन्दी के अतिरिक्त पंजाबी, राजस्थानी, उर्दू, ब्रज तथा अवधी के शब्द भी मिलते हैं। उनकी भाषा साहित्यिक, प्रांजल, प्रौढ़ नहीं कही जा सकती; वह लोक–भाषा है, अत: उसे समझना कठिन नहीं है। वस्तुत: उनका काव्य लोक–काव्य है, जन–सामान्य के प्रति समर्पित। सारांश यह है कि कबीर के काव्य में संत–काव्य के सभी गुण पाये जाते हैं।

5.5 कबीर पर विभिन्न धर्म–साधनाओं तथा विचारधाराओं का प्रभाव

पाश्चात्य कवि आलोचक टी.एस. इलियट ने अपने प्रसिद्ध निबंध 'Tradition and Individual Personality' में बड़े जोरदार शब्दों में प्रतिपादित किया है कि जागरूक, संवेदनशील तथा विवेकपूर्ण लेखक अपनी परम्परा को विस्मृत नहीं कर सकता, उसकी उपेक्षा नहीं करता, उससे कटना उसके लिए आत्मघाती होता है। उस पर पूर्ववर्ती परम्पराओं, विचारधाराओं एवं सिद्धांतों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। कबीर अनपढ़ थे, अत: उनके बहु–पठित होने, शास्त्रों का अध्ययन करने पर प्रश्न ही नहीं उठता। हां, वह बहु–श्रुत थे, सत्संग तथा विभिन्न मतों के संतों एवं साधुओं के सम्पर्क के परिणामस्वरूप उन्हें अपने युग में प्रचलित विविध आध्यात्मिक तथा दार्शनिक सिद्धांतों की जानकारी थी और उसकी छाया उनकी रचनाओं में स्पष्ट देखी जा सकती है।

उपनिषदों का प्रभाव – मुसलमान परिवार में पालन–पोषण होने तथा पैतृक व्यवसाय कपड़े बुनने का पेशा अपनाने के बावजूद उनके संस्कार हिन्दुओं के थे। फिर हिन्दू साधुओं तथा संतों की संगति के कारण वह वैष्णव धर्म से सुपरिचित हुए, शंकराचार्य के अद्वैतवाद में उनकी आस्था जगी। उन्होंने भी माना कि केवल ब्रह्म है, जगत् मिथ्या है, ब्रह्म की ही सत्ता है, उसके अतिरिक्त कोई अन्य देवी–देवता नहीं है, 'एकोऽहं द्वितीयोनास्ति'। जिस प्रकार उपनिषदों में ब्रह्म को अगम्य, अगोचर,, इन्द्रियातीत, अनिर्वचनीय कहा गया है उसी प्रकार कबीर भी मानते हैं उनका ब्रह्म भी अगम अगोचर निराकार है :

जाके मुंह माथा नहीं, नाहीं रूप अरूप।
पुहुप बास तैं पातरा, ऐसा तत्त अनूप।

वह उसे स्वानुभूति का विषय बताते हैं :

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

गंगे केरी सरकरा मन ही मन मुस्काय

ब्रहदारग्योकनिषद् में कहा गया है कि ब्रह्म न मोटा है, न पतला, न छोटा है न बड़ा।

कबीर कहते हैं –

भारी कहौं तो बहु डरौं, हलका कहौं तो झूठा।
मैं का जानूं राम कूं, नैनूं कबहुं न दीठा॥

उनका ब्रह्म अलक्ष्य है, इसीलिए वह उसे अलख–निरंजन कहते हैं –

अजरा, अमरा कथै सब कोई, अलख न कथणां जाई।
नाति सरूप वरण नहीं जाकै, घट घटि रह्यौ समाई॥

वह ब्रह्म को सगुण तथा निर्गुण दोनों से परे बताते हैं –

गुण में निरगुण, निरगुण में गुण

इस प्रकार कबीर पर उपनिषदों, शंकराचार्य के अद्वैतवाद का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। उपनिषदों के समान ही वह इन्द्रिय–निग्रह, संयम, मन को स्थिर कर मन: साधना का महत्त्व बताते हैं। उन्होंने मन की चंचलता को समाप्त कर उसे स्थिर करने पर बहुत बल दिया है –

मन के मत न मानिए मन के मते अनेक
जो मन पर असचार हैं ते साधू कोई एक

उन्होंने मन को मतवाला हाथी (गयन्द) कहा है तथा उसे अंकुश द्वारा वश में रखने की बात कही है।

वैष्णव भक्ति का प्रभाव – वैष्णव भक्ति में नाम–स्मरण पर बहुत बल दिया गया है। कहा गया है कि राम ने तो केवल आहिल्या, शबरी, जटायु आदि का ही उद्धार किया था पर राम नाम के सहारे सहस्त्रों लोग भव–सागर से पार हो गये। कबीर भी राम नाम को बोहित (नौका) मानते हैं, उसे निर्धन, रंक के लिए मणि बताते हैं :

नाउं मेरे बांधव नाउं मेरे भाई।
अंत बिरिया नाउं सहाई॥
नाउं मेरे निरधन ज्यूं निधि पाई।
कहै कबीर जैसे रंक मिठाई॥

कबीर पर सिद्धों तथा नाथों का भी प्रभाव था, पर उनकी अनन्यभाव की भक्ति सूर तथा तुलसी आदि वैष्णव भक्तों की तरह थी।

कबीर रेख सिन्दूर की, काजल दिया न जाइ
नैनु रमइया रमि रहा, दूजा कहां समाइ।

परन्तु वह बहदेववाद के विरुद्ध थे –

वेश्या केरा पूत ज्यों कहै कौन सो बाप

उनमें दैन्य भाव भी वैष्णव भक्तों के समान ही था, वह स्वयं को राम का कुत्ता बताते हैं –

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउं।
गले राम की जेवड़ी, जित खींचै तित जाउं॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चारित्रिक गुणों – शील, दया, क्षमा, उदारता, संतोष, परोपकार, धैर्य, सत्य, अहिंसा तथा सदाचार पर भी उन्होंने वैष्णव भक्तों की तरह बल दिया है। दूसरों की सहायता करने की प्रशंसा तथा स्वार्थ की निन्दा करते हुए वह कहते हैं –

बड़ा भया तो का भया जैसे पेड़ खजूर
पंथी को छाया नहीं फल लागै अति दूर

कृच्छ–साधना, कठोर तपस्या, काया–कष्ट का विरोध बौद्धों के प्रभाव का द्योतक है –

भूखे भूखे भगति न कीजै, अपनी माला लीजै।

कबीर की रचनाओं में योग–साधना का जो स्वरूप है तथा जिस शब्दावली का प्रयोग है वह वही है जो सिद्धों तथा नाथों में पाया जाता है :

हिंडोलना तहां झूलै आतमराम

प्रेम भगति हिंडोलना सब संतनि कौ विश्राम

कुंडलिनी, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, सहस्रसार, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, अनहद नाद, बिन्दु अमृत–स्राव, सहज शून्य, षट्–चक्र भेदन, कंवल, मुद्रा आदि ऐसे ही शब्द हैं :

इंगला पिंगला ताना भरनी सुषमन तार से बीनी चदरिया

अथवा

षट चक्र की गागरी, त्रिवेणी संगम पाट

नाद व्यंद की नावरी, राम नाम कनिहार।

कबीर द्वारा संबोधित अवधूत नाथ–पंथी योगी ही है।

अवधू जोगी जग थैं न्यारा।

मुद्रा निरति, सुरति कर सींगी, नजर न खडै धारा।

बसै गगन में हुनी न देखे, चेतनि चौकी बैठा।

चढ़ि अकास आसन चहि छाडै, पीवै महारस मीठा॥

हां, कबीर बाहा वेश, मुद्रा, खप्पर, जटा–जूट का विरोध करते हैं, मन ही मन आसन लगाने की, अजपा जाप करने की बात कहते हैं। कबीर की कुछ पंक्तियां तो सिद्धों की वाणी का लोक–भाषों में रूपान्तर ही हैं। सिद्ध सरहप्पा यदि कहता है –

जहि क्षण पवण ण संचरह, रवि ससि जाह पवेस

तो कबीर लिखते हैं –

जिहि बन सीह न संचरै, पंखि उड़ै नहिं जाइ

रैन दिवस का गभि नहीं, तहां कबीर रहा ल्यौ लाइ

इसी प्रकार अपभ्रंश की पंक्ति 'पंडित सअल सत्य गरवाणइ'' को कबीर ने इस प्रकार लिखा है :

पढ़ि पढि पंडित वेंद बरवाणै

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

गोरखनाथ के समय से ही नाथपंथी साधु हिन्दुओं और मुसलमानों के बाह्याचार, धार्मिक पाखंड, जातपांत की कट्टरता, रूढ़िवादिता और धार्मिक अंधविश्वासों का विरोध कर रहे थे। उनमें से अनेक गृहस्थ लोग थे। नाथपंथियों के समान कबीर भी पिंड में ब्रह्मांड मानकर मन ही मन उपासना करने की बात कहते हैं, शास्त्र-ज्ञान, धर्म-ग्रंथों के अध्ययन, तीर्थयात्रा, व्रत-उपवास, छुआछूत, जाति-पांति का विरोध करते हैं। मन की शुद्धता, इन्द्रिय-निग्रह, सदाचार पर बल देते हैं, गुरु का महत्त्व मानते हैं।

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघाड़िया अनंत दिखावणहार॥

दोनों ने नारी की निन्दा की है। 'ओंकार' तथा निरंजन शब्दों का प्रयोग नाथों तथा कबीर दोनों ने किया है :

वो ओंकार आदि जो जानै
लिखि के भेटै ताहि सो मानै
वो ओंकार कहै सब कोई
जिन्ही यह लखा सो विरला कोई
कबीर पर सिद्धों और नाथों का प्रभाव

कबीर की बानियों की काव्यात्मक बुनावट तथा उनकी विचारधारा पर सिद्ध साहित्य, नाथपंथी योगियों के साहित्य तथा मराठी संत कवियों में ज्ञानेश्वर तथा नामदेव के साहित्य का गहरा प्रभाव है। कबीर ही नहीं सम्पूर्ण संत साहित्य आठवीं-नौवीं सदी से चली आ रही विभिन्न अवैदिक साधना पद्धतियों से काफी-कुछ ग्रहण करता है, पर अपनी विचारधारा का भी स्वतंत्र रूप में विकास करता है। परन्तु कबीर की विचारधारा नाथपंथ की नकल नहीं है। उसका अपना स्वतंत्र स्वरूप है। यद्यपि कबीर बौद्धों से भी बहुत-कुछ लेते हैं, योगियों और तांत्रिकों से भी, पर कबीर न तो बौद्ध हैं, न हठयोगी, न नाथपंथी। बौद्ध धर्म का जब ह्रास हुआ तो आठवीं-नौवीं सदी तक आते-आते वह तंत्र-मंत्र की साधना में बदल गया और उसके अपने बाह्याचार तथा कर्मकांड भी बन गये। वज्रयान और महायान नामक शाखाओं का वर्णन मिलता है। इसी साहित्य को 84 सिद्धों का साहित्य कहा जाता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में सिद्ध साहित्य में ''पदों की योजना इस प्रकार की है कि ऊपर से उससे कुत्सित लोक-विरुद्ध अर्थ प्रकट हो, या परस्पर विरोधी अनर्थक बातें प्रतीत हों, किन्तु साधना के रहस्यात्मक शब्दों की जानकारी प्राप्त होने पर साधनात्मक विशुद्ध अर्थ स्पष्ट हो जाए।'

इन्हीं रचनाओं को उलटबांसियों की संज्ञा दी जाती है। कबीर ने भी ऐसी उलटबांसियों की रचना की है। उदाहरण के लिए कबीर का निम्नलिखित पद देखा जा सकता जा सकता है।

एक अचंभौ देखा रे भाई।
ठाढ़ा सिंघ चरावै गाइ॥ टेक॥
पहिलै पूत पिछै भई, माई चेला कै गुर लागै पाई।
जल की मछरी तरवरि ब्याई, कूता कौ लै गई बिलाई।
बैलहि डारि गौंनि घरि आई, घोरै चढ़ि भैंस चरावन जाई।
तलि करि साखा उपरि करि मूल, बहुत भांति जड़ लागे फूल।
कहै कबीर या पद कौं बूझै, ताकौं तीनिउं त्रिभुवन सूझै॥

सूफी विचारधारा का प्रभाव-सूफी विचारधारा तथा भारतीय धर्म साधना में पर्याप्त साम्य है। दोनों अद्वैतवादी हैं, अत: कबीर पर सूफी विचारधारा का प्रभाव पड़ना आश्चर्य की बात नहीं। कबीर के काव्य में जो प्रेम की पीर का वर्णन है उसकी तीव्रता और तीखी व्यंजना सूफियों की ही देन कही जाएगी। इसी प्रकार सूफियों ने परम सत्ता के दिव्य सौन्दर्य का जैसा वर्णन किया है वैसा कबीर में भी है:

कबीर तेज अनंत का ज्यों उगी सूरज सेणि।
पति संग जागी सुंदरी, कौतुक देखा तेणि॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वह भी ब्रह्म के सौन्दर्य को कण-कण में व्याप्त मानते हैं :

लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल॥

अंतर केवल इतना है कि जहां सूफी परमात्मा की परिकल्पना माशूक के रूप में करते हैं तथा जीवात्मा को आशिक मानते हैं, वहां कबीर हिन्दुओं के अनुसार हरि या राम को प्रियतम तथा स्वयं को दुलहिन, राम की बहुरिया कहते हैं। पर आत्मा-परमात्मा में पति-पत्नी का संबंध दोनों ही मानते हैं।

कबीर साहित्य के अध्येता डॉ. सरनाम सिंह का कथन है, हल्लाज (एक सूफी साधक) के प्रेमवाद का तो कबीर पर बहुत अधिक प्रभाव है। वह कभी तो प्रेम पियाले की चर्चा करते हैं, कभी प्रेम-भगति हिंडोलना की। उन्होंने सर्वत्र प्रेम-भगति करने का उपदेश दिया है :

प्रेम भगति ऐसी कीजिए, मुख अमृत बरसै चंद

या
कबीर बादल प्रेम का हम पर बरसा आइ।
अंतरि भीगी आत्मा, हरी भरी बनराइ॥
जिहि घट प्रीत न प्रेमरस, मुनि रतना नहिं राम।
ते नर इस संसार में उपजि भए बेकाम॥

सूफियों की तरह कबीर भी विरह-तत्व को बहुत अधिक महत्त्व देते हैं। उनके काव्य में सूफी शब्दावली - नूर, हम, इश्क, खुमार, मारिफत आदि का भी प्रयोग हुआ है। अतः भले ही कबीर पर सूफियों का प्रत्यक्ष प्रभाव न पड़ा हो, फिर भी सूफी संतों की संगति तथा विचार-विमर्श के फलस्वरूप उनके काव्य में सूफियों की कुछ बातें आ गयी हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कबीर ने अपने समय की प्रचलित विविध धर्म-साधनाओं तथा विचारधाराओं से प्रभाव ग्रहण किया और अपने साधुत्व-स्वभाव के कारण उनकी सारग्राही, उपयोगी तथा मानव-कल्याण की बातों को ग्रहण पर अपनी इस उक्ति को चरितार्थ कर दिया।

साधु ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहै थोथा देइ उड़ाय॥

नाथपंथी तथा कुछ उत्पीड़ित तथा शोषित जन सामन्तवाद के आतंक से परेशान हो उसका विरोध कर रहे थे क्योंकि जनता की पसीने की कमाई का धन सामंत शासक वर्ग, राजा अपने भोग-विलास में उड़ा रहा था और भूराजस्व की वसूली के लिए किसानों पर अमानवीय अत्याचार किये जाते थे। इसी सामंत विरोधी चेतना का परिणाम था - संसार से विरक्ति की भावना, जीवन की क्षणभंगुरता, मानवीय समानता की पुकार, हृदय की शुद्धता, धार्मिक रूढ़िवाद का खंडन, निर्गुण ब्रह्म के प्रति सच्ची प्रेम-भक्ति।

अतः उनके काव्य में कहीं उपनिषदों का प्रभाव है, कहीं वैष्णव भक्ति का, कहीं नाथों-सिद्धों की सहज साधना का तो कहीं सूफियों की प्रेम की पीर का।

5.6 कबीर के दार्शनिक सिद्धांत

उत्तर - कविता और दर्शन के क्षेत्र पृथक्-पृथक् हैं। कविता यदि हृदय की वाणी हैं तो दर्शन बुद्धि का विलास है। फिर भी कवि के लिए तत्ववेत्ता और दार्शनिक होना वांछनीय माना गया है। "No man ever was a great poet without being at the same time a profound philosopher" महात्मा कबीर उच्च कोटि के भक्त थे। वह निरक्षर थे और उन्हें दर्शनशास्त्र की नियमित शिक्षा भी नहीं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मिली थी। हां, आत्मचिन्तन की कसौटी पर प्रत्येक बात को परखने में वह कुशल थे। उन्होंने जो कुछ कहा वह 'कागज की लेखी न होकर' आखिन की देखी' पर आधारित है। उन्होंने दार्शनिक के रूप में नहीं अपितु कवि के भावावेश में ब्रह्म, माया, जीव, जगत् आदि के संबंध में अपने विचार व्यक्त किये हैं।

कबीर के व्यक्तित्व के संबंध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, ''कबीर नृसिंहावतार की मानव प्रतिमूर्ति थे। नृसिंह की भांति वे नाना असंभव समझी जाने वाली परिस्थितियों के मिलन-बिन्दु पर अवतीर्ण हुए थे। जहां से एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर से मुसलमानत्व, जहां एक ओर ज्ञान निकल जाता है दूसरी ओर अशिक्षा, जहां से एक ओर योगमार्ग निकल जाता है दूसरी ओर भक्ति मार्ग, जहां से एक तरफ निर्गुण भावना निकल जाती है दूसरी ओर सगुण साधना, उसी प्रशस्त चौराहे पर वह खड़े थे।' इसी अद्‌भुत व्यक्तित्व ने उनकी दार्शनिक विचारधारा का निर्माण किया था। उनके आध्यात्मिक विचार शंकराचार्य के अद्वैत मत के निकट हैं, पर अन्य दर्शनों को आत्मसात् करके उन्होंने एक मौलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।''कबीर की आध्यात्मिक विचारधारा उपनिषदों की ज्ञानराशि रूप हिमालय से मिलकर विभिन्न मतों की सरिताओं को आत्मसात् करती, वैराग्य और गृहस्थ-जीवन के कूलों से टकराती, राह की शुष्क बालुका रूपी शास्त्रीय अभिगता और सामाजिक मलिनता को बहाती हुई प्रेम के चेतन-समुद्र की ओर बढ़ती जाती है।''

ब्रह्म - संसार के कण-कण में जो अद्‌भुत, अलौकिक और अव्यक्त सत्ता विद्यमान है, उसी को कबीर ब्रह्म कहते हैं। वह निर्गुण और सगुण दोनों से परे, सर्वशक्तिमान, अनिर्वचनीय है; सबमें एक भाव से व्याप्त है; सब उसमें सौन्दर्य पाते हैं, सब उसमें रम रहे हैं। वह त्रिगुणातीत, द्वैताद्वैत विलक्षण, भावाभाव विनिर्मुक्त, अलख, अगोचर, अगम्य और प्रेमपारावार है। वह घट-घट में समाया है, अजर-अमर है। विश्व का सम्पूर्ण प्रपंच उसी का रूप है :

खालिक खलक खलक में खालिक, सब घट रह्यौ समाई।

कबीर के अनुसार ब्रह्म जीवात्मा में निवास करता है और वही सृष्टि का निर्माता और विनाशकर्त्ता है :

पाणी ही ते हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाय।
कबिरा जो था सोई भया, अब कछु कहा न जाय॥

कबीर सामान्यत: निर्गुण के उपासक हैं। हां, उन्होंने ब्रह्म को अनेक अवतारी नामों-हरि गोविन्द, राम, मुकुन्द आदि से पुकारा है। अनेक नाम इस्लामी स्रोत से भी लिये हैं, जैसे अल्लाह, खुदा करीम आदि। पर उनके राम निर्गुण ब्रह्म ही हैं, दशरथ के पुत्र राम नहीं।

दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना॥

उनका ब्रह्म रूपाकार विहीन है, पुष्प-गंध से भी सूक्ष्म है :

जाके मुंह माथा नहीं, नाहीं रूप अरूप।
पुहुप बास तैं पातरा, ऐसा तत्त अनूप॥

निर्गुण से कबीर का तात्पर्य गुणहीन नहीं, गुणों की सीमा से परे होना है। इस प्रकार कबीर वेदांत से प्रभावित अवश्य हैं, पर उनका ब्रह्म निरा भावात्मक चैतन्य नहीं है, वह सर्वशक्तिमान है, लीलामय है और 'साहब' के रूप में उसे व्यक्तित्व प्राप्त है।

मुक्ति - उनके अनुसार मुक्ति के दो रूप हैं - जीवन-मुक्ति और विदेह-मुक्ति। अनासक्त मनुष्य मन की वृत्तियों का शमन कर निष्काम कर्म करता है और उसकी भोग-वृत्ति समाप्त हो जाती है तो वह जीवन-मुक्त हो जाता है। विदेह-मुक्ति में देह नष्ट होने पर जीव ब्रह्म रूप में पर्यवसित हो जाता है और आवागमन का चक्र रुक जाता है। अद्वैतवाद से प्रभावित होते हुए भी कबीर की मुक्ति-संबंधी धारणा पर सूफियों के मारिफत, जैनियों के दु:खवाद, योगियों के कैवल्य तथा बौद्धों के निर्वाण का प्रभाव है और उसमें भक्ति-भाव भी जुड़ा है क्योंकि मूलत: कबीर दार्शनिक न होकर भक्त थे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कबीर ने हठयोग की साधना-पद्धति को भी स्वीकार था। इस साधना-पद्धति में मानव-शरीर के भीतर छः चक्र माने गये हैं जिनकी बनावट विभिन्न दलों वाले कमल के सदृश मानी गई है। इन छः चक्रों के ऊपर सहस्रदल कमल की कल्पना की गई है। ये लोग शरीर में तीन नाड़ियां-सुषुम्ना, इला और पिंगला भी मानते हैं। उनके अनुसार मूलाधार चक्र में कुंडलिनी सुषुप्तावस्था में पड़ी रहती है और योगी प्राणायाम-साधना द्वारा कुंडलिनी को उद्बुद्ध करता है। यह कुंडलिनी उद्बुद्ध होने पर छः चक्रों को बेधती हुई सहस्रार में प्रवेश करती है और तब साधक परम-ज्योति का साक्षात्कार करता है। हठयोग द्वारा साधक मन का संयमन कर ब्रह्म की अनुभूति करता है :

अरध-उरध की गंगा जमुना मूल कंवल को घाट।

षटचक्र की गागरी त्रिवेणी संयम बाट॥

इस प्रकार कबीर की दार्शनिक विचारधारा एकांगी नहीं है, उसमें विभिन्न दार्शनिक मतों का समन्वय है।

5.7 कबीर की भक्ति-भावना

भारत की भक्तिधारा अनादि काल से बहती आ रही है। रामानुजाचार्य ने ब्रह्मसूत्र पर श्रीभाष्य की रचना कर जिस भक्तिलता का बीजारोपण किया उसे परिवर्धित करने का श्रेय रामानन्द और उनके शिष्य कबीर को है :

भक्ति द्राविड़ी ऊपजी लाए रामानन्द।
परगट किया कबीर ने सात दीप नौ खंड॥

नारद भक्तिसूत्र में भक्ति को कर्म, ज्ञान और योग से श्रेष्ठ बताया है 'सा तु कर्म ज्ञान योगेभ्यो अधिकतरा।' कबीर का भी मत है कि भक्ति साध्यरूपा है; ज्ञान, योग भक्ति का साधन है।

कहै कबीर हरि भगित बिनु मुक्ति नहीं रे मूल।

कबीर ऐसी भक्ति विकसित करना चाहते थे जो समाज को दृढ़ आधारभूमि प्रदान कर सके। उनका लक्ष्य भगवद्-प्रेम है।

कबीर की भक्ति का आधारभूत तत्त्व प्रेम है जिसकी प्रेरणा उन्हें एक ओर, नारदीय भक्ति दूसरी ओर सूफियों के इश्क से मिलीं। प्रेम में अनन्यता, त्याग और तपस्या को वह विशेष महत्व देते हैं। उन्होंने कई स्थानों पर 'प्रेम पियाले' और 'खुमार' की चर्चा की है।

नारद और सूफियों ने भक्ति में विरह-तत्त्व को साधना का प्राण माना है। कबीर भी विरह को सुल्तान कहते हैं :

विरहा-बुरहा मत कहो विरहा है सुलतान।

साधक को साध्य से मिलाने वाला प्रमुख साधन विरह ही है। विरह-बाण के लगते ही साधक प्रिय से मिलने के लिए तड़प उठता है।

सतगुरु मार्या बाण धरि सूधी मूठि
अंगि उघाड़ै लागिया गई दवां सूं फूट।

विरह-बाण के लगने पर भक्ति की स्थिति अपूर्व हो उठती है।

गूंगा हूवा बावला बहरा हूवा कान।
पाऊं तैं पंगुल भया सतगुर मारया बाण॥

आत्मा ओर परमात्मा के वियोग का जो वर्णन कबीर के काव्य में मिलता है उसमें माधुर्य भाव के साथ तीव्रता भी है :

वासिर सुख ना रैन सुख ना सुख सुपने मांहि।
कबीर बिछुर्‌या राम सूं ना सुख, धूप ना छांव॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कबीर की भक्ति अव्यक्त और निर्गुण ब्रह्म के प्रति है। निर्गुण की उपासना का सरल मार्ग बताते हुए कबीर भक्ति का उपदेश देते हैं – हृदय में उसे नमस्कार तथा मन ही मन उसका कीर्तन करना चाहिए। आध्यात्मिक प्रेम कैसे जाग्रत हो, इस विषय में भी कबीर के विचार नारद भक्ति-सूत्र के अनुरूप हैं। कबीर इन्द्रिय-निग्रह, विषय-त्याग, सत्संग, अखंड भजन, गुण-कीर्तन, महात्माओं की कृपा, ईश्वर-अनुग्रह को भक्ति-प्राप्ति के लिए आवश्यक मानते हैं; साथ ही पूर्वजन्म के संस्कारों को भी भक्ति-प्राप्ति में सहायक बताते हैं। गुरु को वह भक्ति का दाता मानते हैं।

ज्ञान भगति गुरु दीन्हि।

नारद ने भक्ति के दो रूप बताये हैं – प्रेमरूपा भक्ति और गौणी भक्ति। फिर प्रेमरूपा भक्ति के दो भेद किये हैं – कामरूपा एवं संबंधरूपा। कामरूपा भक्ति में कांताभाव की प्रधानता रहती है और संबंधरूपा में दास्य, वात्सल्य और सख्यभाव की। कबीर की भक्ति में दास्यभाव प्रधान है :

कबीर कूता राम का मुतिया मेरा नाउं।
गले राम की जेबड़ी जित खेंचे तित जाउं॥

कबीर की भक्ति-विषय रचनाओं में माधुर्य की भी प्रधानता है, पर मादकता में भी भक्ति की विह्लता और पूजा की पवित्रता सर्वत्र विद्यमान है।

गौणी भक्ति के अंतर्गत देवार्चन, भजन और सेवा की प्रवृत्ति प्रमुख होती है। उसमें भक्त भगवान को प्राप्त करने के लिए अतिरिक्त और कोई इच्छा नहीं रखता। इसे निष्काम भक्ति भी कहा जा सकता है। भक्ति जब तक सकाम है तब तक कबीर उसे असफल मानते हैं :

जब लग भगति सकामता तब लगि निर्फल सेव।

ईश्वर के प्रति अनुरक्ति ही परा शक्ति कहलाती है। कबीर लौकिक या पारलौकिक सुख की कामना नहीं करते, उनकी आकांक्षा केवल भगवान के सान्निध्य की है।

रामानन्द का शिष्य होने के कारण कबीर के हृदय में वैष्णवों के प्रति असीम आदर और स्नेह का भाव है।

मेरे संगी द्वै जना एक वैष्णव एक राम।

पर कबीर की वैष्णव भक्ति एक ओर भारतीय अद्वैतवाद से प्रभावित है और दूसरी ओर मुसलमानों के एकेश्वरवाद से। उनकी भक्ति का उद्देश्य था सार्वजनिक कल्याण और नाम-माहात्म्य को जन-जन तक पहुंचाना। वैष्णव धर्म के मूल ग्रंथ 'श्रीमद्भागवत' में नवधा भक्ति का उल्लेख है।

श्रवणम् कीर्तनम् विष्णोः स्मरणम् पादसेवनम्।
अर्चनम् वंदनम् दास्यम् सख्यमात्मनिवेदनम्॥

कबीर की भक्ति नवधा भक्ति से भिन्न है, उनका ध्यातव्य निर्गुण ब्रह्म है। नाम-स्मरण का महत्त्व वह मानते हैं :

भगति भजन हरि नाम है दूजा दुःख अपार।
मनसा वाचा कर्मणा कबीर सुमिरण सार॥

प्रभु के ऐश्वर्य के सम्मुख नतमस्तक होना भी उन्हें मान्य है। कबीर ने प्रभु की सामर्थ्य का अनुभव किया था। और वह उसके सामने नतमस्तक हैं :

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सांई सू सब होत हैं बंदे सैं कुछ नाहिं।
राई तैं पर्वत करै पर्वत राई माहिं॥

कबीर भक्ति को मुक्ति का साधन मानते हैं – **भक्ति नसैनी मुकुति की।**

और भक्त के लिए सदाचार, आचरण-शुद्धता, कुसंग-त्याग तथा कनक एवं कामिनी का त्याग आवश्यक बताते हैं। कनक और कामिनी को दुर्गम घाटी बताते हुए वह विषय त्याग पर बल देते हैं :

पुत्र कलत्र लक्ष्मी माया इहौ तजौ जिय जानी रे।
कहत कबीर सुनहु रे संतहु मिलिहैं सारंगपानी रे॥

कबीर ने एक ही साखी में भक्तों के लक्षण बताकर उसको पहचानने का सरल मार्ग बताया है :

निरवैरी निहकामता सांई सेती नेह।
विषिया सूं न्यारा रहै संतनि का ढंग एह॥

भारतीय धर्म-साधना में कबीर ऐसे अद्‌भुत साधक हैं जिन पर पूर्ववर्ती साधनाओं का प्रभाव प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों में पड़ा है। कहीं वैष्णवों की वैष्णवी भक्ति, कहीं हठयोग साधना, कहीं सिद्धों और नाथों की गुह्य साधना और कहीं सूफियों की इश्क-मजाजी का प्रभाव देखा जाता है। उनका उपास्य शून्यमंडल वासी है, अत: वैष्णव भक्ति में हठयोग का मिश्रण हो गया। स्थान-स्थान पर इडा, पिंगला, सुषुम्ना, कुंडलिनी, षट्‌चक आदि की चर्चा करते हैं, परन्तु साधना के मध्य प्रेमभाव का संयोग हो जाता है और वह प्रेमयोगी बन जाते हैं। यह स्थिति अनिर्वचनीय है —

अकथ कहानी प्रेम की कछु कही न जाय।
गूंगे केरी सरकरा चाखै और मुसकाय।

इस अवस्था में भक्त बंकनाल से झरते हुए अमृत-रस का पान करता है। कबीर की भक्ति में भारतीय प्रपत्ति मार्ग को भी स्वीकार किया गया है। उसके अनुसार भगवान के अनुग्रह के बिना अनन्य भक्ति असंभव है और अनुग्रह प्राप्त करने का एक ही साधन है – भगवान की शरण में जाना और पूर्ण समर्पण।

कबीर की भक्ति को किसी एक खांचे में नहीं रखा जा सकता। यह ठीक है कि कबीर का भक्त-रूप ही सच्चा है, पर उनकी भक्ति युगीन परिस्थितियों की उपज है। वह वैष्णवी होते हुए भी वैष्णवी नहीं है। कबीर उसे नारदी भक्ति कहते हैं, परन्तु वह शुद्ध रूप में नारदी भी नहीं है। उनकी प्रेममूला भावप्रधान भक्ति को इश्क-मजाजी ने संवारा है, वैष्णवों ने श्रद्धा भावना प्रदान की है और हठयोग साधना से भी वह प्रभावित है। तभी उसे खांडे की धार कहा गया है। उसमें ज्ञानयोग और प्रेम-भावना का समन्वय है। दूसरी ओर वैदिक तथा तांत्रिक विधि-विधानों का उसमें कोई स्थान नहीं है। उनकी भक्ति निष्काम है जिसे पाकर हिन्दू जाति कृत्य-कृत्य हो गई। सिद्धों और नाथों की गुह्य साधना के दलदल में फंसी जनता को प्रेम-भक्ति के सहारे समन्वयवादी दृष्टि प्रदान करने का श्रेय कबीर की उस भक्ति को ही है जो मानती है, ''हरि को भजै सो हरि को होई''। वह एक पीयूषमयी भागीरथी है जिसके पवित्र तट पर आकर असंख्य भक्तों को विश्रांति मिलती है। वह पलायनवादियों का निराशावाद नहीं है, वह आनन्दमयी है।

5.8 कबीर तथा जायसी का रहस्यवाद-एक तुलना

परशुराम चतुर्वेदी का कथन है :

''रहस्यवाद शब्द काव्य की एक धारा विशेष को सूचित करता है। वह प्रधानत: उसमें लक्षित होने वाली उस अभिव्यक्ति की ओर संकेत करता है, जो परम सत्ता की प्रत्यक्ष, गंभीर एवं तीव्रानुभूति के साथ संबंध रखती है। इस अनुभूति का वास्तविक आधार अन्तर्हृदय हुआ करता है जो वैयक्तिक चेतना का मूल स्रोत है और इसमें 'अहम्' एवं 'इदम्' की भावना का क्रमश: लोप हो जाता है।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भक्ति और दर्शन दोनों से संबद्ध होते हुए भी रहस्यवाद का भक्ति और दर्शन से भेद स्पष्ट है। जहां भक्ति में उपास्य आधिदैविक होता है, वहां रहस्यवाद में उपास्य का स्वरूप आध्यात्मिक होता है। दर्शन में ब्रह्म का स्वरूप तर्कमूलक और बुद्धि प्रतिष्ठित होता है जबकि रहस्यवाद में वह भावना-निर्मित होता है। इसीलिए कुमारी अण्डरहिल ने रहस्यवाद को Temperamental reaction to the vision of Realty' कहा है। रहस्यवाद की हिन्दी के अनेक विद्वानों और आलोचकों ने परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं। शुक्लजी के अनुसार, ''दर्शनशास्त्र में जो अद्वैतवाद है, वही भावना या साहित्य के क्षेत्र में रहस्यवाद है - जहां कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है।' डॉ. रामकुमार वर्मा रहस्यवाद को 'जीवात्मा की उस अंतर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन' मानते हैं, 'जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्छल संबंध जोड़ना चाहती है और यह संबंध यहां तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अंतर नहीं रहता।' इससे स्पष्ट है कि रहस्यवाद में साधक आध्यात्मिक अनुभूति की उस व्यवस्था को प्राप्त कर लेता है जहां वह साध्य के अपरोक्ष साक्षात्कार का चरम प्रयत्न करता है और अपनी आत्मानुभूति के द्वारा निखिल संसृति में परिव्याप्त एक ही दिव्य सत्ता के दर्शन करता है; कविता करते समय वह अपनी कल्पना और भावना के मधुर मिश्रण से निराकार को साकार बनाकर उसके साथ रागात्मक संबंध स्थापित करता है और राग की तीव्रता से उत्पन्न विरह, मिलनाकांक्षा और आत्मसमर्पण की भावना को, अपनी अनुभूतियों का चित्रमयी भाषा में रूपक तथा प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करता है।

कबीर का रहस्यवाद - कबीर के रहस्यवाद में अद्वैतवाद और सूफीमत की गंगा-जमुनी धारा प्रवाहित है, यद्यपि प्रमुख अद्वैती गंगा-धारा ही है। कबीर का मत है कि ब्रह्म इंद्रियातीत अगम्य होते हुए भी गम्य है, वह प्रेम से प्राप्य है। उन्होंने उस परमात्मा के विरह के बड़े मनोभावों की अभिव्यक्ति की है। उनकी आत्मा ने प्रियतमा के समान ही प्रिय के लिए प्रतीक्षा की है :

'बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।

जिव तरसै तुझ मिलन कूं, मनि नाहीं विश्राम॥''

वह अपने समस्त शरीर को दीपक कर अपने प्राणों की वर्तिका बना और शरीर रक्त ही उसमें तेल के रूप में डाल प्रियतम का मुख देखने के लिए आतुर हैं :

''इस तन का दीबा करौं, बाती मेल्यूं जीव।
लोही सींचौ तेल ज्यूं, कब मुख देखौं पीव॥''

प्रिय-वियोग में अहर्निश रोते-रोते उनके नेत्र लाल हो गये हैं।

''आंषणियां प्रेम कसाइया लोक जाणैं दुखणियां।
साईं अपने कारणैं, रोइ रोइ रातणियां॥''

यदि कोई प्रिय के लिए संदेश-प्रेषण का प्रश्न उठाता है तो विरहिणी कितना सुंदर उत्तर देती है :

''प्रियतम कूं पतियां लिखूं, जो कहीं होय विदेस।
तन में, मन में, नैन में, ताको कहा सदेश॥''

और फिर विरहिणी प्रिय-दर्शन के लिए प्रत्येक संभव-असंभव कार्य करने को प्रस्तुत है। प्रिय के अतिरिक्त प्रेमी को कुछ सूझता ही नहीं। इसलिए वह कहती है :

''फाड़ि पुटोला धज करौं, कामड़िली पहिराउं।
जिहि जिहि भेषां हरि मिलै, सोइ सोइ भेष कराउं॥''

प्रिय-मिलन की इस आकुलता और प्रेम की चरम परिणति से विरहिणी को प्रिय-दर्शन से पूर्व विरहिणी की विचित्र मन:स्थिति होती है। उसका भी कबीर ने वर्णन किया है :

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

'थरहर थरहर कंपे जीव, ना जानूं का करिहै पीव।
कौवा उड़ावत मेरी बहियां पिरानी, कहै कबीर मेरी कथा सिरानी।

आत्मा-परमात्मा के साक्षात्कार-मिलन-के चित्र भी कबीर ने बड़ी रमणीयता से प्रस्तुत किए हैं :

''कबीर तेज अनंत का, मानो ऊगी सूरज सेणि।
पति संग जागी सुंदरी, कौतिग दीठा तेणि॥'

महामिलन की अनुभूति का वर्णन करने का जब कवि प्रयास करता है तो जिह्वा लड़खड़ा जाती है और वह उस सुख की केवल परिधि ही छू पाता है।

''पारब्रह्म के तेज का, कैसे है उनमान।
कहिबै कूं सीमा नहीं, देख्या ही परवान॥'

और अब आत्मा-परमात्मा, अंश-अंशी, अग्नि-स्फुलिंग की द्वैतभावना का अंत हो गया। 'अहम्' ने 'इदम्' में पर्यवसान पा लिया:

''जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
सब अंधियारा मिटि गया, जब दीपक दीख्या मांहि॥''

अपने चतुर्दिक प्रियतम की ही सत्ता पाकर भी आत्मा को संतोष कहां, उसे मिलन से तृप्ति नहीं। अत: वह प्रिय पर पूर्ण एवं सदैव अधिकार चाहती है, इसलिए कहते हैं :

''नैननि अंतर आव तू, त्यूं ही नैन झपेऊं।
ना मैं दूखें और कूं ना तुझ देखन देऊं॥''

कबीर में दूसरे प्रकार का रहस्यवाद वहां प्राप्त है, जहां वे उस प्रिय को विविध हठयोगी साधनाओं से प्राप्त करने का उपक्रम करते हैं। यहां भावना की मधुरता नहीं, अपितु साधना की जटिलता है :

''अष्ट दल कंवल निवासिया, चहुं कौं पेखि मिलाइ रे।
रहूं मैं बीच समाधियां, तहां काल न पासै आइ रे।
अष्ट कंवल दल भीतरा, तहां श्रीरंग केलि कराई रे।
सतगुरु मिलै तो पाइये, नहिं तो जनम अकारथ जाइ रे।
कदली कुसुम दल भीतरां, तहां दस आंगुल का बीच रे।
तहां दुवादस खोजि ले, जनम होत नहीं मीच रे।
बंक नालि के अंतरे, पच्छिम दिसा की बाट।
नीझर झरै रस पीजिए, तहां भंवर गुफा के घाट रे।
तहां कबीरा रमि रह्या, सहज समाधि सोइ रे॥''

इस प्रकार के साधनात्मक रहस्यवादी स्थल कबीर काव्य में विरल नहीं हैं। इनमें कबीर ने हठयोग का वर्णन अधिकांशत: सिद्धों और योगियों की परम्परा में किया है :

तृतीय प्रकार का रहस्यवाद कबीर में पारिभाषिक शब्दों के माध्यम से प्राप्त होता है। ये पारिभाषिक शब्द भी प्राय: वही हैं, जो हठयोग साधना में मान्य हैं। यथा -

'इला प्यंगुला भाठी कीन्ही, ब्रह्म अगनि परजारी।
ससिहर सूर द्वार दस मूंदे, लागी जोग जुग तारी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मन मतिवाला पीवै राम रस, दूजा कुछ न सुहाई।
उलटी गंग नीर बहि आया, अमृत धार चुवाई।
पंच जते सो संग कर लीन्हें, चलत खुमारी लागी।
प्रेम पियालै पीवन लागे, सोवत नगिनी जागी।
सहज सुनि में जिनि रस चाष्या, सतगुर थे सुधि पाई।
दास कबीर इति रस माता, कबहूं उछकि न जाई॥''

यहां मिलन का वर्णन कबीर ने साधनात्मक प्रतीकों द्वारा ही किया है।

''सुरति समाणीं निरत मैं, अजपा माहैं जाप।
लोक समाणां अलेख मैं, यूं आपा माहैं आप॥

'मानसरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं।
मुक्ताहल मुगता चुगैं, अब उड़ि अनत न जाहिं॥''

कबीर में सर्वश्रेष्ठ रहस्यवादी भावना प्रेममूलक कोटि की ही है। चाहे कुछ भी हो, कबीर हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ रहस्यवादी कवि ठहरते हैं, एकस्वर से सबने यह स्वीकार किया है। अमेरिकन महिला अण्डरहिल ने उन्हें ''भारतीय रहस्यवाद के इतिहास में सर्वाधिक रोचक व्यक्ति माना है।

पाश्चात्य विद्वान् रुडोल्फ ने आस्तिक-भावना को रहस्यवाद की आधारभूमि कहा है। कबीर और जायसी दोनों में सुदृढ़ आस्तिक भाव है, पर दोनों के आस्तिक भाव में अंतर है। जायसी परम्परा से प्राप्त आस्तिकता को अपने विश्वास के आधार पर ग्रहण करते हैं जबकि कबीर का आस्तिक भाव प्रत्यक्षानुभूति पर टिका है :

देख्या हैं तो कस कहूं, कहै तो को पतियाय।
गूंगे केरी सरकरा बैठे ही मुसकाय॥

सूफी होने और इस्लाम में अगाध श्रद्धा के कारण जायसी के लिए प्रत्यक्षानुभूति आवश्यक नहीं थी। यही कारण है कि कबीर की तुलना में जायसी के रहस्यवादी काव्य में भावना और कल्पना की प्रधानता है।

कुमारी अण्डरहिल के अनुसार रहस्यवादी का उपास्य प्रेमपूर्ण, सजीव और व्यक्तिगत होता है, "The Absolute of the mystic is lovable, attainable, alive and personal." कबीर और जायसी दोनों ऐसे ब्रह्म के उपासक हैं जो सगुण और निर्गुण दोनों से विशिष्ट है, दोनों तत्त्व-रूप ब्रह्म में विश्वास करते हैं। दोनों की उपास्य-भावना पर शून्यवाद और नूरवाद का प्रभाव है। इस साम्य के होते हुए भी जायसी की भावना समष्टिमूलक है और कबीर की व्यष्टिमूलक। जायसी का ब्रह्म विश्व में व्याप्त है, कबीर का एकान्तिक। कबीर का ब्रह्म शून्यमंडल में निवास करता है जबकि जायसी ने उसे दिव्य सौंदर्य से मंडित विराट् पुरुष बताया है। उनका ब्रह्म पद्मावती के रूप में प्रेम की प्रतिमूर्ति है, दिव्य सौन्दर्यवाला और विराट् है। उन्हें सम्पूर्ण सृष्टि में उसी के दिव्य सौन्दर्य की झलक दिखाई देती है :

नयन जो देखा कंवल भा निरमल नीर शरीर।
हसंत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर॥

चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र आदि उसी परम ब्रह्म की साधना कर रहे हैं, उसी को पाने के लिए चक्कर लगा रहे हैं। कबीर का ब्रह्म ऐसे दिव्य सौंदर्य से मंडित नहीं है। वह उसे अनन्त प्रकाश की राशि कहकर ही संतुष्ट हो जाते हैं :

कबीर तेज अनन्त का मानो ऊगी सूरज सेणि।

इस प्रकार कबीर की तुलना में जायसी का उपास्य अधिक भावात्मक, सरस और व्यक्तित्व-प्रधान है। जहां कबीर की अनुभूति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विचार-प्रधान अधिक है, वहां जायसी में भावना की प्रधानता है। कबीर की खोज योगी की थी, उनमें सैद्धांतिक आग्रह अधिक है, अत: उनकी अनुभूति उतनी मधुर नहीं जितनी जायसी की।

कबीर और जायसी दोनों ने प्रेम-तत्त्व को महत्त्व दिया है। कबीर पर नारदी भक्ति का प्रभाव था और जायसी पर सूफियों का। अंत: प्रेम का महत्त्व स्वीकार करते हुए भी दोनों के प्रेम-तत्त्व में कुछ अंतर है। कबीर प्रेम-भक्ति के हिंडोले पर आत्मा के झूलने के आनन्द की बात कहते हैं :

प्रेम भगति हिन्डोलना जंह झूलै आतमराम।

उधर जायसी के प्रेम में मादकता अधिक है; वह प्रेमानन्द की तुलना सुरापान से करते हैं, पर सुरा के समान मादक होते हुए भी वह अत्यंत पवित्र है :

सुनि धनि प्रेम सुरा के पिए, मरन जियन डर रहै न हिए।

दोनों की प्रेम-भावना में एक अंतर यह भी है कि जहां जायसी का प्रेम-भाव रूप जनित है - रत्नसेन पद्मावती का रूप देखकर मूर्च्छित हो जाता है - वहां कबीर का प्रेम संस्कार-जनित है। यह प्रेम की चिनगी दोनों को गुरु से प्राप्त होती है।

कुमारी अंडरहिल ने रहस्यानुभूति के पांच स्तर या सोपान बताये हैं -

(1) आत्मा की जाग्रतावस्था जिसमें ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा होने पर साधक ईश्वरानुभूति के लिए तड़पने लगता है,

(2) आत्मा के परिष्करण की स्थिति,

(3) आंशिक अनुभूति जब साधक विविध ध्वनियां सुनता और दृश्य देखता है,

(4) विघ्नावस्था जब साधना-मार्ग में अनेक बाधाओं से जूझना पड़ता है, और

(5) तादात्म्य की स्थिति जिसमें आत्मा परमात्मा भावात्मक साक्षात्कार करती है। कबीर और जायसी दोनों के काव्य में प्रिय के प्रति तीव्र जिज्ञासा और मिलने की तड़प है। पर जहां जायसी का रत्नसेन इस झड़प के कारण वैराग्य का मार्ग ग्रहण करता है, वहां कबीर ज्ञान के मार्ग पर चलने का परामर्श देते हैं। आत्मा के परिष्करण के लिए दोनों ने विरह को विशेष महत्त्व दिया है। जहां कबीर की साधना भक्तों और सूफियों दोनों से प्रभावित है वहां जायसी पर सूफी-प्रभाव अधिक है। इसलिए उनकी विरह-भावना अधिक कोमल, सरस और व्यापक है। जायसी के काव्य में सम्पूर्ण ब्रह्मांड समग्र प्रकृति ब्रह्म के विरह में व्यथा विह्वल दिखाई गई है :

चांद सुरुज और नखत तराईं।
तेहि डर अंतरिख फिरहिं सवाईं॥

भावातिरेक की स्थिति का महत्त्व दोनों स्वीकार करते हैं, पर जहां जायसी उसको पाने के लिए सूफी साधना के चार पड़ाव और सात मुकामों का उल्लेख करते हैं :

चार बसेरे सौं चढ़े सत सौं उतरे पार।

वहां कबीर ज्ञान, वैराग्य और योग की चर्चा करते हैं। हां, हठयोग-साधना की बात दोनों ने कही है।

आंशिक अनुभूति के चित्र दोनों के काव्य में उपलब्ध होते हैं। कबीर इस अनुभूति के क्षण में हर्ष से नाच उठते हैं :

जानी जानी रे राजा राम की कहानी।

जायसी इस स्थिति में अपने को ज्ञान-हीन पा रो उठते हैं :

उठा रोई हा ज्ञान जो खोवा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आंशिक अनुभूति के क्षण में दोनों प्रिय के लोक की मधुमयी कल्पना करते हैं, उसका भावात्मक वर्णन करते हैं। जायसी के अनुसार इस लोक में न रात होती है, न दिन वहां न वायु है और न जल। कबीर के लिए भी यह लोक सांसारिक व्याधियों से परे है :

जरा मरण व्यापै नहीं मुवा न सुनिए कोइ।

विचित्र ध्वनियां सुनने और दृश्य के संकेत भी दोनों के काव्य में मिलते हैं। कबीर के काव्य में ये चित्र संख्या में भी अधिक हैं और कल्पना की दृष्टि से भी अधिक सुंदर हैं।

नैहरवा हमको नहीं भावै,
जहं कोइ आवै न जावै सांई की नगरी परम अति सुंदर।

विघ्न की स्थिति में साधक की परीक्षा होती है क्योंकि अनेक विकार ईश्वरानुभूति में बाधक होते हैं। कबीर और जायसी दोनों ने इन विकारों का उल्लेख किया है। सूफी होने के कारण जायसी ने शैतान की परिकल्पना की है, 'पद्मावत' में राघव चेतन शैतान का प्रतिरूप है। कबीर पर वेदांत के मायावाद का प्रभाव था, अत: उन्होंने शैतान की जगह माया की परिकल्पना की है।

साधना के अंत में साधक विकारों पर विजय प्राप्त कर प्रिय का साक्षात्कार करता है, उससे तादात्म्य स्थापित कर लेता है। कबीर और जायसी दोनों के काव्य में मिलन से पूर्व की मधुमयी अनुभूतियों का वर्णन मिलता है। जायसी के ये चित्र इतने भावपूर्ण और मधुमय हो उठे हैं कि कहीं-कहीं उनमें लौकिकता का आभास होने लगता है। कबीर आध्यात्मिकता का अंचल कभी नहीं छोड़ते, अत: उनके चित्रों में स्थूल, लौकिक और मांसल तत्त्व नहीं आ पाये हैं। मिलन और साक्षात्कार के चित्रों में जायसी सूफी सौन्दर्यवाद और प्रतिबिम्बवाद से प्रभावित है, वहां कबीर के चित्रों पर उपनिषदों और भारतीय भक्ति-भावना का प्रभाव है। रमणीयता, भावुकता और माधुर्य की दृष्टि से जायसी के चित्र अधिक कमनीय और हृदय को मुग्ध करने वाले हैं।

देखि मानसर रूप सोहावा।
हिय हुलास पुरइन होइ छावा॥

कबीर ने प्रिय का साक्षात्कार अंतर्जगत में किया था, उनकी अभिव्यक्ति अक्खड़पन और शुष्कता लिए हुए है अत: उनके चित्र अपेक्षाकृत मानसिक और सीधे-सपाट हैं :

हरि संगत सीतल भया मिटी मोह की ताप।
निसि-बासर सुख निधि लहा अंतर प्रगटा आप॥

जायसी ने प्रिय के दर्शन बहिर्जगत् में किये हैं; उनकी काव्याभिव्यक्ति भी अधिक अलंकृत और सुंदर है। अंत: उनके काव्य में संयोगजनित जो विविध लीलाएं और क्रीड़ाएं प्रस्तुत की गई हैं वे अधिक स्थूल, ऐन्द्रिय एवं लौकिक जान पड़ती हैं। कबीर के चित्र दाम्पत्य प्रतीकों का सहारा लेते अवश्य हैं :

घूंघट को पट खोल रे तोको पीव मिलेंगे।

पर वे मानसिक और सूक्ष्म होने के कारण इस कल्मष से रहित हैं।

पूर्ण तादात्म्य की स्थिति कबीर में है, जायसी में नहीं, क्योंकि अद्वैत की कल्पना भारतीय रहस्यवाद में है, सामी रहस्यवाद में नहीं। इस स्थिति का संकेत कबीर की निम्न पंक्ति में मिलता है :

हरि मरिहैं तो हमहूं मरिहैं

अथवा

जब मैं था तब तू नहीं, अब तू है हौं नहिं॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रहस्यानुभूति को अभिव्यक्त करने में सामान्य भाषा असमर्थ रहती है क्योंकि रहस्यानुभूति अलौकिक और निर्वचनीय होती है। रहस्यवादी कवि इसीलिए अपनी बात कहने के लिए प्रतीक, रूपक, अन्योक्ति, समासोक्ति, आदि का आश्रय लेता है। कबीर और जायसी दोनों के काव्य में इनका प्रयोग हुआ है। पर जायसी की अन्योक्तियां अधिक सफल हैं। कबीर ने प्रतीकों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम किया है – साध्य को पति और स्वयं को पत्नी, साध्य को जननी और स्वयं को बालक मानकर उन्होंने कुछ पद लिखे हैं। जायसी ने प्रतीकों के सहारे पद्मावत की पूरी कहानी कहने की चेष्टा की है। कबीर के रूपक जायसी के रूपकों के समान विशाल और विराट् नहीं हैं। पारिभाषिक शब्दों के सहारे जटिल और अस्पष्ट रहस्यानुभूति को अभिव्यक्त करने का कार्य दोनों ने किया है। कबीर ने नाथों और सिद्धों की पारिभाषिक शब्दावली अपनायी।

सुरति समानी निरति में निरति रही निधार।

संख्यावाचक सांकेतिक शब्दों का प्रयोग भी उनके काव्य में मिलता है :

चौंसठ दीवा जोई कर चौदह चंदा मांहि।

और कहीं अद्‌भुत बातें कहकर अपने कथन को रहस्यपूर्ण बनाने का प्रयास किया है :

पहिर चोलना गदहा नाचै।

वस्तुत: इस प्रकार की उक्तियों को शैलीगत रहस्यवाद के अंतर्गत रखना चाहिए। जायसी में इस प्रकार की उक्तियां प्राय: नहीं हैं।

कबीर और जायसी हिन्दी के श्रेष्ठ रहस्यवादी कवि हैं। कबीर का रहस्यवाद भारतीय भक्ति, सिद्ध और नाथ सम्प्रदाय से प्रभावित है तो जायसी का सूफी साधना से, कबीर का रहस्यवाद आध्यात्मिकता की ओर झुका है तो जायसी का भावना से अनुप्राणित:; कबीर का रहस्यवाद शुष्क प्रतीत होता है तो जायसी का भावनामय और मधुर, कबीर का रहस्यवाद ऐकांतिक है, व्यष्टिमूलक है तो जायसी का समष्टिमूलक। कबीर ने अपनी रहस्यानुभूति साखियों और पदों के द्वारा अभिव्यक्त की है तो जायसी ने प्रेमाख्यान के माध्यम से, जिसके फलस्वरूप जायसी की रहस्यानुभूति मधुर और नाटकीय तो हो गई है परन्तु साथ ही वह लौकिकता और स्थूल श्रृंगारिकता को स्पर्श करने के कारण विकृत भी हो उठी है। कदाचित् इसीलिए आलोचकों ने कबीर के रहस्यावाद को अधिक गहरा और आध्यात्मिक माना है। आचार्य शुक्ल के अनुसार – 'कबीर का रहस्यवाद एक भावुक या कवि का रहस्यवाद न होकर साधक या चिंतक का रहस्यवाद है।'

डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार – 'कबीर के रहस्यवाद में बड़ी गहराई है।'

5.9 कबीर का कवित्व

उत्तर – जिस युग में कबीर का जन्म हुआ उस युग में हिन्दू समाज और धर्म विश्रृंखलित और अव्यवस्थित था। नाना प्रकार के अंधविश्वासों और पाखंडों में जनता डूबी हुई थी। अधिकांश हिन्दू रूढ़िवादी थे और धर्म के क्षेत्र में सच्ची ईश्वर-भक्ति के स्थान पर बाह्याचार और आडम्बर की प्रधानता थी। मूर्ति-पूजा, तीर्थ-यात्रा, माला-तिलक, गंगा-स्नान, व्रत-उपासना, पशु-बलि आदि को धर्म समझा जाता था। हिन्दू जाति अनेक सम्प्रदायों में विभक्त थी। कोई वैष्णव था, कोई शैव और कोई शाक्त। इस प्रकार धर्म का सच्चा स्वरूप लुप्त हो गया था। उधर मुसलमान भी कट्टरपंथी थे और वे भी हिन्दुओं की तरह बाह्याचार जैसे नमाज, रोजा, धार्मिक उत्सवों को मनाना आदि में ही अधिक लीन थे; धर्म के नाम पर अनेक क्रूर और अनैतिक कार्य करते थे, जैसे गाय की कुर्बानी देना, मांस-भक्षण आदि।

कट्टरपंथी होने के कारण तथा छुआछूत की कुत्सित प्रथा के फलस्वरूप हिन्दू और मुसलमान दोनों में ईर्ष्या, द्वेष और वैमनस्य की भावना बढ़ गयी थी। अत: आये दिन छोटी-छोटी बातों पर दोनों के बीच संघर्ष होता रहता था। दोनों एक-दूसरे को फूटी आंखों नहीं देख सकते थे। कबीर ने समाज में व्याप्त इन विकृतियों को स्वयं देखा, अनुभव किया और क्षुब्ध हुए।

कबीर के समय के हिन्दू पंडे और पुजारी तथा इस्लाम धर्म के मुल्ला और मौलवी सभी उनसे नाराज थे; कबीर को उनके हाथों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अनेक पीड़ाएं सहन करनी पड़ीं। अपने युग की इन विषम परिस्थितियों का उन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था और इसकी प्रतिक्रिया उनकी रचनाओं में स्पष्ट दिखाई देती है।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को नृसिंहावतार की मानव प्रतिमूर्ति कहा है। वस्तुत: कबीर मानवतावादी संत और भक्त थे। एक ओर समग्र मानव जाति का मंगल और कल्याण चाहते थे और दूसरी ओर पाखंड, आडम्बर, बाह्याचार के विरुद्ध उनके मन में तीव्र घृणा और विद्रोह का भाव था। हिन्दी विद्वानों ने कबीर को ज्ञानाश्रयी शाखा का संत कवि कहा है क्योंकि कबीर निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे और ईश्वर को एक मानते थे। सूफी-संतों और उनकी विचारधारा ने भी कबीर को प्रभावित किया था। उनका अधिकांश ज्ञान सत्संग से प्राप्त हुआ था, क्योंकि वह अनपढ़ थे। उन्होंने अपने विषय में कहा है :

'मसिकागद छुऔ नहि, कलम गही नहि हाथ।'

उनके ज्ञान का स्रोत धर्म-ग्रंथ और शास्त्र की पुस्तकें नहीं है। वह मानते भी थे कि सच्ची साधना के लिए धार्मिक पुस्तकों का पढ़ना आवश्यक नहीं है :

'पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ

पंडित भया न कोय।

'ढाई आखर प्रेम का

पढ़ै सो पंडित होय।

कबीर ने सामान्य व्यक्तियों की तरह विवाह किया, उनके एक बेटा और एक बेटी भी हुए। आजीविका के लिए कपड़ा बुनने का कार्य करते रहे और इस प्रकार आजीवन गृहस्थी रहे। परन्तु प्रकृति से वह संत थे। उन्होंने सगुण भक्ति, अवतारवाद और मूर्तिपूजा का मार्ग स्वीकार नहीं किया क्योंकि उनका विश्वास था कि ब्रह्म एक है, वह निर्गुण और निराकार है, सर्वव्यापक है और अत्यंत सूक्ष्म है :

''पुहुपहुवास तैं पातरा ऐसा तत्त्व अनूप।''

अन्यत्र भी उन्होंने ब्रह्म को मन-वाणी से अगम और अगोचर कहा है। वह सकाम भक्ति के स्थान पर निष्काम भक्ति को अधिक महत्त्व देते थे। तुलसी की तरह उनकी भक्ति दास्य भाव की भक्ति थी। उन्होंने स्वयं को ईश्वर का कुत्ता माना है :

''कबीरा कूता राम का मुतिया मेरा नाउं।
गले राम की जेबड़ी जित खींचै तित नाउं॥''

भगवान को प्राप्त करने के लिए वह बाह्य आडम्बर और बाह्याचार का विरोध करते सदाचार और वैदिक आचरण को महत्त्व देते थे। इसीलिए माता-पिता की सेवा, परोपकार, दया, और करुणा आदि पर बल दिया है और गरीबों को सताने का विरोध किया है :

''निर्बल को न सताईये जाकी मोटी हाय।
मुई खाल की सांस सौं लोह भस्म हो जाय॥

कबीर ने जीवन-भर अनुभव किया कि उनके चारों ओर समाज सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों से अभिशप्त है, और हिन्दू, मुसलमान दोनों परस्पर लड़-झगड़कर अपने जीवन को कष्टमय बना रहे हैं। मानवतावादी कबीर के लिए यह असह्य था। अत: उन्होंने जहां कहीं भी विकृति देखी - चाहे सामाजिक जीवन में हो और चाहे धर्म के क्षेत्र में, सर्वत्र इन विकृतियों का विरोध किया। उनका यह विरोध कहीं सीधे-सीधे शब्दों में है, तो कहीं व्यंग्य के रूप में। हिन्दू और मुसलमान दोनों में से उन्होंने किसी को नहीं बख्शा है :

''अरे इन दोउन राह न पाई''

एक ओर उन्होंने हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा, तीर्थ-यात्रा, गंगा-स्नाना आदि की भर्त्सना की :

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

''पाथर पूजै हरि मिलैं तो मैं पूजूं पहार।
ताते तौ चाकी भली पीस खाय संसार॥''

बाह्य आडम्बर–जटाएं रखना, माला फेरना, तीर्थ–यात्रा करना, रोज़ा–रखना आदि का भी उन्होंने बड़े तीखे शब्दों में विरोध किया है:

''केसनि कहा बिगारिया जो मूड़ै सौ बार।
मन को कहो ना मूड़िये जामैं विषय विकार॥''

छुआछूत को भी वह मानवता के लिए कलंक मानते थे। इस कुरीति का विरोध भी उन्होंने कहीं सीधी–साधी शब्दावली में तो कहीं चुभती वाणी में किया है। ब्राह्मण को छुआछूत करते देख वह फटकार लगाते हैं :

''जो तू बाहम–बाहम्नि जाया।
और राहते काहे न आया॥''

अन्यत्र भी वह कहते हैं –

''जाति पाति पूछै नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरि कौ होई॥''

सारांश यह है कि कबीर की मानवतावादी और जनकल्याण की भावना ने संसार में व्याप्त भ्रष्टाचार, अन्याय और उत्पीड़न को देखकर विद्रोही और क्रांतिकारी की भूमिका अपनायी और जहां कहीं भी विकृतियां देखीं, उनका विरोध किया। अपनी इसी प्रकार की उक्तियों के कारण कबीर को उपदेशक, सुधारक, क्रांतिकारी, विद्रोही और युग–प्रवर्तक कवि कहा गया है।

उत्तम काव्य लिखने के लिए जिन तीन हेतुओं का उल्लेख किया जाता है – प्रतिभा, अध्ययन और अभ्यास, उनमें से कबीर में केवल एक गुण था – प्रतिभा। कवि जिन उद्देश्यों के लिए कविता लिखता है – यश, धन और पाठकों को रसमग्न करना, कबीर के मन में इस प्रकार का कोई उद्देश्य नहीं था। काव्य की भाषा साहित्यिक, कलात्मक, मधुर और संगीतमय होती है। कबीर की भाषा सधुक्कड़ी और बोलचाल की भाषा थी जिसमें न साहित्यिक गुण थे और ना कोमलता और मधुरता। अत: उनका काव्य उत्तम काव्य की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। वस्तुत: काव्य दो प्रकार का होता है – आभिजात्य काव्य जिसे पढ़कर पाठक रसमग्न हो जाते हैं और जिसका विषय उदात्त और भाषा सुसंस्कृत होती है। दूसरा जन–काव्य होता है जो जनता की बोली में जनता के भावों और समस्याओं को प्रकट करने के लिए लिखा जाता है और जनता के गले का हार बन जाता है। कबीर का काव्य निश्चय ही आभिजात्य काव्य न होकर जनता का और जनता के लिए लिखा गया काव्य है। काव्य के तीन तत्त्व माने गये हैं – सत्य, शिव और सुन्दर। कबीर ने काव्य में सत्य और शिव के तत्व तो मिलते हैं, परन्तु सौन्दर्य का नितांत अभाव है। एक ओर वह अपने युग के समाज में व्याप्त कुरीतियों का सच्चा चित्र उपस्थित करते हैं और दूसरी ओर समाज और व्यक्ति के कल्याण का मार्ग बताते हैं। कुछ स्थलों को छोड़कर उनकी रचनाओं में न भाव सौन्दर्य है, न कला का सौन्दर्य और न भाषा का माधुर्य।

कबीर मानवतावादी, संवेदनशील और सहृदय संत थे। व्यक्ति रूप में उन्हें परमात्मा से बिछुड़ने की और सांसारिक माया–मोह में फंसने की पीड़ा थी और दूसरी ओर समाज में हो रहे अन्याय, उत्पीड़न और शोषण की व्यथा थी।

संवेदनशील हृदय वाला यह कवि सच्चा भक्त था और उसके हृदय में ब्रह्म से बिछुड़ने की पीड़ा और उससे मिलने की तीव्र आकांक्षा थी। अपने साथ ही वह अन्य लोगों को भी सांसारिक माया–मोह से मुक्त होकर साधना के मार्ग पर चलकर और भक्ति के द्वारा ब्रह्म से मिलने की प्रेरणा देना चाहते थे।

अत: जहां–जहां उन्होंने विरहजन्य पीड़ा का वर्णन किया है, वहां उनके हृदय की हूक और आत्मा की चीत्कार सुनायी देती है। सच्ची और तीव्र अनुभूति तथा भावोन्मेष ऐसे स्थलों पर कम नहीं है। अत: ऐसे स्थलों में काव्यत्व स्पष्ट परिलक्षित होता है। विहरिणी की पीड़ा को व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं :

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आंखड़ियां झाईं पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियां छाला पड्या, राम पुकारि पुकारि॥

इन पंक्तियों को पढ़ते समय मीरा की निम्न पंक्तियां याद आ जाती हैं :

सूली ऊपर सेज पिया की किस विधि मिलणौ होय।

इसी प्रकार कबीर कहते हैं :

कै बिरहिन कूं मीचू दै, कै आप दिखलाय।
आठ पहर का दांझणा, मोपै सहा न जाय॥

भले ही इन स्थलों पर भाषा में माधुर्य और कोमलता नहीं है परन्तु विरही की पीड़ा को इस तीव्रता से व्यक्त किया गया है कि पाठक भी स्वयं उस पीड़ा की अनुभूति करता है। यही स्थिति आत्मा-परमात्मा के मिलन के चित्रों की है। कहीं सीधी-सादी भाषा में वे मिलन के चित्र प्रस्तुत करते हैं :

लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गयी मैं भी हो गयी लाल॥

तो दाम्पत्य-मिलन के चित्र और भी मधुर तथा रससिक्त करने वाले हैं :

दुलहिन गावहु मंगलचार।
हम घर आये है राजाराम भरतार॥

इस सम्पूर्ण पद मे जो रूपक कबीर ने बांधा है उसकी भाषा भी इतनी मधुर है कि पाठक मुग्ध हो उठता है।

रहस्यवादी पदों में भी काव्यत्व की मात्रा कम नहीं है; चाहे 'झीनी झीनी बीनीं चदरिया' वाला पद हो और चाहे 'काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी।'

सर्वत्र रूपक, प्रतीक और व्यंजना शब्द-शक्ति द्वारा पदरूपी गागर को काव्यत्व के रस से भर दिया गया है और उस रस को पीकर पाठक प्रेम की मदिरा का पान करने लगता है।

विरह और मिलन के पदों के अतिरिक्त उन साखियों में भी जहां कबीर ने समाज और धर्म के क्षेत्र में व्याप्त कुरीतियों, बाह्याचारों और रूढ़ियों का खंडन करते हुए पाठकों को चेतावनी दी है वहां भी काव्य के लिए अपेक्षित भावों की तीव्रता दर्शनीय है। भले ही इन साखियों में जनसामान्य की बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया गया है, परन्तु व्यंग्य इतना तीक्ष्ण और पैनी है कि प्रतिद्वंद्वी को धूल झाड़कर चल देने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं बचता। चाहे मंदिर का पुजारी हो या मस्जिद का मुल्ला, चाहे गंगा-स्नान को जाती हुई स्त्रियां हों और चाहे तिलक-छापा लगाकर माला फेरने वाला ढोंगी साधु - सभी को कबीर ने अपने व्यंग्य-बाणों से लहूलुहान किया है। इन व्यंग्योक्तियों के पीछे कवि के हृदय का क्षोभ और आक्रोश है जो पाठकों के मन में भी वैसी ही भावनाएं उद्दीप्त करता है। संप्रेषणीयता भी, जो काव्य का एक गुण है, इन स्थलों पर पूरी मात्रा में मिलती है। जन सामान्य पर होने वाले अन्याय और अत्याचार के कारण कबीर को जिस पीड़ा की अनुभूति हुई उसकी अभिव्यक्ति भी अत्यंत मार्मिक शैली में की गयी है। ऐसी पंक्तियों को पढ़कर पाठक का मन कहीं मर्माहत होता है तो कहीं क्रोध के आवेग से भर जाता है :

निर्बल को न सताइए जाकी मोटी हाय।
मुई खाल की सांस सो लौह भस्त ह्वै जाय॥

इस प्रकार यह सच है कि कबीर के काव्य में आभिजात्य काव्य के गुण-भावोन्मेष, भाव-माधुरी और काव्यकला के गुण स्वल्प मात्रा में ही कहीं-कहीं पाये जाते हैं। परन्तु जैसा ऊपर संकेत किया जा चुका है उनकी रचनाओं को आभिजात्य काव्य की कसौटी पर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कसना कबीर के प्रति अन्याय होगा। हां, जनकाव्य के सभी गुण उनकी रचनाओं में पाये जाते हैं। कबीर की भाषा लोकभाषा है। वह अत्यंत सशक्त और तीखी है, संप्रेषण की दृष्टि से उनकी तुलना हिन्दी के अन्य संत कवियों से करते हैं तो वह सर्वाधिक प्रभावशाली है। अलंकारों की दृष्टि से भी कबीर का काव्य जन-काव्य है। भले ही उन्होंने रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा, अन्योक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग किया हो परन्तु उनके सभी उपमान लोक-जीवन से चुने गये हैं। कुम्हार, धोबी, जुलाहा, माली, पनिहारी, रहट, ढेंकुली आदि इस बात का प्रमाण है। प्रतीक-योजना की दृष्टि से उनके रहस्यवादी पदों में हमें उच्चकोटि के काव्य के दर्शन होते हैं। जहां कबीर अपनी गुढ़ तात्विक बातों को सामान्य भाषा में अभिव्यक्त नहीं कर पाते तो प्रतीकों का आश्रय लेते हैं। जैसे :

फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत कह्या गियानी।

जहां-जहां भी कबीर ने अपनी कल्पनाशक्ति से इन प्रतीकों का प्रयोग किया है उनके काव्य में काव्यकला अपने उत्कर्ष पर दिखायी देती है।

सारांश यह है कि कबीर का काव्य रंग-बिरंगे पुष्पों से सजायी वाटिका नहीं है, वह एक वन्य कुसुम है जिसका विकास, जिसकी देखभाल माली नहीं करता, प्रकृति करती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में कबीर ने आध्यात्मिक रस की गगरी से छलके हुए रस को अपने काव्य की कटोरी में एकत्र किया है। अत: उनकी रचनाओं को काव्य के क्षेत्र में से बहिष्कृत करना उपयुक्त नहीं होगा।

5.10 कबीर का क्रांतिकारी रूप

उत्तर – काव्य कवि के बाह्य और भीतरी परिवेश के सम्पर्क से गढ़ी गई कला है। चिन्तन और भावना द्वारा कवि अपने काव्य में समाज की अभिव्यक्ति करता है। साथ ही वह उसके संबंध में मानसिक एवं हार्दिक प्रतिक्रिया भी व्यक्त करता है। महात्मा कबीर का प्रादुर्भाव ऐसे संक्रांति-युग में हुआ जब समाज विशृंखलित था और महान संघर्षों के बीच गुजर रहा था। हिन्दू और मुसलमान पारस्परिक द्वैष और वैमनस्य के कारण आपस में लड़ते रहते थे। दोनों में ही बाह्याडम्बर का बोलबाला था। धर्म के ठेकेदारों की संकीर्ण विचारधारा से समाज और धर्म में अव्यवस्था बढ़ती जा रही थी। कर्मकांड का आधिक्य था और तीर्थाटन, व्रत, उपवास आदि को ही धर्म का परम-तत्त्व माना जाता था। कर्मकांडी ब्राह्मण और मुल्ला-मौलवी, जो स्वयं तत्व ज्ञान से अनभिज्ञ थे, जनता को ठग रहे थे। बौद्ध धर्म भी पतन के गर्त में गिर रहा था। हिन्दुओं के विभिन्न सम्प्रदाय - शैव-शाक्त, नाथपंथी, तांत्रिक, जैनी, बौद्ध, वैष्णव, निर्गुनिया आदि बखेड़ा खड़ा कर रहे थे। वे सब दुराचरण में लीन थे; अपनी-अपनी धुन में मस्त थे, एक दूसरे पर कीचड़ उछाल रहे थे।

कबीर सहज में आस्था रखने वाले मानवतावादी थे। किसी रूढ़ि और अंध-परम्परा से उनका लगाव न था। हृदय की स्वच्छ कसौटी पर विवेक की जो खरी लीक बनती, उसे ही वह सही मानते थे। उनके पास सत्य की शक्ति, सदाचरण का साहस और व्यंग्ययुक्त वाणी की तेज कटार थी। अत: धर्म के ठेकेदारों के कुकृत्यों को देख उनका हृदय मर्माहत हो उठा। उनकी मान्यता थी कि एक ही ईश्वर सबमें पर्याप्त है। अत: उन्होंने मध्ययुग के तमसाच्छन्न वातावरण में ज्ञान-सूर्य की रश्मियों द्वारा मानवता के मार्ग का निर्देशन किया। लगता है बाह्याडम्बर के झाड़-झंखाड़ को उखाड़ फेंकने के लिए ही भगवान ने उनको भेजा था और उनके व्यक्तित्व में परस्पर-विरोधी गुणों का समावेश कर उन्हें नृसिंहावतार के रूप में आविर्भूत किया था जिसे युग की विकृतियां रूपी हिरणयकश्यप विदीर्ण की जा सकें।

कुछ विद्वानों का अभिमत है कि कबीर मूलत: साधक थे, उनका समाज-सुधारक रूप गौण है। यह सत्य है कि कबीर मूलत: भक्त और साधक थे, पर वह जनता के सीधे सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति थे और समाज में व्याप्त बुराइयों के मात्र मूक प्रेक्षक नहीं थे। उन्होंने हिन्दू-मुसलमानों की भलाई-बुराई देखी, उनकी केवल आलोचना ही नहीं की, उन्हें मार्ग भी दिखाया। समाज-कल्याण कबीर वाणी की प्रेरणा बना।

हिन्दी में कबीर से बड़ा मानवतावादी कोई नहीं हुआ। मानव-मात्र का कल्याण उनका लक्ष्य था। अत: उन्हें समाज-सुधारक कहने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। वह किसी मतवाद से नहीं बंधे थे। अत: उन्होंने निष्पक्ष और निर्द्वन्द्व होकर मिथ्या मार्ग पर चलने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वालों को ठीक राह पर लाने का प्रयत्न किया और कहा :

अरे इन दोउन राह न पाइ

जन्म के आधार पर भेद-भाव उन्हें अमान्य था। इसीलिए उन्होंने ब्राह्मणों पर करारा व्यंग्य करते हुए उन्हें चुनौती दी:

जो तू बाहम्न बाहम्नि जाया।
और राह ते काहे न आया।

कुल-अभिमान और अस्पृश्यता को वह अभिशाप मानते थे, अतएव उसका खंडन करते हुए उन्होंने धर्म के ठेकेदारों को ललकारा :

काहे की कीजै पांडे छोति विचारा।
छोतहि ते उपजा संसारा॥

मिथ्याडम्बर और बाह्याचार का विरोध कर कबीर ने पंडितों और मुल्लाओं की पोल-पट्टी खोलकर जनता के सामने उन्हें अनावृत्त कर दिया। कहीं वह व्रत-उपवास की खिल्ली उड़ाते हैं, तो कहीं मूर्ति-पूजा पर व्यंग्य करते हैं :

पाथर पूजै हरि मिलै तो मैं पूजूं पहार।
ताते तो चाकी भली पीस खाय संसार॥

गेरुवा वस्त्र पहनने, केश मुंड़ाने, माला फेरने और छापा-तिलक लगाने को मिथ्याचार बताते हुए वह उनसे बचने का उपदेश देते हैं :

माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख मांहि।
मनवा तो दहुं दिसि फिरै सो तौ सुमिरन नाहिं॥

केश मुंड़ाने के विरुद्ध अपनी प्रतिक्रिया बताते हुए वह भेड़ का उदाहरण देते हैं और केशों के स्थान पर मन की शुद्धि पर बल देते हैं :

केसनि कहा बिगारिया जो मूड़ै सौ बार।
मन को काहे न मूंड़िये जामें भरे विकार॥

गंगा-स्नान और तीर्थाटन को व्यर्थ बताकर वह भगवद्-भक्ति और साधु-संगति पर बल देते हैं :

मथुरा जावै द्वारिका भावै जावै जगन्नाथ।
साधु संगति हरि भगति बिन कछु न आवै हाथ॥

हिन्दुओं की भांति इस्लाम के ठेकेदारों ने भी मुस्लिम समाज में मिथ्या आचरण और मिथ्याडम्बर को प्रश्रय दे रखा था जिससे वे लोग पथ-भ्रष्ट हो रहे थे। कबीर ने रोजा, नमाज, हिंसा, सुन्नत और कुरान पढ़ने वाले धर्म के ठेकेदारों पर निर्मम प्रहार किया :

खून करै मिसकीन कहावै गुनही रहै छिपाय।

कहीं स्पष्ट शब्दों में तो कहीं तीखें व्यंग्य द्वारा रोज़ा रखने वालों का मज़ाक उड़ाते हुए उन्होंने कहा :

दिन भर रोजा रखत हैं रात हनत हैं गाय।

इस प्रकार नमाज़ पढ़ने की हंसी उड़ाते हुए उन्होंने कहा :

मसजिद भीतर मुल्ला पुकारे क्या साहिब तेरा बहरा है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कबीर शास्त्र-ज्ञान से अधिक महत्त्व प्रेम और भक्ति को देते थे। अत: काज़ी और पंडित की भर्त्सना करते हुए उन्होंने कहा :

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय॥

वह हज करने से अधिक हृदय को पवित्र बनाने पर बल देते हैं :

सेख सबूरी बाहिरा का हज काबे जाय।
जिनका दिल स्याबत नहीं तिनको कहा खुदाय॥

कबीर के व्यंग्य तीखे हैं, पर सर्वत्र उनकी वाणी के पीछे सत्य की निष्ठा और संत-हृदय की सहानुभूति है। वह जानते थे कि धर्म और दर्शन के क्षेत्र में बड़ा उत्पात मचा हुआ है। अत: उन्होंने साधु की व्याख्या करते हुए कहा :

साधु ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहे थोथा देय उड़ाय॥

ईश्वर सबका है, वह भेद-भाव से परे है, इसका उद्घोष करते हुए उन्होंने सबको भगवान की शरण में जाने का उद्बोधन दिया:

जाति-पांति जानै नहिं कोई, हरि कौ भजै सौ हरि का होई।

कबीर ने खंडनात्मक शैली में जो कुछ कहा उसमें मानवता की पुकार है। इसीलिए जीवन की सरलता, हृदय की निष्कपटता, मन की शुद्धता और नैतिक संयम उनके सामाजिक सुधारों का प्रमुख लक्ष्य था। उन्होंने सर्वत्र शुद्धाचरण पर बल दिया। आचार्य द्विवेदी का कथन है :

''उन्होंने रोग का ठीक निदान किया या नहीं इसमें दो मत हो सकते हैं पर औषधिनिर्वाचन में उन्होंने बिल्कुल गलती नहीं की। यह औषधि है भगवद्-विश्वास।''

शूद्रों और दलितों में आत्म-विश्वास जगाने वाले महात्माओं में कबीर का स्थान बहुत ऊंचा है। उनका मत जिस प्रेम-रूपी मदिरा से मतवाला बना हुआ था, वह ज्ञान के गुड़ से तैयार की गई थी। इसीलिए अंध श्रद्धा, भावुकता और हिस्टीरिक प्रेमोन्माद का उनमें एकांत अभाव था। उनके विचार क्रांतिकारी थे, उन्हें क्रांतिकारी लोक-कवि कहना उचित है।

आज भी भारतीय समाज में दम्भ, पाखंड, छल-छद्म, कपट, मिथ्याचरण का बोलबाला है। समता और मानव-एकता की विरोधी शक्तियां आज भी सक्रिय हैं। वर्ण-भेद हिंसा को आज भी हम गले लगाए हुए हैं। आज की परिस्थितियां कबीर के युग की परिस्थितियों से कम जटिल नहीं है। हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य भी भले ही बाहर से प्रकट न हो रहा हो, भीतर ही भीतर सुलग रहा है। कबीर ने अपनी वाणी द्वारा समाज की विकृतियों का विरोध किया था, उन्हें जड़मूल से उखाड़ फेंकने का प्रयास किया था। वह समाज की एकता के पुजारी और मानव-अखंडता के सच्चे प्रहरी थे। व्यक्त और अव्यक्त के बीच जो भ्रम-भेद है, उन्होंने उस पर आघात किया, सामाजिक भेद-भाव की गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न किया और हिन्दू-मुसलमान में प्रेम की वह सुदृढ़ आधार-शिला रखी जिस पर आज की धर्म-निरपेक्ष नीति का प्रासाद खड़ा है। समाजवाद का जो नारा आज वातावरण में सर्वत्र गूंज रहा है और जिसे लाने के लिए हर भरसक प्रयत्न किया जा रहा है, कबीर उस समाज के सशक्त पक्षधर थे। यह ठीक है कि उनके समाजवाद में ईश्वर-भक्ति और धर्म का निषेध नहीं है, परन्तु जिस साम्य की उन्होंने प्रतिष्ठा की है वह अधिक सुदृढ़ है। उनका धर्म मानव धर्म है जिसमें मनुष्य-मनुष्य की समता, मानव एकता और सत्य को पूरी तरह प्रतिष्ठित किया गया है। शक्ति और सत्ता के मद में चूर मानव को सतर्क करते हुए वह निर्बल के प्रति सहानुभूति पैदा करते हैं :

निर्बल को न सताइये जाकी मोटी हाय।
मुई खाल की सांस सौं लौह भसम ह्वै जाय॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संसार की नश्वरता, शरीर की क्षण-भंगुरता और आत्मा की अमरता दिखलाकर कबीर कहीं भय दिखाकर, कहीं भर्त्सना करके और कहीं भक्ति द्वारा जब मानव को सन्मार्ग पर चलने का परामर्श देते हैं तो आज का पाठक भी उनकी बात का ध्यान से सुनने और उनके बताये पद-चिन्हनों पर चलने की प्रेरणा प्राप्त करता है। देश की वर्तमान स्थिति में उनकी वाणी की यही सार्थकता है। मनुष्य की आत्मा की निर्मलता, परस्पर सौहार्द्र एवं सद्भाव, सात्विक विचार, अहंकार से मुक्ति, जीव-मात्र पर दया, ये सब नवमानवतावाद के ही विचार-बिन्दु हैं जिनकी प्रतिष्ठा कबीर के काव्य में हुई है।

5.11 कबीर का काव्य-शिल्प

कबीर का उद्देश्य कविता करना नहीं था, कवि-रूप में यश-प्राप्ति भी उनका लक्ष्य न था। उन्होंने काव्य-रचना की प्रतिज्ञा नहीं की थी; उनमें काव्य-प्रतिभा भी विशेष न थी। फिर भी उनकी वाणी को काव्य न मानना दुराग्रह मात्र होगा। अपनी काव्य-रचना के संबंध में उन्होंने एक पद में लिखा है कि वह गीत नहीं है, ब्रह्म-विचार है। अन्यत्र भी उन्होंने कहा है :

केवल कहि समुझाइया आतम साधन सार रे !

स्पष्ट है कि शुद्ध कविता करना उनका उद्देश्य नहीं था। कबीर युग-चेतना के कवि है। शोषितों का समर्थन करना और पथभ्रष्ट-समाज को सुमार्ग पर लाना उनका लक्ष्य था। ऐसे समाजवादी कलाकार में कला की बारीकियां ढूंढना भूल होगी।

महाकवि मिल्टन ने सद्काव्य की व्याख्या करते हुए कहा है, "It should be simple, sensuous and impassioned." कबीर ने भी स्वानुभूति का चित्रण सहज, सरल और प्रभावपूर्ण भाषा में किया है।

'मैं कहता आंखिन की देखी, तू कहता कागद की लेखी।

कविता का प्राण-तत्त्व है अनुभूति और यदि वह कल्पना-पुष्ट और भावना-सिक्त है तो महान् काव्य बन जाती है। कबीर ने प्रेम, विरह और भक्ति के उद्गार प्रकट करते समय अपनी पुष्ट अनुभूति को जहां सर्वसाधारण की भाषा में व्यक्त किया है वहां वह हृदय को स्पर्श करती है और इसी में उनकी कवित्व-शक्ति का मर्म छिपा है। आरंभ में ही काव्य में सत्य, शिव और सुन्दर की प्रतिष्ठा पर बल दिया जाता रहा है। कबीर की दृष्टि लोकमंगल की ओर उन्मुख थी और उन्होंने सदैव सत्य का प्रतिपादन किया। अत: उनके काव्य में सत्य और शिव पूरी तरह प्रतिष्ठित हैं। हां, सौन्दर्य उनके काव्य में विरल है। पाश्चात्य विद्वान कथ्य और रूप को परस्पर संबद्ध मानते हैं, 'Content and form are coterminus.' कबीर का काव्य सामान्य जन को संबोधित है। वह भक्ति, शम और निर्वेद के कवि हैं। इसीलिए उनके काव्य में भावमयी भाषा में सरस अनुभूतियों का विशद् चित्रण कम है, फिर भी जहां-कहीं दाम्पत्य प्रतीकों के माध्यम से आत्मा-परमात्मा के संबंधों का चित्रण हुआ है वहां उनका काव्य सरस हो उठा है। 'चितावणी कौ अंग' में शांत रस की सफल अभिव्यक्ति हुई है तो ब्रह्म की विराट् कल्पना में अद्भुत रस के दर्शन होते हैं।

अनुभूति से प्रेरित कल्पना प्रतीकों को जन्म देती है। अनुभूति के तीव्र होने पर जब कबीर अपनी बात को सामान्य भाषा में अभिव्यक्त नहीं कर पाते तो प्रतीकों का आश्रय लेते हैं। कबीर के प्रतीकों की दो विशेषताएं हैं - उनमें प्रेषणीयता की भरपूर शक्ति है और लोक-जीवन से उनका निकट का संबंध है। ''झीनी-झीनी बीनी चदरिया' जैसे पदों में प्रतीक-योजना ने काव्य को अत्यंत सरस बना दिया है और साथ ही यह प्रतीक लोक-जीवन से संबद्ध होने के कारण पाठक को सहज ही हृदयंगम हो जाते हैं।

काव्य दो प्रकार का होता है - आभिजात्य और लोक-काव्य। आभिजात्य काव्य में बात को घूमा-फिरा कर अनूठे ढंग से कहा जाता है। उसमें अलंकार, छंद आदि काव्य-शास्त्रीय तत्त्वों का पूरा ध्यान रखा जाता है जबकि लोक-काव्य में बात को सीधे-सादे ढंग से कहा जाता है। आभिजात्य काव्य की कतिपय विशेषताएं होते हुए भी कबीर का काव्य मूलत: जन-काव्य है। आध्यात्मिक अनुभूतियों की अभिव्यंजना में भी लोकजीवन की बड़ी सरस झांकियां मिल जाती हैं - अब मोहि ले चलि नणद के वीर, अपने-अपने देसां में 'नणद का वीर' लोकमन को सहज ही आकृष्ट कर लेता है। भाव-तीव्रता, प्रवहमयता, अनुभूति की सार्वजनिकता और अभिव्यंजना की सरसता के कारण कबीर का काव्य लोक-रुचि को तीव्रता से पकड़ लेता है। खेत सींचने, कताई-बुनाई, कुम्हार के बर्तन बनाने से संबद्ध

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जो रूपक कबीर की रचनाओं में प्राप्त होते हैं वे उनके जन-सम्पर्क की गहनता को प्रकट करते हैं और साथ ही उनकी अभिव्यक्ति को सफल बनाते हैं।

जिस समय तीव्र अनुभूति से प्रेरित हो, भावना से सिहर कर कबीर 'राम मेरे दूल्हा मैं राम की बहुरिया' जैसे पदों में सुन्दर शब्द-योजना द्वारा सरलता और कोमलता का संचार करते हैं अथवा विरहाकुल आत्मा की पीर का मार्मिक चित्र उपस्थित करते हैं, वहां उनका काव्य आभिजात्य काव्य के समान अलंकृत और सौष्ठवयुक्त हो उठता है।

गूंगा हूआ बावरा, बहरा हूआ कान।
पावां तैं पंगल भया, सतगुर मार्‌या बान॥

समाज-सुधार की दृष्टि से जहां कबीर रूढ़ियों और अंध-परम्पराओं का खंडन करते हैं वहां वह जन-मन को नये सिरे से सोचने की प्रेरणा देते हैं। प्रथम प्रकार के काव्य में सत्यम् और शिवम् के साथ सुंदरम् की अभिव्यक्ति हुई है, वहां पाठक रस-सिंधु में अवगाहन करता है, परन्तु जहां उनका उद्देश्य जन-जन तक अपना संदेश पहुंचाना है वहां उनके काव्य में न अर्थ-सौष्ठव है और न अन्य काव्य-शास्त्रीय विशेषताएं। वहां न संवार-सिंगार है, न भाषा में व्याकरण का संस्कार जो कला-निष्णात कवियों की रचनाओं में पाया जाता है। केशव के समान कबीर के काव्य में न छंद-वैविध्य है और न अलंकारों की प्रचुरता। हां, उन्होंने लोक-प्रचलित छंदों-कहरा, चाचर, बसंत, गारी आदि का प्रचुर प्रयोग किया है। सबद और चौपाई छंद भी शास्त्रादि दृष्टि से शुद्ध नहीं हैं। कदाचित् उसका कारण यही है कि उनके लिए छंद साधन मात्र हैं, साध्य नहीं। शुक्लजी ने कबीर की भाषा को सधुक्कड़ी भाषा कहकर कबीर की भाषा की सीमाओं की ओर संकेत किया है। उनकी ऊबड़-खाबड़ भाषा को देखकर कभी-कभी ऐसा लगता है कि काव्य नहीं सूक्तियां पढ़ रहे हैं। अपने युग की चमत्कार-प्रवृत्ति का प्रभाव कबीर पर पड़ा है और उसके कारण उलटबांसियों के रूप में उन्होंने जो कुछ लिखा है वह क्लिष्ट और अस्पष्ट होने के कारण उनके काव्यत्व को आघात पहुंचाता है।

कबीर का काव्य रंग-बिरंगे पुष्पों से सजाई उद्यान की क्यारी नहीं, वह एक वन्य-कुसुम है जिसका विकास माली नहीं, प्रकृति करती है। वस्तुत: कबीर के काव्य को समझने के लिए उनके व्यक्तित्व और जीवनोद्देश्य को समझना आवश्यक है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर हिन्दी साहित्य के इतिहास में कोई उत्पन्न ही नहीं हुआ। वह उच्च कोटि के साधक, सत्य के उपासक, ज्ञान के अन्वेषक और जन्म से विद्रोही थे। उनके इसी व्यक्तित्व को देखकर उन्हें नृसिंह की प्रतिमूर्ति कहा गया है। उनका काव्य उनके व्यक्तित्व का दर्पण है और 'Style is thr man' को चरितार्थ करता है। उनके व्यक्तित्व के अनुरूप उनका काव्य एक ओर सरसता और कोमलता का आगार है और दूसरी ओर अक्खड़ता की सुदृढ़ चट्टान। कुल मिलाकर उनकी रचनाओं को काव्य के क्षेत्र में बहिष्कृत करना कबीर के प्रति अन्याय होगा क्योंकि जिस रचना में जीवन का चित्रण हो अनुभूतियों की गहराई और कल्पना की ऊंचाई हो, रूप के द्वारा अरूप की अभिव्यक्ति, कथन के द्वारा अकथ्य का ध्वनन हो, उसे कविता से छलके हुए रस को काव्य की कटोरी में भर कम रस एकत्र नहीं हुआ है।

कबीर के काव्य में अलंकार सहज-स्वाभाविक रूप में आ गये हैं। वे दिमाग को खरोंच-खरोंच कर, ऊपर से आरोपित नहीं हैं। कुछ उदाहरण देखिए :

रूपक - **नैननि की कारि कोठरी पुतली पलंग बिछाय**
पलकनि की चिक डारि कै प्रियतम लिया रिझाय।

अन्योक्ति - **माली आवत देखि के कलियन करी पुकार**
फूले फूले बिन लिए काल्हि हमारी बार।

अतिशयोक्ति - **यब धरती कागद करूं लेखनि सब बन राय**
सात समुद्र की मसि करौं, गुरु गुण लिखा न जाय।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

यमक – **कुल खोये कुल ऊबरै कुल राखै कुलजाइ**
राम निकुल कुल मेंटि लै सब कुल रहा समाइ।

विभावना – **नींव बिहूना देवरा, देह बिहूना देव**
कबीर तहां बिलंबिया करै अलख की सेव।

असंगति – **अगि जु लागी नीर में, कांदौं जरिया झारि**
उतर दखिन के पंडिता रहे विचारि विचारि।

उपमा तथा दृष्टांत –**राम पियारा छांड़ि कै करै आन का जाप**
बेस्वा केरा पूत ज्यूं कहै कौन सूं बाप।

या

पानी केरा बुदबुदा अस मानस की जात।
देखत ही छिप जाएगा, ज्यों तारा परभात॥

कबीर के काव्य में चौदह काव्यरूपों का प्रयोग हुआ है जिनमें प्रमुख हैं – साखी, सबद, रमैनी, चौंतीसा, चांचर, हिंडोला, विप्रमतीसी। साखी दोहे का ही रूप है; रमैनी में दोहा–चौपाई का सम्मिलित प्रयोग है; चांचर लोक छंद है; गेय पदों में हिंडोला, कहरा, बेलि आदि को अपनाया गया है। अन्य छन्द हैं – अरिल्ल, ताटंक, लावनी, उल्लाला। स्पष्ट है कि कबीर को तत्कालीन वाद्ययंत्रों की बनावट का ज्ञान था, वह उनके ध्वनि–भेदों से भी परिचित थे। अत: कबीर के सबदों की भाषा संगीतमय है; लोकछंदों तथा संगीत की लय के योग ने उन्हें मधुर बना दिया है। यह ध्यान रखना चाहिए कि कबीर ने पढ़ने के लिए नहीं सुनाने के लिए रचनां रची थीं; वे जनता को जगाने के लिए, अविवेक के विरुद्ध संघर्ष की प्रेरणा देने के लिए रची गयी थीं। इसीलिए वह कहीं पांडे को, कहीं पंडित को, कही काज़ी को कहीं मुल्ले को तो कहीं हठयोगी को संबोधित हैं। उनमें व्यंग्य है, प्रखरता है, तल्खी है। उनकी बानियों की प्रखरता कविता को जीवंत बनाती है। लोकग्राह्य सादृश्य–विधान के कारण वह बोधगम्य भी है। श्रमशील देहाती आबादी के विभिन्न पेशों–कुम्हार, जुलाहा आदि से संबंधित शब्दावली का प्रयोग कर कवि ने अपने काव्य में अनुभव, विचार तथा भाव–संवेदना का मिश्रण किया है। इन्हीं गुणों के कारण आचार्य शुक्ल ने ज्ञानश्रयी शाखा के कवियों में केवल कबीर की वाणी को साहित्य माना है और क्षितिमोहन सेन, रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने और इधर अली सरदार जाफरी ने काव्य के मर्म को पहचानकर कबीर की प्रशंसा की है।

5.12 कबीर की काव्य–भाषा

कबीर की भाषा के संबंध में हिन्दी आलोचकों के भिन्न–भिन्न मत हैं। बाबूराम सक्सेना कबीर की भाषा को अवधी मानते हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार उनकी भाषा भोजपुरी है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी उसे संध्या भाषा कहते हैं और कबीर ने स्वयं अपनी भाषा को पूर्वी भाषा कहा है :

''बोली हमारी पूर्वी, हमैं लखै नहिं कोय।
हमको तो सोई लखै, धुर पूरब कौ होय॥

वस्तुत: कबीर की भाषा के संबंध में सबसे उपयुक्त विचार आचार्य शुक्ल का है जिन्होंने उसे सधुक्कड़ी अर्थात् साधुओं की भाषा कहा है। मध्यकाल के संत और साधु घुमक्कड़ थे। अत: उनके उपदेशों में विभिन्न प्रदेशों की भाषा के शब्दों का मिश्रण रहता था। इसी मिश्रण के कारण अन्य विद्वानों ने उसे खिचड़ी भाषा या पंचमेल भाषा कहा है। कबीर की भाषा का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि वह केवल उनके निवास–स्थान बनारस या उसके आस–पास की भाषा नहीं है। उनकी भाषा में पंजाबी (लूण, नाल, हाट), ब्रजभाषा, पूर्वी हिन्दी, खड़ी बोली, भोजपुरी और राजस्थानी (आंखड़िया, जीभणियां, पड्या) सभी के शब्द मिलते हैं। उसमें एक ओर संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द हैं तो दूसरी ओर अरबी–फारसी और उर्दू के शब्द भी। इस प्रकार सभी भाषाओं के शब्द होने के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कारण उनकी भाषा को सधुक्कड़ी या खिचड़ी भाषा कहना ही सही है। इसके दो कारण हैं – एक तो कबीर अनपढ़ थे और साधुओं का सत्संग करते थे और दूसरे उन्होंने अपनी कविता जनता के लिए लिखी थी।

कवि का सबसे बड़ा गुण है कि वह अपनी कविता में भावानुरूपिणी भाषा का प्रयोग करे, अर्थात् जैसे प्रसंग या भाव है उसी के अनुरूप अपनी भाषा को ढाले। कबीर में यह गुण था। जहां भक्ति और प्रिय-मिलन के चित्र हैं, वहां उनकी भाषा कोमल और मधुर है, अर्थात् उसमें माधुर्य गुण पाया जाता है। जैसे :

'दुलहिन गाबहु मंगलचार''

इसके विपरीत जहां उन्होंने धर्माडम्बर, ढोंग या सामाजिक कुरीतियों (छुआछूत, शोषण) की निंदा की है और जहां उनके मन में क्रोध या खीझ है, वहां उनकी भाषा में चुटीलापन तथा व्यंग्य है। इन स्थलों पर उनकी भाषा में ओज गुण आ गया है :

केसनि कहा बिगाड़िया जो मुड़ै सौ बार।
मन को काहे न मूड़िये जामै विषय विकार॥

जहां कवि की मन:स्थिति सामान्य है और वह अपनी बात को सीधे-सादे शब्दों में प्रस्तुत करते हैं या समझाते हैं, वहां उनकी भाषा में प्रसाद गुण विद्यमान है। जैसे :

''कस्तूरी कुंडलि बसै मृग ढूढैं बन मांहि।
तैसे घट-घट राम हैं दुनिया देखै नाहिं॥

इस प्रकार कबीर की भाषा भावानुरूपिणी है। उनकी भाषा के इसी गुण को देखकर तथा उनकी वाणी की शक्ति और प्रभाव को पहचानकर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को 'वाणी का डिक्टेटर' कहा है :

''भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। जिस बात को उन्होंने जिस लय में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया है। बन गया है तो सीधे-सीधे, नहीं तो दरेर कर।''

भक्ति के आवेश में भी कभी-कभी वह ओजगुण संपन्न भाषा का प्रयोग करते हैं। जैसे :

''फाड़ि फुटौला धज करौं कामलिया पहिराउं।
जिहि-जिहि भेषा हरि मिलैं सोई-सोई भेष कराउं।''

जहां उनके मन में करुणा जागृत होती है, वहां उनकी भाषा में करुणार्द्रता आ गयी है। जैसे :

''निर्बल को ना सताइये जाकी मोटी हाय।
मुई खाल की स्वास सौं लौह भस्म हो जाय॥

कबीर की कविता में रहस्यवादी उक्तियां भी पायी जाती हैं। इन स्थलों पर वह निराकार और निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए हठयोग की साधना या दाम्पत्य भाव से भक्ति करने की बात कहते हैं। ऐसे स्थलों पर सामान्य भाषा का प्रयोग नहीं हो सकता। अत: कबीर ने भी ऐसे स्थलों पर अलंकृत भाषा का प्रयोग किया है या उन्होंने प्रतीकों की सहायता से अपने सूक्ष्म, गूढ़ और गंभीर भावों को व्यक्त किया है। समकालीन धर्म साधनाओं, भारतीय दर्शन, इस्लाम तथा सूफीमत के पारिभाषिक शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है। ईश्वर को पति और स्वयं को पत्नी मानकर या आत्मा-परमात्मा के बीच दाम्पत्य संबंध बताते हुए उन्होंने रूपक, उपमा, अन्योक्ति, दृष्टांत आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। जिस प्रकार संस्कृत कवि कालिदास अपनी उपमाओं के लिए प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार कबीर अपने रूपकों के लिए जाने जाते हैं। उनके अलंकारों की विशेषता यह है कि उन्होंने उपमान जन-जीवन से चुने हैं और सामान्य पाठक उनकी कविता को आसानी से समझ लेता है और रस ग्रहण करने में भी उसे सुविधा रहती है। जैसे :

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

''नैनन की करि कोठरी पुतली पलंग बिछाय।
पलकनि की चिक डारि कै प्रियतम लिया रिझाय॥'

रहस्यवादी पदों में उन्होंने प्रतीकों का प्रयोग किया है :

''काहे री नलिनी तू कुम्हलानी।
तेरे ही नाल सरोवर पानी॥''

उनकी उलटबासियों में भी जिस भाषा का प्रयोग किया गया है वह सामान्य और सरल नहीं है, उसमें गूढ़ार्थ छिपा है:

''समंदर लागी आगि नदियां जलि कोइला भईं
देख कबीरा जागि मंछी रूखा चढ़ि गयीं।

पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग के कारण कबीर-काव्य को पढ़ने वालों को उनका अभिप्राय समझने के लिए, पर्याप्त माथा-पच्ची करनी पड़ती है। उदाहरण के लिए अनहद नाद, सुरति-निरति, उन्मनी अवस्था, कुंडलिनी, इड़ा-पिंगला, गगन गुफा, सहज समाधि, गगन घटा, निरंजन, खसम, सुधारस, शून्य, पिंड, अंड, घट, हंसा, अच्छर, शब्द, गर्भवास जैसे सैकड़ों शब्दों की एक तालिका बनायी जा सकती है। नाथपंथी योगियों की धर्मसाधना से संबंधित शास्त्रीय ग्रंथों में इन शब्दों के निश्चित परिभाषिक अर्थ हैं। कबीर की बानियों में इन शब्दों के प्राय: वही अर्थ हैं। इसी तरह सूफी मत और इस्लाम से संबंधित शब्दों में वजूद, गैब, दीदार, इश्क, नूर, अल्लाह, खुदा, करीम, काबा, बुत, पीर, मुरीद, रब, मुरसिद, रोजा, नमाज, कलमा, बेहिश्त, बन्दा, मस्तान आदि पर गौर किया जा सकता है। इनके अर्थ भी सूफी धर्मसाधना की विभिन्न परम्पराओं द्वारा निश्चित कर दिये गये हैं। कबीर इनका उपयोग भी प्राय: उन्हीं अर्थों में करते हैं।

विभिन्न धर्मसाधनाओं के पारिभाषिक शब्दों के अतिरिक्त जुलाहों, बुनकरों, व्यापारियों तथा खेतिहर आबादी के धंधों से संबंधित पेशेवर शब्दावली का उपयोग भी कबीर की बानियों में बहुतायत से मिलता है।

कृषि, व्यापार, दस्तकारी और हाट बाजार - इन सभी स्रोतों से लिये गये शब्दों के बाहुल्य ने कबीर की बानियों में ताजगी, सादगी, जिंदादिली और सजीव व्यंजकता का संचार कर दिया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कबीर का काव्य तीन प्रकार का है :

1. वह काव्य जिसमें उन्होंने सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक रूढ़ियों का विरोध कर जनता को सरल जीवन जीने और ईश्वर-भक्ति के मार्ग पर चलने का संदेश दिया है। ऐसे स्थलों की भाषा कहीं सरल है और कहीं व्यंग्य और फटकार की तीखी चुभन वाली।

2. भक्ति भावनाओं से भरा हुआ काव्य जहां उन्होंने या तो गुरु के प्रति अपना आदर भाव प्रकट किया है अथवा भगवान के प्रति आत्मनिवेदन और उससे मिलने की तीव्र इच्छा व्यक्त ही है। ऐसे स्थलों पर उनकी भाषा में अलंकारों और प्रतीकों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है। इन स्थलों की भाषा काव्य-गुण सम्पन्न है।

3. उनके रहस्यवादी पद और साखियां या उलटवासियां जिनमें हठयोग तथा सिद्धों और नाथों की शब्दावली का प्रयोग किया गया है और जिस भाषा को सामान्य जन तो क्या विद्वान भी समझने में कठिनाई अनुभव करते हैं। कुल मिलाकर उनकी भाषा को सशक्त भाषा कहा जायेगा। उसमें प्रवाह भी है, संगीतमयता भी है, और संप्रेषणीयता भी है। एक आलोचक ने उनकी भाषा के संदर्भ में ठीक ही लिखा है :

''आज तक हिन्दी में ऐसा जबरदस्त व्यंग्य लेखक पैदा ही नहीं हुआ; उनकी साफ चोट करने वाली भाषा, बिना कहे ही सब कुछ कह देने वाली शैली और वह अत्यंत सादी है किन्तु उनमें अत्यंत तीव्र प्रकाशन-भंगी है। उसमें कला की काट-छांट नहीं है, किन्तु अनुभूति का तीक्ष्ण गौरव विद्यमान है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कबीर का काव्य मुक्तक काव्य है। भाव के अनुरूप उनकी शैली परिवर्तित होती चली गयी है। उनकी शैली के मुख्य रूप तीन हैं —

1. खंडन शैली,
2. उपदेशात्मक शैली,
3. अनुभूतिव्यंजक शैली।

उनकी शैली में कोमलता और कठोरता दोनों हैं, उनकी भक्ति-रचनाओं में साधक का दैन्य और कातरता है, समाज तथा धर्म-सुधार वाली उक्तियों में अक्खड़पन तथा आक्रोश है तथा कुछ स्थलों पर माधुर्य तथा रसानुभूति कराने की क्षमता भी है।

5.13 महत्त्वपूर्ण अंशों की सप्रसंग व्याख्या

1. मोकों कहां ढूढ़े बन्दे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में।
ना तो कौने क्रिया-कर्म में, नहीं योग वैराग में।
खोजी होय तो तुरतै मिलिहों, पल भर की तालास में।
कहैं कबीर सुना भई साधो, सब स्वांसों की स्वाँस में।

शब्दार्थ मोको मुझे (ईश्वर या परमात्मा को)। बन्दे मनुष्य। देवल देवालय, मन्दिर। काबे मुसलमानों का तीर्थ स्थल। कैलास-कैलाश पर्वत जो शिव का निवास-स्थल माना जाता है। क्रिया-कर्म - कर्मकाण्ड, बाह्याचार। खोजी - सच्चा भक्त जो भगवान का साक्षात्कार करना चाहता है। तालास - खोज करना, ढूंढना। स्वांसों की सांस में - सब प्राणियों के हृदय में।

प्रसंग -संत कवि कबीरदास द्वारा रचित इस पद में निर्गुण काव्य-धारा के अनुरूप बाह्याचार, कर्मकांड का विरोध करते हुए एकाग्रचित्त होकर भगवान का ध्यान-स्मरण करने का परामर्श किया गया है।

व्याख्या - ईश्वर की प्राप्ति के लिए, उनके दर्शन करने के लिए घर-गृहस्थी के कर्त्तव्यों को त्यागकर वन-वन में भटकना, पर्वत-शिखरों पर जाकर तपस्या करना, समाधि लगाना, तीर्थ-स्थानों की यात्रा करना समय और शक्ति का अपव्यय है। ईश्वर तो सब प्राणियों के हृदय में अवस्थित है। अत: मन ही मन घर बैठे ही उसका ध्यान-स्मरण करने से उसका दर्शन, उसका साक्षात्कार किया जा सकता है। वह न तो देवालयों, मन्दिरों, मस्जिदों में हैं और न पवित्र माने जाने वाले तीर्थ-स्थानों-प्रयाग, काशी, काबा, कैलाश पर्वत आदि में। उसे प्राप्त करने के लिए कर्म-काण्ड करने की भी आवश्यकता नहीं है। साधु-वेष धारण करना, जटाएं बढ़ाना, यज्ञ-हवन करना, सब व्यर्थ हैं। संसार को त्यागकर योगी, तपस्वी, बनकर कृच्छ साधना करना भी व्यर्थ है। यह सब करने से ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती। उसे प्राप्त करने के लिए मन की शुद्धता, आत्मा की पवित्रता, उच्च विचार, परोपकार की भावना और परमात्मा में सच्ची भक्ति, उसको पाने की लग्न, होनी चाहिए। इन गुणों से युक्त व्यक्ति पलभर में ईश्वर को प्राप्त कर सकता है, ईश्वर में मिलकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। कबीर कहते हैं - हे साधुओं। ईश्वर सर्वव्याप्त है, घट-घट में निवास करता है उसके दर्शन एकाग्र चित्त होकर उसका ध्यान करने से हो जाते हैं। अत: उसकी खोज में वन-वन भटकना मूर्खता है।

विशेष - 1. निर्गुण निराकार ब्रह्म के प्रति आस्था।
2. बाह्याचार, बाह्याडम्बर, ढोंग का विरोध।
3. ध्यान और स्मरण की महत्ता बतायी गयी है।
4. भाव-साम्य - कस्तूरी कुंडलि बसै मृग ढूंढै बन माहिं
तैसे घट-घट राम हैं दुनिया देख नाहिं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. **संतो, सहज समाधि भली।**
सांईते मिलन भयो जा दिनतें सुरत न अन्त चली॥
आंख न मूंदूं कान न रुंधूं, काया कष्ट न धारू।
खुलै नैन मैं हंस हंस देखूं, सुन्दर रूप निहारूं॥
कहूं सो नाम सुनूं सो सुमिरन, जो कुछ करूं सो पूजा।

शब्दार्थ – सहज समाधि – योग की अन्तिम अवस्था। इस स्थिति में वह परमात्मा के दर्शन करता है, सारा जीवन–व्यापार ईश्वर की आराधना बन जाता है। सांई – स्वामी अर्थात्, परम ब्रह्म। सुरत – स्मरण, ध्यान। रूंधू – बंद करना। धारूं – सहना। निहारूं – देखना। गिरह–उद्यान – घर और बाग–बगीचे। भाव दूजा – द्वैत भाव, भेद–भाव। परिकरमा – परिक्रमा, धार्मिक कार्य। मनुका रता – मन का रमना, लीन होना। मलिन वचन – निन्दा करना, अपशब्द बोलना। तारी – लगातार ध्यान करना। उनमुनि – उन्मनी अवस्था, यौगिक क्रिया से मन तथा प्राण को स्थिर करना, समाधिस्थ हो जाना। परम सुख – ब्रह्मानन्द।

प्रसंग – कबीर द्वारा रचित इस पद में सहज समाधि का महत्त्व बताया गया है और इस समाधि में साधक की मनोदशा तथा उसके आचार–विचार का वर्णन किया गया है और साधकों से आग्रह किया गया है कि वे बाह्य पूजा–अर्चना का विधान त्याग कर सहज समाधि लगाएं, उससे ही उन्हें परम सुख या ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होगी।

व्याख्या – हे संतो ! आपके लिए सर्वाधिक कल्याणकारी मार्ग है सहज समाधि लगाना। देव मूर्ति की पूजा–अर्चना करने, तीर्थ–यात्रा करने, वनों में जाकर कठोर तपस्या करने की जगह सहज समाधि लगाओ। जब साधक सहज समाधि लगाता है तो योग की अंतिम अवस्था पर पहुंच जाता है, फिर उसके लिए भगवान का नाम–जप, कीर्तन, स्मरण, ध्यान करना सब व्यर्थ हो जाते हैं। इन सबको करने की आवश्यकता नहीं रहती। वह न नेत्रों को मूंद कर भगवान का ध्यान करता है, न कानों से भगवान के गुणों का कीर्तन सुनता है, न कृच्छ साधना कर व्रत–उपवास रख, पंचाग्नि तप कर अपने शरीर को कष्ट देने की आवश्यकता रह जाती है। वह नेत्र खोलकर अपने चारों ओर देखता है तो सर्वत्र प्रभु के दर्शन करता है, उसकी बनायी हुई सृष्टि का सौन्दर्य देखकर हर्षित होता है। साधक का सारा जीवन–व्यापार ईश्वर की आराधना बन जाता है। वह जो कुछ बोलता है वह राम–नाम की तरह पवित्र होता है, वह जो कुछ सुनता है उसमें राम–नाम की गूंज सुनाई देती है। उसका खाना–पीना ही पूजा है। उसके मन से भेद–भाव की भावना मिट जाती है, अपनी समदृष्टि के कारण उसे घर तथा बाग–बगीचा एक समान लगते हैं, उसका विचरण करना मन्दिर की परिक्रमा के समान पावन होता है, वह जो कुछ करता है ईश्वर की सेवा होती है। उसका सोना ही समाधि बन जाता है क्योंकि वह सोते समय भी प्रभु के ध्यान में लीन रहता है। वह एकेश्वरवादी होता है अत: वह ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य देवी–देवता की पूजा नहीं करता। उसका मन निरंतर ईश्वर में लीन रहता है, उसमें रामानाम की गूंज सुनाई देती रहती है, वह न किसी की निंदा करता है न अपशब्द कहकर किसी का दिल दुखाता है। उसकी लौ भगवान में लग जाती है, अत: उठते–बैठते, खाते–पीते, जागते–सोते सब समय ईश्वर का स्मरण करता रहता है। वस्तुत: यह उन्मनी अवस्था है जिसमें साधक का मन और प्राण चंचलता छोड़कर स्थिर हो जाते हैं, वह स्थितप्रज्ञ हो जाता है। सुख–दु:ख, हानि–लाभ, जीवन–मरण, मान–अपमान, निन्दा–स्तुति सब एक समान हो जाते हैं। इस स्थिति में वह ब्रह्मानन्द प्राप्त करता है, आवागमन के चक्र से छूट जाता है।

विशेष – 1. पारिभाषिक शब्दों–सहज समाधि, सुरत, उनमु।

2. भाव–साम्य –

(क) यद्यत्कर्म करोमि तत्तदाखिलं शंभो त्वाराधनम् शंकराचार्य

(ख) यत्करोषि, यदश्नासि, यज्जुहोषि, ददासि यत्।
यत्तपस्यासि कौत्तेय तत्कुरुष्व भदर्पणम्॥ – गीता

(ग) हानि–लाभ, जीवन–मरण, यश–अपयश विधि हाथ–तुलसी

(घ) सम: शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयो:।
शीतोष्ण सुखदु:खेषु सम: सङ्गा विर्जित:

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तुल्य निन्दा स्तुति मौनी संतुष्टो येन केनचित्
अनिकेत: स्थिरमतिर्यहियान्में प्रियो नर: – गीता

(च) राम नाम सूं ताली लागी सकल तीरथ तेणें तन्मां रे – नरसी भगत

3. **पानी बिच मीन पियासी।**
मोंहि सुन सुन आवै हांसी॥
घर में वस्तु नजर नहिं आवत।
बन बन फिरत उदासी॥
आतमज्ञान बिना जग झूंठा।
क्या मथुरा क्या कासी।

शब्दार्थ – पानी बिच – पानी में, पानी के अन्दर। मीन – मछली। हांसी – हंसी। उदासी – संसार से विरक्त होकर, सांसारिक जीवन त्यागकर साधु–संन्यासी बनने वाला। आत्म ज्ञान – आत्मा–परमात्मा के बीच संबंधों का ज्ञान, सच्चा ज्ञान।

प्रसंग – इस पद में कबीर ने धर्माडम्बर, धर्माचार को मिथ्या बताया है तथा सच्चा ज्ञान प्राप्त करने पर बल दिया है।

व्याख्या – यदि कोई कहें कि सरोवर या नदी के जल में रहते हुए, लहरों में क्रीड़ा करते हुए भी मछली प्यासी रहती है, तो सुनने वाला उसे मूर्ख समझेगा और उसकी बेतुकी बात का मजाक उड़ायेगा, उस पर विश्वास नहीं करेगा। इस प्रकार यदि कोई ढोंगी साधु यह कहे कि वह विरक्त होकर, भगवान की सच्ची भक्ति करने के बाद भी भगवान के दर्शन नहीं कर पा रहा है, वह परमात्मा के वियोग में दु:खी है तो आत्मज्ञानी, सात्विक वृत्ति वाला व्यक्ति उसकी बात पर विश्वास नहीं करेगा, वह समझेगा कि उसकी बात झूठी है, वह सच्चा भक्त नहीं है, वह सच्चा साधु भी नहीं है। उसके मन में अभी भी माया–मोह है जिसके कारण वह भगवान के दर्शन नहीं कर पा रहा है। यदि कोई व्यक्ति कमरे या कोठरी में रखी हुई वस्तु नहीं देख पाता तो अवश्य ही या तो वह अंधा है या उसकी दृष्टि मंद है। इसी प्रकार भगवान तो कण–कण में व्याप्त हैं, वह प्रत्येक प्राणी के अंतर्मन में विराजमान है, ध्यान–स्मरण–साधना करने से उसके दर्शन किये जा सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति भगवान के दर्शन नहीं कर पाता तो स्वयं उसमें कोई दोष है। ऐसे अज्ञानी व्यक्ति ही भगवान का ध्यान करने की बजाय उसे पाने के लिए वनों, पर्वत के शिखरों पर जाकर तपस्या, कृच्छ साधना करते है, अपने शरीर को सुखाते या गलाते हैं। भगवान को पाना है तो एकाग्रचित्त होकर उनका ध्यान करो, वन–वन में भटकना व्यर्थ है। साधु–संन्यासी का वेश धारण करना बेकार है।

जीव, जगत, आत्मा–परमात्मा का, उनके बीच संबंधों की जानकारी के लिए आत्मज्ञान आवश्यक है। आत्मज्ञान के अतिरिक्त संसार के सभी पदार्थ झूठे हैं, दु:खदायी हैं। यदि आवागमन के चक्र से मुक्त होना है, मोक्ष पाना है तो तीर्थ–व्रत, मूर्ति पूजा, उपवास, कृच्छ साधना करने से कोई लाभ नहीं होगा। परमात्मा को पाने का केवल एक ही उपाय है आत्मज्ञान होना। मथुरा में द्वारिकाधीश के मन्दिर में जाकर उनकी मूर्ति के सम्मुख बैठकर कीर्तन करने से यमुना में स्नान करने से या काशी जाकर विश्वनाथ के मन्दिर में भगवान शंकर के लिंग पर पत्र–पुष्प चढ़ाने, गंगाजल–दूध से उसका अभिषेक करने से कोई लाभ नहीं। यह बाह्याचार है, धर्माडम्बर है, सच्ची पूजा नहीं।

भाव साम्य – 1. **कस्तूरी कुंडलि बसै मृग ढूंढै बन मांहि**
तैसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नाहिं

2. **जिन मात पिता की सेवा किये**
उन तीरथ व्रत किये न किये

3. **श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासात्, अभ्यासात् ध्यानम् निरंतरम्**
ध्यानात्कर्मफलं त्यागं, त्यागात् शान्तिरनन्तरम्

4. **कबीर ने अपने काव्य में अनेक प्रकार से धर्माडम्बर, बाह्याचार तथा ढोंग का विरोध किया है।**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. **मन ना रंगाय रंगाये जोगी कपरा**
आसन मारि मंदिर में बैठे
ब्रह्म-छांड़ि पूजन लागे पथरा॥
कनवा फड़ाय जटवा बढ़ौले।
दाढ़ी बढ़ाय जोगी होई गैले बकरा।
जंगल जाय जोगी धुनिया रमौले
काम जराय जोगी होय गैले हिजरा॥
मधवा मुंडाय जोगी कपड़ा रंगीले,
गीता बांच के होय गैले लगरा।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो,
जम दरवाजा बांधत जैबे पकड़ा॥

शब्दार्थ – रंगाये – भगवान की प्रेम-भक्ति में पूरी तरह डूब जाना। कपरा – कपड़ा, पोशाक, वस्त्र। आसन भारि – पद्मासन की मुद्रा में बैठकर। पथरा – पत्थर की बनी देवमूर्ति। कनवा – कान। फड़ाय – छिदवाकर। जटवा – जटाएं। बढौले – बढ़ाकर। गैले – गये। धुनिया रमौते –धूनी रमाकर। काम जराय – काम वासना को मार कर, गृहस्थ जीवन त्यागकर। हिजरा – हीजड़ा, नपुंसक। मथवा – सिर के केश। लबरा – झूठा, बड़बोला, मिथ्या वचन बोलने वाला। जम दरवाजा – यमराज के दरबार के द्वार पर, नरक-वास।

प्रसंग – इस पद में कबीर ने मिथ्याचार, धार्मिक पाखंड और ढोंग की भर्त्सना की है। उनके युग में हिन्दू-मुसलमान दोनों में ढोंग, मिथ्याचार तथा धर्माडम्बर का बोलबाला था तथा सामान्य भोली-भाली जनता उनके जाल में फंस रही थी। इसी से दु:खी होकर उन्होंने जनता में चेतना जगाने का प्रयास किया।

व्याख्या – आज समाज में अनेक हिन्दु ऐसे हैं जो पत्नी की मृत्यु पर, आर्थिक संटक आने पर, सम्पत्ति नष्ट होने पर आपदा से संघर्ष करने की बजाय पलायनवादी बनकर, परिश्रम से कतराकर साधु-संन्यासी का वेश धारण कर या तो मंदिरों में रहने लगते हैं, या तीर्थ-स्थलों की यात्रा करते हुए अपना पेट भरते हैं। ये लोग परिश्रम से बचते हैं, बिना हाथ-पैर हिलाये भरपेट स्वादिष्ट भोजन पा जाते हैं और भोली जनता उनको साधु समझ कर उनका आदर-सम्मान करती है। जनता के इस व्यवहार को देख तथा उनके अज्ञान व भोलेपन का अनुचित लाभ उठाने के लिए ये गेरुए वस्त्र धारण करते हैं, मन्दिरों में जाकर देवमूर्ति के सामने पद्मासन की मुद्रा में बैठकर कभी नेत्र बंद कर ध्यान करने का ढोंग रचाते हैं, कभी कीर्तन-भजन करते है। वे न सच्चे भक्त हैं और न सच्चे साधक। वे एकेश्वरवादी न होकर अनेक देवी-देवताओं में विश्वास कर उनकी पूजा-अर्चना करते हैं। सच्ची भक्ति ईश्वर का एकाग्र चित्त से स्मरण करना और ध्यान लगाना है। वे यह नहीं करते। कुछ लोग ऐसे भी है जो कान छिदवाकर, जटाएं बढ़ाकर साधु बनने का ढोंग करते हैं, स्वयं को अवधूत कहते हैं, नाथपंथी और सिद्धपंथी बताते हैं। इन्हें कनफड़वा साधु कहा जाता है। उधर मुसलमान भी कम ढोंगी नहीं है। वे भी दाढी बढ़ाकर, फकीरी बाना पहनकर, चिमटा हाथ में लिये गांजा-चरस फूंकते हुए स्वयं को इस्लाम धर्म का सच्चा अनुयायी और पहुंचा हुआ फकीर कहते हैं। वस्तुत: इनकी बढ़ी हुई दाढी को देखकर लगता है कि ये इन्सान नहीं बल्कि बकरे हैं। कुछ लोग ऐसे हैं जो संसार, गृहस्थ जीवन और उसके उत्तरदायित्व से मुक्त होने के लिए घर-बार छोड़ जंगल में जाकर योग-साधना करने, धूनी रमाने का अभ्यास करते हैं, शरीर पर राख लपेट लेते हैं। ऐसे लोग दावा तो यह करते हैं कि उन्होंने अपनी इन्द्रियों को वश में कर रखा है, वे जितेन्द्रिय हैं, उन्होंने काम-वासना पर विजय प्राप्त कर ली है, परन्तु वास्तव में वे नपुंसक होते हैं, अपनी दुर्बलता को छिपाने के लिए यह नाटक रचते हैं, ऐसे लोग मिथ्याचार में लीन हैं – वे सिर मुंडवाते हैं, गेरुए वस्त्र धारण कर लेते हैं, धर्मशास्त्र पढ़ने का ढोंग करते हैं भले ही उसका एक अक्षर भी न समझते हों, प्रवचन-उपदेश देकर जनता को ठगते हैं। ये बड़े बोल बोलते हैं पर उनकी वाणी में न सत्य होता है और न सात्विक भाव। अपने प्रवचनों द्वारा वे अपना पांडित्य, ज्ञान और विद्वता दिखाते फिरते हैं। कबीर कहते हैं – ऐसे ढोंगी, मिथ्याचारी, साधु का वेश धारण करने वाले धूर्तों से सावधान रहो। ये जनता को भ्रम में डालकर भले ही साधु बनने का दावा करें परन्तु सर्वज्ञ, घट-घट वासी परमात्मा से इनका वास्तविक रूप छिपा नहीं रह सकता। अत: जब इनका प्राणान्त हो जायेगा तो इनके कारनामों को पढ़कर चित्रगुप्त इन्हें कठोर दंड देंगे। यमराज के दूत इन्हें पकड़कर, अपने पाश में बांधकर नरक लोक ले जायेंगे और वहां युग-युग तक ये नरकवास की यातनाएं सहेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेष –

1. अपने युग में व्याप्त ढोंग, मिथ्याचार, बाह्याडम्बर और धार्मिक भ्रष्टाचार का बेलाग, मुंहफट भाषा में वर्णन।
2. कुछ को बकरा तथा कुछ को हिजड़ा कहकर कवि ने व्यंग्य भी किया है और मज़ाक भी उड़ाया है।
3. सीधी-सरल भाषा में कटु सत्य की व्यंजना की गई है।

5. **अवधू मेरा मन मतिवारा।**
उन्मुनि चढ़ा गगन-सा पीवै, त्रिभुवन भया उजियारा।
गुड़ करि ज्ञान ध्यान करि महुवा, भव-भाठी करि भारा।
सुषमन-नारी सहज समानीं, पीवै पीवनहारा।
दोई पुड़ जोडि चिगाई, भाठी चुआ महारस भारी।
काम-क्रोध-दुइ किया पलीता, छुटि गई संसारी।
मुनि मंडल में मूंदला बाजै, तहं मेरा मन नीचै।
गुरुप्रसाद अमत फल पाया, सहजि सुषमंना काछै।
पूरा मिल्या तबै सुख उपज्यो तप की तपनि बुझानी।
कहै कबीर भवबंधन छुटै, जोतिहि जोति समानी।

शब्दार्थ – अवधू – अवधूत, नाथ पंथ का साधु, सिद्ध। मतिवारा – मतवाला, भगवान की भक्ति के नशे में चूर। उन्मुनि – उन्मनी अवस्था, यौगिक क्रिया से मन और प्राण को स्थिर कर सहस्रार में समाधिस्थ होने की दशा। गगन रस – सहस्रार कमन का रस, आनन्द। महुवा – महुवा नामक एक वनस्पति जिससे शराब बनायी जाती है। भव-भाठी – संसार रूपी भट्टी। भारा-महा रस, परम आनन्द। नारी – नाड़ी। पुड़ – पुट। चिगाई –जलाना, प्रज्ज्वलित करना। पलीता – बत्ती, जलाकर राख करना। संसारी – सांसारिक माया-मोह। सुनि मंडल – शून्य चक्र। मंदला – मृदंग, अनहद नाद। काछै – प्राप्त कर लिया। पूरा – पूर्ण ब्रह्म। जोतसि – परम ज्योति, परमात्मा।

प्रसंग – इस पद में कबीर ने ब्रह्म साधना का चित्रण किया है और बताया है कि योगी सिद्धि प्राप्त करने पर परमानन्द प्राप्त कर लेता है, भवसागर को पार कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

व्याख्या – हे अवधूत ! अब मेरा मन लोकोत्तर ब्रह्मानन्द के नशे में चूर है। इस समय मैं उन्मनी अवस्था में हूं जिसमें मन और प्राण स्थिर हो गये हैं, चित्त की चंचलता समाप्त हो गयी। मुझे लगता है कि मैं जिस रस का पान कर रहा हूं वह अत्यंत मादक है, मतवाला बना देने वाला है। इस मदिरा के बनाने में ज्ञान का गुड़ और ध्यान का महुआ प्रयुक्त हुआ है। इस मदिरा को तैयार करने में ज्ञान की आग से दग्ध संसार ने भट्ठी का कार्य किया है, उसी में महुआ और गुड़ को पका कर यह मदिरा बनायी गयी है। मेरी सुषुम्ना नाड़ी अनायास ही लीन हो गयी है अर्थात द्वैत भावना, दुविधा भाव समाप्त हो गया है। अब मुझे परम शांति का रस मिल रहा है, मैं उसे छक कर पी रहा हूं। इस चिदाग्नि को प्रज्वलित करने के लिए इड़ा और पिंगला के दोनों नासापुटों से प्रवाहित होने वाली प्राण वायु और अपान वायु का समीकरण आवश्यक था, वह समीकरण हो गया है। इस ज्ञानाग्नि को जलाने के लिए काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि वृत्तियों को नष्ट कर दिया गया है, उन्हें भस्म कर दिया है, वे राख हो गयी हैं। इन वृत्तियों के नाश से सांसारिकता का भाव, संसार के प्रति लिप्सा, भौतिक, ऐन्द्रिय सुखों की लालसा नष्ट हो गयी है। रूहानी चढाई या आत्मा के ऊर्ध्वगमन के समय तरह-तरह के दृश्य दिखाई देते हैं, विचित्र ध्वनियां सुनाई देती हैं। इन अद्भुत दृश्यों को देख तथा अनहद नाद के संगीत को सुनकर मेरा मन मयूर की तरह नाच उठा है। गुरु की कृपा, अनुकम्पा से ही मुझे इस अनश्वर फल की उपलब्धि हुई है। मेरी सुषुम्ना नाड़ी अनायास लीन हो गयी है। यह ब्रह्मानन्द, परम सुख तभी प्राप्त होता है जब सद्गुरु मिले और उसका प्रसाद प्राप्त हो जाए। इस स्थिति में सभी प्रकार के ताप-भौतिक, दैहिक, दैविक नष्ट हो जाते हैं, संसार के बंधन टूट जाते हैं, जोति परम ज्योति में, आत्मा परमात्मा में समा जाती है, भक्त और भगवान, साधक और साध्य, उपासक और उपास्य एकाकार हो उठते हैं, भेद-भाव मिट जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6. **माया महा ठगिनि हम जानी**
तिरगुन फांसि लिये कर डोलै, बोलै माधुरी बानी।
केशव के कमला होइ बैठी, सिव के भवन भवानी।
पंड़ा के मूरत होय बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा होइ बैठी, काहू के कोड़ी कानी॥
भक्तन के भक्तिन होइ बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो यह सब अकथ कहानी॥

शब्दार्थ – ठगिनि – ठगनी, पथभ्रष्ट करने वाली, प्रलोभनों के जाल में फंसाने वाली। तिरगुन – सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण। फांसि – फंदा, बंधन। कर – हाथ। मधुरी – माधुर्यपूर्ण, मीठी। कमला – लक्ष्मी। भवानी – पार्वती। पंडा – पुजारी। मूरत – देव-मूर्ति। अकथ – जो कही न जा सके।

प्रसंग – इस पद में कबीर ने माया को ठगिनी बताकर उसके जाल में न फंसने का उपदेश दिया है।

व्याख्या – अब मैं अच्छी तरह समझ गया हूं कि माया संसार के प्राणियों को प्रलोभनों के जाल में फंसाकर उन्हें मार्ग-भ्रष्ट करने वाली ठगिनी या जादूगरनी है। वह संसार के लोगों को मोह-पाश में फंसाने के लिए रजोगुण व तमोगुण का फंदा हाथ में लिये घूमती रहती है कि कब अवसर मिले और कब वह फंदे में फंसाकर उन्हें अपने जाल में फंसाये। जैसे कोई शिकारी जाल फैलाकर पक्षियों या पशुओं को उसमें फंसाता है, उसी प्रकार माया संसार के प्राणियों को त्रिगुण के बंधन में डालकर उन्हें पथभ्रष्ट करती है, उनको कष्ट देती है। उसके पास पथभ्रष्ट करने का सबसे बड़ा उपकरण है कामिनी और उसका शरीर, रूप, यौवन। वह उसी के रूप-यौवन, हाव-भाव, क्रीडा-विलास, मधुर वाणी के द्वारा पुरुषों को मुग्ध करती है, उनका सर्वस्व लूटती है। विष्णु को लक्ष्मी, शिव को पार्वती, ब्रह्मा को ब्रह्मानी के द्वारा उसने अपने जाल में फंसाया है। पंड़े-पुरोहित-पुजारी मूर्ति-पूजा के चक्कर में स्वयं भी फंसे हैं और भोली, अज्ञानपूर्ण जनता को भी फंसाये हुए हैं। राजा अंत:पुर की रानियों के साथ भोग-विलास में मग्न रहकर अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाते हैं। कोई धन-सम्पत्ति, सोना-चांदी हीरे-मोती के चक्कर में फंसा है, तो कोई बाह्याडम्बर, बाह्याचार वाली भक्ति कर स्वयं अपने को तथा जनता को धोखा दे रहा है। कबीर कहते हैं – हे साधुओ ! माया की लीला अपार है, उसके कारनामे ऐसे हैं कि उनका वर्णन शब्दों द्वारा नहीं किया जा सकता।

विशेष – 1. कबीर ने अपनी साखियों में भी माया की निन्दा कर उससे बचने का उपदेश दिया है।
माया मुई न मन मुवा मरि मरि गया सरीर।
आसा, त्रिष्णा ना मुई, यौं कहि गया कबीर॥

2. **अन्य भक्त-कवियों ने भी माया की भर्त्सना की है**
माधव, मोहि पास कब छूटै-.....तुलसी

7. **अरे, इन दोहुन राह न पाई।**
हिन्द अपनी करे कड़ाई गागर छुवन न देई।
वेस्या के पाइन-तर सोवै यह देखो हिंदआई।
मुसलमान के पीर-ओलिया मुर्गी मुर्गा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहैं धरहि में करै सगाई।
बाहर से इक मुर्दा लाये धोय-धाय चढ़वाई।
सब सखियां मिलि जेंवन बैठी घर-भर करै बड़ाई।
हिंदुन की हिंदवाई देखी तुरकन की तुरकाई।
कहै कबीर सुनो भाई साधो कौन ह्वै जाई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शब्दार्थ – दोहुन – हिन्दू–मुसलमान दोनों ने। राह – सन्मार्ग, जीवन को सफल और सुखी बनाने का मार्ग। पाइन–तट – पैरों के नीचे, तलुओं के पास। खाला – मां की बहन, मौसी। चढवाई – पकाने के लिए हांडी में रखना। सेवन – भोजन करना।

प्रसंग – इस पद में कबीर ने हिन्दू–मुसलमान दोनों की सामाजिक कुरीतियों, कुप्रथाओं और बाह्याडम्बर पर तीखा प्रहार करते हुए उनके दोषों को दिखाकर उन्हें सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है।

व्याख्या – हमारे समाज के प्रमुख अंग हैं – हिन्दू और मुसलमान। आजकल ये दोनों ही पथभ्रष्ट होकर पापाचार में लीन हैं, दोनों ने विवेक खो दिया है और उसके अभाव में गलत रास्ते पर चल रहे हैं। हिन्दू अपनी प्राचीन सभ्यता, संस्कृति का गौरव–गान करते रहते हैं और अपने को अन्यों से श्रेष्ठ बताते हैं। इनमें मिथ्या गर्व है और उसके कारण शूद्र कही जाने वाली जातियों से छूआछूत का व्यवहार करते रहते हैं और मानते हैं कि शूद्र के स्पर्श से जल अपवित्र और अपेय हो जायेगा, अत: उन्हें अपने जल का घड़ा नहीं छून देते। पवित्रता के इस ढोंग का पता तब चलता है जब अपने को परम पवित्र मानने वाले ये सवर्ण हिन्दू रात को वेश्यालयों में जाते हैं और शूद्र जाति की वेश्याओं की खुशामद करते हैं, उनको फुसलाने के लिए उनके पैरों के तलुए चाटते हैं, उनके साथ सहगमन करते हैं। दूसरी ओर इस्लाम धर्म के माननेवाले और स्वयं को धर्माचार्य कहने वाले मुल्ला–मौलवी हिंसा करते हैं, जो धर्म–विरुद्ध आचरण है, मांस मक्षण करते हैं, मुर्गा–मुर्गी खाते हैं। ये इतने पतित हैं कि रक्त–संबंधों की, मान–मान–मर्यादा की चिन्ता किये बिना अपने परिवार की युवतियों से विवाह कर लेते है, अपनी मौसी की बेटी से विवाह करने में भी इन्हें संकोच नहीं होता।

ये मुसलमान जैसे–तैसे जुगाड़ कर, बाजार से मुर्गा खरीद लाते हैं, घर आकर उसकी बोटी काटते हैं और फिर चूल्हे पर रखी हांडी में रखकर उसे पकाते हैं। जब वह पक जाता है तब सब मिल–बैठकर उस मांस को खाते हैं। खाने के बाद उस स्वादिष्ट व्यंजन की प्रशंसा करते हैं, तृप्त होने पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करते है।

कबीर कहते हैं – मैंने हिन्दुओं का मिथ्या गर्व भी देखा है, उनके पाप–कर्म भी देखे हैं, उनका बाह्याडम्बर और ढोंग भी मुझसे छिपा नहीं है। इसी प्रकार मुसलमानों के दोष, उनका ढोंग, उनके दूषित आचार–व्यवहार भी जग–ज़ाहिर हैं, कोई दोष छिपा नहीं है। मेरी समझ में नहीं आता कि ये कुमार्ग पर क्यों चल रहे हैं और यदि इन्होंने यह मार्ग नहीं छोड़ा तो पता नहीं इनकी क्या गति होगी, इनका भविष्य कैसा होगा ?

8. आइ न सक्कों तुज्झपै, सकूं न तुझ बुलाइ।
जियरा यौंही लेहुगे, विरह तपाइ तपाइ।

शब्दार्थ – जियरा – जीव, प्राण। लेहुगे – हरण कर लोगे, ले लोगे। तपाइ – जला–जला कर।

व्याख्या – वियोग की आग में जलती, विरह–वेदना में झुलसी कबीर की आत्मा कहती है : मेरी स्थिति आपके विरह में अत्यंत दयनीय हो उठी है। मैं आपसे बिछुड़ गया हूं, इस संसार में जन्म लेने के बाद मैं आपसे इतना दूर हो गया हूं कि प्रयत्न करने पर भी आपके पास नहीं पहुंच पाता। उधर आप इतने निष्ठुर और निर्मोही हो गये हैं कि लाख विनती करने पर भी, आप मेरे पास नहीं आते। मैं पुकार–पुकार कर थक गया हूं, पर आपका मन नहीं पसीजा। आपकी इस निष्ठुरता तथा उदासीनता को देख कर लगता है कि मैं जीवन–भर आपकी विरहाग्नि में जलता–सुलगता रहूंगा और विरह की दारुण वेदना झेलते–झेलते ही एक दिन मेरे प्राण–पखेरू उड़ जायेंगे। कदाचित् आपने यही ठान रखी है कि मैं विरह की आग में तड़पता–तड़पता ही मर जाऊं।

9. यह तन जालौं मसि करुं, ज्यूं धूवां जाइ सरग्गि।
मति वै राम दया करैं, वरसि बुझावै अग्गि॥

शब्दार्थ – जालों – जला दूं। मसि – राख, स्याही। सरग्गि – स्वर्ग। मति – शायद, संभव है। अग्गि – विरह की आग।

व्याख्या – विरह की आग में जलते–जलते विरही साधक की दशा इतनी शोचनीय तथा करुणार्द्र हो जाती है कि वह उस पीड़ा से मुक्त होने के लिए अपनी जीवन–लीला ही समाप्त करने को उद्यत हो जाता है। वह कहता है – चिरकाल से विरहाग्नि में दग्ध होते–होते अब मन करता है कि इस शरीर को जलाकर राख कर दूं। इसके जलने से जो धुंआ निकलेगा, वह अवश्य ही स्वर्ग में बैठे ईश्वर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तक पहुंचेगा क्योंकि धुएं का स्वभाव है नीचे से ऊपर जाना। मेरे शरीर से निकलने वाला धुंआ भी उड़कर आकाश में स्थित ईश्वर तक पहुंचेगा। उसे देखकर कदाचित् उस निष्ठुर, निर्मोही को भी मेरी करुण दशा पर दया आएगी और दया के वशीभूत हो वह करुणा की, प्रेम-जल की वर्षा करेगा। वह मेरी व्यथा से द्रवित हो मुझसे मिलने आएगा और इस प्रकार विरह-व्यथा उसी प्रकार दूर हो जाएगी। जिस प्रकार वर्षा के जल से पृथ्वी पर जलती हुई दावाग्नि शांत हो जाती है।

10. **यह तन जालौ मसि करौं, लिखौं राम का नाउं।**
लेखणिं करुं करंक की, लिखि लिखि राम पठाउं॥

शब्दार्थ – लेखनि – कलम। करंक – अस्थि, हड्डी। पठाउं – भेजूं।

व्याख्या – विरह की दारुण व्यथा सहती हुई विरहिणी कहती है – अब तो इच्छा होती है कि मैं इस शरीर को भस्म कर दूं। उसके जलने से जो राख बनेगी उससे मैं स्याही बनाऊंगी, अपने शरीर की हड्डियों की लेखनी बनाऊंगी। इस प्रकार स्याही तथा लेखनी मिलने पर मैं राम का नाम लिखती रहूंगी और राम नाम लिख-लिख कर अपने प्रिय के पास भेजती रहूंगी। कभी-न-कभी तो मेरे भेजे इस संदेश का उनके मन पर प्रभाव पड़ेगा और वह दयार्द्र होकर मेरी विरह-वेदना दूर करेंगे ही।

11. **इस तन का दीवा करौं, बाती मेलूं जीव।**
लोही सींची तेल ज्यूं, कब मुख देखों पीव॥

शब्दार्थ – दीवा – दीपक। जीव – प्राण। मेलूं – जलाऊं। लोही – रक्त, लहू। पीव – प्रियतम, परमात्मा।

प्रसंग – इन साखी में भी कबीर परमात्मा के विरह से संतप्त हो प्रियतम से मिलने की आतुरता व्यक्त करते हैं।

व्याख्या – मैं इस शरीर को दीप बनाने और उसमें विद्यमान चेतना को उस दीपक की बत्ती बनाने के लिए तैयार हूं। मैं उस दीपक में अपने शरीर के रक्त को तेल की तरह भर दूंगा। उसी से चेतना की बाती को सींचकर मैं इस दीपक को जलाए रखना चाहता हूं। मैं यह साधना तब तक करता रहूंगा जब तक प्रियतम के, परम ब्रह्म के दर्शन नहीं हो जाते।

12. **पीछे लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।**
आगै थैं सतगुरु मिल्या, दीपक दीया हाथि।
दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहुणां, बहुरि न आवौ हट्ट।
कबीर गुरु गरवा मिल्या, रलि गया आटे लूंण।
जाति-पांति-कुल सब मिटै, नांव धरोगे कौंण।

शब्दार्थ – पीछे लागा जाइ था – अंधा अनुकरण कर रहा था। लोक – संसार के लोग। वेद – वेद-शास्त्रों में लिखी गयी बातें। दीपक – ज्ञान का दीपक। अघट्ट – कभी क्षण न होने वाली, निरंतर जलने वाली। बिसाहुणां – बाजार में खरीद-फरोख्त। बहुरि – फिर, पुनः। हट्ट – बाजार, संसार। गरवा – गले से, प्रेमपूर्वक। रलि गया – मिल गया, एकाकार हो गया। लूंण – नमक। कौंण – कौन।

प्रसंग – इन साखियों में कबीर ने गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए उसके गुणों-ज्ञान, शिष्यों पर अनुग्रह, उनके प्रति स्नेह तथा शिष्य के प्रति उपकार का वर्णन किया है।

व्याख्या – संसार के लोग वेदशास्त्रों के मर्म को बिना समझे, उनमें लिखी बातों का अंधानुकरण कर रहे थे। इस अंधानुकरण के कारण वे पथभ्रष्ट होकर पतन के गहरे गड्ढे में गिर रहे थे, अपना इह लोक और परलोक बिगाड़ रहे थे। उसी समय सद्गुरु का आविर्भाव हुआ। उसने उन्हें अज्ञान, मोह, अंधविश्वास, रूढ़ियों के अंधकार से मुक्त होने के लिए उन्हें ज्ञान का दीपक दिया। इस दीपक के प्रकाश में उन्होंने सत्य को पहचाना और अपनी आत्मा का उद्धार कर लिया, उनका जीवन सफल हो गया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

गुरु के द्वारा दिए गए ज्ञान के दीपक में भक्ति का तेल था, ज्ञान की ऐसी बत्ती थी जो कभी क्षीण नहीं होती। इस ज्ञान के दीपक को पाकर शिष्य ने अपने कर्त्तव्यों का पालन किया, पुण्य कार्य किये, परोपकार किया, भगवान की भक्ति की। जिस प्रकार बाजार में जाकर खरीद-फरोख्त करने वाला सारा काम निपटाकर फिर बाजार नहीं जाता, जो कुछ करना होता है, एक बार में ही कर लेता है, उसी प्रकार गुरु की बताई हुई ज्ञान और भक्ति की राह पर चलकर शिष्य अपने करणीय कार्य कर संसार के बंधनों से मुक्त हो जाता है, आवागमन के चक्र से छूट जाता है और उसे पुन: जन्म नहीं लेना पड़ता।

गुरु इतना सहृदय, कृपालु एवं उदार था कि शिष्य को प्रणत देखकर उसने स्वयं आगे बढ़कर उसे प्रेमपूर्वक गले से लगा लिया। गुरु और शिष्य में भेद नहीं रह गया, वे एकाकार हो गये। जैसे आटा और नमक मिलकर एक हो जाते है, उसी प्रकार गुरु और शिष्य के भाव, विचार, व्यक्तित्व सब एकाकार हो गये, भेद मिट गया। जाति-पांति, ऊंच-नीच का भेद मिट गया। अब गुरु गुरु न रहा, शिष्य शिष्य न रहा। दोनों मिलकर एक हो गये।

विशेष -

1. वेद-शास्त्रों के अंधानुकरण का विरोध।

अन्यत्र भी लिखा है -

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ

पंडित भया न कोय

2. रूपक अलंकार-दीपक दीया.....हट्ट।

3. दृष्टांत अलंकार -पूरा किया.....हट्ट।

'. उपमा अलंकार-रलि गया आटे लूंण।

13. **हेरत हेरत रह्या कबीर हिराइ।**
बूंद समानी समंद में, सो कम हेरी जाइ।
हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
समंद समाना बूंद में, सो कत हेर्‌या जाइ।

शब्दार्थ - हेरत - देखना, खोजना। हिराइ - आश्चर्य चकित होना, विस्मय विमुग्ध होना। बूंद - जीवात्मा। समंद - परमात्मा।

प्रसंग - इन साखियों में कबीर जीवात्मा तथा परमात्का का संबंध बताते हैं। ब्रह्म ज्ञानियों के समान वह भी मानते हैं कि परमात्मा सागर के समान अनन्त, अपार शक्ति वाला है और जीवात्मा उसका एक अंशमात्र है। जीवात्मा परमात्मा से जन्म लेती है और साधना करने के बाद सिद्धावस्था में परमात्मा में ही लीन हो जाती है।

व्याख्या - कबीर कहते हैं : मैं परमात्मा को पाने के लिए, उसके दर्शन करने के लिए भटकता रहा, स्वयं को परम ब्रह्म से भिन्न मानकर उसकी खोज करता रहा, परन्तु ज्ञान होने पर मुझे पता चला कि जैसे सागर और उसके जल की बूंद अभिन्न हैं, उसी प्रकार परमात्मा और जीवात्मा अभिन्न हैं, जीवात्मा परमात्मा का ही अंश है, उसी से उसका जन्म होता है, और अंत में उसी में मिल जाता है। जिस प्रकार जीवात्मा परमात्मा का साक्षात्कार करने और उसमें लीने होने के लिए आतुर रहता है उसी प्रकार परमात्मा भी जीवात्मा एकाकार होने के लिए व्याकुल रहता है, यह ज्ञान प्राप्त कर मैं आश्चर्य-विमुग्ध हूं। जीवात्मा और परमात्मा में भेद करना मूर्खता है, अज्ञान है।

विशेष - 1. अनुप्रास अलंकार, 'ह' की आवृत्ति।

2. प्रतीकों का प्रयोग-सागर परमात्मा का तथा बूंद जीवात्मा का प्रतीक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. पहली साखी में जीव की प्रिय-मिलन की आतुरता का संकेत है तो दूसरी साखी में परमात्मा के जीव को अपनाने की आकुलता का संकेत है।

4. भक्तिमार्गी भी मानते हैं कि भगवान अपने भक्त से मिलने के लिए उतना ही व्याकुल रहता है जितना भक्त भगवान से मिलने के लिए।

5. तुलसी ने भी जीव को ब्रह्म का अंश बताया है।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी

6. जगन्नाथ रत्नाकर की गोपियां भी उद्धव के ज्ञान-मार्ग का विरोध करती हुई स्वयं को बूंद तथा कृष्ण को सागर बताती हैं -

जहयै बनविगरि न सागरता सागर की

बूंदता विलैहै बूंद बिबस विचारी की।

1. **यह जग अंधा मैं केहि समझावों**
   इक-दुई उन्हें समुझावों सब ही भुलाना पेट के धंधा।
   पानी के घोड़ा पथन असवरता ढरिक परै जस ओस के बुंदा।
   गहरी नदिया अगम बहै धरवा खेवनहारा पड़िगा फंदा।
   घर की वस्तु निकट नहिं आवत दियना बारि के ढूंढ़त अंधा।
   लागी आग सकल बग जरिगा बिनु गुरूग्यान भटकिया बंदा।
   कहै कबीर सुनो भाई साधो इक दिन जाय लंगोटी झार बंदा।

शब्दार्थ - जग- संसार में रहने वाले। अंधा - अज्ञानी। इक-दुई - एक-दो, थोड़े से लोग। पेट का धंधा - आजीविका कमाने के चक्कर में। असवरता - सवार, सवारी करने वाला। ढरिक - ढलक पड़ना, गिर पड़ना। अगम - अगम्य, बहुत गहरी। धरवा - धारा, जल धारा। खेवनहारा - पार लगाने वाला। फंदा - माया-मोह का जाल। दियना - दीपक। करि - जलाकर। जरिणा - भस्म हो गया, नष्ट हो गया। भटकिया - भटक रहा है, पथभ्रष्ट हो रहा है। बंदा - प्राणी। लंगोटी झार - सब कुछ छोड़-छाड़ कर।

प्रसंग - इस पद में कबीर ने संसार के प्राणियों में व्याप्त अज्ञान, मोह-माया पर खेद प्रकट करते हुए कहा है कि पंडित-पुजारी मुल्ला-मौलवी सब माया में लिप्त हैं, अपने अनुयायियों को पथभ्रष्ट कर रहे हैं। संसार अनश्वर है, जीवन भणभंगुर है, इस बात को न समझ कर वे स्वयं भी मोह में डूबे हुए है और उनके अनुयायी भी सच्चे ज्ञान के अभाव में भटक रहे है, अपना जीवन निरर्थक बना रहे हैं।

व्याख्या - कबीर कहते हैं - यह सारा जग ही मोह-माया में लिप्त है, सबके नेत्रों पर अज्ञान का पर्दा पड़ा है, अतः ये वास्तविकता को, सत्य को पहचानने में असमर्थ हैं। ईश्वर-भक्ति करने की बजाय पेट-भरने के लिए नाना प्रकार के धंधों में अपना समय, अपनी शक्ति नष्ट कर रहे हैं। सब धन, इन्द्रियासक्ति, सुख-सुविधाओं के पीछे दौड़ रहे हैं। दो-चार ऐसे अज्ञानी हों तो उन्हें समझाया भी जाए, पर यहां तो आवे का भावा ही खराब है, सबके सब पथभ्रष्ट हैं, कुमार्ग पर चल रहे हैं। अतः इस दुनिया को सही मार्ग पर चलाना असंभव हो गया है, ये माया-मोह में फंसे लोग मिथ्या बातों में उलझ रहे हैं; परन्तु जैसे पानी के घोड़े पर सवार व्यक्ति अपनी मंजिल पूरी नहीं कर सकता इसी प्रकार ये भी अपना जीवन-लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पायेंगे। इनकी स्थिति पत्ते पर चमकती हुई ओस की बूंद की तरह है जो कुछ क्षण ही बाद या तो सूख जाती है या ढुलक कर अपना अस्तित्व खो बैठती है। इस संसार को भवसागर कहा गया है। यह अगम्य है, इसे पार करना दुष्कर है, इसमें काम-क्रोध-लोभ-मोह आदि खतरनाक जलचर रहते हैं जो किसी भी समय नौका को डुबा कर उसमें बैठे प्राणियों को अपना भक्ष्य बना सकते हैं। इस भवसागर को पार कराने के लिए जो हमारे धर्माचार्य, धर्मगुरु खेवनहार बने हैं वे स्वयं अंधे है, अज्ञानी है, मोहमाया में लिप्त हैं। अतः वे नौका को पार कराने की बजाय मंझधार में ही डुबो देंगे। आश्चर्य यह है कि ईश्वर हमारे हृदय में ही निवास करता है, उसे हम अपनी साधना, भक्ति से अपने भीतर ही देख सकते हैं, पर ऐसा करने की बजाय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उसे जंगलों, पर्वतों में खोजते हैं। यह कार्य उतना ही मूर्खतापूर्ण है जितना नेलविहीन व्यक्ति का घर में रखी हुई वस्तु को न देख पाना और दीपक लेकर उसको घर से बाहर के स्थानों पर खोजते फिरना। मोह-माया, और अज्ञान की भीषण ज्वाला में सारा जग जलकर राख हो रहा है। बिना गुरु के ज्ञान के प्राणी भटक रहे हैं। उन्हें यह नहीं सूझ रहा है कि जीवन क्षणभंगुर है, संसार अनश्वर है, एक दिन मरना है और मरते समय सब कुछ यहीं छूट जाता है। खाली हाथ आया था, खाली हाथ जाना पड़ता है।

विशेष भाव-साम्य –

1. **पानी केरा बुदबुदा अस मानस की जात।**
   देखत ही छिप जाइगे ज्यों तारा परभात॥

2. **कस्तूरी कुंडलि बसै मृग ढूंढै बन मांहि**
   तैसे घट घट राम हैं, दुनिया देखत नाहि।

5.14 मूल पाठ

बलिहारी गुर आपणैं द्यौं हाड़ी कै बार।
जिनि मानिष तैं देवता, करत न लागी बार॥ 1॥

सतगुर की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार।
लोचन अनँत उघाड़िया, अनँत दिखावणहार॥ 2॥

राम नाम के पटदरे, देबे कौ कछु नाहिं।
क्या ले गुर संतोषिए, हौंस रही मन मांहि॥ 3॥

सतगुर के सदकै करूँ, दिल अपणी का साछ।
सतगुर हम स्यूँ लड़ि पड़या महकम मेरा पाछ॥ 4॥

सतगुर लई कमाँण करि, बाँहण लागा तीर।
एक जु बाह्या प्रीति सूँ, भीतरि रह्या सरीर॥ 5॥

सतगुर साँचा सूरिवाँ, सबद जू बाह्या एक।
लागत ही मैं मिली गया, पड़या कलेजै छेक॥ 6॥

पीछै लगा जाइ था, लोक वेद के साथि।
आगै थैं सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि॥ 7॥

दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहूणाँ, बहुरि न आँवौं हट्ट॥ 8॥

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवै पड़ंत।
कहै कबीर गुर ग्यान थैं, एक आध उबरंत॥ 9॥

कबीर कहता जात हूँ, सुणता है सब कोइ।
राम कहें भला होइगा, नहिं तर भला न होइ॥ 10॥

भगति भजन हरि नाँव है, दूरा दुक्ख अपार॥
मनसा बाचा क्रमनाँ, कबीर सुमिरण सार॥ 11॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल।
आदि अंति सब सोधिया, दूरा देखों काल॥ 12॥

मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहिं आहि।
अब मन रामहिं ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि॥ 13॥

कबीर सूता क्या करै, काहे न देखैं जागि।
जाका संग तैं बीछड़िया, ताही के संग लागि॥ 14॥

कबीर सूता क्या करै, गुण गोबिंद के गाइ।
तेरे सिर परि जम खड़ा, खरच कदे का खाइ॥ 15॥

रात्यूँ रूँनी बिरहनीं, ज्यूँ बंचौ कूँ कुंज।
कबीर अंतर प्रजल्या, प्रगट्या बिरहा पुंज॥ 16॥

अबंर कुँजाँ कुरलियाँ, गरिज भरे सब ताल।
जिनि थे गोबिंद बीछुटै, तिनके कौण हवाल॥ 17॥

चकवी बिछुटी रैणि की, आइ मिली परभाति।
जे जन बिछुटे राम सूँ, ते दिन मिले न राति॥ 18॥

बहुत दिनन की की जोवती, बाट तुम्हारी राम।
जिव तरसै तुझ मिल कूँ, मनि नाहीं विश्राम॥ 19॥

आइ न सकौ तुझ पै, कूँ न तूझ बुझाइ।
जियरा यौंही लेहुगे, बिरह तपाइ तपाइ॥ 20॥

यहु तन जालौं मसि करूँ, ज्यूँ धूवाँ जाइ सरग्गि।
मति वै राम दया करै, बरसि बुझावै अग्गि॥ 21॥

यहु तन जालै मसि करौं, लिखौं राम का नाऊँ।
लेखणिं करूँ करंक की, लिखि लिखि राम पठाऊँ॥ 22॥

जिहि सर मारी काल्हि, सो सर मेरे मन बस्या।
तिहि सरि अजहूँ मारि, सर बिन सच पाऊँ नहीं॥ 23॥

हिरदा भीतरि दौ बलै, धूंवां प्रगट न होइ।
जाके लागी सो लखे, के जिहि लाई सोइ॥ 24॥

समंदर लागी आगि, नदिया जलि कोइला भइ।
देखि कबीरा जागि, मंछी रूषां चढ़ि गई॥ 25॥

मन लागा उन मन सों, उन मन मनहि बिलग।
लूँण बिलगा पाणियाँ, पाँणीं लूँणा बिलग॥ 26॥

राम रसाइन प्रेम रस पीवत, अधिक रसाल।
कबीर पीवण दुलभ है, माँगे सीस कलाल॥ 27॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हरि रस पीया जाँणिये, जे कबहूँ न जाइ खुमार।
मैंमंता घूँमत रहै, नाँही तन की सार॥ 28॥

हेरत फेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
बूँद समानी समंद मैं, सो कत हेरी जाइ॥ 29॥

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
समंद समाना बूँद मैं, सो कत हेर्‌या जाइ॥ 30॥

सा एक जू राम की, दूजी आस निरास।
पाँणी माँहे घर करैं, ते भी मर पियास॥ 31॥

कबीर कुता राम का, मुतिया मेरा नाउं।
गलै राम की जेवड़ी, जित खैचे तित जाऊँ॥ 32॥

जिनके नौबति बाजती, मैंगल बंधते बारि।
एकै हरि के नाँव बिन, गए जन्म सब हारि॥ 33॥

ढोल दमामा दड़बड़ी, सहनाई संगि भेरि।
औसर चल्या बजाइ करि, है कोइ राखे फेरि॥ 34॥

कबीर कहा गरबियौ, इस जीवन की आस।
टेसू फूले दिवस चारि, खंखर भये पलास॥ 35॥

कबीर कहा गरबियो, ऊँचे देखि अवास।
काल्हि पर्‌यूँ भ्वै लेटणाँ, ऊपरि जामैं घास॥ 36॥

कबीर कहा गरबियो, काल गहै कर केस।
नां जाँणों कहाँ मारिसी, कै घरि कै परदेस॥ 37॥

यहु ऐसा संसार है जैसा सैबल फूल।
दिन दस के व्योहार को, झूठे रंगि न भूल॥ 38॥

हाड़ जलै ज्यूँ लाकड़ी, केस जलै ज्यूँ घास।
सब तन जलता देखि करि, भया कबीर उदास॥ 39॥

कबीर मंदिर ढहि पड़या, सेंट भई सैबार।
कोई चेजारा चिणि गया, मिल्या न दूजी बार॥ 40॥

मन कै मते न चालिये, छाड़ि जीव की बाँणि।
ताकू केरे सुत ज्यूँ, उलटि अपूठा आँणि॥ 41॥

चिंता चिति निबारिए, फिर बूझिए न कोइ।
इंद्री पसर मिटाइए, सहजि मिलेगा सोइ॥ 42॥

मन गोरख मन गोबिंदो, मन हीं औघड़ होइ।
जे मन राखै जतन करि, तौ आपै करता सोइ॥ 43॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कबीर माया मोहनी, जब जग घाल्या घाँणि।
कोइ एक जन ऊबरै, जिनि तोड़ी कुल की काँणि॥ 44॥

बिलसी अरु लातौं छड़ी, सुमरि सुमरि जगदीस। ॥ 45॥

माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया सरीर
आसा त्रिस्नां ना मुई, यों कहि गया कबीर॥ 46॥

आसा जीवै जग मरै, लोग मेर मरि जाइ।
सोइ मूबे धन संचते, सो उबरे जे खाइ॥ 47॥

कबीर सो धन संचिए, जो आगैं कूँ होइ।
सीस चढ़ाए पोटी, ले जात न देख्या कोइ॥ 48॥

नारी सेती नेह, बुधि बिबेक सबही हरै।
काँइ गमावै देह, कारिज कोई नाँ सरै॥ 49॥

एक कनक अरु काँनी, विष फल कीएउ पाइ।
देखै ही थे बिष चढ़े, खाये सूँ मरि जाइ॥ 50॥

कबीर दुनियाँ देहुरै, सीस नवाँवण जाइ।
हिरदा भीतर हरि बसै, तूँ ताही सौ ल्यौ लाइ॥ 51॥

कबीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि।
मन न फिरावै आपणों, कहा फिरावै मोहि॥ 52॥

केसौं कहा बिगाड़िया, जे मूड़े सौ बार।
मन कौं न काहे मूड़िए, जामैं बिषै विकार॥ 53॥

मूँड़ मुँड़ावत दिन गए, अजहूँ न मिलिया राम।
राँम नाम कहु क्या करैं, जे मन के औरे काँम॥ 54॥

तन कौं जोगी सब करैं, मन कों बिरला कोइ।
सब सिधि सहजै पाइए, जे मन जोगी होइ॥ 55॥

मूरिष संग न कीजिए, लोहा जलि न तिराइ।
कदली सीप भवंग मुषी, एक बूँत तिहुँ भाइ॥ 56॥

ऊँचे कुल क्या जनमियां, जो करणीं ऊंच न होइ।
सोवन कलस सुरे भर्या, साधूँ निंद्या सोइ॥ 57॥

कबीर संगति साध की, कदे न निरफल होइ।
चंदन होसी बाँवना, नीब न कहसी कोइ॥ 58॥

कबीर संगति साध की, बेगि करीजैं जाइ।
दुरमति दूरि गँवाइसी, देसी सुमति बताइ॥ 59॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिला हिं।
अंक भरे भरि भेटि,ा पाप सरीरौ जाँहिं॥ 60॥

कबीर चंदन का बिड़ा, बैठ्या आक पाल।
आप सरीखे करि लिए जे होत उन पास॥ 61॥

संत न छाड़ै संतई, जे कोटि मिलै अंसत।
चंदन भुवंगा बैठिया, तऊ सीतलता न तजंत॥ 62॥

कबीर हरि का भाँवता, दूरैं थैं दीसंत।
तन षीणा मन उनमनाँ, जग रूढ़ा फिरंत॥ 63॥

स्वारथ को सबको सगा, सब सगलाही जाँणि।
बिन स्वारथ आदर करैं, सो हरि की प्रीति पिछाँणि॥ 64॥

हिंदू मूये राम कहि, मुसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता, दुइ मैं कदे न जाइ॥ 65॥

दुखिया मुवा दुख कों, सुखिया सुख कौं झूरि।
सदा आनंदी राम के, जिनि सुख दुख मेल्हे दूरि॥ 66॥

कबीर औगुँण ना गहैं, गुँण ही कौ ले बीनि।
घट घट महु के माधुप ज्यूँ, पर आत्म ले चीन्हि॥ 67॥

ऐसी बाँणी बोलिये, मन का आपा खोइ।
अपना तन सीतल करै, औरन कौं सुख होई॥ 68॥

संत न बाँधै गाँठड़ी, पेट समाता लेइ।
सांई सूं सनमुख रहै, जहाँ माँगे तहाँ देइ॥ 69॥

माँगण मरण समान है, बिरला बंचै कोइ।
कहै कबीर रघुनाथ सूँ, मतिर मँगावै मोहि॥ 70॥

जाकी दिल मे हरि बसै, सो नर कलपै काँइ।
एक लहरि समंद की, दुख दलिद्र सब जाँइ॥ 71॥

जाकै मह माथा नहीं, नहीं रूपक रूप।
पुहुप बास थैं पतला ऐसा तत अनूप॥ 72॥

सात समंद की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ।
धरीत सब कागद करौं, तऊ हरि गुण लिख्या न जाइ॥ 73॥

कबीर सबद सरीर मैं, बिनि गुण बाजै तंति।
बाहरि भीतरि भरि रह्या, ताथैं छूटि भरंति॥ 74॥

हम घर जाल्या आपणाँ, लिया मुराड़ा हाथि।
अब घर जालौं तास का, जै चलै हमारे साथि॥ 75॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कमोदनी जलहरि बसै, चंदा बसै अकासि।
जो जाही का भावता, सो ताही कै पास॥ 76॥

कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नांहि।
सीस उतारै हाथि करि, सो पैसे घर माँहि॥ 77॥

कबीर निज घर पेम का, मारग अगम अगाध।
सीर उतारि पग तलि धरै, तब निकटि प्रेम का स्वाद॥ 78॥

प्रेम न खेती नींपजे, प्रेम न हाटि बिकाइ।
राजा परजा जिस रुचै, सिर दे सो ले जाइ॥ 79॥

भगति दुहेली राँम की, नहिं जैसि खाड़े की धार।
जे डोलै तो कटि पड़े, नहीं तो उतरै पार॥ 80॥

सिर माटै हरि सेविए, छाड़ि जीव की बाँणि।
जे सिर दीया हरि मिलै, तब लगि हाँणि न जाणि॥ 81॥

सब जग सूता नींद भरि, संत न आवै नींद।
काल खड़ा सिर उपरे, ज्यूँ तोरणि आया बींद॥ 82॥

आज कहै हरि काल्हि भजौगा, काल्हि कहे फिरि काल्हि।
आज ही काल्हि करतंडाँ, औसर जासि चालि॥ 83॥

कबीर पल की सुधि नहीं, करै काल्हि का साज।
काल अच्यंता झड़पसी, ज्यूँ तीतर को बाज॥ 84॥

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूढै बन माँहि।
ऐसै घटि घटि राँम हैं, दुनियाँ देखै नाँहि॥ 85॥

निंदक नेड़ा राखिये, आँगणि कुटि बंधाइ।
बिन साबण पाँणी बिना निरमल करै सुभाइ॥ 86॥

न्यंदक दूरि न कीजिये, दीजै आदर माँन।
निरमल तन मन सब करै, बकि बकि आँनहिं आँन॥ 87॥

कहि कबीर कठोर कै, सबद न लागै सार।
सुधबुध कै हिरदै भिदै, उपजि विवेक विचार॥ 88॥

ऊँचा कूल के कारणै, बंस बध्या अधिकार।
चंदन बास भेदै नहीं, जाल्या सब परिवार॥ 89॥

करता करै बहुत गुण, औगुँण कोई नांडि:
जे दिल खाजौ आपणीं, तो सब औगुण मुझ माँहि॥ 90॥

ग्यान प्रकास्या गुर मिल्या, सो जिनि बीसरि जाइ।
जब गोबिंद कृपा करी, तब गुर मिनिलया आइ॥ 91॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जाका गुर भी अंधला, चेला खरा निरंध।
अंधा अंधा ठेलिया, दून्यूँ कूप पड़ंत॥ 92॥

कबीर सतगुर नाँ मिल्या, रही अधूरी सीप।
स्वांग जती का पहरि करि, घरि घरि माँगे भीष ॥ 93॥

सतगुरु साँचा सूरिवाँ, तातै लोहिं लुहार।
कसणो दे कंचन किया, ताई लिया ततसार॥ 94॥

कबीर प्रेम न चाषिया, चषि न लीया साव।
सूने घर का पाहुणाँ, ज्यूँ आया त्यूँ जाव॥ 95॥

जिहि हरि जैसा जाणियाँ, तिन कूँ तैसा लाभ।
ओसों प्यास न भाजई, तब लग धसै न आभ॥ 96॥

कबीर आपण राम कहि, औरां राम कहाइ।
जिहि मुखि राम न ऊचरे, तिहि मुख फेरि कहाइ॥ 97॥

लूटि सकै तो लूटियो, राम नाम भण्डार।
काल कंठ तै गहैगा, रूंधे दसूँ दुवार॥ 98॥

लंबा मारग दूरि घर, विगट पंथ बहु भार॥
कहौ संतो क्यूँ पाइये, दुर्लभ हरिदीदार॥ 99॥

केसो कहि कहि कूकिये, नाँ सोइयै असरार।
राति दिवस के कूकणौ, (मत) ऊबहूँ लगै पुकार॥ 100॥

पद्य

दुलहनी गावहु मंगलचार,
हम घरि आए हो राजा राम भरतार ॥टेक॥
तन रत करि मैं मन रत करिहूँ, पंचतत्त बराती।
रामदेव मोरें पाँहुने आये मैं जोबन मैं माती॥
सरीर सरोवर बेदी करिहूँ, ब्रह्मा वेद उपचार।
रामदेव सँगि भाँवरी लैहूँ, धंनि धंनि भाग हमार॥
सुर तेतीसूँ कौतिग आये, मुनिवर सहस अठ्यासी।
कहै कबीर हँन ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी॥ 1॥

बहुत दिनन थैं मैं प्रीतम पाये, भाग बड़े घरि बैठे आये। टेक॥
मंगलाचार माँहि मन राखौं, राम रसाँइण रमना चाषौं।
मंदिर माँहि मन राखौं, राम रसाँइण रमना चाषौं।
मंदिर माँहि भयो उजियारा, ले सुतो अपनी पीव पियारा॥
मैं रनि राती जे निधि पाई, हमहिं कहाँ यह तुमहि बड़ाई।
कहै कबीर मैं कछु न कीन्हा सखी सुहाग मोहि दीन्हा॥ 2॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अब तोहि जान न देहुं राम पियारे, ज्यूँ भावै त्यूँ होहु हमारे ।टेक ॥
बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाये, भाग बढ़े घरि बैठे आय ॥
चरननि लागि करौं बरियायी, प्रेम प्रीति राखौं उरझाई ।
इत मन मन्दिर रहौ नित चौषे, कहै कबीर करहु मति घोषैं ॥ 3 ॥

गोकल नाइक बीठुला, मेरौ मन लागौ तोहि रे ।
बहुतक दिन बिछुरै भये, तेरी औसेरि आवै मोहि रे ॥ टेक ॥
करम कोटि कौ ग्रह रच्यो रे, नेह कये की आस रे ॥
आपहिं आप बँधाइया, द्वै लोचर मरहिं पिया रे ॥
आपा पर संमि चीन्हिये, दीसैं सरब समान ।
इहि पद नरहरि भेटिये, तूँ छाड़ि कपट अभिमान रे ॥
नाँ कलहूँ चलि जाइये नाँ सिर लीजै भार ।
रसनाँ रसहिं बिचारिये, सारँग श्रीरँग धार रे ॥
साधै सिधि ऐसी पाइये, किंवा होइ महोइ ।
जे दिठ ग्यान न ऊपजै, तौ आहुटि रहै जिनि कोइ रे ॥
एक जुगति एकै मिलैं किंबा जोग कि भोग ।
इन दून्यूँ फल पाइये, राम नाँम सिधि जोग रे ॥
प्रेम भगति ऐसी कीजिये, मुखि अंमृत अरिषै चंद रे ।
आपही आप बिचारिये, तब कंता होइ अनंद रे ॥
तुम्ह जिनि जानौं गीत है, यहू निज ब्रह्म विचार ।
केवल कहि समझाइया, आतम साधन सार रे ।
चरम कँवल चित लाइये, राम नाम गुन गाइ ।
कहै कबीर मंसा नहीं, भगति मुकति गति पाइ रे ॥ 4 ॥

नरहरि सहजै ही जिनि जाना ।
गत फल फूल तत तर पलव, अंगूर बीज नसाँनाँ ॥ टेक ॥
प्रकट प्रकास ग्यान गुरगमि थैं, ब्रह्म अगनि प्रजारी ।
ससि हरि सूर दूर दूरंतर, लागी जोग जुग तारी ॥
उलटे पवन चक्र षट बेधा, मेर डंड सरपूरा ।
गगन गरजि मन सुंनि समाना, बाजे अनमहद तूरा ॥
सुमीत सरीर कबीर बिचारि , त्रिकुटी संगम स्वामी ।
पद आनंद काल थैं छूटै, सुख मैं सुरति समाँनी ॥ 5 ॥

मन रे मन ही उलटि समाँना ।
गुर प्रसादि अकलि भई तोकौं नहीं तर था बेगाँना ॥ टेक ॥
नेड़ै थे दूरि दूर थैं नियरा, जिनि जैसा करि जाना ।
औ लौ ठीका चढ़ूया बलीडै, जिनि पीया नितं माना ॥
उलटे पवन चक्र षट बेधा, सुन सुरति लै लागी ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अमर न मरै मरै नहीं जीवै, ताहि खोजि बैरागी ॥
अनभै कथा कवन सी कहिये, है कोई चतुर बिबेकी।
कहै कबीर गुर दिया पलीता, सौ झल बिरलै देखी ॥ 6 ॥

इति तत राम जपहु रे प्राँनी, बुझौ अकथ कहाँणी।
हीर का भाव होइ जा ऊपरि जाग्रत रैनि बिहानी ॥ टेक ॥
डाँइन डारै, सुनहाँ डोरै स्यंध रहै बन घेरै।
पंच कुटुंब मिलि झुझन लागे, बाजत सबद सँघेरै ॥
रोहै मृग ससा बन घेरे, पारधी बाँण न मेलै।
सायर जलै सकल बन दाझै, मंछ अहेरा खेलै ॥
सोई पंडित तो तत ज्ञाता, जो इहि पदहि बिचारै।
कहै कबीर सोई गुर मेरा, आप तीरै मोहि तारै ॥ 7 ॥

हरि के षारे बड़े पकाये, जिनि जारे तिनि पाये।
ग्यान अचेत फिरै नर लोई, ता जनमि जनमि डहकाए ॥ टेक ॥
धौल मँदलिया बैल रबाबी, बऊवा ताल बजावै।
पहरि चोलना आदम नाचै, भैसाँ निरति कहावै ॥
स्यंध बैठा पान कतरै, घूँस गिलौरा लावै।
ऊँदरी बपुरी मंगल गावै, कछु एक आनंद सुनावै ॥
कहै कबीर सुनहु रे संदौ, गडरी परबत खावा ॥
चकवा बैसि अँगारे निगलै, समंद अकासा धावा ॥ 8 ॥

अब मोहि ले चलि नणद के बीर, अपनै देसा।
इन पंचनि मिलि लूटी हूँ, कुसंग आहि बदेसा ॥ टेक ॥
गंग तीर मोरी खेती बारी, जमुन तीर खरिहानाँ।
सातौं बिरही मेरे निपजै, पंचूँ मोर किसानाँ ॥
कहै कबीर यह अकथ कथा है, कहताँ कही न जाई।
सहज भाई जिहिं ऊपजै, ते रमि रहै समाई ॥ 9 ॥

कासूँ कहिये सुनि रामा, तेरा मरम न जानै कोई जी।
दास बबेकी सब भले परि भेद न छानाँ होई जी ॥ टेक ॥
ए सकल ब्रह्मण्ड तैं पूरिया, अरू दूजा महि थान जी।
राम रसाइन रसिक है, अद्‌भुत गति बिस्तारजी ॥
भ्रम निसा जो गत करे, ताहि सूझै संसारजी ॥
सिव सनकादिक नारदा, ब्रह्मा लिया निज बास जी।
कहै कबीर पद पंक.यजा, अष नेड़ा चरण निवासीज ॥ 10 ॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मोकों कहां ढूढ़े बन्दे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में।
ना तो कौने क्रिया-कर्म में, नहीं योग वैराग में।
खोजी होय तो तुरतै मिलिहों, पल भर की तालास में।
कहैं कबीर सुना भई साधो, सब स्वांसों की स्वाँस में॥ 11॥

संतो, सहज समाधि भली।
सांईते मिलन भयो जा दिनतें सुरत न अन्त चली॥
आंख न मूंदूं कान न रुंधूं, काया कष्ट न धारू।
खुलै नैन मैं हंस हंस देखूं, सुन्दर रूप निहारूं॥
कहूं सो नाम सुनूं सो सुमिरन, जो कुछ करूं सो पूजा॥ 12॥

मन ना रंगाय रंगाये जोगी कपरा
आसन मारि मंदिर में बैठे
ब्रह्म-छांड़ि पूजन लागे पथरा॥
कनवा फड़ाय जटवा बढ़ौले।
दाढ़ी बढ़ाय जोगी होई गैले बकरा।
जंगल जाय जोगी धुनिया रमौले
काम जराय जोगी होय गैले हिजरा॥
मधवा मुंडाय जोगी कपड़ा रंगीले,
गीता बांच के होय गैले लगरा।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो,
जम दरवाजा बांधत जैबे पकड़ा॥ 13॥

अवधू मेरा मन मतिवारा।
उन्मुनि चढ़ा गगन-सा पीवै, त्रिभुवन भया उजियारा।
गुड़ करि ज्ञान ध्यान करि महुवा, भव-भाठी करि भारा।
सुषमन-नारी सहज समानीं, पीवै पीवनहारा।
दोई पुड़ जोडि चिगाई, भाठी चुआ महारस भारी।
काम-क्रोध-दुइ किया पलीता, छुटि गई संसारी।
मुनि मंडल में मूंदला बाजै, तहं मेरा मन नीचै।
गुरुप्रसाद अमत फल पाया, सहजि सुषमंना काछै।
पूरा मिल्या तबै सुख उपज्यो तप की तपनि बुझानी।
कहै कबीर भवबंधन छुटै, जोतिहि जोति समानी॥ 14॥

माया महा ठगिनि हम जानी
तिरगुन फांसि लिये कर डोलै, बोलै माधुरी बानी।
केशव के कमला होइ बैठी, सिव के भवन भवानी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पड़ा के मूरत होय बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा होइ बैठी, काहू के कोड़ी कानी॥
भक्तन के भक्तिन होइ बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो यह सब अकथ कहानी॥ 15॥

अरे, इन दोहुन राह न पाई।
हिन्द अपनी करे कड़ाई गागर छुवन न देई।
वेस्या के पाइन-तर सोवै यह देखो हिंदआई।
मुसलमान के पीर-ओलिया मुर्गी मुर्गा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहैं धरहि मैं करै सगाई।
बाहर से इक मुर्दा लाये धोय-धाय चढ़वाई।
सब सखियां मिलि जेंवन बैठी घर-भर करै बड़ाई।
हिंदुन की हिंदवाई देखी तुरकन की तुरकाई।
कहै कबीर सुनो भाई साधो कौन है जाई॥ 16॥

हेरत हेरत रह्या कबीर हिराइ।
बूंद समानी समंद में, सो कम हेरी जाइ।
हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
समंद समाना बूंद में, सो कत हेर्‌या जाइ॥ 17॥

यह जग अंधा मैं केहि समझावों
इक-दुई उन्हें समुझावों सब ही भुलाना पेट के धंधा।
पानी के घोड़ा पथन असवरता ढरिक परै जस ओस के बुंदा।
गहरी नदिया अगम बहै धरवा खेवनहारा पड़िगा फंदा।
घर की वस्तु निकट नहिं आवत दियना बारि के ढूंढ़त अंधा।
लागी आग सकल बग जरिगा बिनु गुरूग्यान भटकिया बंदा।
कहै कबीर सुनो भाई साधो इक दिन जाय लंगोटी झार बंदा॥ 18॥

हिंडोलनाँ तहाँ झूलैं आतम राम।
प्रेम भगति हिंडोलना, सब संतन कौ विश्राम॥ टेक॥
चंद सूर दोइ खंभवा, बंक नालि की डोरि।
झूलें पंच पियारियाँ, तहाँ झूले जीय मोर॥
द्वादस गम के अंतरा, तहाँ अमृत कौ ग्रास।
जिनि यह अमृत चाषिया, सो ठाकुर हम दास॥
सहस सुँनि कौ नेहरौ गगन मंडल सिरिमौर।
दोऊ कुल हम आगरी, जो हम झूलै हिंडोल॥
अरध उरध की गंगा जमुना, मूल कवल कौ घाट।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

षट चक्र की गागरी, त्रिवेणीं संगम बाट।
नाद ब्यंद की नावरी, राम नाम कनिहार।
कहै कबीर गुण लाइ ले, गुर गौंमि उतरौ बार॥ 19॥

तननाँ बुनना तज्या कबीर, राम नाम लिखि लिया शरीर। टेक॥
जब लग भरौं नली का बेह, तब लग टूटै राम सनेह॥
ठाड़ी रोवै कबीर की माइ, ए लरिका क्यूँ जीवै खुदाइ।
कहै कबीर सुनहुँ री माई, पूरणहारा त्रिभुवन राइ॥ 20॥

चलन चलन सब को कहत है, नाँ जाँनौं बैंकुंठ कहाँ है। टेक॥
जोजन एक प्रमिति नहिं जानै, बातन ही बैकुंठ बषानै।
जब लग है बैकुंठ की आसा, तब लग नाहीं हरि चरन निवासा॥
कहें सुनें कैसें पतिअइये, जब लग तहाँ आप नहीं जइये।
कहैं कबीर बहु कहिये काहि, साथ संगति बैकुंठहि आहि॥ 21॥

कैसे होइगा मिलावा हरि सनाँ, रे तू विषै विकार न तजि मनाँ॥ टेक॥
रे तौ जोग जुगति जान्याँ नहीं तैं गुर का सबद मान्याँ नाहीं।
गंदी देही देखि न फूलिये, संसार देखि न भूलिये॥
कहै कबीर राम मम बहु गुँनी, हरि भगति बिनाँ दुख फुनफुनी॥ 22॥
कासूँ कहिये सुनि रामा, तेरा मरम न जानै कोई जी।
दास बबेकी सब भले परि भेद न छानाँ होई जी॥ टेक॥
ए सकल ब्रह्मण्ड तैं पूरिया, अरु दूजा महि थान जी।
राम रसाइन रसिक है, अद्भुत गति बिस्तारजी।
भ्रम निसा जो गत करै, तोहि सूझै संसार जी॥
सिव सनकादिक नारदा, ब्रह्म लिया निज बास जी।
कहै कबीर पद पंक्यजा, अष नेड़ा चरण निवास जी॥ 23॥

हम न मरैं मरिहैं संसारा, हँर कूँ मिल्या जियवनहारा॥ टेक॥
अब न मरौं मरनै मन माँना, ते मूए जिनि राम न जाँना।
साकत मरै संत जन जीवै, भरि भरि राम रसाइन पीवै॥
हरि मरिहैं तौ हमहूँ मरिहैं, हरि न मरै हँम काहे कूँ मरिहैं।
कहै कबीर मन मनहि मिलावा, अमर भये सुख सागर पावा॥ 24॥

जे को मरै मनर है मीठा, गुरु प्रसादि जिनहीं मरि दीठा॥ टेक॥
मुवा करता मुई ज करनी, मुई नारि सुरति बहु धरनी।
मूवा आपा मूवा माँन, परपंच लेइ मूवा अभिमाँन॥
राम रमे रमि जे जन मूवा, कहै कबीर अविनासी हुआ॥ 25॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.15 सारांश

इस इकाई को पढ़कर आपने कबीर के जीवन एवं व्यक्तित्व के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त की। उनके दार्शनिक, आध्यात्मिक, सामाजिक चेतना के बारे में जाना।

5.16. महत्त्वपूर्ण प्रश्न

1. कबीर के युग की परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हुए बताइये कि क्या उनके काव्य को उनके युग का दर्पण कहा जा सकता है ?
2. निर्गुण काव्य-धारा के आध्यात्मिक विचारों तथा सामाजिक चेतना के आलोक में कबीर के काव्य की परख कीजिए।
3. कबीर के दार्शनिक सिद्धान्तों का परिचय दीजिए।
4. कबीर की भक्ति भावना पर प्रकाश डालिए।
5. रहस्यवाद और रहस्यवादी कविता की विशेषताएं बताते हुए कबीर तथा जायसी के रहस्यवादी काव्य की तुलना कीजिए।
6. कबीर स्वभाव से संत, प्रकृति से उपदेशक तथा ठोंक-पीट कर कवि हो गये थे। इस कथन पर विचार कीजिए।
7. कबीर को क्रांतिकारी लोक-कवि कहा गया है। इस कथन की समीक्षा कीजिए।

वस्तुनिष्ठ/अतिलघुत्तरीय प्रश्न

1. कबीर स्वभाव से कैसे थे ?
2. कबीर की रचनाएँ कितने रूप में मिलती है ?
3. कबीर के समय की राजनैतिक परिस्थितियाँ कैसी थी ?
4. कबीर के क्रांतिकारी रूप के पीछे क्या कारण थे ?
5. क्या कबीर धार्मिक प्रवृत्ति के थे ?
6. कबीर का ज्ञान किस प्रकार का था ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग-5

इकाई-06

मल्लिक मुहम्मद जायसी

संरचना

6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रेमाख्यान काव्य-परम्परा में पद्मावत का स्थान

6.3 पद्मावत की प्रेम पद्धति

6.4 पद्मावत का रूपक तत्त्व

6.5 पद्मावत में अन्योक्ति एवं समासोक्ति का समन्वय

6.6 जायसी का रहस्यवाद सैद्धान्तिक न होकर भावात्मक है

6.7 क्या पद्मावत महाकाव्य है ?

6.8 पद्मावत में प्रकृति-चित्रण

6.9 पद्मावत की काव्य-कला

6.10 पद्मावत में भारतीय तथा अभारतीय तत्त्वों का मनोरम समन्वय हुआ है।

6.11 पद्मावत का प्रबन्ध-कौशल

6.12 पद्मावत में लोक परम्परा और लोक जीवन

6.13 महत्त्वपूर्ण अंशों की सप्रसंग व्याख्या

6.14 मूल पाठ

6.15 सारांश

6.16 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

6.0 प्रस्तावना

जायसी का पूरा नाम मल्लिक मुहम्मद जायसी है। जायसी सूफी कवि है। जायसी निर्गुण प्रेम मार्गी धारा के सबसे प्रसिद्ध सूफी कवि एवं संत हुए हैं। इनकी शैली फारसी मसनवी शैली है। जायसी के पद्मावत की सारी कथा का आधार प्रेम और सौन्दर्य है। जिसके आश्रय से कवि ने अपने विचारों तथा सूफी सिद्धान्तों को वाणी दी है। सूफी मत में परमात्मा की कल्पना नारी के रूप में हुई है। और आत्मा पुरुष रूप है। आत्मा (पुरुष) परमात्मा (नारी) की प्राप्ति के लिए सदैव तत्पर रहता है और निरन्तर प्रयासरत रहता है। उसके जीवन का ध्येय परमात्मा प्राप्ति ही रहता है। निर्गुण ज्ञानमार्गी कवियों की भांति इस धारा के कवियों ने भी गुरु के महत्त्व को स्वीकार किया है। पद्मावत की रचना इसी भावना के आधार पर हुई है।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य निर्गुण भक्ति के प्रेममार्गी धारा की विस्तृत जानकारी देना है।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे—

- निर्गुण ज्ञान मार्गी धारा क्या है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- सूफी संत कौन थे, कहाँ से आये थे ?
- जायसी के पद्मावत पर विस्तृत पाठ की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- सूफी विचार-पद्धति एवं जायसी के बारे में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

6.2 प्रेमाख्यान काव्य-परम्परा में पद्मावत का स्थान

भारतीय कविता में प्रेम को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। भौतिक जीवन ही नहीं, बल्कि आध्यात्मिक क्षेत्र में भी प्रेम को विशेष स्थान दिया गया है। भक्ति के क्षेत्र में मधुरा भक्ति इसका सबसे सुंदर उदाहरण है। सूफी कवियों की साधना का आधार ही प्रेम या रति है। उन्होंने मजाजी प्रेम को हकीकी प्रेम में बदल दिया। किन्तु हिन्दी साहित्य में प्रेम के इस नए रूप से पहले जिस विशुद्ध लौकिक प्रेम की प्रतिष्ठा की गई वह अत्यंत उदात्त है। चाहे दुष्यंत-शकुंतला का प्रेम हो, चाहे नल-दमयन्ती का, उषा-अनिरुद्ध का प्रेम हो चाहे माधवानल-कामकंदला का-सभी में प्रेम का सरस, किन्तु प्रांजल रूप देखने को मिलता है। संस्कृत में कालिदास से लेकर प्राकृत के पादलिप्त सूरी और अपभ्रंश के धनपाल तथा अद्दहमाण (अब्दुर्रहमान) तक अनेक कवियों ने विशुद्ध प्रेमकथाएं लिखीं और प्रेम को अमरता प्रदान की। यह अलग बात है कि प्राकृत की प्रेम-कथाएं जैनियों द्वारा धर्म-प्रचार के लिए लिखी गई। वे प्रेमाख्यान की अपेक्षा चरित काव्य अधिक हैं। लेकिन यहां यह बताना जरूरी है कि हिन्दी के सूफी कवियों ने अपने पूर्व के इन्हीं प्रेमपरक काव्यों के आधार पर अपने प्रेमाख्यानक ग्रंथों की रचना की। अपवाद को छोड़ दिया जाए तो सूफी और असूफी प्रेमाख्यान इन्हीं प्रेम कथाओं को लेकर या कुछ भारतीय लोककथाओं को लेकर लिखे गए। सूफी प्रेमाख्यान से पहले के कुछ प्रसिद्ध प्रेमपरक काव्य इस प्रकार हैं - अभिज्ञान शाकुंतलम् (कालिदास), नैषधीय चरितम् (श्रीहर्ष), माधवानल कामकंदला चरित (कुशलाभ), तरंगवई (पादलिप्त सूरी), लीलावई (कोऊहल), मलय सुंदरी (अज्ञात), भविसयत्तकहा (धनपाल), णायकुमार चरिउ (पुष्प दंत), सुदंसण चरिउ (नयनंदी), करकंडु चरिउ (मुनि कनकामर), उपमसिरी चरिउ (धाहिल), संदेशरासक (अद्दहमाण), नेमिनाथ चउपई (विनयचंद्र सूरि) आदि।

सूफी मत के उद्भव और विकसित होकर एक पुष्ट सम्प्रदाय का रूप ले लेने के बाद उसमें अनेक मसनवियां लिखी गई। इन मसनवियों को प्रेमाख्यान कहा जाता है। ये मसनवियां अरब-फारस की प्रसिद्ध लोककथाओं पर आधारित थीं। इन्हीं कथाओं में से कुछ कथाओं में निजामी ने सूफी दर्शन को समाहित किया। अमीर खुसरो पर निज़ामी का बहुत प्रभाव था। उनसे प्रभावित होकर खुसरो ने पांच मसनवियां लिखीं। इसी तरह फारसी के सूफी कवि जामी ने निज़ामी और खुसरो से प्रभावित होकर पांच मसनवियों की रचना की। इस तरह यह साफ पता चलता है कि हिन्दी के सूफी प्रेमख्यान फारसी मसनवियों से प्रेरित होकर लिखे गए।

फारसी की सभी मसनवियां वहां प्रचलित प्रेम-कथाओं के आधार पर लिखी गई और उनके द्वारा सूफी मत का प्रतिपादन किया गया। फारसी के सभी सूफी कवियों ने विशुद्ध प्रेम पर बल देते हुए स्त्री-पुरुष के प्रेम को ईश्वरीय प्रेम की तरह पवित्र माना। मौ. रूम ने लौकिक प्रेम को नश्वर मानते हुए अलौकिक प्रेम की बात की। इस तरह उन्होंने प्रेम को अमरत्व प्रदान किया। इसी तरह फारसी के प्राय: सभी सूफी कवियों ने प्रेम की अमरता, जीवन की नश्वरता त्याग, आत्मसमर्पण आदि पर जोर दिया। प्रेम साधना में वासना को निषिद्ध माना गया अर्थात् उनका प्रेम अशरीरी था।

फारसी के सूफी प्रेमाख्यानों ने नायक के प्रेम में अधिक तड़प और वेग दिखाई पड़ता है। नायिका का विवाह प्रेमी से न होकर अन्य व्यक्ति से होता है। प्रेमी का जीवन अत्यंत कष्टप्रद और आदर्शवादी होता है। फारसी के सूफी प्रेमाख्यानों में संभोग का चित्रण नहीं किया गया है, लेकिन कहीं-कहीं उनमें भी मांसल प्रेम दिखाई पड़ता है।

प्रेमाख्यान का शाब्दिक अर्थ है - प्रेम का आख्यान अथवा प्रेम-कथा, परन्तु हिन्दी साहित्य में इस शब्द का प्रयोग साधारणत: सूफी कवियों द्वारा रचित उन काव्यों के लिए हुआ है जिनमें उन्होंने किसी लोक-प्रचलित प्रेम-कथा का आधार बनाकर अपने धार्मिक सिद्धांतों का प्रतिपादन और प्रचार किया है। संत-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान डॉ. परशुराम चतुर्वेदी ने प्रेमाख्यानक काव्यों की परम्परा का बीज ऋग्वेद के यम-यमी संवाद में खोजा है और डॉ. हरिकांत श्रीवास्तव ने हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यों को शुद्ध भारतीय परम्परा से संबद्ध माना है, ''वास्तव में इस धारा को शुद्ध भारतीय प्रेमाख्यान काव्यों की परम्परा कहना ही समीचीन है।' हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यों का मूल उत्स आचार्य शुक्ल भी हिन्दुओं में प्रचलित लोक-कथाओं को ही मानते हैं, यद्यपि उनके विकास में अरबी-फारसी के प्रेमाख्यानक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

काव्यों का ऋण भी वह स्वीकार करते हैं, 'हमारा अनुमान है कि सूफी कवियों ने जो कहानियां ली हैं, वे सब हिन्दुओं के घर में बहुत दिनों से चली आती हुई कहानियां हैं, जिनमें आवश्यकतानुसार उन्होंने बहुत-कुछ हेर-फेर किया है। कहानियों का मार्मिक आधार हिन्दू है। मनुष्य के साथ पशु-पक्षी और पेड़-पौधों को भी सहानुभूति-सूत्र में बद्ध दिखाकर एक अखंड जीवन-समष्टि का आभास देना हिन्दू प्रेम-कहानियां का वैशिष्ट्य है।' डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी इन प्रेमाख्यानक काव्यों को लोक-कथाओं के माध्यम से धर्मोपदेश देने वाले बौद्ध और जैन-ग्रंथों की परम्परा की परवर्ती कड़ी स्वीकार करते हैं "लौकिक निजन्धरी कहानियों को आश्रय करके धर्मोपदेश देना इस देश की चिराचरित प्रथा है।.....हमारे साहित्य के इतिहास में एक गलत और बेबुनियाद बात यह चल पड़ी है कि लौकिक प्रेम-कथाओं का आश्रय करके धर्म-भावनाओं का उपदेश देने का कार्य सूफी कवियों ने आरम्भ किया था। बौद्धों, ब्राह्मणों और जैनों के आचार्यों ने नैतिक और धार्मिक उपदेश देने के लिए लोक-कथाओं का आश्रय लिया था।'

वस्तुत: भारतीय वाङ्मय में कथा-साहित्य की परम्परा अत्यंत प्राचीन है और साहित्यकार लोक-प्रचलित कहानियों का उपयोग बराबर करते रहे हैं। संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के कथा-काव्यों की यही परम्परा आगे चलकर हिन्दी साहित्य की प्रेमाख्यानक परम्परा में जीवन्त हो उठी। सूफी संत-कवियों ने भी लोक-प्रचलित कथानकों का आश्रय ले अपनी बात जनता तक पहुंचाई। इस परम्परा के सूफी प्रेमाख्यानक काव्य-मृगावती, मधुमालती, पद्मावत, चित्रावली आदि हैं।

अमीर खुसरों पहले भारतीय कवि हैं जिन्होंने निज़ामी से प्रेरणा ग्रहण कर प्रेमाख्यान लिखे और सूफी मत का प्रतिपादन किया। अमीर खुसरो के 50 वर्ष बाद हिन्दी में सूफी काव्यों की रचना प्रारंभ हुई। अब तक प्राप्त जानकारी के अनुसार असाइत कृत हंसावली ही हिन्दी का पहला सूफी काव्य है। इसके बाद मुल्ला दाउद ने **चन्दायन** नामक सूफी काव्य की रचना की। दामोदर कवि कृत लखमसेन **पद्मावती** कथा कुतुबन कृत **मृगावती**, गणपति कृत **माधवानल कामकन्दला**, जायसी कृत **पदमावत**, मंझन कृत **मधुमालती**, उसमान कृत **चित्रावली** आदि हिन्दी के प्रमुख प्रेमाख्यानक काव्य हैं। हिन्दी प्रदेश के अलावा दक्षिण भारत में भी अनेक प्रेमाख्यानक काव्य लिखे गए जिनमें मनसवी कदमराव पदमराव, मुल्ला वजही कृत कुतुब मुश्तरी, नुसरती कृत गुलशने इश्क, इब्न निशाती कृत फूलबन आदि प्रमुख हैं।

किसी राजकुमारी का अपने पालित पक्षी से काम-कथा निवेदित करना, उस पक्षी द्वारा किसी राजकुमार के पास जाकर प्रणय-संदेश वहन करना, राजकुमार का आगमन, किसी मंदिर में राजकुमार-राजकुमारी का मिलन और अंत में उनका परिणय-सूत्र में आबद्ध होना-लोक-जीवन में प्रचलित रूढ़ कथा थी और इसी को जायसी ने अपने काव्य में आबद्ध कर दिया है। इसका एक प्रमाण यह भी है कि इस कथा का ही थोड़ा-बहुत बदला रूप हमें 'पृथ्वीराज रासो' के पद्मावती समय, नल-दमयंती कथा, दसवीं शताब्दी के मयूर कवि की 'पद्मावती कथा' पन्द्रहवीं शताब्दी के पाठक राजवल्लभ की संस्कृत भाषा में लिखी कथा, गुजरात के हज्जीउद्दवीर की पद्मिनी की कथा, गुजराती साहित्य आदि में भी उपलब्ध होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि 'पद्मावत' की कहानी भारतीय लोक-जीवन की अत्यंत प्रिय कहानी थी जिसे साहित्य में भी संस्कृत-काल से बराबर स्थान मिलता रहा था।

हिन्दी प्रेमाख्यान काव्यों की परम्परा का आरंभ मुल्ला दाऊद के नूरक चंदा या 'चन्दायन' से माना जाता है। इसका रचना-काल संवत् 1370 और 137[illegible] के बीच माना जाता है। जायसी ने 'पद्मावत' में प्रेम-कहानियों की एक तालिका प्रस्तुत की है -

विक्रम धंसा प्रेम के बारा। सपनावति कहं गएउ पतारा।
मधूमाछ मुगुधावति लागी। गगनपूर होइगा बैरागी॥
राजकुंवर कंचनपुर गएऊ। मिरगावति कहं जोगी भएऊ॥
साध कुंवर खंडावत जोगू। मधुमालति कर कीन्ह बियोगू॥
प्रेमावति कहं सुरसरि साधा। ऊषा लगि अनिरुध बर बांधा॥

यहां विक्रमादित्य और ऊषा-अनिरुद्ध की प्रसिद्ध कथाओं के अतिरिक्त प्रांच प्रेम-कहानियों का उल्लेख हुआ है - स्वप्नावती, मुग्धावती, मृगावती, मधुमालती और प्रेमावती से संबद्ध कथाओं का। शुक्लजी इस संबंध में लिखते हैं, ".....मृगावती की एक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

खंडित प्रति का पता तो नागरी प्रचारिणी सभा को लग चुका है। 'मधुमालती' की भी फारसी अक्षरों में लिखी हुई एक प्रति मैंने किसी सज्जन के पास देखी थी,.....चतुर्भुजदास कृत 'मधुमालती की कथा' नागरी प्रचारिणी सभा को मिली है जिसका निर्माण काल ज्ञात नहीं और जो अत्यंत भ्रष्ट गद्य में है। 'मुग्धावती' और 'प्रेमावती' का पता अभी तक नहीं लगा है।'

जायसी के पीछे भी प्रेमगाथा की परम्परा कुछ समय तक चलती रही। नवीन खोजों के आधार पर इस परम्परा के जिन ग्रंथों का पता चला है, वे हैं – नैना सत, छिताई वार्ता, सत्यवती कथा, उस्मान की 'चित्रावली', शेखनबी का 'ज्ञानद्वीप', कासिमशाह का 'हंस जवाहिर', नूर मुहम्मद की 'इन्द्रावत', यसुफ जुलेखा' तथा नसीर कृत 'प्रेम दर्पण'। इस परम्परा का अंतिम ग्रंथ है – शेख रहीम का 'भाषा प्रेमरस'। कुतबन ने अपनी 'मृगावती' के संबंध में लिखा है कि यह कथा पहले से प्रचलित चली आ रही थी, उन्होंने प्रचलित कथा को लिपिबद्ध किया और उसके अर्थ को नये सिरे से स्पष्ट किया है –

''पुनि हम खोलि अरथ सब कहा''

जायसी भी लगभग यही बाते कहते हैं कि यह कहानी आदि से अंत तक जैसी उन्हें प्राप्त हुई, उसी को उन्होंने काव्य-बद्ध किया–

सिंहलदीप पदमिनी रानी। रतनसेन चितउर गढ़ आनी।
सुना साहि गढ़ छेंका आई। हिन्दू तुरकन्ह भई लराई॥
आदि अंत जस गाथा अहै। लिखि भाषा चौपाई कहै॥

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि प्रेमाख्यानक काव्यों की कहानियां भारतीय लोक-जीवन की अत्यंत प्राचीन कहानियां हैं। सूफी कवियों ने इन लोक-जीवन तथा साहित्य में प्रचलित निजन्धरी कथाओं को अपनाया और उनके माध्यम से अपने धार्मिक और आध्यात्मिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया, उन्हें जनता तक पहुंचाया।

प्राकृत तथा अपभ्रंश के कतिपय कवियों – पुष्पदंत, धनपाल, हरिभद्र सूरि आदि ने भी धार्मिक सिद्धांतों के प्रतिपादन के लिए लोकप्रिय जन-कथाओं का आश्रय लेकर चरित-काव्य लिखे थे। इनकी रचना-पद्धति संस्कृत महाकाव्यों से भिन्न थी और वे दण्डी द्वारा प्रस्तुत महाकाव्य की अपेक्षा रुद्रट की महाकाव्य की परिभाषा के अधिक निकट थे। कुछ विद्वानों का मत है कि हिन्दी के प्रेमाख्यानक काव्य इन्हीं चरित-काव्यों की परम्परा में आते हैं, ये उनकी परवर्ती कड़ी है। इन विद्वानों का तर्क है कि वातावरण, शैली, अलंकार और छंदों की योजना आदि के लिए सूफी कवियों ने भारतीय कथा-साहित्य से अधिक प्रेरणा ग्रहण की। कथानक तथा काव्यरूढ़ियों की दृष्टि से भी ये काव्य जैन चरित-काव्यों की परम्परा में पड़ते हैं। इष्टदेव और गुरु को नमस्कार, ग्रंथकार तथा उसके वंश का संक्षिप्त परिचय, ग्रंथ-रचना का उद्देश्य, कवि द्वारा विनय-प्रदर्शन, सज्जन-खल की प्रशंसा-निंदा आदि भारतीय कथा-काव्यों में भी मिलते हैं। रामपूजन तिवारी का तो कथन है कि जायसी ने गुरु-परम्परा बतलाई है, जबकि 16वीं शताब्दी के पहले किसी भी फारसी की सुप्रसिद्ध मसनवी में यह परम्परा देखने को नहीं मिलती तथा जायसी ने जिस प्रकार से अपने पूर्व के प्रेमाख्यानों का उल्लेख किया है, उस प्रकार से किसी भी फारसी की मसनवी में अपने पूर्व की रचनाओं, कथाओं या रचयिताओं का उल्लेख नहीं मिलता। नख-शिख वर्णन, सात द्वीपों के नाम भी भारतीय प्रभाव के द्योतक हैं। परन्तु यह कथन पूर्णत: सत्य नहीं, उसमें अधिक से अधिक आंशिक सत्य ही हो सकता है। शुक्ल जी ने स्पष्ट लिखा है, 'इन प्रेम-गाथाओं-काव्यों..... की रचना बिल्कुल भारतीय चरित-काव्यों की सर्गबद्ध शैली पर न होकर फारसी की मसनवियों के ढंग से हुई है।' समस्त देशी-विदेशी सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों की एक विशेषता यह रही है कि उनमें द्वयर्थक कथा पायी जाती है, परन्तु चरित-काव्यों की कथा दोहर अर्थ-वाली नहीं है। उनमें उपदेश अप्रत्यक्ष रीति से या प्रतीकों द्वारा नहीं दिया जाता, प्रत्यक्ष एवं प्रधान होता है, कथा-प्रवाह में स्पष्ट होता है, अत: ये प्रेमाख्यानक काव्य प्राकृत-अपभ्रंश के चरित-काव्यों की परम्परा से भिन्न ही माने जाने चाहिएँ। स्वयं रामपूजन तिवारी इस बात को स्वीकार करते हैं कि वक्तव्य-विषय की दृष्टि से जायसी ने फारसी के सूफी कवियों का ही अनुसरण किया है। जैन प्रेमाख्यानकों में जिस प्रेम का चित्रण है, उनकी प्रकृति 'पद्मावत' के प्रेम से भिन्न है। अन्योक्ति-पद्धति अथवा जिसे उर्दू में हेजल कहा गया है, का उनमें नितांत अभाव है। सूफी कवियों ने लौकिक कथा द्वारा जिस आध्यात्मिक अर्थ की अभिव्यंजना की है, ब्रह्म की रहस्यात्मक अनुभूति का मार्मिक वर्णन किया है, वह भी चरित-काव्यों में नहीं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मिलता। भारतीय महाकाव्यों या चरित-काव्यों में प्रकृति का प्रयोग उद्दीपन के लिए, कहीं उपदेश देने के लिए और कहीं आलम्बन रूप में भी उसका चित्रण हुआ है, जब कि सूफी काव्यों में प्रकृति प्राय: परमसत्ता की छाया के रूप में दृष्टिगत होती है और प्रिय से मिलने के लिए व्याकुल बतायी गई है। वस्तु और शैली की इस भिन्नता को देखकर हम प्रेमाख्यानक काव्यों की प्राकृत-अपभ्रंश के चरित-काव्यों की परवर्ती कड़ी नहीं मान सकते।

डॉ. मनहोहन गौतम ने इस संबंध में लिखा है, ''ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी के प्रेमाख्यानक कवियों ने रचना की मूल प्रेरणा फारसी मसनियों से ली और रचना-शैली, भाषा आदि के क्षेत्र में चरित-काव्यों का अनुसरण किया।' परन्तु जैसा कि हम शुक्ल जी का मत उद्धृत करते हुए कह चुके हैं, रचना-शैली में भी ये काव्य मसनवियों से अधिक प्रभावित हैं, चरित-काव्यों से नहीं। जहां तक भाषा का संबंध है, इन कवियों ने पूरबी हिन्दी अर्थात् अवधी भाषा अपनायी फारसी नहीं। इसका स्पष्ट कारण यह है कि यहां के लोगों के लिए फारसी का कोई मूल्य न था और अधिकांश कवि अवध में रहते थे। अत: उन्होंने अवधी को माध्यम बनाया और उस भाषा के सर्वाधिक अनुकूल छंद दोहा-चौपाई का प्रयोग किया।

अब हम देखें कि इन प्रेमाख्यानक काव्यों में मसनवी शैली की कौन-सी विशेषताएं पायी जाती हैं और उनमें तथा मनसवी काव्यों में क्या वैषम्य है। मसनवी मूलत: एक छंद-विशेष की संज्ञा थी जिसकी दोनों अर्धालियां समान अन्त्यानुप्रास-युक्त होती थीं, पर इस छंद में सूफियों ने इतनी प्रेम-कथाएं लिखीं और वे इतनी लोकप्रिय हो गईं कि इन कथाओं का नाम ही मसनवी पड़ गया। इनकी शैली वर्णनात्मक होती थी और विषय प्रेम होता था। कथा के प्रारंभ में ईश्वर, पैगम्बर, मुहम्मद साहब, आदि की स्तुति होती थी। पैगम्बर के मित्रों का उल्लेख होता था, गुरु-परम्परा के वर्णन के उपरांत 'शाहे वैत' की प्रशंसा होती थी तथा रचना के विषय और लक्ष्य के विषय में स्पष्टीकरण दिया जाता था। मसनवी में छंद-परिवर्तन नहीं होता था, पांच या सात छंदों के बाद एक 'बैत' रहता था, सामी (Semetic) संस्कृति का प्राधान्य होता था। फारसी प्रेमाख्यानक परम्परा के प्रसिद्ध कवि हुए हैं - निजामी जिन्होंने 'शीरीं-फरहाद', 'लैला-मजनू' और हफ्तपेकर' मसनवियाँ लिखीं, जामी जिनकी 'यूसुफ जुलेखा' प्रसिद्ध है, रूमी, सादी और हाफिज।

हिन्दी में जो प्रेमाख्यानक काव्य लिखे गये, उनमें इनमें से अधिकांश विशेषताएं पाई जाती हैं जैसे इनके कथानक की धुरी प्रेम है, पक्षी पात्र रूप में प्रयुक्त किये गये हैं और वे कथानक के विकास में योग देते हैं, कविताएं कहानी कहने की शैली में लिखी गयी हैं, बीच-बीच में नीति-उपदेश दिये गये हैं, लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक के प्रति प्रेम की व्यंजना की गयी है, कहानी नायक-नायिका के मिलन पर चरम-बिन्दु पर पहुंचती है, नायक सुन्दर युवक हैं, सच्चे प्रेमी हैं जो प्रणय की वेदी पर सर्वस्व न्यौछावर करने को तत्पर रहते हैं और नायिका से सच्चा एवं पवित्र प्रेम करते हैं। नायिका भी प्राय: सुन्दरी हैं और नायक से सच्चा प्रेम करती हैं। हिन्दी के सूफी कवियों के प्रेमाख्यानक काव्यों में मसनवियों की तरह ही प्रारंभ में ईश-वंदना, हजरत मुहम्मद की स्तुति, शाहे-वक्त का परिचय, गुरु-परम्परा तथा काव्य के उद्देश्य का संकेत उपलब्ध होता है। ये काव्य भारतीय महाकाव्यों की तरह सर्गबद्ध पर भी नहीं हैं, इनमें कथा बराबर चली चलती है, केवल स्थान-स्थान पर घटनाओं या प्रसंगों का उल्लेख शीर्षक के रूप में रहता है। परन्तु जिस भूमि में हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य लिखे गये, उसका प्रभाव पड़ना भी स्वाभाविक था, अत: उनमें तथा मसनवी काव्यों में वैषम्य भी पर्याप्त है। नैतिकता का स्वर जितना हिन्दी में तीव्र है, उतना फारसी मसनवियों में नहीं। हिन्दी के प्रेमाख्यानकों में विवाह की मर्यादा का पूर्ण निर्वाह किया गया है, जबकि फारसी में परपुरुष से प्रेम दिखाया गया है - लैला का विवाह एक से होता है, वह प्रेम दूसरे से करती है। जुलेखा भी अपने पति से प्रेम न कर यूसुफ से प्रेम करती है जबकि 'पद्मावत' में नागमती और पद्मावती परपुरुष की ओर ताकती तक नहीं, पद्मावती तो देवपाल के प्रलोभन तक को ठुकरा देती है। फारसी मसनवियों में सामी संस्कृति का चित्रण पाया जाता है तो हिन्दी मसनवियों में हिन्दू वातावरण और हिन्दू संस्कृति का चित्रण है। उनके वर्णन, कथोपकथन, उपमान, कथानक-रूढ़ियां आदि भारतीय हैं। फारसी के कथानक प्राय: दुखांत हैं जबकि हिन्दी प्रेमाख्यानकों के सुखांत। फारसी के ग्रंथों में नायक-नायिका का विवाह आवश्यक नहीं, जबकि 'पद्मावत' आदि में नायक-नायिका का विवाह होता है। फारसी प्रेमाख्यानकों में नायक प्राय: सामान्य व्यक्ति हैं जैसे मजनू, फरहाद, यूसुफ आदि जबकि हिन्दी प्रेमाख्यानकों के नायक-रत्नसेन, सुजान, नल, चन्द्रनगर का राजकुमार सभी आभिजात्य कुल के राजकुमार हैं। फारसी कवि मसनवी, गजल, रुबाई आदि छंदों का व्यवहार करते थे, परन्तु हिन्दी के सूफी कवियों ने चरित-काव्यों की प्रबंध-शैली अपनाई और मुख्यत: दोहा-चौपाई छंद का प्रयोग किया। भारतीय मसनवियों में नायिका को नायक की अपेक्षा अधिक प्रेमोदीप्त चित्रित करना भी भारतीयता का द्योतक है, क्योंकि फारसी में नायक को अधिक व्याकुल दिखाया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस विवेचन से स्पष्ट है कि कथा की शैली, भाषा, छंद, वर्णन-वैचित्रय, कौतूहल आदि की दृष्टि से इन काव्यों पर मसनवी शैली का प्रभाव पड़ा है, परन्तु यह प्रभाव भारतीयता के क्रोड़ में ही पल्लवित हुआ है। इसीलिए डॉ. रामकुमार वर्मा ने लिखा है, ''वस्तुत: इनमें भारतीय काव्य-शैली और मसनवी शैली का सुन्दर सामंजस्य किया गया है।'

इन प्रेमगाथा-काव्यों के संबंध में पहली ध्यान देने की बात तो यह है कि इनके रचनाकारों ने लोक-प्रचलित हिन्दू प्रेम-कथाओं का आधार लिया और हिन्दुओं की ही बोली अपनाकर, उन्हीं के रीति-रिवाज, देवी-देवताओं, नीति-मान्यताओं का सम्यक् चित्रण कर उनके हृदय को जीतने का सफल प्रयास किया, ''हिन्दू-हृदय और मुसलमान-हृदय आमने-सामने करके अजनबीपन मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। इन्होंने मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियां हिन्दुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी। वह जायसी द्वारा पूरी हुई।'

यद्यपि इन कवियों ने अपनी रचनाओं में लोक-जीवन चित्रण किया है, परन्तु उन्होंने सामंतीय जीवन के चित्रों को भी प्रधानता दी है। प्रेम की पीड़ा के वर्णन में ये कवि इतने तन्मय हो गए हैं कि जीवन के अन्य पक्षों, अन्यान्य जीवन-दशाओं और मानव-संबंधों का वर्णन विस्तार से नहीं हो सका है। इसीलिए शुक्ल जी ने इन्हें जीवन-गाथा न मानकर प्रेम-गाथा कहा है। भले ही उनके घटना-चक्र के भीतर माता की ममता, यात्रा के कष्ट, आनन्दोत्सव, युद्ध, जय, पराजय, विश्वासघात, स्वामिभक्ति, पतिव्रत आदि का भी विधान है।

ये काव्य गूढ़ार्थ व्यंजना से ओत-प्रोत हैं, अत: कल्पना-तत्व भी उनमें प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

प्रेमाख्यानक परम्परा के काव्यों में जायसी का 'पद्मावत' सर्वश्रेष्ठ है जिसमें अत्यंत प्राचीन काल से प्रचलित रानी पद्मावती की कहानी को आधार बनाकर लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम की व्यंजना की गई है, जो मसनवी तथा भारतीय चरित-काव्यों की मिश्रित शैली में लिखा गया है, जिसके द्वारा कवि ने यह प्रमाणित कर दिया है कि मानव रागात्मकता का एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है जिसे छूते ही मनुष्य सारे बाहरी रूपरंग के भेदों की ओर से ध्यान हटा एकत्व का अनुभव करने लगता है। उदाहरण के लिए, नागमती और उसके विरह वर्णन को लिया जा सकता है जिसमें वह अपने रानीपन को भूल सामान्य नारी की भूमिका में अपने हृदय के मनोवेगों को अभिव्यक्त करती हुई पुकार उठती है -

यह तन जारौं छार कै कहौं कि पवन उड़ाव।
मकु तेहि मारग गिर परै कंत धरै जहं पाव॥

यद्यपि संयोग शृंगार के चित्रों में अश्लीलता, वियोग-वर्णन में वीभत्सता और ऊहात्मकता, अलौकिक तथा अतिप्राकृत तत्त्वों का समावेश कुछ खटकते हैं, परन्तु कुल मिलाकर यह काव्य इतना मार्मिक है कि उसे सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया गया है। कुछ लोगों ने उसे इतिहास की कसौटी पर कस उसके छिद्र ढूंढ़े हैं और उस दृष्टि से इसकी कटु आलोचना की है। इसका एक कारण यह भी है कि शुक्ल जी जैसे विद्वान ने उसके उत्तरार्द्ध को ऐतिहासिक बताकर पाठकों और विद्वानों के मन में एक अपेक्षा जगा दी जिसे यह ग्रंथ पूरी नहीं कर सकता था, ''इस कहानी का पूर्वार्द्ध तो बिल्कुल कल्पित है और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक आधार पर है।' वस्तुस्थिति यह है कि जिन आधारों-टॉड के राजस्थान आदि पर शुक्ल जी ने उसे ऐतिहासिक माना है, वे स्वयं पद्मावत पर आद्धृत हैं। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने परिपुष्ट और सुदृढ़ प्रमाणों के आधार पर पद्मिनी की कथा को कवि की कल्पना-मात्र कहा है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का भी मत यही है कि उसमें दो-चार ऐतिहासिक नाम भर हैं और 'पद्मावत' आधुनिक उपन्यासों की सी कविता-बद्ध कथा है। वस्तुत: इतिहास को इस देश में आधुनिक अर्थों में कभी नहीं लिया गया। ...जायसी के रत्नसेन, रासो के पृथ्वीराज में तथ्य और कल्पना का फैक्ट्स और फिक्शन का-अद्भुतं योग हुआ है... इस देश के ऐतिहासिक तथ्यों को सदा काल्पनिक रंग में रंगा गया है।'

स्वयं जायसी ने अपने को कवि माना है न कि इतिहासकार ''एक नयन कवि मुहम्मद गुनी'।

कहने का अभिप्राय यह है कि जायसी का 'पद्मावत' सुन्दर प्रबंध-काव्य है न कि इतिहास-ग्रंथ और उसकी ऐतिहासिक चीर-फाड़ न होकर काव्य-सौन्दर्य का विश्लेषण होना चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पद्मावत में कुछ थोड़े से ही अंश ऐसे हैं जिनमें सूफी सिद्धांतों की चर्चा की गयी है, अन्यथा वह एक लौकिक प्रेमकाव्य है। कुछ संकेतों के आधार पर उसे सूफी काव्य मानना अनुचित होगा। वस्तुत: कवि ने लोककथा में इतिहास का मिश्रण कर अपनी कल्पना के योग से एक अद्‌भुत प्रबंध-काव्य की रचना की है जिसमें मनुष्य-प्रेम, उत्साह, घृणा आदि भाव हैं, नायक अनेक बाधाओं से संघर्ष करता है, हारता भी है, जीतता भी है। इसमें भारतीय प्रबंध-काव्यों और लोक-कथाओं के अनेक तत्त्व हैं - बारहमासा, नायिकाओं को नायक की तुलना में अधिक विरहोद्दीप्त दिखाना, और अनेक कथा-रूढ़ियों का प्रयोग। हीरामन तोते का आदमी की तरह बातें करना, महेश-पार्वती द्वारा रत्नसेन के प्रेम की परीक्षा लेना, फिर उसे सिद्धि गुटका देना, रत्नसेन को सूली देने के समय महेश-पार्वती का नट-नटिनी के रूप में प्रकट होना, हनुमान द्वारा जोगियों की सहायता, रत्नसेन का सोलह हजार रानियों से विवाह, समुद्र का मानव रूप में प्रकट होकर रत्नसेन से भिक्षा मांगना, तिरस्कृत होने पर तूफान ला देना, समुद्र की कन्या द्वारा रत्नसेन एवं पद्मिनी को मिलाने का वचन देना, उनके मिलन के उपरांत समुद्र द्वारा रत्नसेन को पांच अनमोल पदार्थ देना आदि घटनाएं लोग गाथाओं जैसी अतिप्राकृत एवं कुतूहलवर्धक हैं। सारांश यह है कि पदमावत लोक गाथा के आधार पर रचा गया जायसी का प्रेमाख्यानक काव्य है। इसमें लोककथा, इतिहास और कहीं-कहीं सूफी मतानुरूप प्रेम-तत्त्व का मिश्रण है।

6.3 पद्मावत की प्रेम पद्धति

उत्तर - आचार्य शुक्ल के अनुसार जायसी का 'पद्मावत' एक प्रेम-गाथा है, पूर्ण-जीवन-गाथा नहीं। ''जायसी एकांतिक प्रेम की गूढ़ता और गंभीरता के बीच-बीच में जीवन के और-और अंगों के साथ भी उस प्रेम के सम्पर्क का स्वरूप कुछ दिखाते गये हैं, इससे उनकी प्रेम गाथा पारिवारिक और सामाजिक जीवन से विच्छिन्न होने से बच गयी है.... पर है वह प्रेमगाथा ही, पूर्ण जीवन-गाथा नहीं।' पद्मावत का पूर्वार्द्ध प्रेम के विवरण से भरा है और उसमें प्रेम-भाव का जैसा उत्कर्ष देखने को मिलता है वह अपने में महान है। 'पद्मावत' में जिस प्रेम की व्यंजना की गयी है, उसके संबंध में विद्वानों का मत है कि यह लौकिक प्रेम न होकर अलौकिक व आध्यात्मिक प्रेम है। रत्नसेन-पद्मावती की कथा लौकिक प्रेम-कथा न होकर जीवात्मा और परमात्मा के मिलन की कथा है, जिसमें लौकिक प्रेम की व्यंजना द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना करना ही कवि का लक्ष्य रहा है।

आचार्य शुक्ल के अनुसार इस काव्य में ''एक प्रबंध के भीतर शुद्ध भाव के स्वरूप का ऐसा उत्कर्ष जो पार्थिव प्रतिबंधों से परे होकर आध्यात्मिक क्षेत्र में जाता दिखाई पड़े। जायसी का मुख्य लक्ष्य है।' डॉ. कमल कुलश्रेष्ठ और डॉ. रामकुमार वर्मा ने भी 'पद्मावत' में आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना स्वीकार की है, ''जायसी ने अपने 'पद्मावत' की कथा में आध्यात्मिक अभिव्यंजना रखी है। सारी कथा के पीछे सूफी सिद्धांतों की रूपरेखा है।' कवि ने 'पद्मावत' में प्रेम-मार्ग, उसका महत्त्व, सौन्दर्य और प्रेम-मार्ग की कठिनाइयों को स्थान-स्थान पर वर्णन किया है। जायसी में आध्यात्मिक प्रेम की यह व्यंजना हमें तीन रूपों में मिलती है - रूपक द्वारा, कथा-प्रसंगों में अलौकिकता की ओर संकेत द्वारा तथा सूफ मत के अनुकूल प्रेम की व्यंजना द्वारा।

रूपक द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना - जायसी ने पद्मावत में रत्नसेन को सच्चे साधक और पद्मावती को ईश्वर के रूप में चित्रित किया है और इस प्रकार बताया है कि रत्नसेन को पद्मावती तक पहुंचाने वाला प्रेम जीवात्मा को परमात्मा से मिलाने वाला प्रेम है। न केवल 'पद्मावत' की अंतिम पंक्तियों में ही रूपक को स्पष्ट किया गया है, अपितु अन्यत्र भी आध्यात्मिकता के इस आरोप की घोषणा की है :

''कहा मुहम्मद प्रेम कहानी, सुनि सो ज्ञानी भये ध्यानी''

कवि की ये उक्तियां प्रमाणित करती हैं कि उसे अपने काव्य में आध्यात्मिक व्यंजना अभीष्ट है।

कथा-प्रसंगों में अलौकिकता की व्यंजना द्वारा - जायसी ने कथा के बीच-बीच में प्रेम की अलौकिक व्यंजना की और भी संकेत किये हैं। उदाहरण के लिए, तोते के मुख से पद्मावती का रूप-वर्णन सुनकर रत्नसेन का मूर्च्छित होना, पद्मावती का रूप-वर्णन, प्रेम-खंड के संवाद आदि इसी अलौकिकता की ओर संकेत करते हैं। रत्नसेन के बेसुध हो जाने की बात कहकर कवि ने साधक-भक्त की समाधि द्वारा ईश्वर-सान्निध्य की व्यंजना की है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

देखि मानसर रूप सोहावा

हिय हुलास पुरइन होइ छावा

गा अंधियार रैनि मसि छूटी

भा भिनसार किरन रवि फूटी

इन पंक्तियों में कवि संकेत देता है कि साधना के निकट पहुंचने पर साधक के सम्पूर्ण भ्रमों और संतापों का नाश हो जाता है तथा आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप की ओर अग्रसर होती है।

सूफीमत के अनुकूल प्रेम-व्यंजना – सूफी साधकों के जीवन का प्रधान लक्ष्य है सृष्टि के कण-कण में प्रियतम का जलवा देखना और उसके विरह में तड़पने का आनंद उठाना। ये 'दरियाये इश्क की बेशुमार लहरों' में बहते रहते हैं। सूफी मत में ईश्वर की कल्पना या तो सौन्दर्य के रूप में की गई है या प्रेम के रूप में। जायसी के काव्य में इन दोनों रूपों का पूरा प्रभाव दिखलाई पड़ता है। कवि लौकिक सौन्दर्य का वर्णन करते-करते अलौकिक सौन्दर्य की ओर बढ़ जाता है। पद्मावती का नख-शिख वर्णन आध्यात्मिक अर्थ भी रखता है, क्योंकि ईश्वर का प्रतिरूप चित्रित करने के लिए उसने सौंदर्य को अपरिमेय, अलौकिक और दिव्य चित्रित किया है। सौन्दर्य की लोकोत्तर व्यंजना करने के लिए जायसी ने ऐसे उपमान ग्रहण किये हैं, जो अनंत सौन्दर्य की ओर संकेत करते हैं –

रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती

रतन पदारथ मानिक मोती

जायसी के सौन्दर्य-वर्णन की एक अन्य विशेषता यह है कि उसने परम सौन्दर्य के सृष्टि-व्यापी प्रभाव की व्यंजना की है –

उन बानन्ह अस को जो न मारा।

बेधि रहा सगरौ संसारा॥

वह पद्मावती के केशों की कालिमा के प्रभाव से स्वर्ग और पाताल दोनों में अंधकार छाते हुए दिखाता है –

बेनी छोरि झार जो बारा

सरग पतार होइ अंधियारा

पद्मावती के इस सौन्दर्य में यह विशेषता है उसके साक्षात्कार मात्र से अज्ञान का अंधकार नष्ट हो जाता है और जन्म-जन्मान्तर के पाप धुल जाते हैं –

भा निरमर तिन पायन परसे

पावा रूप रूप के दरसे

जायसी ने आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना के लिए प्रेम और विरह का भी व्यापक वर्णन किया है। वह प्रेम का महत्त्व बताते हुए लिखते हैं –

ज्ञान दिष्टि सौं जाई पहुंचा। पेम अदिष्ट गगन ते ऊंचा॥

धुव ते ऊंच पेम धुव ऊआ। सिर देइ पांव देइ सो छूआ॥

जायसी के अनुसार प्रेम में अपार विरह होता है और मानो सूर्य भी विरह की अग्नि में जलकर ही रात-दिन जलता रहता है –

विरह की आगि सूर जरि कांपा

रातहि दिवस जरै ओहि तापा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस प्रकार जायसी का वियोग अलौकिक रूप में सृष्टि-व्यापी प्रभाव के साथ चित्रित किया गया है। विरह के शुद्ध भाव-क्षेत्र में अग्नि, पवन इत्यादि सब उस प्रिय तक पहुंचने के लिए आतुर दिखाई पड़ते हैं।

सूफी मत में अहं भाव को साधक के लिए सबसे बड़ा शत्रु कहा गया है और उस पर विजय पाने की बात कही गयी है। जिससे 'तू' और 'मैं' का भाव मिट जाए –

हौं हौं कहत मंत सब कोई। जौं तूं नाहिं आहि सब सोई।

आपुहि गुरु सो आपुहि चेला। आपुहि सब सो आपु अकेला॥

इसके लिए प्रेम ही एक मात्र साधन है। जायसी कहते हैं कि तीनों लोक और चौदहों भुवन में प्रेम के अतिरिक्त कुछ सुन्दर नहीं है :

तीन लोक चौदह खंड सबै परे मोहि सूझि।

प्रेम छांड़ि किछु और न लोना जौं देखौं मन बुझि॥

पर यह प्रेम का खेल अत्यंत कठिन है। हां, जो इस खेल को खेलता है, वह तर जाता है –

भलेहिं प्रेम है कठिन दुहेला। दुइ जग तरा पेम जेइं खेला।

इस प्रेम के द्वारा ही वह ऐसे लोक को प्राप्त करता है जहां न मृत्यु है न दुख।

तिन्ह पावा उत्तिम कबिलासू। जहां न मीचू सदा सुखवासू।

सच्चे प्रेमी को जन्म और मृत्यु का भय नहीं सताता क्योंकि वह तो प्रेमरस में डूबा रहता है –

सुन धनि प्रेम सुरा के पिएं। मरन-जियन डर रहै न हिएं।

इस प्रकार रत्नसेन और पद्मावती के माध्यम से जायसी ने उस आध्यात्मिक प्रेम का चित्रण किया है जो सूफी-साधनों का प्राण है।

उपर्युक्त विवेचन से लगता है कि 'पद्मावत' में आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना ही प्रधान है, परन्तु पद्मावत के सम्पूर्ण प्रेम-वर्णनों में आध्यात्मिकता का आरोप नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, नागमती के विरह-वर्णन तथा संयोग-शृंगार के अनेक प्रसंगों में अलौकिकता की छाया भी नहीं मिलती। इस संबंध में डॉ. रामकुमार वर्मा का कथन महत्त्वपूर्ण है—''जायसी ने अपने पद्मावत की कथा में आध्यात्मिक अभिव्यंजना रखी है।... पर जायसी इस आध्यात्मिक संकेत को पूर्ण रूप से नहीं निभा सके हैं और अधिकांश में पद्मावत में चित्रित प्रेम का स्वरूप अलौकिक न होकर लौकिक हो गया है।' पद्मावती-रत्नसेन-मिलन के प्रसंगों से लेकर अंत तक 'पद्मावत' में लौकिक प्रेम का चित्रण हुआ है। फारसी शैली के प्रभाव से प्रेम-प्रसंगों में कवि ने वासना के विविध चित्र उतारे हैं। स्वयं नायिका का व्यक्तित्व भी अनेक दोषों से दूषित होने के कारण आध्यात्मिकता को आघात पहुंचाता है। पद्मावती का प्रेम भी शुद्ध न होकर कामुकता से ग्रसित है। पद्मावती युवावस्था को प्राप्त होते ही तोते से कहती है –

सुनि हीरामन कहौं बुझाई

दिन-दिन मदन सतावै आई

जोवन भौर भयऊ जस गंगा

देह-देह हम लाग अनंगा

रत्नसेन के सिंहलगढ़ में पहुंचने के बाद भी पद्मावती को काम-वासना एवं भोग-विलास से विह्वल युवती के रूप में दिखाया गया है। इस चित्रण में तन-तपन, यौवन-सार एवं कामोन्माद का जैसा वर्णन किया गया है, उससे स्पष्ट है कि पद्मावती का प्रेम सर्वथा

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लौकिक स्तर का है। इसी को देखते हुए डॉ. विमल कुमार जैन ने लिखा है, 'पद्मावत की कथा में जो नख-शिख-वर्णन, प्रेमावेश तथा ऐसी ही अन्य बातों का वर्णन है, उससे आध्यात्मिक पक्ष को कुछ धक्का-सा लगता प्रतीत होता है।' इस प्रकार जायसी के संयोग-वर्णन में यदि शारीरिक उल्लास का मादक वर्णन आध्यात्मिक प्रेम को आघात पहुंचाता है, तो उनका वियोग-वर्णन भी विशेषत: नागमती का विरह-चित्रण इतना लौकिक और हृदय-स्पर्शी है कि उसे आध्यात्मिक नहीं कहा जा सकता। शुक्ल जी के शब्दों में - ''नागमती के विरह-वर्णन के अन्तर्गत.....वेदना का अत्यंत निर्मल और कोमल स्वरूप, हिन्दू दाम्पत्य-जीवन का अत्यंत मर्मस्पर्शी माधुर्य, अपने चारों ओर की प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों के साथ विशुद्ध भारतीय हृदय की साहचर्य-भावना.....देखने योग्य है।'

शुक्ल जी ने 'जायसी ग्रंथावली' की भूमिका में प्रेम के चार रूप माने हैं -

1. विवाहोपरांत,
2. पूर्वराग,
3. अंत:पुर से संबद्ध और
4. गुण-श्रवण आदि से उत्पन्न प्रेम

उनके अनुसार 'पद्मावत' का प्रेम चौथे प्रकार का है, क्योंकि राजा रत्नसेन और पद्मावती दोनों तोते के मुख से एक-दूसरे के संबंध में सुनकर ही परस्पर अनुरक्त होते हैं। शुक्लजी ने मिलन से पूर्व रत्नसेन के पद्मावती के प्रति मनोभाव को लोभ कहा है, क्योंकि वह निर्दिष्ट के प्रति न होकर सामान्य के प्रति है। शुक्ल जी की इस चर्चा से स्पष्ट है कि जायसी की प्रेम-व्यंजना सर्वत्र आध्यात्मिक न होकर अनेक स्थलों पर लौकिक हो गई है।

जायसी की प्रेम-व्यंजना की विशेषताएं —आचार्य शुक्ल ने जायसी की प्रेम-पद्धति की तीन विशेषताओं की ओर संकेत किया है -

1. मानसिक पक्ष की प्रधानता,
2. भारतीय एवं फारसी पद्धतियों का समन्वय और
3. भावात्मक और व्यावहारिक शैलियों का सामंजस्य।

जायसी के शृंगार-वर्णन में मानसिक पक्ष की प्रधानता है। संयोग और वियोग दोनों के चित्रों में उनकी दृष्टि भावात्मकता की ओर अधिक रही है, शारीरिक ताप-कृशता आदि के चित्रण पर कम है। संयोग-पक्ष में कवि ने मन के उल्लास का वर्णन अधिक किया है, चुम्बन-आलिंगन का कम; और वियोग-पक्ष में वेदना की तीव्रता का कथन अधिक किया है। विलासिता के बीच-बीच भी प्रेम का भावात्मक स्वरूप प्रस्फुटित होता दिखाई देता है। उनके विरह-वर्णन में भी एक गाम्भीर्य है और वेदना की अत्यंत तीव्र व्यंजना मिलती है।

भारती प्रेम-पद्धति में नायिका के प्रेम का वेग अधिक दिखाई देता है, जब कि फारसी काव्यों में नायक को अधिक प्रेम-विह्वल दिखाया गया है। जायसी ने इन दोनों पद्धतियों का समन्वय किया है। पहले फारसी प्रेम-पद्धति के अनुरूप रत्नसेन को अपने प्रेम-पात्र की प्राप्ति के लिए अधिक प्रयत्नशील दिखाया है और उत्तरार्द्ध में नायिका के प्रेम का उत्कर्ष प्रधान हो गया है। संयोग और वियोग प्रसंगों में भी इन पद्धतियों का समन्वय देखा जा सकता है। कवि भारतीय पद्धति के अनुसार संयोग-वर्णन में मर्यादित है और वियोग-वर्णन में वेदना की अभिव्यक्ति की ओर झुका रहता है। परन्तु फारसी-पद्धति के प्रभाव से संयोग-वर्णनों में अश्लीलता और वियोग-चित्रण में ऊहात्मकता तथा वीभत्सता आ गई है -

विरह सरागन्हि भूजै मांसू।
गिरि-गिरि परै रकत के आंसू॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'पद्मावत' में भारतीय प्रेम-पद्धति के अनुसार लोक-व्यवहार के बीच अपनी आभा का प्रसार करने वाले प्रेम और मसनवियों के एकान्तिक लोक-बाह्य और स्वतंत्र भावात्मक सत्ता के रूप में विकसित होने वाले प्रेम – इन दोनों की समान रूप से व्यंजना मिलती है। जायसी ने यद्यपि आधार इश्क के दास्तान वाली मसनवियों का लिया है, पर बीच-बीच में भारत के लोक-व्यवहार संलग्न रूप का भी मेल किया है। राजा की विदा के समय माता और रानी का रोना, गोरा-बादल प्रसंग, आदि इसके प्रमाण हैं। जायसी की प्रेम गाथा पारिवारिक और सामाजिक जीवन से विच्छिन्न नहीं हो पाई है। उसमें भावात्मक एवं व्यवहारात्मक दोलों शैलियों का मेल है। दाम्पत्य प्रेम के अतिरिक्त मनुष्य की अन्य वृत्तियों-युद्ध, सपत्नी-कलह, मातृस्नेह स्वामिभक्ति, वीरता, कृतघ्नता, सतीत्व आदि का भी चित्रण हुआ है।

इस प्रकार जायसी ने अपनी इस प्रेम-गाथा में भी हिन्दू-मुसलमानों के बीच सामंजस्य और मेल कराने का स्तुत्य प्रयास किया है। अभीष्ट की प्राप्ति के लिए एक योग-पंथ और दूसरी ओर प्रेम-पंथ का चित्रण करके भी कवि ने भारत और फारस का, हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म का मेल कराने की चेष्टा की है। वह अद्‌भुत समन्वयवादी व्यक्तित्व के कवि थे और यह समन्वयवाद उनकी प्रेम-पद्धति में भी स्पष्ट झांकता है।

'पद्मावत' की कथा समाप्त करते हुए उपसंहार में जायसी ने रूपक का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है –

तन चितउर, मन राजा कीन्हा
हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा
गुरु सुआ जेई पंथ देखावा
बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा ?
नागमती यह दुनिया-धंधा।
बंचा सोइ न एहि चित बंधा॥
राघव दूत सोई सैतानू।
माया अलाउदीं सुलतानू॥

इस कड़वक में कवि ने सम्पूर्ण कथा को रूपक बतलाया है। कथा में उल्लिखित विभिन्न पात्रों को उसने मनुष्य की मानसिक शक्तियों का प्रतीक अथवा प्रतिरूप माना है और इस दार्शनिक मत की ओर संकेत किया है जो पिंड में है, वही ब्रह्माण्ड में है। उपर्युक्त वर्णन के अनुसार तन चित्तौड़ है, संकल्प-विकल्पात्मक मन रत्नसेन है, रागात्मक हृदय सिंहल है, शुद्ध बुद्धि पद्मावती है, हीरामन तोता गुरु है, नागमती सांसारिक मोह है, राघवचेतन जीवात्मा को पथभ्रष्ट करने वाला शैतान है। इस प्रकार सभी पात्र विभिन्न संकेतार्थ रखते हैं।

जायसी ने कथा के लिए जिस रूपक की कल्पना की है, उसमें समालोचकों को दो-तीन बातें खटकती हैं। जिनके कारण डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने यह प्रतिपादित किया था कि कवि ने जो कुंजी दी है वह ठीक नहीं है। उन्होंने नागमती को दुनिया-धंधा मानना सर्वथा अस्वीकार कर दिया और कहा कि नागमती की अवहेलना कर पद्मावती को प्राप्त करने का प्रयत्न पतन है, उत्थान नहीं।

''पद्मावत का रूप कथा को विकृत करता है और पद्मावत की कथा रूपक का मज़ाक उड़ाती है। कथा और रूपक एक-दूसरे के नितांत अनुपयुक्त हैं।'' यह कथन पर्याप्त अंशों में सत्य है क्योंकि रूप में कई त्रुटियां पाई जाती हैं।

प्रथम त्रुटि तो यह है कि कवि ने कथा के प्रकरणों में रूपक का एक-समान निर्वाह नहीं किया है। यद्यपि अधिकतर पद्मावती को परमतत्त्व और रत्नसेन को साधक का रूप दिया गया है, जैसे -

तजा राज राजा भा जोगी
औ किंगरी कर गहेउ वियोगी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

किन्तु सदैव राजा ही साधक के रूप में और पद्मावती साध्य के रूप में प्रस्तुत नहीं किये गये हैं। एक-आध पर पद्मावती स्वयं साधक हो जाती है और रत्नसेन का वर्णन परम तत्त्व के रूप में किया जाता है। वह रत्नसेन से बिछुड़कर विलाप करती है और सती हो जाती है।

जब अलाउद्दीन पद्मावती को प्राप्त करने की चेष्टा करता है, तो वह भी जीवात्मा के रूप में दिखलाया गया है। उपसंहार में सिंहल को हृदय का प्रतिरूप माना गया है, किन्तु 'पार्वती-महेश-खंड' में सिंहलगढ़ को पिण्ड का रूपक दिया गया है -

नौ पौरी तेहि गढ़ मझियारा

औ तहं फिरहिं पांच कोटवारा

दूसरी खटकने वाली बात यह है कि कुछ प्रस्तुतों एवं अप्रस्तुतों के रूप में गुण और प्रभाव का साम्य नहीं दिखाई देता। नागमती रत्नसेन की प्रथम विवाहिता रानी थी। वह पतिव्रता, उज्ज्वल चरित्र की सद्गृहिणी है। उसका मार्मिक विरह उसके प्रांजल प्रेम का परिचायक है। उसका कथन 'मोहिं भोग सों काज न बारी' उसके चरित्र की उदात्तता बताता है। अत: उसे दुनिया-धंधा और पद्मावती को बुद्धि बतलना भारतीय संस्कृति के अनुकूल नहीं है। जो स्त्री राजा की मृत्यु के बाद सती हो, उसे दुनिया-धंधा कहना ठीक नहीं। कुंजी में राघवचेतन को दूत कहा गया है, पर सम्पूर्ण 'पद्मावत' में वह दूत नहीं बताया गया, वह तो चित्तौड़ से निष्कासित व्यक्ति है।

अलाउद्दीन और माया में भी विश्वसनीय साम्य नहीं दिखलाई पड़ता। फिर जब नागमती को दुनिया-धंधा कह दिया, तो फिर अलाउद्दीन को माया कहना उसी रूपक को दुहराना है। एक बात और, साधक और साध्य के मिलन के बाद शैतान और माया का अस्तित्व कहां रह जाता है, पर काव्य में राघवचेतन और बादशाह रत्नसेन-पद्मावती के मिलने के बाद ही आते हैं। इस सांकेतिक छंद में नागमती के पुत्र नागसेन, पद्मावती के पुत्र पद्मसेन, गंधर्वसेन, चित्रसेन, गोरा-बादल, लक्ष्मी, देवपाल और उसकी दूती आदि पात्रों का कोई सांकेतिक अर्थ नहीं बतलाया गया है। ऐसा क्यों ?सूफी साधना में बुद्धि को कोई स्थान नहीं दिया गया, बल्कि कहा गया है कि बुद्धि 'अहं' का विषय है और उसको जीतने के लिए प्रेम-साधना की आवश्यकता है, पर कुंजी में पद्मावती को बुद्धि कहा गया है।

समालोचकों की दृष्टि में तीसरा दोष यह है कि अप्रस्तुतों के जो पारस्परिक संबंध और कार्य-व्यापार हैं, वह प्रस्तुतों के पारस्परिक संबंध और कार्य-व्यवहार हैं, वह प्रस्तुतों के पारस्परिक संबंधों एवं कृत्यों को न तो पूर्णत: प्रकट करते हैं और न उनके अनुकूल हैं। उदाहरण के लिए, जो संबंध चित्तौड़, सिंहल, पद्मावती, हीरामन तोता, नागमती, राघवचेतन और अलाउद्दीन के बीच होना चाहिये, वह शरीर, मन, हृदय, बुद्धि, गुरु, दुनिया-धंधा, शैतान और माया में नहीं है। कवि ने जब शरीर को चित्तौड़ कहा और यह संकेत दिया कि चौदह लोक मानव-शरीर में ही हैं, तब सभी अप्रस्तुतों को शरीर के भीतर से ही चुनना चाहिये था, पर गुरु, और माया को छोड़ देते हैं, तो शेष तत्त्व बाहर के तत्व हैं। फिर मन, हृदय और बुद्धि में वह संबंध नहीं है जो रत्नसेन, सिंहल और पद्मावती में था। सांसारिक जंजाल और माया का भी भेद स्पष्ट नहीं है। और यदि दोनों में अन्तर स्थापित किया भी जा सकता हो, तो उनका पारस्परिक संबंध वैसा नहीं होगा, जैसा नागमती और अलाउद्दीन का है।

'पद्मावत' के रूपक के ये दोष बिल्कुल स्पष्ट हैं, इसीलिए डॉ. पीताम्बर दत्त बडथ्वाल के कहा कि पद्मावत का रूपक कथा को विकृत करता है। वस्तुत: पद्मावत के उपसंहार को रूपक की कुंजी समझना ही गलत है। फिर यह भी निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह अंश प्रामाणिक ही हो। वास्तव में जिस प्रकार अंग्रेजी कवि स्पैंसर की 'Fair' Queene' mein Sir Walter Releigh के नाम पत्र में दिया गया रूपक समस्त कथा का आधार और उसको समझने की कुंजी है, उसी प्रकार 'पद्मावत' का उपर्युक्त संकेत नहीं। पद्मावत उस कोटि का रूपक-काव्य नहीं है जिस कोटि के काव्य 'प्रबोध चन्द्रोदय', 'Fairy Queene' या 'Pilgrim's Progress' है। इन ग्रंथों के रूपक का निर्वाह प्रारंभ से अंत तक किया गया है और रूपक के कारण उनका साहित्यिक सौन्दर्य बढ़ जाता है, किन्तु 'पद्मावत' में रूपक का ऐसा निर्वाह नहीं किया गया है। रूपक-काव्य में सभी प्रस्तुतों के लिए अप्रस्तुत नियोजित होते हैं, किन्तु पद्मावत में ऐसा नहीं किया गया है। देवपाल, कुमुदिनी, गोरा-बादल, गंधर्वसेन आदि के लिए अप्रस्तुत अर्थों की कोई योजना नहीं की गई है। इतना ही नहीं, एक अप्रस्तुत के लिए कभी एक प्रस्तुत का और कभी दूसरे का प्रयोग किया गया है। वस्तुत: जायसी का उद्देश्य रूपक-काव्य लिखना ही नहीं था। यदि होता, तो रूपक का निर्वाह करने में उन्होंने सावधानी और श्रम से काम लिया होता। वह

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Lalitpur

तो मसनवी के ढंग का एक प्रबंध-काव्य लिखना चाहते थे और कथा-रस में पूरे डूब गये। 'पद्मावत' की विशेषता रूपक का निर्वाह करने में नहीं, अपितु या तो कथा प्रस्तुत करने में है अथवा बीच-बीच में अत्यंत मनोहर रहस्यात्मक संकेतों का विधान करने में है, जैसे निम्न पंक्तियों में यह सांकेतिक अर्थ प्रस्तुत किया गया है कि परमात्मा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, परन्तु पकड़ में नहीं आता –

सरवर देख एक मैं सोई
रहा पानि, पै पान न होई

सारांश यह है कि रूपक जायसी की प्रबंध-रचना का अनिवार्य अंग नहीं है; जो कुछ आध्यात्मिक संकेत बीच-बीच में प्राप्त होते हैं, वह उनके दार्शनिक संत स्वभाव के कारण है। आज का आलोचक रचना का मूल्यांकन लेखक के लक्ष्य को ध्यान में रखकर उसी के आधार पर करता है। जायसी का लक्ष्य 'पद्मावत' को रूपक-काव्य बनाना नहीं था। डा. मोहनसिंह और डॉ. कमल कुलश्रेष्ठ का यह अनुमान कि कवि ने सारे कथानक को शरीर के अंदर ही घटित किया है जिसमें कवि असफल है—काव्य लिखने के बाद कवि ने यह व्याख्या दी है, काव्य-रचना के समय ऐसी कोई बात कवि के मस्तिष्क में न थी, ठीक नहीं है। जैसा कि हम अन्यत्र कह चुके हैं यह कड़वक ही अप्रमाणिक और प्रक्षिप्त है। अत: यदि 'पद्मावत' रूपक-काव्य सिद्ध नहीं होता, तो इससे जायसी की कीर्ति और पद्मावत के काव्य-सौन्दर्य को कोई क्षति नहीं पहुंचती। उसे हमें एक सफल प्रबंध-काव्य के रूप में ही देखना चाहिए और इस दृष्टि से वह निश्चय ही अवधी के प्रेमाख्यानक काव्यों में शीर्ष स्थान का अधिकारी है। जायसी पूर्णत: सूफी कवि हैं और पद्मावत सूफी प्रेमाख्यानक काव्य है। उसमें सूफी दर्शन अनायास ही आ गया है। यहां न एकेश्वरवाद है और न अद्वैतवाद। यहां विशुद्ध प्रेम है जो मानवीय संवेदनाओं से उत्पन्न हुआ है और उसमें प्रेम के मर्यादित तथा उदात्त रूप की अभिव्यक्ति हुई है।

6.5 पद्मावत में अन्योक्ति एवं समासोक्ति का समन्वय

मध्यकालीन काव्य-ग्रंथों की मुख्य प्रेरणा भक्ति या धर्म-साधना रही है। जायसी के 'पद्मावत' की मुख्य प्रेरणा भक्ति या धर्म-साधना ही थी। जायसी का झुकाव सूफी मत की ओर था। अत: भले ही 'पद्मावत' प्रधानत: काव्य-ग्रंथ हो, भले ही उपसंहार का छंद अप्रामाणिक हो, परन्तु इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि कवि लौकिक प्रेम-वर्णन द्वारा अलौकिक प्रेम की व्यंजना करना चाहता था, लौकिक सौन्दर्य के माध्यम से ईश्वरीय सौन्दर्य की अभिव्यंजना करना उसे अभीष्ट था। यही कारण है कि जब कवि वियोग पक्ष का वर्णन करता है, तब सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र सभी उस परम विरह में जलते और चक्कर लगाते दिखाई देते हैं, प्राणियों का लौकिक विरह जिसका आभास मात्र है –

विरह के आगि सूर जरि कांपा।
रातिउ दिवस जैर ओहि तापा।

और लौकिक सौन्दर्य का वर्णन करते-करते कवि की दृष्टि चरम सौन्दर्य पर जा पड़ती है –

उन बानन्ह अस को जो न मारा।
बेधि रहै सिगरौ संसारा।
गगन नखत जो जाहिं न गने।
वै सब बान ओहि के हने।

कुछ समय पूर्व तक उपसंहार के छंद 'न चितउर मन राजा कीन्हा, हिय सिंघल बुधि पद्मिनि चीन्हा' को प्रामाणिक समझा जाता रहा। पं. चन्द्रबली पांडे, डॉ. श्यामसुन्दर दास, डॉ. अलेक्जेंडर, ग्रियर्सन, शिरिफ, आचार्य शुक्ल उसे प्रामाणिक ही मानते थे। उसी के आधार पर इस काव्य को रूपक-काव्य (allegory) या अन्योक्ति-काव्य सिद्ध करने का प्रयास किया गया। डॉ. श्यामसुन्दर दास ने इस संबंध में लिखा – ''जायसी अपनी कथा के विविध प्रसंगों तथा पात्रों को ईश्वर-प्रेम के विविध अवयवों का व्यंजक मानते हैं। इस प्रकार यह ग्रंथ एक महान अन्योक्ति ठहरता है। प्राय: सभी प्रस्तुत प्रसंग अप्रस्तुत की ओर संकेत करते जान पड़ते हैं।' चन्द्रबली पांडे ने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)

भी अपनी पुस्तक 'तसव्वुफ अर्थात् सूफीमत' में इस प्रकार का मंतव्य प्रकट किया है – ''सूफियों की रचना में समासोक्ति का चाहे जितना विधान हो, रूपक का चाहे जितना परिष्कार हो, पर वस्तुत: सूफी अन्योक्ति के ही भक्त थे।'' यद्यपि डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने बहुत पहले 'पद्मावत' की कुंजी को गलत बताया था, परन्तु जब से डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने अपने प्रामाणिक और वैज्ञानिक शोध-कार्य द्वारा अकाट्य तर्क देकर यह सिद्ध कर दिया है कि यह छंद प्रक्षिप्त है, और उसके रूपक में अनेक दोष विविध विद्वानों द्वारा बताये गये हैं, तब से उसे सफल रूपक-काव्य या अन्योक्ति काव्य कहा जाना छोड़ दिया गया है। पर अब भी यह विवाद बना हुआ है कि उसमें अन्योक्ति की प्रधानता है अथवा समासोक्ति की।

इस विवाद का निर्णय देने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि समासोक्ति और अन्योक्ति के क्या लक्षण हैं और उनमें क्या भेद है। दास कवि ने समासोक्ति की परिभाषा इस प्रकार दी है –

जहां प्रस्तुत में पाइये अप्रस्तुत कौ ज्ञान
कहुं वाचक कहुं श्लेष तैं समासोक्ति पहचान

अर्थात् प्रस्तुत वर्णन जहां प्रधान हो और अप्रस्तुत गौण वहां समासोक्ति माननी चाहिए। समासोक्ति में कवि अत्यंत कुशलतापूर्वक ऐसे विशेषणों का प्रयोग करता है जो सहृदय के मन में अप्रस्तुत अर्थ का संकेत मात्र कर देते हैं। समासोक्ति में कवि आद्यंत प्रत्येक पद के दो अर्थों के स्पष्टीकरण के लिए बद्धपरिकर नहीं होता। जहां और जब कभी कवि अवसर पाता है, वह कुछ ऐसे विशेषणों का प्रयोग कर देता है जिससे पाठक के हृदय में उसका अभिप्रेत अर्थ भी व्यंजित हो जाए। शुक्लजी भी वाच्यार्थ के प्रस्तुत और व्यंग्यार्थ के अप्रस्तुत होने में समासोक्ति की स्थिति मानते हैं। इसके विपरीत अन्योक्ति में अप्रस्तुत अर्थ प्रधान और प्रस्तुत अर्थ गौण होता है। शुक्लजी ने लिखा है – ''जहां कथा-प्रसंग से भिन्न वस्तुओं के द्वारा प्रस्तुत प्रसंग की व्यंजना होती हो वहां अन्योक्ति होगी।'

डॉ. सूर्यकांत शास्त्री, ए.जी. शिरिफ आदि ने 'पद्मावत' को अन्योक्ति पद्धति पर लिखा काव्य कहा था, परन्तु उपसंहार छंद के अप्रामाणिक सिद्ध होने के कारण तथा 'पद्मावत' के सारे वाक्यों के दोहरे अर्थ न निकलने के फलस्वरूप उसे अन्योक्ति-काव्य नहीं कहा जा सकता। शुक्ल जी तक ने, जिन्हें अंतिम छंद की प्रामाणिकता के संबंध में संदेह न था, कहा है, ''यदि कवि के स्पष्टीकरण के अनुसार व्यंग्य-अर्थ को ही प्रधान या प्रस्तुत मानें, तो जहां-जहां दूसरे अर्थ भी निकलते हैं, वहां-वहां अन्योक्ति माननी पड़ेगी। पर ऐसे स्थल अधिकतर कथा के अंग हैं, और पढ़ते समय कथा के अप्रस्तुत होने की धारणा किसी पाठक को हो नहीं सकती। अत: इन स्थलों के वाच्यार्थ को अप्रस्तुत नहीं कह सकते। इस प्रकार वाच्यार्थ के प्रस्तुत और व्यंग्यार्थ के अप्रस्तुत होने से ऐसी सर्वत्र समासोक्ति ही माननी चाहिए।'

फिर भी 'पद्मावत' में ऐसे स्थल हैं, जहां कवि का मुख्य उद्देश्य अप्रस्तुत का वर्णन ही जान पड़ता है। उदाहरण के लिए ग्रंथ के आरंभ में ही कवि सच्चे साधक की व्याख्या करना चाहता है और ऐसा करने के लिए वह प्रस्तुत का आश्रय लेता है। वह कहता है पुष्प और कांटा पास रहते हुए भी दूर हैं, किन्तु गुड़ और चींटी भले ही दूर हो पास हो जाते हैं।

नियरे दूर, फूल जस कांटा।
दूरि जो नियरे, जस गुड़ चांटा॥

यहां कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि जिस साधक के हृदय में ब्रह्म-प्राप्ति की इच्छा जागृत हो जाती है, वह ब्रह्म को अपने हृदय में ही पा लेता है। यहां अप्रस्तुत अर्थ ही प्रधान है। प्रस्तुत अर्थ अर्थात् पुष्प और कांटे या गुड़ और चींटी से संबद्ध अर्थ गौण है। यह इस बात से भी प्रमाणित हो जाता है कि आगे कवि एक और प्रस्तुत विधान इसी अप्रस्तुत अर्थ की व्यंजना करने के लिए रखता है –

भंवर आइ बनखंड सन लेइ कंवल कै पास।
दादुर बास न पावई, भलहिं जो आछै पास॥

राजा रत्नसेन के सिंहलगढ़ पर चढ़ने और पकड़े जाने का प्रसंग लीजिए। कवि लिखता है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सूर उदयगिरि चढ़त भुलाना।
गहनै गहा, कंवल कुंभिलाना॥

यहां अप्रस्तुत कथन द्वारा प्रस्तुत अर्थ अर्थात् रत्नसेन के सिंहलगढ़ पर चढ़ने और पकड़े जाने की व्यंजना की गयी है। कवि सूर्य के चढ़ने के द्वारा रत्नसेन के चढ़ाई करने और कमल के कुम्हलाने के द्वारा पद्मावती के कुम्हलाए जाने की बात कह रहा है। यहां कथा-प्रसंग के भिन्न वस्तुओं के द्वारा प्रस्तुत प्रसंग की व्यंजना की गयी है, अत: अन्योक्ति है। इसी प्रकार अन्योक्ति के दर्शन हमें नागमती के विरह-वर्णन में मिलते हैं।

कंवल जो बिगसा मानसर, बिनु जल गयउ सुखाइ।
अबहु बेलि फिर पलुहै, जो पिय सींचै आइ॥

यहां जल-कमल का प्रसंग प्रस्तुत नहीं है, प्रस्तुत तो है नागमती की विरह-दशा। परन्तु इस विरह-दशा की ओर कवि ने संकेत किया है उस अप्रस्तुत कमल द्वारा जो जल के अभाव में सूख गया है। अप्रस्तुत से प्रस्तुत की व्यंजना के कारण यहां भी अन्योक्ति है। इसी प्रकार 'सिंहलद्वीप-वर्णन-खंड' में जहां कवि जीवन की क्षणभंगुरता और जीवों की जड़ता का उल्लेख कर उन्हें चेतावनी देने लगता है, वहां अन्योक्ति ही है –

परा जो डांड़ जगत सब डांड़ा।
का निचिन्त माटी कर भांड़ा।
तुम्ह तेहि चाक चढ़े हौ कांचै।
आएहु रहै न थिर होइ बांचे॥
घरी को भरी घटी तुम्ह आऊ।
का निचिन्त होइ सोउ बटाऊ ?

\+ + + +

मुहमद जीवन-पल भरन, रहट-धरी कै रीति।
घरी जो आई ज्यों भरी, ढरी, जनम गा बीति॥

परन्तु कुल मिलाकर 'पद्मावत' में अन्योक्ति-स्थल बहुत नहीं है। उसके काव्य-सौष्ठव को समृद्ध करने वाली तो समासोक्ति ही है। उन स्थलों में, जहां समासोक्ति का प्रयोग किया गया है, काव्य के सौन्दर्य को चार चांद लग गए हैं। इन स्थलों को पढ़ते समय पाठक प्रस्तुत अर्थ में इतना लीन हो जाता है कि उसे कथा के अप्रस्तुत होने की या तो धारणा ही नहीं होती अथवा अत्यन्त क्षीण होती है। दोहरे अर्थ वाले ये स्थल कथा-प्रसंग के अंग हैं। इनमें वाच्यार्थ से अन्य अर्थ को, जो साधना-पक्ष में व्यंग्य रखा गया है, प्रबंध-काव्य की दृष्टि से अप्रस्तुत ही कहा जा सकता है, अत: वहां समासोक्ति हो स्वीकार करनी पड़ेगी। सिंहलगढ़ की दुर्गमता का वर्णन प्रस्तुत है और उसके द्वारा अप्रस्तुत अर्थ-शरीर के नौ छिद्र, ब्रह्मरन्ध्र, अनहद नाद, काम, क्रोध आदि पंच विकार, नाभिकुंड, कुंडलिनी, सुषुम्ना आदि की केवल व्यंजना की गयी है –

नव पौरी पर दसवं दुआरा।
तेहि पर बाज राज धरियारा॥

अथवा

गढ़ तोरि बांक जैस तोरि काया।
पुरुष देखि ओही कै छाया॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नौ पोरी तेहि गढ़ मझियारा।
औ तहं फिरहिं पांच कोतवारा।
दसवं दुआर ताल कै लेखा।
उलटि दिष्टि जो लाव सो देखा॥

काव्य में जहां बताया गया है कि राजा हीरामन तोते के मुख से पद्मिनी का सौन्दर्य सुनकर उसके ध्यान में बेसुध हो जाता है, यहां प्रस्तुत अर्थ तो यही है और अनेक पाठक काव्य पढ़ते समय केवल इसी अर्थ को ग्रहण करेंगे यहां राजा का पद्मिनी के ध्यान में बेसुध होना कहकर साधक भक्त का समाधि द्वारा ईश्वर-सान्निध्य की प्राप्ति की बात केवल व्यंजित की गयी है। अत: यहां ही समासोक्ति है।

राजा रत्नसेन जब सिंहलद्वीप के पास सातवें समुद्र में पहुंचता है, तो दु:ख की सारी छाया हट जाती है और उसके हृदय में हर्षोल्लास जागृत हो उठता है –

देखि मानसर रूप सोहावा।
हिय हुलास पुरइनि होइ छावा॥

गा अंधियार रैन मसि छटी।
भा भिनसार किरिन रवि फूटी॥

यहां भी कवि ने आध्यात्मिक अर्थ की व्यंजना की है कि जब साधक अपनी साधना के फल के निकट पहुंचता है, तो उसका सारा अज्ञान, भ्रम, ताप और क्लेश दूर हो जाता है, आत्मा ब्रह्म की आनन्दमयी ज्योति का साक्षात्कार कर लेती है। सिंहल की हाट के वर्णन के बीच-बीच में भी कवि ने पारमार्थिक अर्थ की व्यंजना की है कि इस संसार में कोई अपनी आत्मा को उन्नत बना लेता है और कोई पतन को प्राप्त होता है –

कोई करै बेसाहनी, काहू केर बिकाइ।
कोई चलै लाभ सौं, कोई मूर गंवाइ॥

हीरामन तोते के मुंह से सिंहलद्वीप और पद्मिनी का वर्णन सुन राजा का घर बार छोड़ चल देना और उसके मार्ग में आने वाली बाधाएं कथा का ही अंग हैं, पर उनसे कवि ने अप्रस्तुम अर्थ-गुरु से ब्रह्म-ज्योति पाकर साधक का साधना-मार्ग पर अग्रसर होना और नाना प्रकार के विघ्न झेलना की भी व्यंजना की है जिससे यहां समासोक्ति माननी चाहिए –

है आगे परबत कै बाटा।
विषम हार अगम सुठि घाटा।
बिच बिच नदी, खोह औ नारा।
ठांवहि ठांव बैठ बटपारा॥

साधक के विघ्नों का स्वरूप बताने के लिए ही जायसी ने रत्नसेन के लौटते समय तूफान का प्रसंग आयोजित किया है। लंका का राक्षस वस्तुत: शैतान है जो लोभ में फंसे साधक को भटकाता है।

कुछ लोगों का विचार है कि 'पद्मावत' में ग्यारहवें खंड तक ही समासोक्ति पद्धति पायी जाती है। परन्तु यह बात नहीं है। ग्यारहवें खंड के बाद भी कवि को जहां-जहां अवसर मिला है, वही उसने प्रस्तुत अर्थ के आथ अभिप्रेत अप्रस्तुत अर्थ जोड़ने का सफल प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिए, 48वें खंड (पद्मावती-नागमती-विलाप-खंड) की निम्न पंक्तियां लीजिए जिनमें पद्मावती विलाप करती हुई कहती है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सो दिल्ली अस निबहुर देसू।
कोई न बहुरा कहै संदेसू॥

जो गबनै सो तहां कर होई।
जो आवे किछु जान न सोई॥

अगम पंथ पिय तहां सिधावा।
जो रे गएउ सो बहुरि न आवा॥

कथा-प्रसंग के अंतर्गत ये सारे वाक्य प्रस्तुत प्रसंग (दिल्ली में राजा के बंदी होने) का वर्णन करते हैं, परन्तु इनमें परलोक-यात्रा का अर्थ भी संकेतित्त है, दिल्ली गमन में परलोक-गमन का संकेत है, अतः यहां समासोक्ति स्पष्ट है। इसी प्रकार 27वें खंड में प्रथम समागम के अवसर पर पद्मावती के मुख से निकले व्यंग्यगर्भित वाक्यों समासोक्ति है -

अनचिन्ह पिउ, कापौं मन माहां।
का मैं कहब, गहब जे बाहां॥

अब सो कंत जौ पूछिहि बाता।
किस मुख होइहि पीत कि राता॥

जीव का ईश्वर के प्रति जाना और लड़की का मातृगृह से प्रतिगृह जाना दोनों में साम्य की कल्पना हमारे यहां बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। जायसी ने भी 'रत्नसेन-बिदाई-खंड' में इसके योजना की है। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि कवि ने समासोक्ति प्रयोग ग्यारहवें खंड तक ही नहीं किया, सर्वत्र किया है।

इस प्रकार हमार निष्कर्ष हैं कि

1. 'पद्मावत' पूर्णतः अन्योक्ति-काव्य नहीं है, उसके सारे वाक्यों के दोहरे अर्थ नहीं हैं, पद-पद में रूपक-निर्वाह नहीं हो सकता।

2. उसमें कतिपय स्थलों पर अन्योक्ति का प्रयोग किया गया है।

3. परन्तु प्रधानता समासोक्ति की है क्योंकि वह प्रबंध-काव्य है और कथा-प्रसंगों में ही व्यंग्यार्थ अनुस्यूत किया गया है।

वस्तुत जायसी संत-कवि थे - एक ओर संत और दूसरी ओर कवि। जहां वे कवि के नाते अपने काव्य-ग्रंथ में काव्यात्मकता और प्रबंध की वर्णनात्मकता को अक्षुण्ण रखना चाहते थे, वहां सूफी संत होने के नाते सूफी-सिद्धांतों को भी जनता के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहते थे। सूफी होने के नाते उन्होंने प्रेम-कथा को चुना। सूफी-मत भारत में प्रचलित था, अतः उन्होंने हिन्दुओं की प्रेम-कहानी को हिन्दुओं की भाषा में प्रस्तुत किया और इस प्रेम-कहानी द्वारा सूफी-सिद्धांतों की व्याख्या करनी चाही। यही कारण है कि इस असाधारण कार्य को निर्वाह करने में कहीं-कहीं दोष आ गया है। रूपक के कारण कथा विशृंखलित हो गई है और प्रबंधात्मकता में दोष आ गया है। दूसरी ओर लौकिक प्रेम का वर्णन करते हुए उसमें रम जाने के कारण वर्णनों की दीर्घता के फलस्वरूप आध्यात्मिक सिद्धांतों का खरा निरूपण नहीं हो पाया है। इन्हीं दोषों को लक्ष्य कर पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने लिखा है -

''कहानी अध्यात्मवाद की हंसी उड़ा रही है, तथा अध्यात्मवाद कहानी को विरूप बना रहा है।''

वस्तुतः जायसी सुन्दर कथा और अध्यात्मवाद दोनों को ही 'पद्मावत' में गुम्फित करना चाहते थे। यही कारण है कि जहां एक ओर सच्चे कवि की भांति मार्मिक स्थलों के चित्रण में वह रम गए हैं, तो दूसरी ओर रूपक को स्पष्ट करने में लग गए हैं। शुक्ल जी के समान हमारा मत भी यही है कि 'पद्मावत' में अन्योक्ति और समासोक्ति का सुन्दर समन्वय हुआ है।

Jai Vishva Bharati Institute (Deemed University) Lucknow

6.6 जायसी का रहस्यवाद सैद्धांतिक न होकर भावात्मक है

भक्ति और दर्शन दोनों से संबद्ध होते भी रहस्यवाद का भक्ति और दर्शन से भेद स्पष्ट है। जहां भक्ति में उपास्य आधिदैविक होता है, वहां रहस्यवाद में उपास्य का स्वरूप आध्यात्मिक होता है। दर्शन में ब्रह्म का स्वरूप तर्कमूलक और बुद्धि-प्रतिष्ठित होता है जबकि रहस्यवाद में वह भावना-निर्मित होता है। इसीलिए कुमारी अंडरहिल ने रहस्यवाद को 'Temperamental reaction to the vision of Reality' कहा है। रहस्यवाद की हिन्दी के अनेक विद्वानों और आलोचकों ने परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं। शुक्ल जी के अनुसार, ''दर्शनशास्त्र में अद्वैतवाद है, वही भावना या साहित्य के क्षेत्र में रहस्यवाद है.....जहां कवि उसे अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है.....।' डॉ. रामकुमार वर्मा रहस्यवाद को 'जीवात्मा की उस अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन' मानते हैं, 'जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्छल संबंध जोड़ना चाहती है और यह संबंध यहां तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अंतर नहीं रहता।'

इनसे स्पष्ट है कि रहस्यवाद में साधक आध्यात्मिक अनुभूति की उस अवस्था को प्राप्त कर लेता है जहां वह साध्य के अपरोक्ष साक्षात्कार का चरम प्रयत्न करता है और अपनी आत्मानुभूति के द्वारा निखिल संसृति में परिव्याप्त एक ही दिव्य सत्ता के दर्शन करता है। कविता करते समय वह अपनी कल्पना और भाव के मधुर संयोग से निराकार को साकार बनाकर उसके साथ रागात्मक संबंध स्थापित करता है और राग की तीव्रता से उत्पन्न विरह, मिलनकांक्षा और आत्मसमर्पण की भावना को, अपनी अनुभूतियों को चित्रमयी भाषा में रूपक तथा प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करता है।

जायसी का चिन्तन विशाल और मनन अत्यंत गंभीर था, प्रिय के प्रति प्रेम की व्याकुलता की अनुभूति अत्यंत तीव्र थी, उसकी मार्मिक अभिव्यक्ति में भी वह सफल रहे हैं। यही कारण है कि अपने गहन चिन्तन, मनन, अध्ययन, विशाल एवं पवित्र हृदय और परमसत्ता के परम सौन्दर्य और दिव्य शक्ति की अनुभूति में प्रतीति रखने वाला यह कवि अपने मनोभावों को रहस्यवादी शैली में अभिव्यक्त कर सका है और शुक्ल जी ने इसी कारण उन्हें ही हिन्दी का एकमात्र सफल रहस्यवादी कवि कहा है। ''हिन्दी के कवियों में यदि कहीं रमणीय सुन्दर अद्वैती रहस्यवाद है तो जायसी में, जिनकी भावुकता बहुत ही ऊंची कोटि की है। ये सूफियों की भक्ति-भावना के अनुसार कहीं तो परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखकर जगत् के नाना रूपों में उस प्रियतम के रूप-माधुर्य की छाया देखते हैं और कहीं सारे प्राकृतिक रूपों और व्यापारों का 'पुरुष' के समागम के हेतु प्रकृति के शृंगार, उत्कंठा या विरह-विकलता के रूप में अनुभव करते हैं।'

ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है कि जायसी का रहस्यवाद अद्वैतवाद पर आधारित है। अद्वैतवाद एक दार्शनिक सिद्धांत है और उसके दो पक्ष हैं – 1. आत्मा और परमात्मा की एकता, व 2. ब्रह्म और जगत् की एकता। भारत में अद्वैतवाद ज्ञानक्षेत्र से निकला और अधिकतर ज्ञानक्षेत्र में ही रहा, केवल कहीं-कहीं जैसे उपनिषदों में उसमें भावातिरेक के क्षणों में भावमयता आ गई। परन्तु अरब, फारस आदि में वह भावक्षेत्र के बीच मनोहर रहस्यभावना के रूप में फैला। इस प्रकार रहस्यवाद के दो भेद हैं – साधनात्मक और भावात्मक। हमारे यहां का योगमार्ग साधनात्मक रहस्यवाद है। तंत्र और रसायन भी साधनात्मक रहस्यवाद के अंतर्गत आते हैं, परन्तु उसे झूठा या निम्नकोटि का रहस्यवाद कहा गया है। जायसी के समय में भारत में साधनात्मक रहस्य की प्रवृत्ति हठयोगियों, तांत्रिकों, रसायनियों में प्रचलित थी। जायसी यद्यपि प्रधानत: भावात्मक रहस्यवाद के कवि हैं, पर उन पर हठयोग, तंत्र और रसायन का प्रभाव भी परिलक्षित होता है और उन्होंने नाथपंथियों, हठयोगियों तथा तांत्रिकों की शब्दावली का भी प्रयोग किया है। रत्नसेन-पद्मावती के प्रथम समागम के अवसर पर राजा और रानी रसायनशास्त्र के शब्दों, अभ्रक, पारा गंधक, कुरकुट्य, बिरवा, लोना आदि का अपने वार्तालाप में प्रयोग करते हैं।

कहां सो खोएहु बिरवा लोना।
जेहि ते अधिकार रूप और सोना।
का हरतार पार नहिं पावा।
गंधक काहै कुरकुटा खावा।

अथवा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पार न पाव जो गंध पीया।
सो हरतार कहौ किमि जीया॥
अबरक कै पुनि ईगुर कीन्हा।
सो तन फेरि अगिनि महं दीन्हा॥

रसेश्वर मत में पारद और अभ्रक कोई साधारण वस्तु नहीं हैं, वे हर और गौरी के शरीर के रस हैं, इनके शुद्ध प्रयोग से मनुष्य शरीर-त्याग किए बगैर ही दिव्य देह पाकर मुक्त हो जाता है। वहां पारद को शिव और गंधक या अभ्रक को शक्ति का प्रतीक माना जाता है। इस प्रकार जायसी ने पारद और अभ्रक (या गंधक) के सामरस्य की बात कहकर शिव और शक्ति के सामरस्य से उत्पन्न जरा-मरण को जीतने वाले रस की ओर संकेत किया है। स्पष्ट है कि जायसी के 'पद्मावत' में रहस्यवाद के साधनात्मक पक्ष का वह रूप भी मिलता है। जिसका संबंध रसेश्वर मत से है।

नाथपंथियों के अनुसार इस पिंड में ही शिव और शक्ति का निवास है, शिव की अवस्थिति ऊपर सहस्रार में है और शक्ति का स्थान कुंडलिनी में नाभि के अधोभाग में है। योगी नाना प्रकार की यौगिक क्रियाओं द्वारा शिव और शक्ति का सामरस्य स्थापित करता है। योग-साधना में योगी अपनी कुंडली जगाता है जो षड्चक्रों का बेधन करती हुई ब्रह्मरन्ध्र तक पहुंचती है। वह अनहद नाद सुनता है। जायसी ने एक हठयोगियों की शब्दावली और मान्यता स्वीकार करते हुए षट् चक्र-बेधन की बात कही है, सिंहलगढ़ को शरीर-रूप मानते हुए उस साधना का संकेत दिया है जो हठयोगी करते हैं –

गढ़ तस बांक जैसि तोरि काया।
पुरुष देखु ओही कै छाया॥

पाइय नाहिं जूझ हठि कीन्हे।
जेइ पावा तेइ आपुहि चीन्हे॥

नौ पौरी तेहि गढ़ मझियारा।
औ तहं फिरहिं पांच कोतवारा॥

दसवं दुआर गुपुत एक ताका।
अगम चढ़ाव, गाट सुठि बांका॥

भेदै जाइ सोइ वह घाटी।
जो लहि भेद, चढ़ै होइ चाँटी॥

गढ तर कुंड, सुरंग तेहि माहां।
तहं वह पंथ कहौं तोहि पाहां॥

दसवं दुआर ताल कै लेखा।
उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा॥

\+ + + +

तो दूसरी ओर सूफियों की शब्दावली का प्रयोग किया गया है :

नवौ खंड नव पौरी, और तहं ब्रज केवार।
चारि बसेरे सौं चढ़ै, सत सौं उतरै पार।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

यहां चार बसेरों से कवि का अभिप्राय सूफी मत के अनुसार साधक की चार अवस्थाओं–शरीअत (कर्मकांड), तरीकत (उपासना), हकीकत (ज्ञान) और मारिफत (सिद्धि) से है।

सारांश यह है कि 'पद्मावत' में साधनात्मक रहस्यवाद की अत्यंत सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है, उन्होंने इस शुष्क और साधनात्मक रहस्वाद की अपनी प्रतिभा से सरस और मधुर बना दिया है।

परन्तु जायसी का उत्कर्ष भावात्मक रहस्यवाद ही में है जहां वह प्रकृति की सम्पूर्ण विभूतियों में अपने परम प्रिय की प्रातिभासिक सत्ता का अनुभव करते हैं और उस परम सत्ता के साक्षात्कार तथा मिलन के लिए विकलता का अनुभव करते हैं। कुमारी अंडरहिल के अनुसार रहस्यवादी का उपास्य परम सुन्दर, वैयक्तिक तथा प्रेममय होता है, "The Absolute of the mystic is loyable, attainable, alive and personal." जायसी ने 'पद्मावत' में पद्मावती के लौकिक सौंदर्य वर्णन द्वारा अलौकिक दिव्य ज्योति की ओर संकेत किया है। वह परम सत्ता के रूप–सौन्दर्य के सृष्टिव्यापी प्रभाव तथा उसकी लोकोत्तर कल्पना द्वारा पाठक हो रसप्लावित करते चलते हैं। वह पद्मावती को पारस रूप मानते हुए उसके सृष्टिव्यापी सौन्दर्य का वर्णन करते हुए लिखते हैं –

होतसि दरस परस भा लोना।
धरती सरग भएउ सब सोना।

अथवा

बिगसा कुमुद देखि ससि रेखा।
भै तहं ओप जहां जोइ देखा॥

पावा रूप रूप जस चाहा।
ससि मुख जनु दरपन होइ रहा॥

नयन जो देखा कंवल भी निरमल नीर सरीर।
हंसत जो देखा हंस भा दसन जोति नग हीर॥

सारे विश्व का सौन्दर्य उसी से उद्भूत हुआ है। प्रकृति के भीतर दिखाई देने वाली सम्पूर्ण दीप्ति उसी परोक्ष सत्ता से उद्भासित है –

रतन पदारथ मानिक मोती॥

उसका प्रभाव स्वर्ग से पाताल तक व्याप्त है –

बेनी छोरि झार जौ बारा।
सरग पतार होइ अंजियारा॥

सम्पूर्ण सृष्टि उस तक पहुंचना चाहती है, किन्तु बिना साधना किये कोई वहां नहीं पहुंच पाता है :

धाइ जो बाजा कै सर साधा।
मारा चक्र भएउ दुइ आधा॥

चांद सुरुज और नखत तराई।
तेहि डर अंतरिख फिरहिं सबाई॥

पवन जाइ तंह पहुंचै चाहा।
मारा तैस लोटि भुंइ रहा॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पानि उठा उठ जाइ न छूआ।
बहुरा रोइ आई भुंइ चूआ॥

निखिल संसृति प्रिय के प्रेमबाणों से बिंधी हुई है –

उन बानन्ह अस को जो न मारा।
बेधि रहा सगरौ संसारा॥

न मालूम किस निष्ठुर ने इस जीव को प्रिय से अलग कर दिया है क्यों पहले तो धरती और स्वर्ग में अभेद था ''धरती सरग मिले हुत दोऊ' पर अब यह बिछोह सारी सृष्टि में व्याप्त है, सब उसी के रंग में डूबे हैं –

सूरज बूड़ि उठा होइ राता।
औ मजीठ टेसू बन राता॥

भा बसंत रातीं बनसपती।
औ राते सब जोगी जती॥

राती सती, अगिनि सब काया।
गगन मेघ राते तेहि छाया॥

अस परजरा विहर कर गठा।
मेघ साम भए धूम जो उठा।
दाधा राहु केतु गा दाधा।
सूरज जरा चांद जरि आधा॥

औ सब नखत तराहीं जरहीं।
टूटहिं लूक धरति महं परहीं॥

जरै सो धरती ठावहिं ठाऊं॥

जिस प्रकार कबीर ईश्वर को अंतस् में स्थित मानते हैं –

मोकों कहां ढूढै बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल, ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में॥

उसी प्रकार जायसी भी परम सत्ता को साधक के हृदय में ही अवस्थित बताते हैं :

पिउ हिरदय महं भेंट न होई।
को रे मिलाव कहौं केहि रोई॥

और उसे अपरिमित आनन्द का देने वाला कहते हैं। जब वह मिल जाता है तो साधक के सम्पूर्ण पाप-ताप तिरोहित हो जाते हैं, उसे अभिनव आत्मज्योति की उपलब्धि होती है और वह चरम सात्विक उल्लास का अनुभव करता है –

देखि मानसर रूप सोहावा।
हिय हुलास पुरइनि होइ छावा॥

गा अंधियार रैनि मसि छूटी।
भा भिनुसार किरिन रवि फूटी॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कुमारी अंडरहिल ने रहस्यानुभूति के पांच सोपान बताये हैं – आत्मा की जाग्रतावस्था, परिष्करण की स्थिति, आंशिक अनुभूति, विघ्नों की अवस्था (Darkness of the soul) तथा तादात्म्य या मिलनावस्था। जायसी के 'पद्मावत' में ये पांचों अवस्थाएं साधक रत्नसेन में मिलती हैं। गुरु का उपदेश सुन आत्मा की जाग्रतावस्था में रत्नसेन मिलन के लिए व्याकुल हो उठता है और वैराग्य धारण कर प्रिय (पद्मावती) की खोज में निकल पड़ता है। इस स्थिति में उसमें मिलन की तीव्र तड़पन है, विरह उसे परिष्करण की स्थिति में लाता है। जायसी की यह विरह–भावना अधिक सरस, कोमल, भावमय और व्यापक है। रत्नसेन ही नहीं सारी सृष्टि को प्रिय के विरह में व्याकुल दिखाया गया है। आंशिक अनुभूति की 'पद्मावत– की इन पंक्तियों में दृष्टिगत होती है –

''उठा रोई हा ज्ञान जो खोवा''

इस अनुभूति के क्षण में कवि लोक का भावात्मक वर्णन करता है –

जहां न राति व दिवस है जहां पौन न पानि

इस स्थिति में पहुंचकर साधक विचित्र ध्वनियां और अद्भुत दृश्यों के संकेत पाने लगता है –

नव पौरी पर दसग दुआरा, तेहि पर बाज राज घरियारा।

उसके उपरांत चौथी स्थिति आती है विघ्नावस्था की। जायसी ने इसकी व्यंजना शैतान द्वारा लोभग्रस्त राजा को पथभ्रष्ट कराते हुए की है –

तस भुलान मन राजा लोभ पाप अंधकूप स भुलान मन राजा लोभ पाप अंधक + + + +

भएवोहित टूकनटूक सब गए पहुं न जाना चलि गए बाटा। दूनौ बहे, चले दुइ बाटा॥ + + + +

रहस्यानुभूति के पांचवें सोपान पर साधक और साध्य में तादात्म्य हो जाता है, दोनों में मिलन होता है। जायसी ने मिलन के पूर्व की मधुमयी अनुभूतियों और साक्षात्कार की स्थिति के बड़े मधुमय रमणीय चित्र प्रस्तुत किये हैं। इनमें सूफियों के सौन्दर्यवाद और प्रतिबिम्बवाद का प्रभाव देखा जा सकता है –

देखि मानसर रूप सोहावा, हिय हुलास पुरइनि होइ छावा।

+ + + +

नयन जो देखा कंवल भा निरमल नीर सरीर।
हंसत जो देखा हंस भा, दसन ज्योति नग हीर॥

संयोगजनित लीलाओं के मधुमय चित्रों में जायसी कुछ मर्यादाविहीन हो गए हैं, उनमें लौकिकता अधिक आ गई है और वह आंतरिक से अधिक बहिर्मुखी हो गए हैं। इस दृष्टि से कबीर का रहस्यवाद अधिक परिष्कृत एवं सात्विक है, यद्यपि माधुर्य कबीर में भी कम नहीं है –

घूंघट के पट खोल री तोको पीव मिलेंगे।

पूर्ण तादात्म्य की जैसी स्थिति कबीर की उक्तियों में मिलती है वैसी जायसी में नहीं –

हरि मरिहैं तो हमहूं मरिहैं।

अथवा

लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं चली मैं भी हो गई लाल॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जायसी ने 'पद्मावत' में समासोक्ति-पद्धति अपनाई है। अत: रहस्यवाद की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने कहीं अवसरोचित सूक्तियों का प्रयोग किया है –

बसै मीन जल धरती, अम्बा बसै अकास।
जा पिरीत पै दुबौ महं अंत होहिं एक पास॥

अथवा

नियरे दूरे, फूल जस कांटा।
दूरि जो नियरे, जस गुड़ चांटा॥

भंवर आइ बनसंड सन लेंइ कंवल कै बास।
दादुर बास न पावई, भलहि जो आछै पास॥

तो कहीं सादृश्यमूलक अलंकारों का और कहीं प्रतीकों का। ये प्रतीक कभी तो साहित्य की परम्परा से लिये गये हैं और प्रेम के उन्माद और प्रेम-पीर की अभिव्यंजना करते हैं –

सारस जोरी कौन हरि मारि वियाधा लीन्ह।

और कभी उन्होंने साधना के साम्प्रदायिक प्रतीक ग्रहण किये हैं –

घरी घरी घरियार पुकार।

अथवा

गढ़ तस बांक जैस तोरि काया

सारांश यह है कि भावनात्मक तथा साधनात्मक दोनों प्रकार के रहस्यवाद की सुन्दर अभिव्यंजना 'पद्मावत' में हुई है।

6.7 क्या पद्मावत महाकाव्य है ?

महाकाव्य लेखन की परम्परा बड़ी प्राचीन है। विश्व की अनेक प्रमुख भाषाओं में लिखे गये आरंभिक काव्य महाकाव्य ही हैं। वाल्कीमि रामायण, यूनानी भाषा में लिखे गये इलियड तथा ओडैसी इसका प्रमाण हैं। पूर्व और पश्चिम में अनेक महाकाव्य लिखे गये हैं और उनका अनुशीलन कर काव्यशास्त्रियों ने महाकाव्य के लक्षण भी निर्धारित किये हैं। संस्कृत में आचार्य विश्वनाथ के 'साहित्य दर्पण' में, अरस्तू के 'काव्यशास्त्र' में महाकाव्य में लक्षण और विशेषताएं बतायी गयी हैं। लोंजाइनस ने काव्य का प्राण उदात्त तत्व माना है। इसी के आधार पर कुछ मनीषी आलोचकों ने महाकाव्य में उदात्त कथानक, उदात्त चरित्र-चित्रण, उदात्त भाव-व्यंजना, उदात्त भाषा-शैली तथा उदात्त उद्देश्य को आवश्यक तत्त्व कहा है। महाकाव्य संबंधी पौर्वात्य तथा पाश्चात्य विचारों का समाहार करने पर महाकाव्य के निम्नलिखित लक्षण स्वीकार किये जा सकते हैं जिनके आधार पर सभी कालों, सभी देशों तथा सभी भाषाओं के महाकाव्यों का मूल्यांकन किया जा सकता है :

1. महान कथानक अर्थात् नायक या नायिका या दोनों के सम्पूर्ण जीवन की ऐसी कहानी जिसमें उनके महान, लोक हितकारी कार्यों का वर्णन हो।

2. नायक-नायिका सहित अन्य पात्रों का उदात्त चरित्र-चित्रण।

3. मानव-हृदय के उन भावों का मार्मिक तथा मनोविज्ञान सम्मत चित्रण जो जीवन को सार्थक एवं सरस बनाते हैं। इसी को उदात्त रस-व्यंजना कहा जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. उदात्त भाषा–शैली तथा

5. उदात्त उद्देश्य अर्थात् मानव–जाति के लिए ऐसा संदेश, ऐसा मार्ग–निर्देश जिसके अनुरूप चलकर मानव जाति सुख–शांति से रह सके। जायसी के 'पद्मावत' की परीक्षा इसी कसौटी पर करनी चाहिए।

पद्मावत की कथा में इतिहास तथा कल्पना का सम्मिश्रण है। पूर्वार्द्ध नितांत काल्पनिक नहीं है, वह लोककथा पर आश्रित है। यह लोककथा उतनी ही जनप्रिय है जितनी पौराणिक कथाएं, अत: उसका महत्त्व ऐतिहासिक विषय से कम नहीं है। उत्तरार्द्ध तो इतिहास–प्रसिद्ध घटना पर ही आधारित है। यह सच है कि इसमें नायक–नायिका के सम्पूर्ण जीवन का, उनके द्वारा किये गये जनहित के कार्यों का, लोकरक्षण की भावना का, चित्रण नहीं है क्योंकि वह सम्पूर्ण जीवन–गाथा न होकर केवल प्रेम–कथा है फिर भी उसका कथानक विशाल है, उसका आकार महाकाव्यों जैसा है। उसमें नायक–नायिका के जीवन की अनेक स्थितियों का, अनेक मनोदशाओं तथा अनेक कार्यों का वर्णन है। उसके 58 खंड सर्ग तो नहीं कहे जा सकते, इन खंडों में समानुपात भी नहीं है – कुछ बहुत बड़े हैं जैसे 'राजा गढ़ छेका खंड' और कुछ बहुत छोटे हैं जैसे 'रत्नसेन जन्म खंड'। पर सर्ग–योजना का लक्ष्य होता है – कथा में प्रवाह, घटनाओं में संगुम्फन, कथानक–शिल्प को सुगठित बनाना, शैथिल्य न आने देना–पद्मावत के कथानक में ये सब गुण पाये जाते हैं। वह सुगठित है, उसमें प्रवाह है, कुछ स्थलों को छोड़कर जिन्हें बिल्कुल छोड़ा जा सकता था जैसे स्त्री–भेद खंड या जिन्हें संक्षिप्त किया जा सकता था जैसे 'नागमती वियोग खंड'; सम्पूर्ण कथानक सुनियोजित और सुगठित है। कवि ने नाट्य 'संधियों तथा नाट्य' अवस्थाओं–प्रारंभ, प्रयत्न प्रात्याशा, नियताप्ति तथा फलागम का निर्वाह किया है। आचार्य शुक्ल ने कथा के मार्मिक स्थलों की पहचान तथा उनके सरस वर्णन पर बल दिया है। पद्मावत में अनेक मार्मिक स्थल हैं जैसे कुमारियों की जल–क्रीड़ा, पुत्र के गृह–त्याग के समय मां तथा पत्नी की व्यथा, गोरा–बादल की स्वामिनिष्ठा तथा उनका शौर्य–पराक्रम आदि। प्रकृति–वर्णन और वस्तु–व्यापार वर्णन भी इसमें उपलब्ध हैं। सागर, वन, सरोवर, वाटिका आदि के रम्य दृश्य तथा हाट–बाजार, महल, मृगया, समुद्र–यात्रा और उसकी कठिनाइयों के चित्र जीवन का बृहद् चित्र प्रस्तुत करते हैं।

पद्मावत के प्रमुख पात्र हैं – रत्नसेन, पद्मावती, नागमती, गोरा, बादल, राघवचेतन और अलाउद्दीन। ये सभी पात्र उच्च कुल के हैं। अंतिम दो पात्र खल पात्र हैं, अत: कवि ने उनके दुर्गुणों, चारित्रिक दुर्बलताओं का ही वर्णन किया है। उनमें कोई ऐसा गुण नहीं है – शौर्य, पराक्रम, स्वाभिमान, दर्प आदि जिनके कारण खलनायक भी अपनी छाप छोड़ जाता है। अन्य पात्रों के चरित्र में महाकाव्य के लिए आवश्यक उदात्त पात्रों के सभी गुण हैं। रत्नसेन सच्चा प्रेम–पुजारी है, शूरवीर है, दृढ़ संकल्प वाला है, स्वाभिमानी है। गोरा और बादल सच्चे स्वामिभक्त क्षत्रिय हैं, स्वामी के लिए प्राणों का बलिदान करने वाले परम शूरवीर और निडर योद्धा। दोनों रानियां भी पतिव्रत्य, निष्ठा सदनारी के अन्य सभी गुणों से सम्पन्न स्त्रियां हैं। रत्नसेन धीरोदात्त नायक तो नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसमें कुछ दोष भी हैं – वह पहली पत्नी को छोड़ दूसरी स्त्री के रूप–सौन्दर्य की प्रशंसा सुन उसको पाने के लिए घर से निकल पड़ता है, पद्मावती के अभाव में प्राण देने के लिए आतुर हो उठता है (धैर्य का अभाव)। फिर भी कुल मिलाकर उसमें महाकाव्य का नायक होने की पात्रता है। अत: चरित्र–चित्रण की दृष्टि से पद्मावत एक सफल काव्य है।

'पद्मावत' मुख्यत: प्रेम की पीर का काव्य है, अत: उसका अंगी रस शृंगार है। पर उसमें शृंगार–रस के अतिरिक्त अन्य रसों का भी समावेश है। युद्ध के प्रसंगों में – वीर, रौद्र, वीभत्स और भयानक रस, अद्भुत और अतिप्राकृत घटनाओं के वर्णन में अद्भुत रस, अलौकिक प्रेम की व्यंजना तथा राजा के मन में निर्वेद जाग्रत होने की दशा में शांत रस के दर्शन होते हैं। वात्सल्य की छटा रत्नसेन की माता के उन उद्गारों में मिलती है जो पुत्र के गृह–त्याग के अवसर पर मां के हृदय से निकलते हैं। संयोग–शृंगार के चित्र मर्यादित भी हैं और कहीं–कहीं अश्लीलता की सीमा तक कामोद्दीपक तथा उत्तेजक भी। वियोग–शृंगार के चित्रों में अतिशयोक्ति वीभत्सता ऊहा खटकती है फिर भी उनमें इतनी गंभीरता है कि बिहारी के विरह वर्णन की तरह वह मज़ाक की हद तक नहीं पहुंचा है।

जायसी बहुत बड़े विद्वान, प्रकांड पंडित नहीं थे। उनका अवधी भाषा पर वैसा अधिकार नहीं था जैसा तुलसीदास का। अत: पद्मावत की भाषा ग्रामीण अवधी है पर कवि की विशेषता है कि वह सीधी–सरल–बोलचाल की भाषा में भी भावों को इस प्रकार व्यंजित करता है कि जिस मनोदशा का भी वर्णन अभिप्रेत हो, वह पाठक के मन को गहराई से छूता है, पढ़ने के बाद भी भावों की अनुगूंज सुनाई देती रहती है। मुहावरों, लोकोक्तियों तथा ग्रामीण शब्दों का प्रयोग भाषा को नया तेवर, नयी शक्ति प्रदान करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

निम्नलिखित पंक्तियां इसका प्रमाण हैं –

1. **पिउ सौं कहहूं संदेसड़ा, हे भौंरा ! हे काग !**
   सो धनि विरहे जरि मुई, तेहिंक धुंवा हम्ह लाग॥

2. **यह तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन उड़ाव।**
   मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जहं पांव॥

3. **मोहि जोग सौं काज न बारी।**
   सौंह दिस्टि की चाहनहारी॥

उनकी भाषा सभी प्रकार के भावों का वर्णन करने में सक्षम है। चाहे युद्ध का वर्णन हो, चाहे रूपवती नारी का सौन्दर्य–वर्णन, चाहे विरहिणी की मनोदशा का चित्रण हो, चाहे मनोहर उपवन–वाटिका का दृश्यांकन हो और चाहे सागर के भीषण, रौद्र रूप का वर्णन हो, सर्वत्र वह अपनी कुशल लेखनी, बिम्ब–विधान तथा अलंकारों के प्रयोग से हर एक को सवाक् तथा मूर्त बना देते हैं। उनके नारी रूप–वर्णन की विशेषता जो काव्य को औदात्य प्रदान करती है यह है कि उसके द्वारा उन्होंने परम तत्व की शक्ति और सौन्दर्य का भी संकेत दिया है।

पद्मावती का रूप–वर्णन देखिए –

नैन जो देखा कंवल भा, निर्मल नीर सरीर।
हंसत जो देखा हंस भा, दसन जाति नग हीर॥

या

रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती
रतन पदारथ मानिक मोती।

उन्होंने रीतिकालीन कवियों की तरह अलंकारों का प्रयोग सचेष्ट होकर, चमत्कार उत्पन्न करने के लिए नहीं किया है, वे सहज, स्वाभाविक रूप में आये हैं। अत: वे कहीं भी नहीं खटकते। उनकी भाषा में तीनों गुण–माधुर्य, प्रसाद तथा ओज मिलते हैं। संयोग–शृंगार के स्थलों की भाषा माधुर्य गुण से सम्पन्न है तो युद्ध–वर्णन तथा प्रकृति के भयंकर रूप के चित्रों में उसमें ओज गुण है। सामान्य प्रसंगों की भाषा, जहां कथा सहज गति से आगे बढ़ती है, प्रसाद गुण सम्पन्न है। विरह–वर्णन में जहां कवि फारसी काव्य के प्रभाव के परिणामस्वरूप रक्त–मज्जा, मांस की बातें करने लगता है और अतिशयोक्ति तथा ऊहा से काम लेता है वहां उसका काव्य सहृदय पाठक को अरुचिकर हो जाता है –

विरह सरागद्धि भूजै मांसू
गिरि गिरि परत रकत के आंसू

'पद्मावत' की शैली मिश्रित शैली है। एक ओर उस पर फारसी की मसनवी शैली का प्रभाव है और दूसरी ओर अपभ्रंश भाषा के चरित–काव्यों की शैली का। काव्य के आरंभ में ईश्वर–स्तुति, पैगम्बर की वंदना, गुरु की वंदना, शाहेवक्त की प्रशंसा, कथा का निर्देश, अतिप्राकृत शक्तियों का हस्तक्षेप तथा अलौकिक घटनाएं मसनवी शैली के प्रभाव की द्योतक हैं तो पात्रों का चरित–चित्रण, कथा के माध्यम से सूफी सिद्धांतों का प्रचार तथा अलौकिक प्रसंगों की योजना चरित–काव्यों की तरह है। उनकी शैली की विशेषता है – सांकेतिकता। उसमें रूपक काव्य (एलोगेरिकल पोइट्री) की तरह द्विअर्थक पात्र तथा घटनाएं हैं, कहीं अन्योक्ति है, कहीं समासोक्ति है और इस प्रकार वह लौकिक प्रेम के द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना करती है। शैली की इस गंभीरता के कारण काव्य में औदात्य आ गया जो उसे महाकाव्य बनाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार महाकाव्य का साध्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से कोई एक होना चाहिए। कवि ने पद्मावत में एक और सांसारिक व्यक्तियों और लौकिक जीवन के विविध चित्र प्रस्तुत किये हैं तो दूसरी ओर यह संदेश दिया है कि ईश्वर के प्रति सच्ची प्रेम-भक्ति करने से काम-भाव का उन्नयन करने से, लोक-हित और लोक-रक्षण के कार्य से ही मनुष्य का ऐहिक तथा पारलौकिक जीवन सफल होता है। बीच-बीच में नीति, सदाचार, लोकाचार संबंधी उक्तियां भी उसे लोकमंगल का काव्य बनाती हैं, अत: उसका उद्देश्य उदात्त ही कहा जायेगा।

पाश्चात्य आलोचकों ने इस बात पर बहुत बल दिया है कि महाकाव्य जनता की भावनाओं का, जन-समाज के जीवन का प्रतिबिम्ब होता है और वह राष्ट्र की आकांक्षाओं को वाणी देता है। जायसी की दृष्टि इतनी व्यापक नहीं थी। कदाचित् राष्ट्र और राष्ट्र की आकांक्षाएं तो उनकी समझ के बाहर की बातें थीं। परन्तु एक बात अवश्य है कि पद्मावत में कवि ने अपने समय के समाज का, भारतीय संस्कृति का, तत्कालीन लोक-जीवन, धार्मिक परम्पराओं, विश्वासों, रीति-रिवाजों, रहन-सहन, त्यौहारों-उत्सवों, विवाहादि संस्कारों का विशद वर्णन कर उस समय के समाज को पाठकों के सामने मूर्तिमान कर दिया है।

सारांश यह है कि जायसी का पद्मावत वैसा महाकाव्य तो नहीं कहा जा सकता जैसा वाल्मीकि रामायण, तुलसीदास का रामचरित मानस या कालिदास के रघुवंश, कुमारसंभव आदि महाकाव्य पर उसमें अनेक महाकाव्योचित गुण अवश्य हैं। हम भले ही उसे महाकाव्य न कहें, पर वह एक सफल तथा उत्कृष्ट कोटि का प्रबंध काव्य तो है ही।

6.8 पद्मावत में प्रकृति-चित्रण

मलिक मुहम्मद का जन्म 'जायस' नामक नगर में हुआ था और यह जीवन-भर वहीं रहे। उन्होंने अपना सर्वश्रेष्ठ काव्य-ग्रंथ वहीं रहकर लिखा। वह एक सद्गृहस्थ थे अत: परिवार के भरण-पोषण, आजीविका कमाने से जो समय बचता था, वह काव्य-रचना में लगाते थे। अत: घर से बाहर जाने, प्रकृति का नैसर्गिक सौन्दर्य निहारने, पर्वत, सागर, वन, सरोवर, नदी-नालों की सुषमा देखने के अवसर उन्हें नहीं मिले। पर्वत और सागर तो उन्होंने देखे ही नहीं थे। अत: 'पद्मावत' में सागर, वन-प्रदेश, मानसरोवर आदि के जो चित्र मिलते हैं उनका आधार कवि का सूक्ष्म निरीक्षण और स्वानुभव नहीं है, उनका आधार या तो काव्यानुशीलन है या उनकी कल्पना। 'किलकिला' समुद्र का वर्ण अत्यंत स्वाभाविक है, उसे पढ़कर पाठक के मन में आश्चर्य का भी संचार होता है और भय का भी। जल का विस्तार लहरों की ऊंचाई, भंवरों, उनमें फंसे जहाजों का वर्णन निश्चय ही अत्यंत प्रभावशाली है और इसके पीछे है उनकी कल्पनाशक्ति जिसकी प्रशंसा करनी होगी। समुद्र के जीव-जंतुओं का वर्णन भी नितांत काल्पनिक तथा अत्युक्तिपूर्ण है। लगता है किस्से-कहानियों में पढ़कर या सुनी-सुनाई बातों के आधार पर ही यह चित्र प्रस्तुत किया गया है। सात समुद्रों के नाम पुराणानुरूप हैं। इनमें घृत और मधु होने का वर्णन कल्पना-मात्र है। इसी प्रकार सिंहलद्वीप में 'मानसर' और 'कैलास' में इन्द्र तथा अप्सराओं की बात भी कोरी कल्पना है। प्रबंध-काव्यों में प्रकृति के चित्र या तो पृष्ठभूमि के रूप में अंकित किये जाते हैं अथवा कथा के अंग बन कर आते हैं, अत: आलम्बन रूप में प्रकृति का चित्रण कम ही होता है। पद्मावत में प्रकृति का आलम्बन रूप में संश्लिष्ट चित्रण करने के अवसर तो थे, विशेषत: 'बारहमासा खंड' या षड्ऋतु वर्णन' खंड में, और कुछ स्थलों पर हैं भी, परन्तु अधिकतर कवि ने प्रकृति का उद्दीपन रूप में ही वर्णन किया है। हां, बीच-बीच में प्राकृतिक दृश्यों की झलक अवश्यक मिलती है जैसे बारहमासा खंड के वर्षा ऋतु के वर्णन में –

सावन बरस मेह अति पानी, भरनि भरौं, हौं बिरह झुरानी।
टप टप बूंद परहिं औ ओला, विरह पवन होइ मारे झोला॥

यहां पहली पंक्ति में वर्षा का वर्णन है पर दूसरी पंक्ति में उसके कारण विरह के उद्दीप्त होने की बात कही गयी है। अन्यत्र भी उन्होंने बिजली चमकने, मेघों के गरजने, बूंदों के गिरने, दादुर, मोर, पपीहे के बोलने की बात कही है, पर यह वर्णन कोई संश्लिष्ट चित्र उपस्थित नहीं करता। जहां वातावरण की सृष्टि के लिए प्रकृति का आलंबन रूप में चित्रण किया गया है जैसे सिंहलद्वीप के उपवन-वाटिकाओं का वहां भी वस्तु-परिगणन, प्रणाली के कारण कोई सम्यक् चित्र प्रस्तुत नहीं हो सका है। फलों, फूलों, पक्षियों के नाम

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

गिनाने से तथा अतिशयोक्ति का आश्रय लेने के कारण सारा सौन्दर्य नष्ट हो गया है। अमराई में बहती शीतल पवन सुखदायक होने की बजाय कष्टकर हो गई है, जेठ के महीने में भी वहां रहनेवालों को जाड़ा लग रहा है –

मलस समीर सोहावन छांहा।

जेट जाड़ लागै तेहि मांहा॥

अन्यत्र भी पशुओं, पक्षियों, वृक्षों, पुष्पों, फलों के नाम गिनाकर चित्र पूरा किया गया है। ऐसे काव्य-स्थलों को पढ़ते समय कोई चित्र साकार नहीं होता। वे केवल अर्थ-ग्रहण कराते हैं बिम्ब-ग्रहण नहीं जो काव्य का मुख्य प्रयोजन है। सारांश यह कि पद्मावत में प्रकृति का आलंबन रूप में जो वर्णन हुआ है, उसमें प्रकृति के व्यापारों और वस्तुओं के न तो संश्लिष्ट चित्र हैं और न वे इस बात का साक्ष्य देते हैं कि कवि ने सूक्ष्म निरीक्षण के बाद उनका अंकन किया है। हां, उनके प्रकृति वर्णन की एक विशेषता जो हमारा ध्यान आकृष्ट करती है वह है उसका ग्रामीण लोक-जीवन से नैकट्य। ग्रीष्म ऋतु में सरोवरों का पानी सूख जाता है, तलहटी में दरारें पड़ जाती हैं, वर्षा की आरंभिक झड़ी (दवंगरा) उन दरारों को मिला देती है। इसका वर्णन कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में किया है –

सरवर हिया घटत निति जाई।

टूक टूक होइ कै बिहराई॥

बिहरत हिया करहु पिउ टेका।

दीठि दवंगरा जेखहु एका॥

यद्यपि यहां विरह-व्यथा प्रधान है, प्रकृति-चित्रण गौण, फिर भी कवि की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति तथा ग्रामीण प्रकृति से उसके परिचय का परिचायक है।

अनेक मध्यकालीन कवियों ने समान जायसी ने भी प्रकृति-चित्रण मुख्यत: उद्दीपन रूप में किया है। प्रकृति का सुन्दर रूप संयोगावस्था में नायक-नायिका के हृदय के उल्लास को बढ़ाता है तो विरह के समय वह उन्हें दारुण कष्ट देता है। षड्ऋतु वर्णन में संयोग-शृंगार के चित्र हैं, उनमें प्रकृति नायक-नायिका के मिलन-सुख को और अधिक उद्दीप्त करती है –

वर्षा की जो बूंदे विरहिणी को बाण की तरह लगती हैं वे ही संयोग-दशा में उसे सोने की तरह चमकीली तथा सुहावनी प्रतीत होती हैं और सारा संसार हराभरा दिखाई देता है –

सीतल बूंद ऊंच चौपारा।

हरियर सब देखाई संसारा॥

पद्मावती के पास उसका प्रिय है, अत: प्रकृति के सब पदार्थ उसके लिए सुखकर हैं। इसके विपरीत नागमती विरहिणी है, अत: ये ही पदार्थ उसके लिए अत्यंत कष्टकर हैं :

कातिक सरद चंद उजियारी।

जग सीतल हौं बिरहै जारी॥

प्रकृति के प्रांगण में अन्य बिछुड़े जीवों को मिलते देख तथा स्वयं को प्रिय से वंचित पा उसकी पीड़ा और अधिक तीव्र हो उठती है —

स्वाति बूंद चातक मुख परे।
समुद सीप मोती जब भरे।
सरवर संवरि हंस चलि आवा।
सारस कुरलहि खंजन देखावा॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)/Ladnun

कुल मिलाकर पद्मावत में प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण प्राचीन काव्यों की परम्परा का ही है, लक्षण-ग्रंथों के आधार पर ही है, परन्तु लोक जीवन से संप्रक्ति उसे विशिटता प्रदान करती है। लोकगीतों में चित्रित लोक जीवन के सहज चित्रों और सहज स्वाभाविक मनोभावों के चित्रण से ये स्थल अत्यंत मार्मिक एवं भावपूर्ण बन गये हैं –

बरसै मेघ चुवहि नैनाहा।

छपर छपर होइ रहि बिनु नाहा।

कोरों कहां ठाठ नव साजा ?

तुम बिनु कंत न छाजनि छाजा।

'पद्मावत' का प्रतिपाद्य है – लौकिक प्रेम-कथा द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना। अत: उसके प्रकृति-चित्रण में भी आध्यात्मिक तत्व आ गया है और प्रकृति-चित्रण में रहस्यवादी काव्य की स्पष्ट झलक मिलती है। सृष्टि को, सम्पूर्ण जगत् को ईश्वर की रचना बताते हुए कहीं जिज्ञासा भाव प्रकट किया गया है, सृष्टि के रहस्य को जानने की आतुरता प्रकट की गयी है और कहीं सृष्टि के कण-कण में परमात्मा की ज्योति प्रतिबिम्बित होती दिखाई गयी है। पद्मावती को ईश्वर का प्रतिरूप मानकर कवि कहता है कि सृष्टि के सारे पदार्थों में उसकी छवि विद्यमान है –

नयन जो देखा कंवल भा निर्मल नीर सरीर।

हंसत जो देखा हंस भा दसन जोति नग हीर॥

अन्य अनेक स्थालों पर भी वह प्रकृति के बिम्बों द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना करता है। कवि एक स्थल पर कहता है कि सरोवर (ईश्वर का निवास-स्थान) के निकट जाते ही साधक की भूख-प्यास शांत हो जाती है, उसे अपार आनंद प्राप्त होता है पर सरोवर में वही गोता लगा सकता है जिसे प्राणों का, सांसारिक सुखों का मोह न हो –

देखि रूप सरोवर कै गई पियास और भूख।

जो मरजिया होइ लहै, सो पावै वह सीप॥

सिंहलद्वीप के बाग, बगीचों, सरोवरों, पक्षियों आदि का वर्णन करते-करते, वहां की अमराई की शोभा तथा शीतलता का चित्रण करते-करते कवि ईश्वर का ध्यान करने लगता है और प्रकृति को उसी की शक्ति का प्रसार बताता है –

जेइ पाई वह छांह अनूपा।

फिरि नहि आइ सहै वह धूपा॥

इन पंक्तियों का अर्थ है कि जो साधक ईश्वर का साक्षात्कार कर लेता है वह भवताप से मुक्त हो जाता है, उसे चौरासी लाख योनियों में नहीं भटकना पड़ता, वह आवागमन के चक्र से छूट जाता है।

हिन्दी के छायावादी कवियों ने प्रकृति को जड़ न मानकर उसका चित्रण किया है। उन्होंने उसे मानव के सुख-दु:ख की संगिनी तथा उसके प्रति संवेदनशील चित्रित किया है। जायसी के लिए प्रकृति चेतनासम्पन्न तो नहीं है पर संवेदनशील अवश्य है। नागमती की विरह-व्यथा का प्रभाव प्रकृति पर भी पड़ता है। उसके विरह-ताप से सूर्य तपता है, टेसू के फूल लाल हो गये हैं, पृथ्वी पर ईंगुर और गेरू के पहाड़ बन गये हैं, आकाश के मेघ लाल हो गये हैं। जब वह विरह-वेदना में रात-दिन वनों-उपवनों में रोती फिरती है तब उसके करुण क्रंदन को सुनकर पक्षियों की नींद हराम हो जाती है और उनमें से एक उसकी करुण-कथा सुनकर उसका संदेश राजा तक पहुंचाने के लिए लम्बी तथा विकट यात्रा के लिये तैयार हो जाता है।

फिरि फिरि रोव कोई नहिं डोला।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आधी रात विहंगम बोला।

तू फिरि फिरि दाहै सब पांखी।

केहि देखू रैनि न लावसि आंखी॥

सभी भाषाओं के कवियों ने साम्यमूलक अलंकारों–उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि का प्रयोग करते समय उपमान प्रकृति से चुने हैं। इसे प्रकृति का आलंकारिक रूप में प्रयोग या चित्रण कहा गया है। जायसी ने भी अपने उपमान प्रकृति के विशाल क्षेत्र से लिये हैं। पद्मावती के रूप–वर्णन में उसके अंगों के लावण्य का चित्रण करते समय कवि प्रकृति के विभिन्न उपादानों–पशुओं (मृग, केहरि), पक्षियों (कपोत, मयूर, कोयल), फलों (बिम्बाफल, दाड़िम) पुष्पों (कमल), चन्द्रमा, सर्प, मेघ, बिजली आदि का प्रयोग करता है। भावाभिव्यंजना के लिए भी प्रकृति का उपयोग बड़ी कुशलता से किया गया है। प्रेमी को शरद् ऋतु के चन्द्रमा में अपनी प्रेयसी का दीप्तिमान मुख दिखाई देता है, सावन की कजरारी घटाओं में उसकी केशराशि, बिम्बाफल में उसके ओठों की लालिमा, दंत पंक्ति में अनार के दानों या हीरों की चमक दिखाई देती है। यहां भी जायसी की विशेषता यह है कि उनके अनेक उपमान ग्रामीण प्रकृति से लिये गये हैं। अपनी इसी विशेषता के कारण उन्हें जन–जीवन एवं प्रकृति का चितेरा कवि कहा गया है।

जिस प्रकार संत–प्रवर तुलसीदास ने प्रकृति के माध्यम से उपदेश दिया है, नीति की बातें कहीं हैं, उसी प्रकार जायसी ने भी कहीं–कहीं प्रकृति से दृष्टांत देकर पाठकों को सद्गुण अपनाने तथा दुर्गुण त्यागने का उपदेश दिया है। प्रेम का सच्चा स्वरूप क्या है। इनका वर्णन निम्न पंक्तियों में किया गया है –

मुहमद बाजी प्रेम संग ज्यों भावै त्यों खेल।

तिल फूलहिं के संग ज्यों होत फुलायत तेल॥

'मानसरोदक खंड' में जब हार पानी में गिर जाता है और पद्मावती की सखियां उसे ढूंढ निकालने के लिए गोता लगाती हैं, उस घटना का वर्णन करते हुए भी कवि अप्रत्यक्ष रूप से नीति का उपदेश देता है –

कोइ उठी मोती लेइ, काहू घोंघा हाथ।

कवि का संकेत है कि जो चतुर हैं, सद्गुण सम्पन्न हैं, निष्ठावान है, उन्हीं को तत्त्वज्ञान होता है और वे ही ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं। मूर्खों, अज्ञानियों, माया–मोह में फंसे लोगों को तो घोंघा–सीप जैसी निकृष्ट वस्तुएं ही मिलती हैं।

सारांश यह है कि जायसी उस अर्थ में प्रकृति के कवि नहीं है जिस अर्थ में छायावादी कवि। उन्होंने पूर्ववर्ती भारतीय कवियों की परम्परा का अनुसरण करते हुए प्रकृति का परम्परागत रूपों–उद्दीपन रूप में, आलंकारिक रूप में, उपदेश के रूप में वर्णन किया है या फिर सूफी संत कवि होने के नाते प्रकृति में सर्वत्र ईश्वर की छवि, अल्लाह का नूर देखा है, सृष्टि को उसी का प्रतिरूप माना है। उनके प्रकृति–चित्रण में रहस्यवाद भी है। जिससे विशेषता के लिए वह सदा याद रहेंगे वह है – प्रकृति–चित्रण के लिए लोक–गीतों विशेषत: विरह–गीतों से प्रेरणा प्राप्त कर उन्हीं की शैली तथा भाषा में उनके उपादानों का प्रयोग। साहित्य और लोक–परम्परा का मिश्रण उनके प्रकृति–चित्रण को एक नयी और मोहक भाव–भंगिमा, नया निखार प्रदान करता है, विशेषकर ग्रामीण, साधारण पढ़े–लिखे या अनपढ़ लोगों को।

6.9 पद्मावत की काव्य–कला

जायसी सीधे–सादे ग्रामीण सद्गृहस्थ थे। वह बहु–पठित, विद्वान, प्रकांड–पंडित नहीं थे। मुसलमान होने के कारण वह अरबी–फारसी से तो थोड़ा–बहुत परिचित थे, संस्कृत भाषा का ज्ञान उन्हें सत्संग से ही प्राप्त था। अत: कुल मिलकर उन्होंने अपने समय की बोलचाल की अवधी भाषा का ही प्रयोग अपनी काव्य–रचनाओं में किया है। उनके सर्वश्रेष्ठ काव्य 'पद्मावत' की भाषा भी ग्रामीण, बोलचाल की सहज, स्वाभाविक भाषा है। कहीं–कहीं उसमें एक ओर अरबी–फारसी के सुपरिचित शब्दों, मुहावरों तथा लोकोक्तियों का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रयोग है तो दूसरी ओर संस्कृत के कुछ तत्सम पर अधिकतर तद्भव शब्दों का प्रयोग हुआ है। उनकी भाषा में पांडित्य नहीं है, वह सहज स्वाभाविक भाषा है। पर इस सहज, सरल भाषा में भी उन्होंने अपने भावों की जो व्यंजना की है, वह पाठक के हृदय को स्पर्श करती है, बल्कि कहीं-कहीं तो वह अलंकृत समासयुक्त तथा पांडित्यपूर्ण भाषा की तुलना में कहीं अधिक प्रभाव डालती है। नागमती का विरह-वर्णन इसका ज्वलंत प्रमाण है। जन-भाषा के मुहावरों, सूक्तियों तथा लोकोक्तियों के प्रयोग ने उनकी काव्य-भाषा को और अधिक निखार कर पैना बना दिया है। उनकी भाषा में मैदान में बहने वाली नदी का सहज प्रवाह है।

'पद्मावत' की भाषा का सबसे बड़ा गुण है उसका माधुर्य, प्रवाह तथा भावाभिव्यक्ति की शक्ति। उसमें संस्कृत की कोमलकांत पदावली की मधुरता नहीं है, वह विद्यापति की काव्य-भाषा के समान 'मिट्ठल वयना' की अर्थात् बोलचाल की भाषा की मिठास लिये हुए है। जहां तुलसीदास की अवधी भाषा पांडित्यपूर्ण है, संस्कृत की शब्दावली के कारण आतंकित करती है, वहां जायसी की भाषा प्रचलित लोकभाषा है।

पिउ सौं कहेहु संदेसड़ा, है भौंरा ! हे काग !

सो धनि विरहै जरि मुई, तेहिक धुंआ इम लागि।

आचार्य शुक्ल ने लिखा है : अवधी का खालिस, बेमेल मिठास के लिए 'पद्मावत' का नाम बराबर लिया जायेगा।' अरबी-फारसी का प्रभाव शब्द-चयन तथा शब्द-संरचना, मुहावरों तथा लोकोक्तियों तक ही सीमित है और वह भी केवल थोड़े से स्थानों पर। फारसी की तरह उन्होंने शब्दों का क्रम बदल दिया है, संज्ञा पहले है, विशेषण बाद में जैसे 'लोक परवान' (पत्थर की लकीर) या 'किरिन रवि' (सूर्य की किरण)। उर्दू शब्दों का प्रयोग भी दरबार आदि के चित्रण में मिलता है। अतः प्रसंग को देखते हुए यह प्रयोग खटकते नहीं बल्कि वातावरण की सृष्टि में सहायक होने के कारण अधिक सटीक लगते हैं।

मुहावरा भाषा की लक्षणा शक्ति पर आधारित होता है, अतः उसमें वचन-वक्रता का चमत्कार होता है। उसका प्रयोग भाषा को पैना बना देता है। जायसी की भाषा में मुहावरे अनायास आ गये हैं। लोकोक्तियां जीवनानुभव और लोकचेतना से जुड़ी होती हैं। पद्मावत में स्थान-स्थान पर लोकोक्तियों का प्रयोग किया गया है। यहां कुछ उदाहरण देते हैं –

1. गऊ सिंह रेंगई एक बाटा।

2. नीर-खीर छाने दरबारा।

3. घर के भेद लंक जनु फूटी।

4. बोवै बबुर लुनै कित धाना।

वैचित्र्यपूर्ण उक्ति को सूक्ति कहते हैं। उसमें वाक् चातुरी ही प्रधान होती है, बात को अनूठे ढंग से कहा जाता है। नीति-संबंधी छंदों में यह चमत्कार प्रायः देखा जाता है। रहीम अपनी सूक्तियों के लिए प्रसिद्ध हैं। पद्मावत में भावव्यंजना के अंतर्गत चमत्कार-योजना भी है।

भाषा में तीन गुण माने गये हैं – माधुर्य, ओज तथा प्रसाद गुण। पद्मावत की भाषा में प्रसंगानुरूप तीनों गुण मिलते हैं। शृंगार रस के चित्रण में माधुर्य है तो युद्ध-वर्णन में ओज।

माधुर्य गुण-हौं बारी औ दुलहिनि, पीऊ तरुन सह तेज।

ना जानौं कस होइहि चढत कंत के सेज॥

ओज गुण-रूंड मुंड सब टूटहिं त्यौं अखर और मूंड।

तुरग होहि विनु कांधे, हस्ति हौंहि बिनु सूंड़।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसाद गुण–आयां पवन बिछोह कर, ताप परा बेकरार।

तरिवर तजा जो चूरि कै, लागै केहि के डार।

अलंकार योजना – अलंकारों का प्रयोग उक्ति को चमत्कारपूर्ण बनाने के लिए तो किया ही जाता है, उसकी सहायता से स्वरूप–बोध होता है, भाव को स्पष्ट एवं तीव्र तथा अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाया जाता है। अधिकतर अलंकारों का विधान सादृश्य के आधार पर होता है। जायसी के काव्य में भी अधिकतर सादृश्यमूलक अलंकारों–उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक का ही प्रयोग हुआ है। उन्होंने भाव के अनुरूप ही अनुरंजनकारी प्रस्तुत वस्तुओं (उपमानों) की योजना की है। उनके अधिकांश उपमान तो परंपरानुगत ही हैं, परन्तु कुछ उनकी मौलिक उद्‌भावना तथा कल्पनाशक्ति के परिचायक हैं, विशेषकर लोक–जीवन तथा ग्रामीण प्रकृति के चुने गये उपमान –

अस वै नयन चक्र दुइ, भंवर समुद उलथाहिं।

जनु जिउ घालिहि डोल भहं, लेइ भावहि लेइ जाहि॥

या

दारिउं सरि जो न कै सका, फाटेउ हिया दरकि।

हेतूत्प्रेक्षा का प्रयोग जायसी के काव्य में सर्वाधिक हुआ है। दृष्टांत, व्यतिरेक, रूपकातिशयोक्ति के उदाहरण भी उनके काव्य में मिलते हैं –

दृष्टांत – **का या जोग कथनि के कथे।**
निकसै धिउ न बिना दधि मथे॥

व्यतिरेक – **का सरबरि तेहि देउं मयंकू।**
चांद कलंकी, वह निकलंकू॥

रूपकातिशयोक्ति –**राते कंवल करहिं अलि भंवा।**
घूमहिं जाति चाहंहि अप सवां॥

शब्दालंकारों का प्रयोग भी यत्र–तत्र किया गया है, पर उनका अलंकार–प्रयोग सचेष्ट न होकर स्वाभाविक है।

अनुप्रास – **भूमि जो भींजि भएऊ सब गेरू।**
पपिहा पीउ पुकारत पावा।

यमक – **गई सो पूजि मन पूजि न आसा।**

काव्य–कला की दृष्टि से उनकी भाषा सर्वथा निर्दोष नहीं है। उनकी भाषा तुलसीदास की भाषा की तरह सुव्यवस्थित नहीं है। जगह–जगह उसमें न्यूनपदत्त्व दोष पाया जाता है। विभक्तियों, सर्वनामों, अव्ययों का लोप बहुत मिलता है। इस लोप के कारण अर्थ समझना कठिन हो जाता है, बहुत माथा–पच्ची करनी पड़ती है। जैसे, 'परा खड़ग जनु परा निहाऊं' स्थूल दृष्टि से इसका अर्थ होगा – खड़ग ऐसा पड़ा मानो निहाई पड़ी, पर कवि का अभिप्राय है – खड़ग निहाई पर पड़ा। कहीं–कहीं उन्होंने शब्दों का परम्परागत अर्थ में प्रयोग न कर कुछ विलक्षण अर्थ में प्रयोग किया है। 'इन्द्र' की जगह 'इन्दू' का प्रयोग उचित नहीं है। इसी प्रकार 'निरास' का प्रयोग 'जो किसी का आश्रित न हो' के अर्थ में तथा 'बिसवास' का 'विश्वासघात' के अर्थ में तथा 'बिसासी' का 'विश्वासघाती' के अर्थ में प्रयोग बिल्कुल विलक्षण है और पाठक को भ्रम में डालता है। अप्रचलित शब्दों – अहम (लालसा) नौजि (ईश्वर) जहिया (जब) तीवई (स्त्री) तथा नए–पुराने पूरबी–पश्चिमी भाषा–रूपों का प्रयोग उनकी भाषा को अव्यवस्थित बना देता है।

फारसी प्रभाव के कारण भी उन्होंने जो उपमान चुने हैं, सादृश्य–विधान किया है, वह वीभत्स हो गया है, पाठक के मन में वितृष्णा पैदा करता है, जैसे विरह–वर्णन की ये पंक्तियां –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बिरह सरागन्हि भूजै मांसू, ढरि ढरि परहिं रकत कै आंसू

'नखशिख खंड' में पद्मावती की हथेलियों और अंगुलियों का वर्णन करते समय उन्हें रक्त में भीगी बताना भी ऐसा ही है।

हिया काढ़ि जनु लीन्हेसि हाथा।
रूहिर भरी अंगुरी तेहि साथा॥

इसी प्रकार कहीं वीर रस की सामग्री में शृंगार रस की तथा शृंगार रस की सामग्री में वीर रस की सामग्री का आरोप रस-भंग करता है।

सेंदुर आगि सीस उपराहीं,
पहिया सखिन चमकत जाहीं।

सिन्दूर की लाली की तुलना आग से करना कदापि उचित नहीं है। इसी प्रकार कोमलांगी स्त्री की तुलना तोप से कर कवि ने विरसता उत्पन्न कर दी है।

कुच गोला दुइ हिरदय लाई।
अंचल धुणा रहै छिटकाई॥

सारांश यह कि पद्मावत की भाषा ठेठ, बोलचाल की देहाती अवधी प्रतीत होती है परन्तु सहज, सरल स्वाभाविक होते हुए भी उसमें काव्य-भाषा के दोनों गुण-माधुर्य तथा भावों को अभिव्यक्त करने वाली क्षमता विद्यमान है। बिम्ब-योजना में कवि पूर्णत: सफल रहे हैं। अत: अवधी भाषा के कवियों में तुलसीदास के बाद जायसी का ही नाम लिया जाता है।

6.10. पद्मावत में भारतीय तथा अभारतीय तत्त्वों का मनोरम समन्वय हुआ है।

सूफी मत इस्लाम की शरीअत (कर्म-कांड) की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप उसी प्रकार उद्भूत हुआ जिस प्रकार वैदिक कर्म-कांड के विरुद्ध प्रतिक्रिया के फलस्वरूप वैष्णव धर्म का आविर्भाव हुआ था। यद्यपि सूफी मत में इस्लाम के अनेक मूल सिद्धांत समाविष्ट हैं, तथापि बहुत-सी बातों में वह उससे भिन्न है। भारत में सूफी मत का प्रचार बारहवीं शताब्दी से हुआ जब 'अल्हुज्वरी' नामक सूफी संत ने यहां आकर उसका प्रचार करना शुरू किया। 'आइने-अकबरी' में सूफियों के चौदह सम्प्रदायों का उल्लेख है, परन्तु भारत में चिश्तिया सम्प्रदाय ही सर्वाधिक प्रसिद्ध हुआ। इसी सम्प्रदाय की सातवीं पीढ़ी में ख्वाजा मुईउद्दीन नामक प्रसिद्ध सूफी हुए। जायसी इन्हीं के शिष्य थे।

काव्य जीवन की अभिव्यक्ति है। अत: भले ही कोई कविता सिद्धांत-विशेष का प्रचार करने के लिए लिखी जाए, उसमें समन्वय की भावना आ ही जाती है। सूफी कवियों ने भारत के आकर जब कविता करनी प्रारंभ की, तो उनके काव्य में उनके अपने विचारों के साथ भारतीय विचारों और जीवन-पद्धति का सामंजस्य हो जाना स्वाभाविक ही था। व्यक्ति जहां रहता है, वहां की बातें उस पर प्रभाव डालती ही हैं, उधर उसकी मूल बातें जो वह मां की घुट्टी के साथ प्राप्त करता है उसे नहीं छोड़ती। ऐसी हालत में कवि दोनों का समन्वय करता है, भारत के सूफी कवियों ने भी यही किया।

शुक्ल जी ने इसी समन्वय को सूफियों का सबसे बड़ा कृतित्व माना है, ''इन्होंने मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियां हिन्दुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था, प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी। वह जायसी द्वारा पूरी हुई।'

सूफियों का उद्देश्य एक ओर धार्मिक कट्टरता के विरुद्ध उदारतापूर्ण दृष्टिकोण अपनाकर समाज में शांति और सुव्यवस्था उत्पन्न करना था और दूसरी ओर अपने मत का प्रचार करना था। इसीलिए इन कवियों ने अपने काव्य में भारतीय और इस्लामी दोनों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संस्कृतियों का सम्मिश्रण किया है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने इस तथ्य की ओर इंगित करते हुए लिखा है, ''प्रेम-काव्य में सबसे विचित्र बात यह है कि कथानक सम्पूर्ण रूप में भारतीय हैं। उनमें पात्रों के आदर्श भी एकांत रूप से हिन्दू धर्म से पोषित हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि हिन्दू वातावरण रहते हुए भी निष्कर्ष मुसलमानी सिद्धांतों से पूर्ण हैं। कला के क्षेत्र में भी यह समन्वय स्पष्ट है.... वस्तुत: प्रेम-काव्य के कवियों ने हिन्दू शरीर में मुसलमानी प्राण डाल दिये हैं।'

सूफी कवियों ने ज्ञान से अधिक प्रेम की पीर का महत्त्व दिया है। डॉ. वर्मा के शब्दों में, ''प्रेम ही कर्म है और प्रेम ही धर्म है। प्रत्येक कहानी में प्रेम का ही निरूपण है। नि:स्वार्थ प्रेम ही सूफी मत का प्राण है। प्रेम के साथ-साथ उसमें प्रेम का नशा भी प्रधान है।.....उसी नशे के खुमार की बदौलत ईश्वर की अनुभूति का अवसर मिलता है।' 'पद्मावत' में जिस प्रेम-तत्त्व का समावेश किया गया है वह अभारतीय ही है। सूफी परमात्मा को प्रियतम कहते हैं, परमात्मा ही उनका माशूक है, उसकी कल्पना वह स्त्री के रूप में करते हैं। 'पद्मावत' में भी पद्मावती को ईश्वर कहा गया है। सूफी मत में इश्क-मजाजी ही इश्क-हकीकी तक पहुंचने का सोपान है, उसी के द्वारा बंदा अपनी खूदी को मिटाकर खुदा तक पहुंचता है। 'पद्मावत' में भी कवि ने लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम की व्यंजना की है। प्रेम का विकास भी फारसी पद्धति पर हुआ है – प्रेम का उदय पहले नायक में होता है और वह नायिका की प्राप्ति के लिए घर-बार छोड़ निकल पड़ता है, विघ्न-बाधाओं को पार करता हुआ आगे बढ़ता है और अंत में नायिका को पा ही लेता है। 'पद्मावत' के प्रेम का स्वरूप मसनवियों का-सा है जो ऐकान्तिक और लोक-बाह्य होता था। यहां केवल बीच-बीच में (कदाचित् भारतीय प्रभाव के फलस्वरूप) लोक-व्यवहार संलग्न प्रेम की झलक दिखाई गई है। इस प्रकार कुल मिलाकर 'पद्मावत' में जिस प्रेम-तत्व का निरूपण किया है, वह अभारतीय ही अधिक है क्योंकि हमारे यहां तो ईश्वर की कल्पना पति रूप में की जाती है, मीरा 'प्रेम-दिवाणी' है, कबीर भी-राम की बहुरिया हैं : तड़पने का भार भी बेचारी स्त्री पर डाला जाता है जबकि 'पद्मावत' में तड़पता रत्नसेन है। 'जोगी खण्ड' में रत्नसेन की जो अवस्था दिखाई गई है वह पूर्णरूपेण अभारतीय ही है –

तजा राज राजा भा जोगी।
औ किंगरी कर गहे वियोगी॥

तन बिसंभर मन बाउर लटा।
अरुझा प्रेम, परी सिर जटा॥

चन्द्र-बदन और चन्दन-देहा।
भसम चढ़ाइ कीन्ह तन खेहा॥

उसका अपनी विवाहित पत्नी को छोड़ परस्त्री से प्रेम करना तो भारतीय विचारधारा और नीति के बिल्कुल विपरीत है।

'पद्मावत' में प्रतिपादित सिद्धांतों में भी भारतीय और अभारतीय तत्त्वों का मिश्रण पाया जाता है। सूफी ईश्वर को निर्विकार और निर्विकल्प मानते हैं। उन्होंने उसे 'हक' कहा है और उसकी आराधना स्त्री रूप में की है। वेदांत के समाने वे भी आत्मा को ईश्वर का अंश मानते हैं और ईश्वर के साथ तादात्म्य को ही सिद्धि समझते हैं। यही कारण है कि 'अहं ब्रह्मोऽस्मि' के समान वे भी 'अनलहक' का नारा लगाते हैं। उपनिषदों का प्रतिबिम्बवाद भी सूफियों में मिलता है। उनकी दृष्टि में ईश्वर की छवि ही, उसका व्यापक सौन्दर्य ही, सृष्टि के कण-कण में समाया हुआ है। इस प्रकार सूफियों की रहस्य-भावना भारतीय अद्वैतवाद से बहुत मिलती-जुलती है। आत्मा-परमात्मा की एकता और ब्रह्म-जगत् की एकता इन दोनों का सम्मिलित रूप सर्ववाद (Pantheism) है और वह हमें 'पद्मावत' में मिलता है। उसी से प्रभावित हो जायसी प्रकृति की सम्पूर्ण विभूतियों में परम सत्ता का अनुभव करते हैं –

रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती।
रतन पदारथ मानिक मोती॥

जहं जहं विहंसि सुभावहिं हंसी।
तहं तहं छिटकि जोति परगसी॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वह ईश्वर को पारस-रूप मानते हैं जिसके स्पर्श मात्र से सौन्दर्य की सृष्टि हो जाती है :

नयन जो देखा कंवल भा, निरमल नीर शरीर।
हंसत जो देखा हंस भा, दसन ज्योति नग हीर॥

भारतीय दर्शन के अनुरूप सूफी जगत् को ईश्वर का प्रतिबिम्ब मानते हैं और यह स्वीकार करते हैं कि वह सर्वव्यापक होते हुए भी पकड़ में नहीं आता :

सरवर देख एक मैं सोई।
रहा पानि पैयान न होई॥

सूफियों का विश्वास था कि ईश्वर एक है, यद्यपि उसके नाम अनेक हैं और उस तक पहुंचने के मार्ग भी अलग-अलग हैं -

विविधना के मारग हैं तेते, सरग नखत जन रोंवा जेते॥

यही उदार तथा सहिष्णुतापूर्ण दृष्टिकोण इन कवियों को मानवता का परम उपासक बना देता है और इसी कारण उनका सुझाव है कि संसार में रहकर ही प्रकृति-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर तथा मानवता के प्रति कल्याण-भावना रख ईश्वर को पाया जा सकता है।

'पद्मावत' में साधना-पद्धति का वर्णन करते हुए कवि ने अनेक तत्त्व जैसे, हाल की दशा (रत्नसेन का पद्मावती का रूप-वर्णन सुन मूर्च्छित होना), इलहाम (शिव की भविष्यवाणी) आदि भी सूफियों से ग्रहण किये हैं। ईश्वर सान्निध्य से प्राप्त आनन्द की तुलना शराब से करना भी अभारतीय प्रभाव का द्योतक है। परन्तु उन्होंने साधना-मार्ग के वर्णन में भारतीय हठयोग, रसायन, तंत्र आदि की शब्दावली भी ग्रहण की है। सिंहलद्वीप के वर्णन में हठयोगियों की पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग कर कवि ने पिंड का भी वर्णन किया है -

नवौ खंड नौ पौरी और तहं बज्र केवार।
चारि बसेरे सौं चढ़ै, सत सौ उतरै पार॥

अथवा

नौ पौरी पर दसवं दुआरा, तेहि पर बाज राज घरियारा।

यहां हठयोग के अनुसार शरीर के नौ छिद्रों, ब्रह्मरन्ध्र, अनहद नाद आदि का वर्णन किया गया है। भिन्न-भिन्न चक्रों को पार करती कुण्डलिनी, सहस्रार, कैलाश, सात खंडों आदि का वर्णन भी योग-ग्रंथों के आधार पर हुआ है। जिस प्रकार सरहपाद उस परमलोक का वर्णन कहते हुए लिखते हैं -

जंहि मन पवन न संचरह, रवि शशि नाह प्रवेश।
तंहि बट चित्त बिसाम कर, सरहे कहिय उवेश॥

उसी प्रकार जायसी कहते हैं -

तहां न चांद न सुरुज असूझा।
चढ़ै सो जो उस अगुमन बूझा॥

जायसी ने चांद और सूरज का प्रतीक हठयोग से ग्रहण किया है। 'पद्मावत' में रत्नसेन को सूर्य तथा पद्मावती को चांद कहा गया है और फिर इन दोनों के प्रेम और विवाह का वर्णन है। योग-ग्रंथों में बिन्दु को शिव और रजस को शक्ति तथा उन्हें चन्द्र-सूर्य भी कहा गया है तथा इन दोनों के योग से परमपद की प्राप्ति की बात कही गई है।

'गोरक्षशतक' में कहा गया है कि एक स्तम्भ, नौ द्वार वाले शरीर-रूप गृह को जिसमें पांच अधिदेवताओं का वास है, बिना जाने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

योगी कैसे सिद्धि-लाभ कर सकता है। जायसी भी इस रहस्य को जानते हैं –

नौ पौरी तेहि गढ़ मंझियारा।
औ तंह फिरहिं पांच कोतवारा॥

दसव दुआर गुपुत एक ताकी।
अगम चढ़ाव बाट सुठि बांकी॥

गढ़ तर सुरंग कुंड अवगाहा।
तेहि मंह पंथ कहौ तोहि पांहा॥

इस प्रकार जायसी के 'पद्मावत' में हठयोग की भी बहुत-सी बातें हैं। कवि ने सूफी साधना और भारतीय चिंतनधारा का सुन्दर समन्वय कर दिया है, वे एक-दूसरे से इतनी घुलमिल गई हैं कि पृथक् नहीं की जा सकतीं। सूफी साधना की चार अवस्थाओं-शरीअत, तरीकत, मारिफत और हकीकत का संकेत भी 'चार बसेरों' के रूप में में किया गया है।

मानव के तत्त्वों का वर्णन भी इस्लाम के अनुरूप किया गया है और वे चार तत्व बताये गये हैं – नफ्स (इन्द्रियां), रूह, क़ूब (हृदय) और अक़्ल (बुद्धि) तथा कहा गया है कि जब तक नफ्स को नहीं मारा जाएगा, तब तक ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। वह पीर या गुरु का पथ-प्रदर्शन भी इसके लिए आवश्यक मानते हैं। 'पद्मावत' का गुरु-रूप तोता ही रत्नसेन के हृदय में विरह की चिंगारी डालता है, वही उसे पद्मावती रूप ईश्वर से मिलाता है। यदि शैतान (अलाउद्दीन माया सुल्तानू) की कल्पना सूफी-सिद्धांतों के अनुसार की गई है, तो माया (नागमती या दुनियां-धंधा) शंकर के अद्वैतवाद से ली गई है। वैष्णवों की अहिंसा का समर्थन यदि निम्न पंक्तियों में हुआ है –

जिन्ह जस मांसू भरवा परावा।
तस तिन्ह कर लेइ औरन खावा॥

तो अहंभाव की निन्दा इन शब्दों में की गई है –

हौं हौं कहत सबै मति खोयी।

सृष्टि की उत्पत्ति के संबंध में जायसी ने जो भी विचार 'पद्मावत' में व्यक्त किए हैं, वे सब इस्लाम और 'कुरान शरीफ' की मान्यताओं के अनुकूल हैं। यद्यपि सृष्टि का वर्णन करते हुए कवि ने हिन्दू पुराणों के अनुसार 'सप्तद्वीप' और 'नव खंडों' का भी उल्लेख किया है, पर प्रधानत: यह वर्णन मुसलमानों के विश्वास के अनुरूप ही है। जायसी मानते हैं कि ईश्वर ने पहले नूर या ज्योति उत्पन्न की, मुहम्मद को अपने नूर के रूप में पैदा किया और फिर मुहम्मद के लिए ही स्वर्ग और पृथ्वी की रचना की –

संवरौ आदि एक करतारू।
जेइ जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू।

कीन्हेसि प्रथम जाति परगासू।
कीन्हेसि तेहि पिरीत कविलासू॥

कीन्हेसि धरती सरग पतारू।
कीन्हेसि बरन बरन अवतारू॥

भूतों की उत्पत्ति का जो क्रम 'पद्मावत' में बताया गया है, वह भी उपनिषदों में प्रतिपादित क्रम से मेल नहीं खाता। जायसी ने हिन्दू मत के अनुसार पंच तत्त्व न मानकर केवल चार तत्त्व-पवन, जल, पृथ्वी और अग्नि-माने हैं, आकाश को छोड़ दिया है, जो यूनानी विचारधारा के अधिक निकट हैं –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पवन होइ भा पानी, पानी होइ भइ आगि।
आगि होइ भइ माटी, गोरखधंधै लागि॥

वह आकाश का वर्णन यूनानी विचारधारा के अनुरूप ही करते हैं और उसे नक्षत्रों से जड़ा शामियाना बताते हैं। 'पद्मावत' की यह मान्यता कि वर्तमान सृष्टि प्रथम और अंतिम है, इस्लामी मत के ही अनुकूल है। मुसलमानों का विश्वास है कि इस सृष्टि के अंत में कयामत (प्रलय) के दिन सब मनुष्यों के कर्मों का विचार खुदा करता है। 'पद्मावत' में यह विचार इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है –

गुन अवगुन विधि पूछन, होइहि लेख और जोख।
वै चिनउब आगे होइ, करब जगत कर मोख॥

इस्लाम के अनुसार स्वर्ग के मार्ग में एक पुल पड़ता है जिसे 'पुले सरात' कहते हैं। पुण्यात्माओं के लिए तो यह पुल राजमार्ग बन जाता है, परन्तु कुटिल पापियों के लिए वह तलवार की धार के समान है। 'पद्मावत' में भी यही बात कही गई है –

खाडै चाहि पैनि बहुताई।
बार चाहि ताकर पतराई॥

सूफियों की मान्यता है कि प्रत्येक प्राणी अपनी-अपनी बोली में ईश्वर का स्तवन और स्मरण करता है। सूफी मत की इसी भावना को स्वीकार करते हुए जायसी लिखते हैं –

जाव पंखी जगत के भरि बैठे अमराउं।
आपनि आपनि भाषा लेंहि दई कर नाउं॥

सूफी 'कुरान शरीफ' को सार ग्रंथ मानते हैं और मुहम्मद साहब को महान् पुरुष मान उनका पूर्ण आदर करते हैं, भले ही इस्लाम की सभी बातें उन्हें स्वीकार नहीं है। 'पद्मावत' में कुरान और मुहम्मद दोनों के प्रति आदर-भाव प्रकट किया गया है। कहीं-कहीं तो सूफी मत के सिद्धांतों को ज्यों का त्यों पद्यबद्ध कर दिया गया है –

सांची राह सरीयत जेहि बिस्वास न होय।
पांव राखि तेहि सीढ़ी, निभरम पहुंचे सोय॥

साधक की दो अन्य अवस्थाओं-हकीकत या मारिफत के लिए वह कहते हैं :

राह हकीकत परै न चूकी।
पैठि मारिफत पर पहूंची॥

सिद्धांत-चर्चा में जायसी का झुकाव भले ही सूफी मत की ओर अधिक रहा हो, पर पात्रों के चरित्र-चित्रण और उनके जीवन-अंकन में कवि ने भारतीय आदर्श और भारतीय संस्कृति, विशेषत: लोक-संस्कृति का ही आश्रय लिया है। उन्होंने हिन्दुओं के अंधविश्वास, जादू-टोना, लोकोत्सव, विवाह, रहन-सहन, आचार-व्यवहार, यात्रा, युद्ध आदि का जैसा चित्रण किया है उससे प्रकट है कि वह भारतीय जन-जीवन और उसकी संस्कृति से परिचित ही न थे, उस पर मुग्ध भी थे। हिन्दू दाम्पत्य-जीवन की पवित्रता, हिन्दू गृहिणी का आदर्श, सपत्नी-कलह, स्वामिभक्ति, मातृ-गृह से विदा का दृश्य, सरोवर-स्नान, झूला, पांसा या चौपड़ का खेल, सखियों का नवविवाहित वर से हास-परिहास आदि सभी के चित्रण द्वारा कवि ने अपना भारत के प्रति प्रेम व्यक्त किया है।

जब हम 'पद्मावत' के काव्य-शिल्प पर विचार करते हैं, तब भी हमें उसमें भारतीय-अभारतीय तत्त्वों का सम्मिश्रण प्राप्त होता है। एक ओर उसमें भारतीय कथानक-रूढ़ियों-चित्र-दर्शन या स्वप्न-दर्शन से प्रेम का अंकुरित होना, पशु-पक्षियों की बातचीत और पक्षी-दूत की कल्पना, मंदिर में नायक-नायिका की भेंट, पपीहा और स्वाति नक्षत्र विषयक मान्यताएं प्राप्त होती हैं, तो दूसरी ओर ईरानी काव्य-रूढ़ियों-देवों और परियों, अजगर, हाथी, गरुड़, राक्षस और शैतान आदि से संबद्ध संकेत मिलते हैं। पौराणिक आख्यान भी भारत तथा ईरान दोनों से लिए गए हैं – एक ओर 'पद्मावत' में आदम की उत्पत्ति और गेहूं खाने के अपराध में स्वर्ग से निष्कासन का आख्यान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मिलता है तो दूसरी ओर सैरन्ध्री, कुबेर, हनुमान, रावण, नारद से संबद्ध आख्यानों का संकेत या विवरण प्राप्त होता है। विरह-वर्णन में भी लेखक ने एक ओर भारतीय पद्धति अपनाते हुए बारहमासे का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है, उद्दीपन विभाव के अंतर्गत ऋतुओं, वन-उपवन और सखा-सखी का समावेश किया है, तो दूसरी ओर फारसी काव्य से प्रभावित हो अभारतीय तत्त्वों का प्रयोग किया है। नागमती के विरह-वर्णन में जहां एक ओर हिन्दू सद्गृहिणी की पीड़ा साकार हो उठी है, वहां कहीं-कहीं फारसी प्रभाव के कारण वीभत्सता और 'सीके कबाब' की पद्धति भी आ गई है :

विरह सरागन्हि भूंजै मांसू।
गिरि गिरि पैर रकत कै आंसू॥

कटि-कटि मांस सराग पिरोवा।
रकत कै आंसु मांसु सब रोवा॥

विरह के प्रसंगों में ही नहीं संयोग के चित्रों में भी यह वीभत्सता फारसी प्रभाव की द्योतक है। बादल की नवविवाहिता वधू के कटाक्षों का वर्णन इस पद्धति पर हुआ है –

मकु पिउ दिस्टि समानेउ सालू।
हुलासा पीढि कढ़ावौं साल॥

कुच-तूंबी अब पीठि गड़ोवौं।
गहै जो हूकि, गाढ़ रस धोवौं॥

भारतीय में सुखांत काव्य लिखने की परम्परा रही है जबकि पश्चिम में दुखांत रचनाओं को अधिक महत्त्व दिया जाता रहा है। अरस्तू ने त्रासदी को जितना महत्त्व दिया है उतना सुखान्तिका (Comedy) को नहीं दिया। जायसी ने 'पद्मावत' का अंत करुणा में ही किया है, अत: वह भी उन पर पश्चिम के प्रभाव का परिचायक है।

'पद्मावत' मसनवी शैली का ग्रंथ है, अत: उसमें आरम्भ में हम ईश-वंदना, मुहम्मद और उसके सहयोगियों की प्रशंसा शाहे-वक्त का स्तवन, कवि की गुरु-परम्परा का उल्लेख, सम्प्रदाय का उल्लेख, रचना-काल, कवि-परिचय आदि तत्त्व पाते हैं। काव्य की रचना भी सर्गबद्ध न होकर खंडों के आधार पर की गई है और प्रत्येक खण्ड का नाम घटना या प्रसंग-विशेष के आधार पर रखा गया है। कहीं-कहीं अलंकार-योजना, उपमान-योजना, उपमान-चयन, दृश्य-वर्णन आदि में भी फारसी प्रभाव दिखाई पड़ता है। उदाहरण के लिए, नख-शिख-वर्णन के प्रसंग में कवि ने नायिका की हथेली का वर्णन करते हुए जो उत्प्रेक्षा की है, वह नितांत अभारतीय है –

जानो रकत हथोरी बूड़ी।
रवि परभात तात वै जूड़ी॥

हिया काढ़ि जनु लीन्हेसि हाथा।
रुधिर भरी अंगुरी तेहि साथा॥

फारसी के शायरों से ली गई उक्तियां भी ज्यों की त्यों 'पद्मावत' में देखी जा सकती हैं। अलाउद्दीन के आक्रमण के समय घोड़ों की टाप से उठी हुई धूल का वर्णन फिरदौसी के 'शाहनामा' वर्णन से प्रभावित है। यह निम्न पंक्तियों की तुलना फिरदौसी के शेर से तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है –

सत खंड धरती भर घट खण्डा।
ऊपर अस्ट भये बरहमंडा॥

यही भाव फिरदौसी के निम्न शेर में है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जे सुम्मे सिनौरां दश पहने हस्त।
जमीं राश शुद्री आत्मा गरत नृरत॥

फारसी कहावतें भी जहां-तहां मिलती हैं।

परन्तु कवि ने अवधी भाषा, दोहा-चौपाई छंद, समासोक्ति आदि अलंकारों का उपयोग कर उसे भारतीय रंग भी देने में सफलता पाई है।

भारतीय तथा अभारतीय तत्त्वों के मिश्रण ने इस काव्य को जो सौष्ठव प्रदान किया है उसे देखकर राष्ट्र कवि दिनकर के शब्द स्मरण हो आते हैं ''भारत में साहित्य और संस्कृति के सबसे सुन्दर फूल तब खिले, जब कोई बाहर की धारा आकर हमारी धारा से टकरा गई.... जब मुसलमान आये, यहां भाषा का विकास हुआ और शृंगार तथा रहस्यवाद की कविताओं में एक नयी तड़प पैदा हुई।'

6.11 पद्मावत का प्रबंध-कौशल

उत्तर - अवधी साहित्य-गगन में दो जगमगाते नक्षत्र आज भी अपनी ज्योति विकीर्ण कर अपने चारों ओर प्रकाश कर रहे हैं। वे हैं गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस' और जायसी का 'पद्मावत'। दोनों ही महाकाव्य हैं और उत्तम काव्योचित गुणों से सम्पन्न हैं। क्या प्रबंध-कल्पना, क्या संबंध-निर्वाह और क्या भाषा एवं कला-सौष्ठव सभी दृष्टियों से ये अवधी-काव्य के शीर्ष ग्रंथ हैं। जायसी ने यद्यपि दो ग्रंथ और भी लिखे, पर उनकी कीर्ति का स्तम्भ 'पद्मावत' ही है।

'पद्मावत' महाकाव्य है, अत: उसके प्रबंध कौशल की परीक्षा करना उचित ही है। प्रबंध काव्य में मानव जीवन का एक पूर्ण दृश्य होता है - महाकाव्य में अपेक्षाकृत विस्तृत, तो खंड-काव्य में अपेक्षाकृत सीमित। उसमें एक ओर घटनाओं की शृंखला सुसम्बद्ध होती है और उनमें स्वाभाविक क्रम होता है, तो दूसरी ओर ऐसे प्रसंगों का समावेश होता है जो पाठक के हृदय को स्पर्श कर सकें, उसे नाना भावों का रसात्मक अनुभव करा सकें, उसकी रागात्मिका वृत्ति को लीन करने की क्षमता रखें। उसका घटना-क्रम ऐसा होता है तथा उसके अंतर्गत ऐसी वस्तुओं और व्यापारों का प्रतिबिम्बवत् चित्रण होता है कि श्रोता-पाठक के हृदय में रसात्मक तरंगें उठने लगे। इसके लिए कवि को कहीं तो घटना का संकुचन करना पड़ता है और कहीं विस्तार।

प्रबंध की परीक्षा के लिए हम उसके दो विभाग कर सकते हैं - इति वृत्तात्मक और रसात्मक। इतिवृत्त का कार्य (जिसमें ब्यौरों पर ध्यान नहीं दिया जाता और न पात्रों के हृदय की भावनाओं का विश्लेषण किया जाता है) केवल उन परिस्थितियों का निर्माण करना तथा सूचना देना होता है जिनमें पात्र अपने भावों की विशद व्यंजना कर सकें और इस प्रकार रसपूर्ण स्थलों की सृष्टि कर पाठक के हृदय में रस की गहरी अनुभूति जगा सकें। कोरे इतिवृत्तात्मक स्थल रस की सृष्टि नहीं कर सकते। प्रबंध-काव्य में वास्तविक महत्त्व तो उन रसात्मक स्थलों का है, जो कथा-प्रवाह के बीच-बीच में आते रहते हैं और जिसके प्रभाव से सारी कथा में रसात्मकता आ जाती है। इतिवृत्त या कथा-वस्तु की गति इस प्रकार की होनी चाहिए कि मार्ग में जीवन की ऐसी बहुत-सी दशाएं पड़ जाएं और उनको पढ़ते समय पाठक का हृदय स्फुरित हो उठे। इतिवृत्त यदि पाठक की जिज्ञासा 'आगे क्या हुआ' की तुष्टि करता है, तो रसात्मक स्थल उसके हृदय की वृत्तियों को लीन कर उसे रसमग्न बनाते हैं। जायसी के 'पद्मावत' में ऐसे स्थल अनेक हैं, परन्तु पांच स्थल को बहुत ही मर्मस्पर्शी तथा रसपूर्ण हैं। वे हैं - नागमती वियोग, गोरा-बादल-प्रतिज्ञा, बादल का नवविवाहिता पत्नी से विदा हो युद्ध के लिए प्रस्थान, देवपाल की दूती के प्रस्ताव को ठुकरा कर रानी पद्मावती की सतीत्व-गौरव की व्यंजना और सहगमन। यद्यपि 'पद्मावत' सम्पूर्ण जीवन-गाथा न होकर, प्रेम-गाथा ही है, कवि हमें जीवन की विविध परिस्थिति-रूप घाटियों में न ले जाकर केवल प्रेम की सुरम्य वनस्थली में ही ले गया है, तथापि उसके घटना-चक्र के भीतर सुख-दु:खपूर्ण जीवन-दशाओं का बहुत कुछ समावेश हुआ है। प्रेम, वियोग, माता का वात्सल्य, यात्रा के कष्ट, आनन्दोत्सव, युद्ध, जय-पराजय, विश्वासघात, छल-कपट, षड्यंत्र, स्वामि-भक्ति, पातिव्रत्य, वीरता आदि का विधान इसका प्रमाण है। इन विविध जीवन-दशाओं और मानव-संबंधों के चित्रण में अवगाहन करता हुआ पाठक रसमग्न हो उठता है, अत: हमें यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं कि रसात्मकता का संचार करने वाला घटना-चक्र 'पद्मावत' में विद्यमान है और इस दृष्टि से उसका प्रबंध-कौशल स्तुत्य है, भले ही उसमें 'रामचरित मानस' जैसी व्यापकता और विस्तार न हो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

माघ की उक्ति है –

बह्वपि स्वेच्छया कामं प्रकीर्णमभिधीते।
अनुज्झितार्थ-संबंधः प्रबंधो दुखदाहरः॥

इससे स्पष्ट है कि प्रबंध-काव्य में संबंध-निर्वाह का बड़ा महत्त्व है। उसमें एक प्रसंग दूसरे प्रसंग से सुसम्बद्ध होना चाहिए ताकि कथा का प्रवाह खंडित न हो, कहानी का तार टूटना नहीं चाहिए। दूसरे उसकी प्रासंगिक कथाएं आधिकारिक कथा के साथ अच्छी तरह जुड़ी हुई हों, वे मुख्य वस्तु को अग्रसर करने में, उसके विकास में सहायक हों। उसकी प्रत्येक घटना, प्रत्येक पात्र और प्रत्येक वर्णन ऐसा होना चाहिए जो आधिकाधिक वस्तु की गति में सहायता करे। वे ऊपर से आरोपित प्रतीत न हों, कथा के अभिन्न अंग बनकर आएं। इन दोनों दृष्टियों से 'पद्मावत' सफल प्रबंध-काव्य है। उसका संबंध-निर्वाह सफल है – एक प्रसंग के बाद दूसरा प्रसंग अनायास आता गया है, कथा का तार न तो कहीं टूटा है और न ऐसा लगता है कि विविध प्रसंगों को जबर्दस्ती संगृहीत किया गया है। कहीं-कहीं विराम हैं – लम्बे और अनावश्यक भी, और वे निश्चय ही दोष हैं, परन्तु कुल मिलाकर कथा के प्रवाह में नैरन्तर्य है, सतत गति है, जिससे वह अपने लक्ष्य तक मंदमंथर गति के साथ पहुंचती है।

'पद्मावत' में कई प्रासंगिक वृत्त हैं – हीरामन तोता खरीदने वाले ब्राह्मण का वृत्तान्त, राघवचेतन का प्रसंग, गोरा बादल की कथा, देवपाल की दूती का प्रसंग, तूफान का प्रसंग आदि। ये सब आधिकारिक कथा को दिशा देते हैं और आगे बढ़ाते हैं या नायक-नायिका की गौरव-वृद्धि करते हैं। ब्राह्मण का वृत्तांत ही राजा रत्नसेन को सिंहलद्वीप भेजता है, देवपाल का वृत्त अलाउद्दीन के पुनः चित्तौड़ पहुंचने के पहले ही रत्नसेन के जीवन का अंत कर देता है जिससे राजा को मुसलमान बादशाह से हारने का अपमान नहीं सहन करना पड़ता। राघवचेतन के प्रसंग द्वारा ही अलाउद्दीन और रत्नसेन के संघर्ष की भूमिका बनती है।

लेखक की दृष्टि प्रधान पात्र पर है अथवा किसी घटना-विशेष पर, इस आधार पर प्रबंध-काव्य के दो भेद किए गए हैं – व्यक्ति-प्रधान तथा घटना-प्रधान। प्रथम में नायक के जीवन की सारी मुख्य घटनाओं का वर्णन होता है, तो दूसरे में लेखक की दृष्टि किसी मुख्य घटना पर होती है और उसका सारा वस्तु-विकास उस घटना के उपक्रम के रूप में होता है। उसका एक 'कार्य' होता है जिसके लिए घटनाओं का सारा आयोजन होता है। घटना-प्रधान प्रबंध-काव्य में उन्हीं वृत्तांतों का सन्निवेश होना चाहिए जो उसके 'कार्य' से संबद्ध हों, उसकी प्राप्ति में सहायक हों। 'पद्मावत' घटना-प्रधान काव्य है। अतः उसकी परीक्षा इसी कसौटी पर होनी चाहिए।

कवि ने प्रासंगिक वृत्तों को उतना ही विस्तार दिया है जितना 'कार्य' की दृष्टि से आवश्यक था। उदाहरण के लिए, राघवचेतन का उतना ही वृत्त दिया गया है जो कथा को 'कार्य' की ओर अग्रसर करने में सहायक है। चित्तौड़ की चढ़ाई के उपरांत उसका विवरण नहीं दिया गया है। इसी प्रकार तोता वहीं तक दिखाई देता है जहां तक उसकी 'कार्य' के लिए आवश्यकता थी, पद्मावती के विवाह के बाद उसकी कोई चर्चा नहीं की गई। तूफान वाली घटना भी, जिसमें राजा को समुद्र से पांच रत्न प्राप्त हुए थे, कार्य से संबद्ध है, भले ही दूर से हो। इन्हीं पांच रत्नों के आधार पर बादशाह अलाउद्दीन और रत्नसेन में संधि होती है जिसके द्वारा बादशाह गढ़ में प्रवेश करता है और बाद में राजा को बंदी बनाता है।

प्रबंध-कौशल की एक कसौटी यह भी है कि उसकी घटनाएं न केवल 'कार्य' से संबद्ध हों, अपितु नए-नए विशद भावों की व्यंजना का भी अवसर दें। 'पद्मावत' में ऐसी अनेक घटनाएं हैं, तूफान वाली घटना भाग्य की अस्थिरता, संयोग की आकस्मिता तथा लोभ के विरुद्ध शिक्षा देती है, तो 'देवपाल दूती प्रसंग' पद्मावती के सती होने के कारण होने के अतिरिक्त कवि को अवसर प्रदान करता है कि वह सतीत्व के गौरव की व्यंजना कर सके।

अरस्तू के अनुसार कथावस्तु के आदि, मध्य और अंत स्फुट होने चाहिये। 'पद्मावत' की कथा में इस लक्षण का भी सफल निर्वाह हुआ है। पद्मावती के जन्म से लेकर सिंहलगढ़ पर आक्रमण तक कथा का आदि है; रत्नसेन-पद्मावती-विवाह से लेकर सिंहलद्वीप से प्रस्थान तक उसका मध्य है; और राघवचेतन के देश-निकाले से लेकर पद्मावती के सती होने तक कथा-प्रवाह का अंत है। आदि अंश की घटनाएं मध्य की ओर उन्मुख हैं, तो विवाह के बाद राघवचेतन के निर्वासनोपरांत की घटनाएं कार्य की ओर। बीच की घटनाएं-विवाहोत्सव, समागम, सुख-विलास आदि के चित्र मध्य के अंतर्गत आती हैं जहां कथा एक प्रकार से रुक-सी जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्राचीन आचार्यों के अनुसार महाकाव्य का 'कार्य' महत्त्वपूर्ण होना चाहिए अर्थात् वह सामाजिक दृष्टि से महान् हो, नैतिक और मार्मिक होना चाहिए। वह हमें सात्विक प्रेम की गरिमा, उत्सर्ग भावना का माहात्म्य बताता है।

संबंध-निर्वाह के अंतर्गत गति के विराम का प्रश्न भी उठता है। 'पद्मावत' का प्रबंध-कौशल इस दृष्टि से त्रुटिपूर्ण है। उसमें ऐसे अनेक अनावश्यक और विस्तृत विराम-स्थल हैं जो पाठक के मन में ऊब पैदा करने लगते हैं और जिनसे कथा की धारा भी रुक-सी जाती है। वे कवि के पांडित्य एवं बहुज्ञता के निर्देशक तो हैं, पर उनसे पाठक के मन में रस की सृष्टि नहीं होती, प्रबंध में रसात्मकता नहीं आती। सिंहलद्वीप के वर्णन में फूलों, घोड़ों के नाम, बादशाह की दावत के वर्णन में पकवानों की नामावली, राघवचेतन द्वारा स्त्री-भेद-कथन, फलित-ज्योति, पानों की विभिन्न जातियों के नाम, सोलह शृंगारों और बारह आभरणों के वर्णन इसी तरह के रूढ़ि-पालन या बहुज्ञता-प्रदर्शन के लिए आयोजित किए गए प्रतीत होते हैं। रासायनिक प्रलाप, हठयोग संबंधी पारिभाषिक शब्दों वाला चित्रण आदि ऊपर से आरोपित लगते हैं और पाठक के मन में ऊब पैदा करने तथा कथा की गति को अवरुद्ध करने के साथ-साथ अप्रतीत्व दोष से भी दूषित हैं।

प्रबंध-काव्य में विस्तृत वर्णनों का भी महत्त्व होता है। ये विवरण दो रूपों में मिलते हैं - कवि द्वारा वस्तु-वर्णन के रूप में और पात्र द्वारा भाव-व्यंजना के रूप में। वस्तु-वर्णन में जायसी ने, कुछ स्थलों को छोड़कर जिनका संकेत ऊपर किया गया है, वस्तुओं के अलग-अलग नाम गिनाकर अर्थग्रहण मात्र नहीं कराया है। उन्होंने वर्णन के लिए पहले तो उपयुक्त स्थल चुना है और फिर अपनी भाषा-शक्ति तथा चित्रण-प्रतिमा से उन स्थलों को साकार तथा सजीव बनाने के साथ-साथ भावपूर्ण भी बना दिया है। जिन दृश्यों का माधुर्य भारतीय हृदय पर चिरकाल से अंकित है, उन्हें चुनने तथा उनका मार्मिक वर्णन करने की प्रतिभा जायसी में है। उदाहरण के लिए, पनघट के दृश्य का यह चित्र देखिए -

पानि भरैं आवहिं पनिहारी, रूप सुरूप पदमिनि नारी

जा सहुं ने हेरहिं चख नारी, बांक नैन जनु हनहि कटारी

केस मेघावर सिर ता ताईं। चमकहिं दसन बीज़ु के नांईं॥

उनके नगर-हाट के वर्णन यदि सुख-समृद्धि का चित्र प्रस्तुत करते हैं तो गढ़ और खाई के वर्णन प्रताप और आतंक का। प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण संश्लिष्ट नहीं है। कवि की दृष्टि प्रकृति के उसी रूप और पक्ष पर गयी है जो मानव के सुख-दुःख को प्रभावित करते हैं। उन्होंने उपवनों और अमराइयों का वर्णन उनकी सघन शीतल छाया के कारण जो मनुष्य के लिए प्रीतिकर हैं, किया है तो वन के कुश-कंटकों का इसलिए कि वे यात्रियों के लिए कष्टकर होते हैं -

सघन ढाक-बन चहुंदिसि फूला।
बहु दुख पाव ऊहां कर भूला॥

झांखर जहां सो छांड़हुं पंथा।
हिलगि मकोय व फारहुं कंथा॥

मानव-व्यापारों का चित्रण में भी कवि को पूरी सफलता मिली है। नागमती का विरह-वर्णन हिन्दी विरह-काव्य में शीर्ष स्थान का अधिकारी है। पर उनके वर्णनों में कतिपय दोषों की ओर से भी हम उदासीन नहीं रह सकते। वे हैं - वीभत्सता (विरह-वर्णन में), अतिशयोक्ति (पद्मावती की सकुमारता), अस्वाभाविकता, वस्तु परिगणन प्रणाली, अनावश्यक विस्तार आदि।

'पद्मावत' के घटना-चक्र के भीतर ऐसे स्थानों का भी पूरा सन्निवेश है जो मनुष्य की रागात्मिका वृत्ति को उद्बुद्ध कर सकें, उसके हृदय को भावमग्न कर सकें। जिन भावों की व्यंजना उन्होंने ऐसे स्थलों पर की है वे हैं - प्रधानतः रति, शोक तथा उत्साह। अन्य भाव गौण रूप में आए हैं। भाव-व्यंजना में हमें दो बातें देखनी पड़ती हैं -

1. कवि की पहुंच कितने भावों एवं गूढ़ मानसिक विकारों तक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. उनका उत्कर्ष किस सीमा तक हुआ है। जायसी की दृष्टि उतने विस्तृत पटल पर संचार नहीं कर पाई है जितनी तुलसी की। जैसा कि हमने ऊपर कहा है कि 'पद्मावत' में केवल तीन भावों – रति, शोक और उत्साह का ही प्राधान्य है; इन भावों के भीतर संचारियों का सन्निवेश भी कम ही हुआ है। उदाहरण के लिए, रति-भाव के अंतर्गत असूया और गर्व का चित्रण तो है पर व्रीडा, अवहित्थ आदि अनेक भावों को छोड़ दिया गया है। क्षोभ से उत्पन्न उदासीनता और आत्मनिंदा, आश्चर्य के अंतर्गत चकपकाहट को भी जायसी छोड़ गए हैं। पर जहां तक भावोत्कर्ष का संबंध है, जायसी अप्रतिम हैं, विशेषत: विरहजन्य भावों के चित्रण में रतिभाव के अंतर्गत काम-दशा, अभिलाषा, आशा, विश्वास, वितर्क, वात्सल्य, पातिव्रत्य भाव आदि की व्यंजना बड़े मार्मिक ढंग से की गयी है। सम्मान, कृतज्ञता के साथ-साथ शोक भाव की व्यंजना भी बहुत सुन्दर हुई है।

6.12 पद्मावत में लोक परंपरा और लोक जीवन

जायसी-विषयक अद्यावधि आलोचना में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य आचार्य शुक्ल का है। जायसी ग्रंथावली की उनकी भूमिका में जिस काव्य-मर्मज्ञता, पैनी दृष्टि और तलस्पर्शी मेधा का परिचय मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। शुक्ल जी पहले आलोचक थे जिन्होंने जायसी और उनके काव्य को हिन्दी पाठकों के सम्मुख सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया और 'पद्मावत' के काव्य-सौन्दर्य को उद्घाटित किया। इस 'भूमिका' में उन्होंने जायसी के विरह-वर्णन के संबंध में जो कुछ कहा है, वह अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। वहां वह लिखते हैं, ''जायसी की विरह-वर्णन कहीं-कहीं अत्यंत अत्युक्तिपूर्ण होने पर भी मजाक की हद तक नहीं पहुंचने पाया है, उसमें गांभीर्य बना हुआ है। इनकी अत्युक्तियां बात की करामात नहीं जान पड़तीं, हृदय की अत्यंत तीव्र वेदना के शब्द-संकेत प्रतीत होती हैं।'

शुक्ल जी के इस कथन से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं – जायसी का विरह-वर्णन अत्युक्तिपूर्ण है और दूसरे, अत्युक्तिपूर्ण होते हुए भी वह बात की करामात या केवल उसकी बाहरी नाप-जोख करने वाला नहीं है। वह हृदय की तीव्र वेदना को संवेदनशील शैली में प्रस्तुत करता है। हिन्दी का रीति-काव्य बाहरी नाप-जोख प्रस्तुत करने वाले विरह-वर्णन के लिए बदनाम है, जहां कवियों ने कहीं नायिका के शरीर को क्षीणता के कारण घड़ी का पेंडुलम बना दिया है –

इत आवति चलि जात उत चली छ:सातक हाथ
चढ़ी हिंडोरे सी रहे लगी उसांसन साथ

तो कहीं उसे जलती हुई भट्टी –

औंधाई सीसी सुलखि बिरह बरनि बिलसात।
बिच ही सूखि गुलाब गौ छींटौ छुई न गात॥

इस प्रकार की उक्तियां ऊहात्मक होती हैं और पाठक या श्रोता के हृदय में संवेदना जगाने में असमर्थ रहती हैं। जायसी ने भी इस प्रकार की नाप-जोख वाली ऊहात्मक पद्धति का प्रयोग कुछ स्थलों पर किया है, पर ऐसे स्थल बहुत कम हैं। राजा की प्रेम-पत्रिका के वर्णन में अथवा नागमती के विरह-ताप की व्यंजना में कवि ने इसी पद्धति का प्रयोग किया है –

जेहि पंखी के नियर होइ, कहै बिरह की बात।
सोई पंखी जाइ जरि, तरवरि होइ निपात॥

पर अधिकतर जायसी के काव्य में विरह-ताप का संवेदनात्मक रूप ही पाया जाता है, परिमाण-निर्देश वाला रूप नहीं।

जायसी ने नागमती-विरह-वर्णन प्रसंग में पंछी-दूत की कल्पना कदाचित् कालिदास के मेघदूत से प्रेरणा पाकर ही है और कालिदास, तुलसीदास आदि की तरह ही उन्होंने विरह की उस पुण्य-दशा का चित्र प्रस्तुत किया है जिसमें विरही जड़-चेतन का भेद भूल पशु-पक्षियों तक को अपना सहस मित्र समझ उनसे अपनी व्यथा निवेदित करता है और जिसमें पशु-पक्षी, पेड़-पौधे भी नायिका के हृदय की वेदना से प्रभावित दिखाये जाते हैं। वाल्मीकि के राम यदि कदम्ब और बिल्व वृक्ष से सीता के विषय में पूछते हैं, तो तुलसी के राम वन के पशु-पक्षियों से पूछते हैं –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)/Ladnun

हे खग, मृग, हे मधुकर स्नेही।
तुम देखी सीता मृगनैनी॥

जायसी एक कदम और आगे हैं। जहां तुलसी के राम को खग, मृग और मधुकर श्रेणी से कोई उत्तर नहीं मिलता, वहां जायसी के 'पद्मावत' के पक्षी के हृदय में नागमती की व्यथा के प्रति सहानुभूति का संचार होता है –

फिरि फिरि रोव कोई नहिं बोला।

आधी रात विहंगम डोला॥

उसके दुख का कारण उससे पूछता है –

''कहौ विरह-दुख आपन, बैठि सुनहु दंड एक''

इतना ही नहीं, वह उसका संदेश ले जाने को भी तैयार हो जाता है। इस प्रकार जायसी के 'पद्मावत' में विरह-वर्णन का आरंभ बड़ी मार्मिक शैली में हुआ है।

जायसी के विरह-वर्णन में कारुणिकता ओत-प्रोत है। उनके विरह-चित्र इतने स्वाभाविक हैं कि पाठक सहज ही विरह-विदग्ध नायिका के ताप की आंच से द्रवित हो स्वयं करुणा का भाव अनुभव करने लगता है। अतिशयोक्ति भी हृदय-तत्त्व की प्रधानता के कारण सहज प्रतीत होती है –

दहि कोइला भइ कंत सनेहा।
तोला मांसु रही नहीं देहा॥

रकत न रहा, बिरह तन जरा।
रती रती होई नैनन्ह ढरा॥

यह वर्णन पढ़ हमें हंसी नहीं आती, अपितु हमारा हृदय द्रवित हो उठता है। प्राकृति उपमानों के प्रयोग ने उसे सहज संप्रेषणशील बना दिया है। कृशता, ताप, वेदना के चित्रण के लिए उसने पद्मावती को पद्मिनी नारी के रूप में चित्रित किया है –

कंवल सूख, पखुरी बेहरानी
गलि गलि कै मिलि छार हेरानी

इसे पढ़ते ही पाठक के मन में विरहिणी के प्रति सहानुभूति और करुणा का पूरा संचार हो उठता है। इसी प्रकार की संवेदनशक्ति निम्नलिखित चित्र में है जिसमें न केवल नायिका के शरीर की विरह-जन्य क्षीणता और कृशता का ही वर्णन है, अपितु उस स्थिति में भी उसके प्रिय में तल्लीन होने की मन:स्थिति का अंकन किया गया है :

हाड़ भए सब किंगरी, नसैं भई सब तांति।
रोवं रोवं ते धुनि उठै, कहौं बिथा केहि भांति॥

यहां कृशता से अधिक उस मानसिक तल्लीनता का वर्णन है जो सहज की पाठक के हृदय में संवेदना जगा देता है और जो उसके सामने लोक-साहित्य की उस नायिका का चित्र खड़ा कर देता है जो अटारी और सेज को सूना पाकर अपनी बाली उमरिया में चीत्कार कर उठती है कि वह न तो कोयला ही रह पायी और न राख ही।

जायसी के विरह-चित्रों में प्रेषणीयता की भी अद्भुत शक्ति है। वह हृदय की भावनाओं का तथा शरीर की दयनी स्थिति का जो चित्र अंकित करते हैं, उसमें इतनी शक्ति होती है कि वह शीघ्र ही पाठक को उस व्यथा तक पहुंचा देती है जिसका अनुभव विरही स्वयं करता है। इसके लिए कवि लोक-जीवन से उपमान चुनता है और व्यथा को ऐसी सरल और स्वाभाविक भाषा में प्रस्तुत करता है कि पाठक का हृदय उस चित्र को पढ़कर करुणार्द्र हो उठता है। नीचे की पंक्तियां देखिये :

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

रक्त ढुरा मांसू गरा, हाड़ भएउ सब संख।
धनि सारस होई ररि मुई, पीउ समेटहिं पंख॥

इसी प्रकार कवि ने नायिका की तुलना जल-विहीन सरोवर में उत्पन्न उस कमल से की है, जो धीरे-धीरे सूखता जा रहा है और नायिका द्वारा वर्षा की कामना प्रकट कराकर एक ऐसा करुण चित्र अंकित किया है, जिसे पढ़ते ही संवेदनशील पाठक करुणा से द्रवित हो उठता है -

कंवल जो बिगसा मानसर बिनु जल गएए सुखाइ।
कबहुं बेलि फिरि पलुहै जौं पियु सींचै आइ।

जायसी ने विरह की स्थिति में वेदना के स्वरूप को ऐसे मार्मिक ढंग से और ऐसी शब्दावली में प्रस्तुत किया है कि पाठक के सम्मुख वह प्रत्यक्ष हो उठता है। इसके लिए उन्होंने लोक-जीवन से उपमान ग्रहण किये हैं। कहीं वह विरह-विदग्ध नायिका की तुलना भाड़ में भुनने वाले दाने से करता है -

लागिउं जरै, जरै जस भारु
फिरि-फिरि भूजेसि तजेउं न बारू

तो कभी विरहिणी के व्यथा-विदीर्ण हृदय की तुलना सरोवर के विदीर्ण हृदय से तथा नायक की तुलना वर्षा की प्रथम झड़ी से कर एक ऐसा मर्मस्पर्शी चित्र अंकित करता है कि पाठक के सम्मुख सारा दृश्य साकार हो जाता है -

सरवर-हिया घटत निति जाई, टूक-टूक होइ कै बिहराई।
बिहरत हिया करहु पिउ टेका, दीठि दवंगरा मेरवहु एका।

जायसी के विरह-वर्णन की एक बड़ी विशेषता यह है कि उसमें प्रेम का विशुद्ध रूप दिखाया गया है। विद्यापति या रीतिकालीन कवियों की विरहिणियां भौतिक और शारीरिक रति के अभाव में दुःखी हैं, परन्तु जायसी की नागमती को भौतिक सुख की तनिक भी कामना नहीं है। वह तो केवल प्रिय का दर्शन पाकर ही संतुष्ट हो जाने वाली है। इसीलिए पद्मावती से कहती है -

मोहिं भोग सौं काज न, बारी
सौंह दिस्टि की चाहनहारी

जायसी के विरह-वर्णन में नायिका का जो भावोत्कर्ष दिखाया गया है, वह अद्वितीय है। मानव-हृदय का इतना उदात्त स्वरूप कदाचित् ही किसी काव्य में मिले। शुक्ल जी ने इस भावोत्कर्ष की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है। वस्तुतः वह भावविभूति अत्यंत उदात्त होगी जिसमें विरहिणी अपने शरीर को जलाकर उसकी राख को प्रिय के चरणों में अर्पित करना चाहे। नागमती की निम्न उक्ति में यही भावोत्कर्ष मिलता है -

यह तन जारौं छार कै कहौं कि पवन उड़ाव
मकु तेहि मारग उड़ि परै कंत धरै जंह पांव

जायसी के विरह-वर्णन में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कवि ने नागमती को रानी होते हुए भी उसे इस प्रकार चित्रित किया है, जैसे वह सामान्य नारी हो। वह अपना रानीपन भूल साधारण स्त्री के समान अपनी व्यथा प्रकट करती है, साधारण गृहस्थ की तरह चिंता व्यक्त करती है -

सांठि नाठि, जग बात को पूछा ?
बिनु जिउ फिरै मंजू-तनु छूंछा।
भई दुहेली टेक बिहूनी।
थांभ नाहिं, उठि सकै जो थूनी॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यही कारण है कि सभी पाठकों का उसके भावों से सहज ही साधारणीकरण हो जाता है। नागमती के विरह-वर्णन में जिस बारहमासे की योजना की गई है, उसमें कवि ने उसकी स्थिति का वैसा ही दयनीय और करुण चित्र अंकित किया है जैसा कि सामान्य नारी का। नागमती वर्षा में अपने घर की दयनीय स्थिति देखकर उसी प्रकार अपनी व्यथा और विविशता व्यक्त करती है जैसे कोई निरवलम्ब स्त्री।

पुष्य नख सिर ऊपर आवा, हौं बिनु नाह मंदिर को छावा

विरह-वर्णन में प्रकृति को उद्दीपन रूप में चित्रित करने की पद्धति अत्यंत प्राचीन है। जायसी ने भी इसी परम्परा का निर्वाह करते हुए विरह की स्थिति में प्रकृति का उद्दीपनकारी स्वरूप और नायिका पर तज्जन्य प्रभाव का सुन्दर चित्रण किया है। विरहकातर नागमती प्रत्येक मास के परिवर्तमान प्राकृति वातावरण के साथ अपनी विरह-वेदना को सम अथवा विरोध पर रखकर अधिक विफलता का अनुभव करती है। कभी नागमती वर्षा की झड़ी को देखकर अपने और प्रकृति के बीच साम्य देखती है ओर उसी के द्वारा अपनी दशा का वर्णन करती है -

बरसै मैघा झकोरि झकोरी
मोर दुइ नैन चुवैं जस ओरी

पर कहीं प्रकृति में विरोध देखकर उसका व्यथित हृदय और भी व्यथित हो उठता है। चारों ओर भरनी पड़ी है, किन्तु नागमती सूखी जाती है। शरदऋतु की चांदनी संसार को भले ही शीतलता प्रदान करे, विरहिणी के लिए तो वह और भी अधिक संतापकारी बन जाती है।

कातिक सरद चंद उजियारी।
जग सीतल हौं बिरहै जारी॥

तन, मन, सेज करै आगिदाहू।
सब कहं चांद भयहु मोहि राहू॥

इसी प्रकार विभिन्न त्यौहारों के अवसर पर जब वह अपनी सखियों को अपने-अपने प्रिय के साथ हर्ष और उल्लास में मग्न देखती है, तो उसका हृदय और भी अधिक क्रन्दन कर उठता है -

सखि झूमुक गांवें अंग मोरी
हौं झुरान बिछुरी मोरि जोरी

अथवा

फागु करहि सब चांचरि जोरी।
मोहि तन लाइ दीन्हि जस होरी॥

इस प्रकार जायसी ने मानव-मनोविज्ञान के आधार पर जो विरह-चित्र प्रस्तुत किये हैं, वे अत्यंत मार्मिक हैं। यही कारण है कि शुक्लजी ने जायसी के विरह-वर्णन की प्रशंसा में निम्न शब्द कहे हैं -

''(बारहमासे) में वेदना का अत्यंत निर्मल और कोमल स्वरूप, हिन्दू दाम्पत्य-जीवन का अत्यंत मर्मस्पर्शी माधुर्य, अपने चारों ओर की प्राकृति वस्तुओं और व्यापारों के साथ विशुद्ध भारतीय हृदय की साहचर्य-भावना तथा विषय के अनुरूप भाषा का अत्यंत स्निग्ध, सरल, मृदुल और अकृत्रिम प्रवाह देखने योग्य है।'' इन्हीं सब विशेषताओं के कारण जायसी का विरह-वर्णन अमर हो गया है। नागमती के वियोग-वर्णन में वस्तुत: व्यथा अपनी सारी मधुरता, विरह अपने सारे मिठास, प्रणय अपने सारे स्थायित्व और नारी अपनी चरम भावुकता के साथ बोल रही है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उत्कृष्ट होते हुए भी जायसी का विरह-वर्णन नितांत निर्दोष नहीं कहा जा सकता। फारसी काव्य की परम्परा से प्रभावित इस कवि ने 'पद्मावत' में विरह-वर्णन के कुछ स्थलों पर 'कबाबे-सीक' पद्धति का प्रयोग कर रक्त, मांस आदि की बात कही है जिसके फलस्वरूप उनके विरह-वर्णन में वीभत्सता आ गई है। उदाहरण के लिए नीचे की पंक्तियों देखिये -

बिरह सरागन्हि भूजै मांसू
गिरि गिरि परै रकत के आंसू

उनके विरह वर्णन में ऊहात्मकता भी कम नहीं है। जैसे -

जिहि पंछी के नियर होइ, कहै विरह की बात
सोई पंछी जाय जरि, तरुवर होइ निपात

इस ऊहात्मकता का एक कारण तो फारसी काव्यों की शैली है, दूसरे कवि विरह के प्रसंगों द्वारा रहस्यमयी सत्ता की अभिव्यक्ति करना भी चाहता था जिसके कारण अतिशयोक्ति आ गयी है -

अस परजरा विरह का गठा।
मेघ साम भए धूम जो उठा॥

दाढ़ा राहु, केतु गा दाधा।
सूरज जरा चांद जरि आधा॥

औ सब नखत तराई जरहीं।
टूटहिं लूक, धरनि मंह परहीं॥

जरै सो धारती ठावहिं ठाऊं।
दहकि पलास जरै तेहि दाऊं॥

परन्तु कुल मिलाकर जायसी का विरह-वर्णन ऊहात्मकता से दूर ही है जिसे देख कर शुक्ल जी ने कहा था -

''उसके अंतर्गत जिन पदार्थों का उल्लेख होता है, वे हृदयस्थ ताप की अनुभूति का आभास देने वाले होते हैं; बाहर-बाहर से ताप की मात्रा नापने वाले मानदण्ड मात्र नहीं।''

वह प्रेम और उससे उत्पन्न विरह को महत्त्व देते हैं -

जब लगि विरह न होइ तन, हिये न उपजइ प्रेम
तब लगि हाथ न आव तप, करम, धरम सत नेम।

सारांश यह है कि दो-एक त्रुटियों के होते हुए भी जायसी का विरह-वर्णन अत्यंत मार्मिक और संवेदनापूर्ण है। जायसी के विरहोद्गार अत्यंत मर्मस्पर्शी हैं। उन्हें विप्रलंभ शृंगार का प्रधान कवि कहने में हमें कोई संकोच नहीं।

6.13 महत्त्वपूर्ण अंशों की सप्रसंग व्याख्या

नखशिख खंड

1. **बरनौं मांग सीस उपराहीं।**
सेंदूर अबहि चढ़ा तेहि नहीं॥
बिनु सेंदुर जानहुं दीआ। उजिअर पंथ रैनि महं किया॥
कंचन रेख कसौटी कसी। जनु घनु महं दामिनि परगसी॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सुरुज किरिन जस गगन बिसेखी। जमुना मांझ सस्सुती देखी॥
खांडै धार रुहिर जनु भरा। करवत लै बेनी पर धरा॥
तेहि पर पूरि, धरै जो मोती, जमना मांझ गंग कै सोती॥
करवत तपा लेहि होइ चूरु। मकु-सो रुहिर लै देह सेंदूरू॥
कनक दुआदस बानि होइ सोहाग वह मांग।
सेवा करहिं नखत सब उऐ गगन निसि गांग॥

शब्दार्थ – उपराहीं – ऊपर। दीआ – दीपक। रैनि – रात्रि के समय। दामिनि – बिजली। खाडै – तलवार। बेनी – त्रिवेणी, गंगा-यमुना-सरस्वती। का संगम-स्थल। रुहिर – रुधिर, रक्त। करवत लेइ – कुछ लोगों का विश्वास था कि त्रिवेणी संगम पर अपना शरीर आरे से चिरवाकर मरने से मोक्ष प्राप्त होता है, अत: वे यह करते थे। इसे 'करवट लेना' कहते थे। काशी में भी एक ऐसा ही स्थान था और वहां आरे से शरीर चिरवाने को 'काशी-करवट' कहते थे। पूरि धरे – अलंकरण शृंगार के लिए सजाना। सोती – धारा। तपा- तपस्वी, साधक। चूरू – प्राण त्यागना। मकु – कदाचित्। दुबादस बानि – द्वादश बानी सोना शुद्ध माना जाता है। मांग – आकाश गंगा के नक्षत्रों की पंक्ति।

प्रसंग – यह पद्यांगश प्रेमाख्यानक कवि जायसी की प्रसिद्ध काव्य-रचना 'पद्मावत' के नखशिख खण्ड से उद्धृत किया गया है। इस खंड में कवि ने सिंहलद्वीप की राजकुमारी के अंग-प्रत्यंग का वर्णन परम्परागत नखशिख वर्णन की शैली में करते हुए नायिका के प्रत्येक अंग की रूप-माधुरी का चित्रण करने के लिए परम्परागत उपमानों का आश्रय तो लिया ही है, कुछ मौलिक उद्भावनाएं भी की हैं जो उसकी कल्पना-शक्ति का परिचायक हैं। हीरामन तोता चित्तोड़गढ़ के राजा रत्नसेन से पद्मावती के रूप का वर्णन करते हुए पहले उसके सिर की मांग की सुन्दरता का बखान करता है।

व्याख्या – हीरामन तोता सर्वप्रथम पद्मावती के सिर पर केशों के बीच उस मांग का वर्णन करता है जिसमें विवाहों के उपरांत सौभाग्य चिन्ह के रूप में स्त्रियां सिन्दूर भरती हैं। वह कहता है पद्मावती अभी कुंवारी है, अत: उसकी मांग में सिन्दूर नहीं है। वह अभी श्वेत रंग की श्यामल केशों के बीच एक शुभ्र वर्ण की मांग चमकती है और उस प्रकाश के कारण ऐसा लगता है मानो रात के अंधकार में शुभ्र मार्ग अपनी शुभ्र कान्ति से दमकता है। वह काले रंग के पत्थर की बनी सोना परखने की कसौटी पर खिंची सुनहरी रेखा के समान दमकती है या फिर उसी प्रकार चमक रही है जैसे काले-काले बादलों के बीच बिजली कौंधती है। उसकी मांग की शोभा उस विशिष्ट प्रकाश-रेखा के समान है जो क्षितिज पर सूर्य की किरणों से उत्पन्न हो गयी है। काले केशों में शुभ्र मांग देखकर लगता है कि गंगा (श्वेत जलवाली) तथा यमुना (कालिन्दी जिसका जल श्याम वर्ण का होता है) का संगम हो रहा है। उसका दर्शन करने से वही पुण्य लाभ होता है जो प्रयागराज में त्रिवेणी-संगम पर आरे से शरीर चिरवाने वाले को प्राप्त होता है अर्थात् मोक्ष मिलता है। उस शुभ्र वर्ण की मांग में मोतियों को अलंकार के रूप में सजाया गया है। काले केशों में उन शुभ्र मोतियों की शोभा ऐसी ही हो उठी है जो गंगा-यमुना के संगम से होती है। साधक और तपस्वी प्रयागराज तथा काशी में जाकर शरीर इसीलिए त्यागते हैं कि उनकी इस साधना के फलस्वरूप उन्हें पद्मावती की मांग में सिन्दूर भरने, उसका जीवन-साथी बनने, विवाह करने का पुण्य लाभ होगा। आरे से चिरने पर शरीर से जो रक्त निकलेगा वही सिन्दूर के रूप में प्राप्त हो जायेगा और उसी सिन्दूर को पद्मावती की मांग में भरकर वे मोक्ष का सा सुख प्राप्त करेंगे।

ये साधक अपनी तपस्या और साधना से चरित्र को, अपने हृदय और अपनी आत्मा को निर्मल बनाते हैं, पूरी तरह शुद्ध-बुद्ध हो जाते हैं और इस प्रकार स्वयं को पद्मावती को पाने की पात्रता प्रदर्शित करते हैं। पद्मावती भी विवाह की इच्छुक है, वह भी चाहती है कि उसका विवाह हो, उसका पति उसकी मांग में सिन्दूर भरे। मोतियों से अलंकृत उसकी मांग इस समय वैसी ही शोभायमान है जैसे आकाश-पटल पर जगमगाती आकाश-गंगा के नक्षत्र दीप्तिमान होते हैं।

विशेष – 1. पद्मावती को कवि ने ईश्वर का प्रतीक माना है, अत: वह काशी-करवट लेकर मोक्ष प्राप्त करने तथा पद्मावती की मांग में सिन्दूर भरने में समानता बताता है।

2. मांग के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि ने कुछ परम्परागत उपमानों का तथा कुछ नए उपमानों का प्रयोग है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. उत्प्रेक्षा अलंकार।

2. **कहौ लिलार दुइज कै जोती। दुइजहि जोति कहां जग ओती।**
सहस किरनि जो सुरुज दिपाई। देखि लिलार सोउ छपि जाई॥
का सरिवर तेहि देउं मयंकू। चांद कलंकी, वह निकलंकू॥
औ चांदहि पुनि राहु गरासा। वह बिनु राहु सदा परगासा॥
तेहि लिलार पर तिलक बईठा। दुइज-पाट जानहु ध्रुव दीठा॥
कनक-पाट जनु बैठा राजा। सबै सिंगार अत्र लेइ साजा॥
ओहि आगे थिर रहा ना कोऊ। दह का कहं अस जुरै संजोगू॥
खरग, धनुक, चक बान दुइ, जग-मारन तिन्ह नावं।
सुनि कै परा मुरुछि है, (राजा) मोकहं हए कुठावं॥

शब्दार्थ – दूइज – द्वितीया का चन्द्रमा। ओती – उतनी। दिपाई – चमकती हैं, दीप्तिमान हैं। मयंकू – चन्द्रमा। सरिवर – समानता। दुइज पाट – द्वितीया का चन्द्रमा रूपी सिंहासन। ध्रुव – ध्रुव नक्षत्र जो सदा चमकता रहता है। कनक पाट – सोने का बना सिंहासन। दहुं – पता नहीं। कहं – किसके। संजोगू – मिलने का असवर, सौभाग्य चक्र – चक्र। कुठांव – मर्मस्थल।

प्रसंग – पद्मावती की मांग के सौन्दर्य का वर्णन करने के उपरांत तोता उसके ललाट का वर्णन करता है।

व्याख्या – अब मैं पद्मावती के मस्तक का, उसके ललाट के सौन्दर्य का वर्णन करता हूं। वह आकार में द्वितीया के चन्द्रमा के समान है तथा उतना ही उज्ज्वल वर्ण का है। वस्तुत: द्वितीया के चन्द्रमा की शोभा भी पद्मावती के ललाट के समकक्ष नहीं, उससे घटकर ही है। क्योंकि पद्मावती के ललाट की दीप्ति चन्द्रमा से कहीं अधिक है। चन्द्रमा तो क्या अपनी सहस्त्रों किरणों से दीप्तिमान सूर्य भी उसके ललाट का तेज देखकर लज्जित हो उठता है और लज्जा के कारण छिप जाता है, अस्त हो जाता है। सूर्य सदा दीप्तिमान नहीं रहता जबकि पद्मावती का ललाट रात-दिन दमकता रहता है। उसकी तुलना पूर्ण चन्द्रमा से करना भी उचित नहीं क्योंकि चन्द्रमा में तो कलंक है जबकि पद्मावती का ललाट निष्कलंक, पूर्णत: शुभ्र है। उसमें कोई दाग नहीं। इसके अतिरिक्त चन्द्रमा को तो जब-तब ग्रहण लगता है और ग्रहण के समय उसकी दीप्ति क्षीण हो जाती है परन्तु पद्मावती का ललाट सदा जगमगाता रहता है। उसे किसी राहु-केतु का भय नहीं है। पद्मावती के ललाट पर बिन्दी शोभायमान है। बिन्दी लगे ललाट को देखकर लगता है जैसे चन्द्रमा के सिंहासन पर ध्रुवतारा आसीन हो या फिर ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई चक्रवर्ती सम्राट पूरी सजधज के साथ, सम्पूर्ण रूप से अलंकृत होकर, अस्त्र-शस्त्र धारण कर स्वर्ण के सिंहासन पर बैठा हो और जो इतना प्रतापी तथा शक्तिशाली हो कि युद्ध में सामना करने का किसी को साहस और शक्ति न हो।

पद्मावती के रूप-सौन्दर्य की अलौकिकता देखकर सब आश्चर्यचकित रह जाते हैं और सोचते हैं पता नहीं भगवान ने इसे किस पुरुषार्थी और सौभाग्यशाली पुरुष के लिए बनाया है, कौन इसका पति होगा ?पद्मावती की नासिका खड्ग, भौंहें धुनष, पुतलियां चक्र तथा नेत्रों की कंटीली चितवन दो बाणों के समान है। उनके सौन्दर्य से प्रभावित हो देखने वालों को लगता है कि वे प्राणघातक हैं, उनका सौन्दर्य जानलेवा है।

तोते के मुख से पद्मावती के सौन्दर्य का वर्णन सुन राजा रत्नसेन अपनी चेतना गंवाने लगा, वह मूर्च्छित प्राय: हो गया और कहने लगा – तुमने मेरे मर्मस्थल पर आघात किया है। भाव यह है कि राजा पद्मावती के अलौकिक रूप-सौन्दर्य का वर्णन सुन उस पर इतना आसक्त हो उठा, उसे पाने के लिए इतना व्याकुल हो उठा कि अपनी चेतना गंवाकर मूर्च्छित हो गया।

विशेष 1. परम्परागत उपमानों के साथ नया उपमान-ललाट पर लगे तिलक की तुलना चन्द्रमा के सिंहासन पर बैठे ध्रुव तारे से।

2. उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक अलंकार।

3. अंतिम पंक्तियों में सूफी साधकों की 'हाल' की दशा का संकेत है। इस दशा में साधक ईश्वर के प्रेम में विभोर होकर अपनी चेतना खोकर मूर्च्छित हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. **भौहें स्वाम धनुकु जनु ताना। जासौ हेर मार बिख बाना।**
ऊहै धनुक भैंहन्ह चढ़ा। केइ हतियार काल उस गढ़ा॥
ऊहै धनुक किरसन पहं अहा। ऊहै धनुक राघौ कर गहा॥
ऊहै धनुक रावन संघारा। ऊहै धनुक कंसासुर मारा॥
ऊहै धनुक बेधा हुत राहू। मारा ओहीं सहस्सरबाहू॥
ऊहै धनुक मैं तापहं चीन्हा। धानुक आपु बेझ जग कीन्हा॥
उन्ह भौहन्हि सरि कोऊ न जीता। अछरी छपीं छपीं गोपीता॥
भौंह धनुक धनि धानुक दोसारि सरि न कराइ।
गगन धनुक जो ऊगै लाजन्ह सो छपि जाइ॥

शब्दार्थ – धनुकु – धनुष। हेर – देखकर। किरसनु – कृष्ण। अहा – था। राघौ – राघव, राम। संघारा – संहार किया, नाश किया। बेझ – लक्ष्य, निशाना। सरि – समान। अछरी – अप्सराएं। गोपीता – गोपियां।

प्रसंग – पद्मावती के ललाट का सौन्दर्य–वर्णन करने के उपरांत हीरामन तोता उसकी भौंहों की वक्रता तथा उनके कटाक्ष के प्रभाव का वर्णन करता है।

व्याख्या – पद्मावती की भौंहे श्याम वर्ण की हैं, वे धनुष के आकार की तरह चक्र हैं। उन्हें देखने वाला उनके सौन्दर्य से प्रभावित होकर ऐसा अनुभव करता है मानो उस पर विष–बुझे बाणों से प्रहार किया गया हो। वह व्याकुल हो उठता है। भौंहों के कटाक्ष का प्रभाव अत्यंत मारक है, उनके प्रहार के सम्मुख अन्य सब हथियारों के प्रहार प्रभावहीन हैं। संसार में कोई ऐसा अस्त्र–शस्त्र नहीं जो उतना प्रभावशाली हो जितना उसकी भौंहों का कटाक्ष। कृष्ण और राम के पास ऐसे ही प्रभावशाली धनुष थे। यदि पद्मावती की भौंहों की तुलना किसी वस्तु से की जा सकती है तो वे हैं राम और कृष्ण आदि देवताओं के धनुष जिनसे उन्होंने रावण, कंस, राहु, सहस्त्रबाहु आदि दैत्यों का संहार किया था। पद्मावती की भौंहों के कटाक्ष का प्रभाव वैसा ही है जैसा इन देवताओं के धनुषों का प्रभाव था। सारा संसार और उसके प्राणी उन भौंहों के सौन्दर्य तथा उनके कटाक्ष से आहत हैं। उनकी शक्ति के सम्मुख सबकी शक्ति व्यर्थ है, अतः सब परास्त होते हैं। उसके रूप के सम्मुख अप्सराओं तथा ब्रज की गोपियों का सौन्दर्य भी फीका पड़ जाता है, अतः वे लज्जा के कारण स्वयं को छिपाती रहती हैं, प्रकट होकर पद्मावती के पास आने का साहस नहीं कर पातीं। पद्मावती की भौंहे धनुष हैं, वह स्वयं धनुर्धारी है। उसकी तुलना में कोई नहीं टिक पता। सब निष्प्राण तथा प्रभावहीन हो जाते हैं। आकाश में जो सप्तवर्णी इन्द्रधनुष अपनी शोभा से सबको मुग्ध कर लेता है, उसका सौन्दर्य भी पद्मावती की भौंहों के सम्मुख तुच्छ है, नगण्य है। वह भी आकाश में अधिक देर तक नहीं रहता, प्रकट होने के कुछ क्षण बाद ही लुप्त हो जाता है। उसके लुप्त होने के कारण भी यह है कि पद्मावती की भौंहों के सौन्दर्य को देख हतप्रभ हो जाता है और लज्जित हो शीघ्र ही छिप जाता है।

विशेष जायसी को हिन्दू धर्म, उसके अवतारों का पूरा ज्ञान नहीं था। कृष्ण को धनुषधारी बताना उनके इसी अज्ञान का परिचायक है।

4. **नैन बांक, सरि पूज न कोऊ। मानसरोदक उथलहिं दोऊ॥**
राते कंवल करहिं अलि भवां। घूमहि माति चहहिं अपसवां॥
उठहिं तुरंग लेहिं नहिं बागा। चहहिं उलथि गगन कहं लागा॥
पवन झकोरहिं देइ हिलोरा। सरग लाई भुइं लाइ बहोरा॥
जग डोलै डोलत नैनाहां। उलटि अड़ार जाहिं पल मांहा॥
जबहिं फिराहिं गगन गहि बोरा। अस वै भौंर चक्र के जोरा॥
समुद–हिलोर फिरहिं जनू झूले। खंजन लरहिं मिरिग जनु भूले॥
सुभर सरोबर नयन वै, मानिक भरे तरंग।
बाव तरि फिरा वही काल भौंर तेहि संग॥ ल भौंर तेहि संग॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शब्दार्थ – बांक –बांके कटीले। सरि – समान। पूज न कोऊ –तुलना नहीं की जा सकती। उथलहिं – उमड़ना। रतें – लाल रंग के। अलि भंवा – भौंरे मंडराते हैं। माति –मतवाले होकर। अपसवां – उड़कर भाग जाना चाहते हैं। तुरंग – घोड़ा। बागा – लगाम। भुइं –पृथ्वी। बहोरा – वापस लौटना। अड़ार – अड़ जाते हैं। सुभर – सुन्दर जल से भरा। काल भौंर – काली पुतलियां या काल रूपी भंवर।

प्रसंग – हीरामन तोता सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती की मांग, भौंहों, ललाट की सुन्दरता का वर्णन करने के उपरांत उसके नेत्रों की शोभा का वर्णन करता है।

व्याख्या – पद्मावती के नेत्र बाके, कटीले हैं। उनकी छवि की तुलना करने के लिए कोई उपयुक्त उपमान नहीं है। उनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता। वे दोनों नेत्र रस से भरे हैं। लगता है वे दो सरोवर हैं जिनमें रस उमड़ रहा है। उन नेत्रों की लालिमा लाल कमलों की सुन्दरता को भी मात करती है और चंचल काली पुतलियों को चक्कर काटते देख ऐसा लगता है मानो श्याम वर्ण के भौंरें लाल कमलों पर मंडरा रहे हों, उन कमलों का रसपान करने के लिए उतावले हो रहे हों और मस्ती में भर वहां से उड़ जाना चाहते हों। उन नेत्रों की चंचलता देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे शक्तिशाली, अनियंत्रित घोड़े हों जो किसी प्रकार का बंधन न मानकर, लगाम तोड़ कर, उछल कर आकाश में उड़ना चाहते हों। वे अपनी ओर देखनेवालों को उसी प्रकार झकझोर कर व्याकुल बना देते हैं जैसे आंधी–तूफान में फंसा व्यक्ति उनके थपेड़ों से व्यकुल हो उठता है। उनकी शोभा और अपूर्व सौन्दर्य दर्शकों के मन में वैसी ही उमंग, वैसा ही हर्षोल्लास उत्पन्न कर देते हैं जैसे समुद्र में उठने वाली लहरें सागर को उद्वेलित कर देती हैं। उन्हें देखनेवाला पहले तो आशा की डोर पर बैठकर स्वर्गिक आनन्द का अनुभव करता है, परन्तु जब वह उस सुन्दरी को पाने में असमर्थ रहता है, आशा निराशा में बदल जाती है तो लगता है कि आकाश में विचरण करते–करते उसे पृथ्वी पर पटक दिया गया है। उसके चंचल, सुन्दर और जादुई नेत्रों को देख संसार के सभी प्राणी विचलित हो उठते हैं स्थिर चित्त वालों के मन भी चंचल हो उठते हैं, वे संयम और नियंत्रण खो बैठते हैं। दूसरों को चंचल बनाने चाले ये नेत्र स्वयं स्थिर रहते हैं अर्थात् पद्मावती स्वयं न चंचल होती है और न उद्विग्न। उसकी मति सदा स्थिर रहती है। इन नेत्रों की चंचलता के कारण आकाश भी डगमगाने लगता है। ऐसा लगने लगता है कि वह भी समुद्र में आकर डूब जायेगा। दोनों नेत्रों की शोभा देखकर व्यक्ति ऐसा अनुभव करता है मानो जल भी भंवर में पड़कर निरंतर घूम रहा हो। उसकी दशा भंवर में फंसे व्यक्ति की तरह हो उठती है, वह आकुल–व्याकुल हो उठता है। कभी–कभी उन नेत्रों की शोभा देख दर्शक को ऐसा आनन्द आता है जैसे वह सागर की लहरों के झूले पर झूल रहा हो। वे दोनों नेत्र दो खंजन पक्षियों या मृगों की तरह प्रतीत होते हैं।

वे सुन्दर नेत्र निर्मल, शीतल जल से भरे सरोवरों के समान हैं। उनकी चमक तथा दीप्ति सरोवर की लहरों में तैरने वाले मणि–माणिक्यों की तरह है। जिस तरह सागर की लहरें तट तक जाती हैं और फिर वापिस लौट आती हैं, उसी प्रकार पद्मावती के नेत्रों की चंचल पुतलियां नेत्रों के किनारों की तफर बढ़कर पुन: बीच में आ जाती हैं। भाव यह है कि उसके नेत्र बड़े चंचल हैं, उसकी चंचल चितवन से प्रभावित लोग स्वयं को कल–भंवर में फंसा अनुभव करते हैं। वे आशा–निराशा की लहरों में डूबते–उतराते रहते हैं, कभी उन्हें सुखानुभूति होती है तो कभी दु:खानुभूति। इस प्रकार उनकी दशा दयनीय है।

विशेष – 1. उपमा, उत्प्रेक्षा तथा अतिशयोक्ति अलंकार।

2. नेत्रों की चंचलता का वर्णन लगभग ऐसी ही शब्दावली में कवि बिहारी ने किया है –

लाज लगाम न मानहि, नैना मो बस नाहिं।

5. **बरुनी का बरनौं इमि बनी। साधे बाने जानु दुइ अनी॥**
जुरी राम रावन के सैना। बीच समुद्र भए दुइ नैना॥
बारहिं पार बनावरि साधा। जा सहुं हेर लाग विष बाधा॥
उन्ह बानन्ह आस को जो न मारा ?बेधि रहा सगरौ संसारा॥
गगन नखत जो जाहिं न गने। वै सब बान ओहि के हने॥
धरती बान बेधि सब राखी। साखी ठाढ़ देहिं सब साखी॥
रोवं–रोवं मानुष तन ठाढ़े। सूतहिं सूत बेध अस गाढ़े॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)

बरुनि-बान अस ओपहं, बेधे रन बन-ढांख।
सौजहिं तन सब रोवां, पंखिहि तन सब पांख॥

शब्दार्थ – बरुनी – बरौनियां, पलकों के कश। अनी – सेनाएं। बनावरि – बाणों की अवली, पंक्तियां। संहु – सम्मुख। हेर – देखते ही। विष–बाधा – विष का प्रभाव। हने – मारे गये। साखी – साक्ष्य, गवाही, वृक्ष। सूतहिं सूत – शरीर के रोम–कूप। रन – अरण्य, जंगल। ढांग – पेड़। सौजहिं – पशु। रोवां – रोमावली, रोएं।

व्याख्या – मैं उसकी बरौनियां की शोभा का वर्णन क्या करूं ?उनका सौन्दर्य अनिर्वचनीय है, शब्दों में नहीं कहा जा सकता, केवल अनुभव किया जा सकता है – वे ऐसी लगती हैं जैसे दो सेनाएं आमने–सामने बाण ताने खड़ी हों या जैसे राम और रावण की सेनाएं एक–दूसरे से लड़ने के लिए अस्त्र–शस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध करने के लिए तत्पर हों, और दोनों नेत्र उनके बीच समुद्र के विस्तार की तरह फैले हों। ऊपर और नीचे की बरौनियों के बीच नेत्र सागर की तरह स्थित है और बरौनियां समुद्र–तट के आर–पार खड़ी युद्ध के लिए तत्पर सेनाएं हैं जो धनुषों पर बाण चढ़ाए हैं कि संकेत मिलते ही शत्रु पर प्रहार करें। दोनों बरौनियों के बीच नासिका सेतुबंध के समान है। वह रूप की राशि राजकुमारी जिसकी ओर भी देखती है वह विष–बाधा अनुभव करने लगता है अर्थात् कामाग्नि उसके शरीर में विष की ज्वाला की तरह फैल जाती है और वह काम–ज्वर के कारण तड़पने–व्याकुल होने लगता है। इस संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो उन काम–बाणों का शिकार न हुआ हो, सबको वह अपनी रूपराशि से विद्ध कर उनके शरीर को काम–भाव से संतप्त करती है। सारा विश्व उन बाणों से बिंध गया है। आकाश में जो अगणित नक्षत्र हैं, वे इन्हीं बाणों के प्रहार से बने छिद्र हैं। उन्हीं बाणों के कारण सारी पृथ्वी में छेद हुए और उनमें वृक्ष उग आये हैं। मनुष्यों के शरीर में रोएं, जंगल के पशुओं के शरीर पर रोमराशि, पक्षियों के शरीर के पंख बाणों के प्रहार का परिणाम है। इन बाणों के बिंधने पर पृथ्वी की सतह पर वृक्ष, मनुष्यों एवं पशुओं के शरीर पर रोमराशि तथा पक्षियों के शरीर में पंख निकल आये हैं।

विशेष –बरौनियों के प्रभाव का वर्णन कर कवि अप्रत्यक्ष रूप से संकेत कर रहा है कि सृष्टि के सब पदार्थ ईश्वर द्वारा रचे गये हैं। यह संसार उसकी ही सृष्टि है, लीला है, माया का परिणाम है। अत: यहां समासोक्ति है।

6. **अधर सुरंग अमी रस भरे। बिंब सुरंग लाजि बन फरे॥**
फूल दुपहरी जानौं राता। फूल झरहि ज्यों–ज्यों कह बाता॥
हीरा लेइ सो विद्रुम–धारा। बिहंसत जगत होइ उजियारा॥
भए मंजीठ पानन्ह रंग लागे। कुसुम–रंग थिर रहै न आगे॥
आस कै अधर अमी भरि राखे। अबहिं अछूत, न काहू चाखे॥
मुख तंबोल–रंग–धारहिं रसा। केहि मुख जोग जो अमृत बसा ?
राता जगत देखि रंगराती। रुहिर भरे आछहि बिहंसाती॥
अमी अधर अस राजा, सब जग आस करेइ।
केहि कहै कंवल बिगासा, को मधकर रस लेइ ?

शब्दार्थ – अमी रस – अमृत। बिंब – बिम्बाफल जो लाल रंग का होता है। दुपहरी – दुपहरिया, या गुड़हल का फूल यह भी लाल रंग का होता है। विद्रुम –मूंगा। मंजीठ – लाल रंग। तंबोल – पान। राता – लाल अनुरक्त। रुहिर – रक्त। मधुकर – भौंरा।

प्रसंग – बरौनियों की शोभा तथा उनके प्रभाव का वर्णन करने के उपरांत हीरामन पद्मावती के ओठों की शोभा, सरसता तथा दीप्ति का वर्णन करता है।

व्याख्या – पद्मावती के ओंठ अपनी लालिमा तथा सरसता के कारण आकर्षक हैं। उनकी सरसता देखकर लगता है कि उनमें अमृत रस है। उनकी लालिमा बिम्बाफल की लालिमा को लज्जित करने वाली है। कदाचित् इसीलिए लज्जित हो वे वन में चले गये हैं, वहीं फलते–फूलते हैं। उनकी लालिमा के आगे गुड़हल फूल की लाली भी तुच्छ है। जब वह बात करती है तो लगता है मानो उसके मुख से फूल झड़ रहे हों, उसकी दंत–पंक्ति हीरों के समान उज्ज्वल और शुभ्र है तथा अधर मूंगों की तरह लाल हैं। जब वह मुस्कराती है तो

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दंतपंक्ति की शुभ्र दीप्ति तथा लाल-लाल ओठों की लालिमायुक्त कान्ति मिलकर सम्पूर्ण विश्व को अपनी शोभा से मंडित कर देती हैं, सारा संसार आलोकित हो उठता है। लगता है जैसे पूर्व दिशा में उषा का आगमन होने पर सारा विश्व उषाकालीन अरुणिमा से आलोकित हो उठा है।

ताम्बूल सेवन से, उसके लाल रस से उसके ओठों की सहज लालिमा और भी बढ़ गयी है और वे मंजिष्ठा जैसे लाल हो गये हैं। रक्त वर्ण वाले पुष्पों की शोभा तो अस्थिर है क्योंकि वे संध्या से पूर्व ही मुर्झाने लगते हैं पर पद्मावती के ओठों की कांति म्लान नहीं होती, अत: वे पुष्पों से भी अधिक लावण्यमय तथा कोमल हैं। उसके ओठ अमृत से भरे हैं पर अभी तक वह अविवाहित हैं, अत: किसी ने उन्हें स्पर्श तक नहीं किया है, वे अछूते हैं, पवित्र हैं। उनमें भरे रस को अभी तक किसी ने नहीं चखा है, किसी ने उनका चुम्बन नहीं लिया है। ताम्बूल-सेवन के कारण उनके रंग से उसकी जिह्वा लाल हो उठी है। भगवान जाने उसके इन ओठों का अमृत रस पीने के लिए किस सौभाग्यवान पुरुष को जन्म दिया है। तात्पर्य यह है कि वह पुरुष वस्तुत: बड़ा सौभाग्यशाली होगा जिसका विवाह इस राजकुमारी से होगा। उसके ओठों की सरसता तथा लालिमा के प्रभाव से ही सारा विश्व अनुराग तथा प्रेमभाव से भर गया है। (प्रेम का रंग लाल माना गया है) विश्व पर अपने सौन्दर्य का प्रभाव देख वह गर्व अनुभव करती है तथा उसके रक्तिम वर्ण वाले ओठों पर मुस्कान दौड़ पड़ती है। वह मुस्कराकर अपना हर्ष तथा गर्व भाव प्रकट करती है।

हे राजा ! विश्व-भर के पुरुष उसके सुन्दर, सरस, अमृत-भरे ओठों को पाने, अधरामृत पान करने की आशा-लालसा लगाये बैठे हैं। पर पता नहीं वह किसको प्राप्त होगी ?विधाता ने उसका विवाह किसके साथ निश्चित किया है ?उस कमल के रस का पान करने का सौभाग्य किस भौंरे का प्राप्त होगा ?

विशेष - 1. उत्प्रेक्षा अलंकार।

2. पद्मावती ईश्वर का प्रतीक है अत: उसके सौन्दर्य से सारे विश्व को प्रभावित बताया गया है।

3. ओठों की लालिमा की तुलना रक्त की लालिमा से करना अनुचित है। ओठों को 'रुधिर भरा' कहना अनुपयुक्त है, शृंगार रस में वीभत्स रस का मिश्रण है और यह काव्य-दोष है।

7. **दसन चौक बैठे जनु हीरा। और बिच बिच रंग स्याम गंभीरा॥**
जुनु भादौं निसि दामिनि दीसी। चमकि उठी तसि वनी बतीसी॥
वह जो जोति हीरा उपराहीं, हीरा दिपहिं सो तेहि परछाहीं॥
जेहि दिन दसन जोति निरमई। बहुतन्ह जोति जोति ओहि भई॥
रवि ससि नखत दीन्ह अगेहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती॥
जहं जहं बिहसि सुभावहिं हंसी। तहं तहं छिटकि जोति परगसी॥
दामिनि दमकि न सरवरि पूजी। पुनि वह जोति और को दूजी॥
हंजत दसन तस चमके पाहन उठे झरक्कि॥
दारिउं सरि जो न कै सका, फाटेउ हिया दरक्कि॥

शब्दार्थ - दसन चौक - आगे के चार दांत। रंग स्याम - काले रंग की मिस्सी जिसका प्रयोग स्त्रियां करती थीं। सुजोति - सुन्दर दीप्ति, चमक। उपराहीं - अधिक थी। निरमई - निर्माण किया। सुभावहि - सहज, स्वाभाविक। दामिनि - बिजली। सरवरि पूजा - समानता नहीं कर सकी। पाहन - हीरे-जवाहरात, पुखराज, माणिक्य आदि रत्न। झरक्कि - दीप्तियुक्त होकर चमकने लगे। दारिवं - दाड़िम, अनार। सरि - समानता। दरक्कि - बीच में से फट जाना।

प्रसंग - पद्मावती के अधरों की सरसता, कांति, लालिमा आदि का वर्णन करने के उपरांत तोता उसकी दंत-पंक्ति की उज्ज्वलता, शुभ्र कांति तथा उनकी कांति के प्रभाव का वर्णन करता है।

व्याख्या - पद्मावती के आगे के चार दांतों की चमक तथा कांति हीरों जैसी थी। उन दांतों के बीच उसने श्याम वर्ण की मिस्सी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लगा रखी थी ताकि वे और भी अधिक दमकें। जिस प्रकार भादों मास की अंधेरी रात में काले बदालों के बीच बिजली चमकती है, चारों दिशाओं को आलोकित कर देती है, उसी प्रकार काली मिस्सी को श्यामलता में उसके हीरों जैसे बत्तीस दांत चमक कर आसपास के वातावरण को दीप्तिमान कर रहे थे। उनकी चमक से चारों दिशाएं प्रकाशित हो उठती थीं। अत: लगता है हीरों की ज्योति उनकी प्रतिच्छयाया मात्र है, उन्हीं की चमक का एक अंश हीरों को मिल पाया है। परमात्मा ने, संसार के स्रष्टा ने जिस दिन पद्मावती के दांतों की ज्योति का निर्माण किया, उसी दिन उस ज्योति का संस्पर्श पाकर संसार के अनेक ज्योतिर्मान पदार्थों का ज्योति मिली। सूर्य चन्द्रमा नक्षत्र आदि जितने भी ज्योति-पिण्ड हैं सबमें उसी की आंशिक जेति समाई हुई है, उसी आंशिक ज्योति को पाकर वे चमकते रहते हैं। इसी प्रकार पृथ्वी के गर्भ में जितने भी हीरे, रत्न, माणिक्य हैं, वे उसी के दांतों की ज्योति का अंश पाकर चमक रहे हैं। जब-जब वह सहज रूप से मुस्कराती है और जहां-जहां उसकी मुस्कान के कारण दांतों की ज्योति फैलती है, वहीं-वहीं आलोक फैल जाता है, सब दिशाएं दिव्य प्रकाश से मंडित हो उठती हैं। उसके दांतों की चमक की तुलना में बादलों में चमकने वाली बिजली की कांति भी फीकी है। संसार में कोई भी ज्योतिर्मान वस्तु उसके दांतों की चमक की तुलना नहीं कर सकती। वे सब फीकी हैं, निष्प्रभ हैं।

मुस्कुराते समय जब उसके दांत चमके, तो ज्योति पाकर ही सब हीरे, मणि, रत्न आदि भास्वर हो उठे, उनमें भी ज्योति-प्रकाश आ गया। उसके दांत अनार के दानों से भी अधिक सुन्दर तथा आकर्षणयुक्त थे, अत: उन्हें देखकर अनार लज्जित हो उठे, उनके हृदय फट गये, विदीर्ण हो गये। कहने का तात्पर्य यह है कि उसके दांतों की चमक तथा शोभ अपूर्व थी, अद्वितीय थी।

विशेष – यह कहकर कि पद्मावती के दांतों की दीप्ति और कान्ति से ही सृष्टि के अन्य ज्योतिर्मान पदार्थों को ज्योति प्राप्त हुई है, कवि ने सूफियों के बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव की पुष्टि की है तथा पद्मावती का ईश्वर का प्रतीक बताया है।

8. **स्रवन सीप दुइ दीप संवारे। कुंडल कनक रचे उजियारे॥**
मनि कुंडल चमकहिं अति लोने। जनु कौंधा लोकहिं दुइ कोने॥
दुहुं दिसि चांद सुरुज चमकाहीं। नखतन्ह भरे निरखि नहिं जाहीं॥
तेहि पर खूंट दीप दुइ बारे। दुइ ध्रुव दुऔ खूंट बैसारे॥
पहिरे खुंभी सिंघल दीपी। जानहुं भरी कचपची सीपी।
खिन खिन जबहिं चीर सिर गहै। कापत बीजु दुहुं दिसि रहैं।
डरपाहिं देव लोक सिंघला। परै न बीजु टूटि एक कला॥
करहिं नखत सब सेवा, स्रवन दीन्ह अस दोउ।
चांद सुरज अस गाहने और जगत को काउ॥

शब्दार्थ – स्रवन – श्रवणेन्द्रिय, कान। कनक – सोना, स्वर्ण। लोने लावण्ययुक्त, शोभायुक्त। लोकहि – चमकती है। खूंट – कानों में पहना जाने वाला एक आभूषण। खूंट – कोना, किनारा। बैसारे – बिठा दिये गये हो। खुंभी – कानों का एक गहना। कचपचिका – कृत्तिका नक्षत्र जिसमें अनेक तारे गुच्छे के रूप में दिखाई देते हैं। बीजु – बिजली। गोहने – साथ में, सेवा में।

प्रसंग – पद्मावती के कपोलों के सौन्दर्य का वर्णन करने के उपरांत हीरामन तोता राजा रत्नसेन से उसके कानों की सुन्दरता का बखान करता है।

व्याख्या – पद्मावती के दोनों कान सीप की तरह स्वच्छ तथा जगमग करते दो दीपकों की तरह चमकते रहते हैं। वह उन सुन्दर कानों में स्वर्ण के बने सुन्दर कुंडल धारण किये रहती है। उन कुंडलों में जड़े मणि भी अपना लावण्य और चमक झलकाते रहते हैं। उनकी चमक देखकर लगता है दोनों दिशाओं में प्रकाश की रेखा कौंध रही है अथवा लगता है कि एक दिशा में सूर्य तथा दूसरी दिशा में चन्द्रमा उग कर अपना प्रकाश तो फैला रहे हैं, पर वे दिखाई नहीं देते। उन कानों में वह खूंट नामक आभूषण भी पहने हैं जो दो दीपकों की तरह अपना आलोक विकीर्ण कर रहे हैं या उनकी शोभा देख लगता है जैसे दोनों कानों में दो ध्रुव तारे बिठा दिये गये हैं और वे जगमग कर रहे हैं। वह सिंहलद्वीप का प्रसिद्ध कानों का आभूषण खुंभी भी कानों में पहने हुए है। उस आभूषण के कारण उसकी शोभा को देख लगता है जैसे सीपी में कृत्तिका नक्षत्र में चमकने वाले तारों का गुच्छा चमक रहा हो। जब-जब वह अपने सिरे पर हाथ रखती

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है तब-तब ऐसा लगता है जैसे दो दिशाओं में बिजली चमक रही हो। उनकी इस चमक को देख देवता तक डर गये हैं, उन्हें भय है, आशंका है कि पता नहीं कब वह बिजली उन पर गिर कर उनका सर्वनाश कर दे।

विधाता ने पद्मावती को ऐसे सुन्दर कान दिये हैं कि आकाश के सब नक्षत्र, चन्द्रमा और सूर्य सभी उसकी सेवा में रत हैं। वह विश्व की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी है। उसके समान संसार में कोई अन्य स्त्री नहीं है।

विशेष - 1. जायसी का लोक-जीवन का ज्ञान उन गहनों से पता चलता है जिनका उल्लेख इन पंक्तियों में है।

2. उनकी बहुज्ञता का प्रमाण है उनका नक्षत्र-ज्ञान।

3. भाषा-ग्रामीण अवधी।

9. **बरनौं गीउ कंबु के रीसी। कंचन-तार-लागि तनु सीसी॥**
कुंदै फेरि जानु गिउ काढी। हरी पुछार ठगी जनु ढाढी॥
जनु हिय काढ़ि परेवा ठाढ़ा। तेहि तै अधिक भाव गिउ बाढ़ा॥
चाक चढ़ाइ सांच जनु कीन्हा। बाग तुरंग जानु गहि लीन्हा॥
गए मयूर तमचूर जो हारे। ऊँह पुकारहिं सांझ सकारे॥
पुनि तेहि ठांव परी तिनि रेखा। घूंट जो पीक लीक सब देखा॥
धनि ओहि गीउ दीन्ह बिधि भाऊ। दहुं कासौं लेइ करै मेराऊ॥
कंठसिरी मुकुतावली, सोहे अभरन गीउ।
लागै कंठहार होइ, को तप साधा जीउ॥

शब्दार्थ - गीउ - ग्रीवा, गर्दन। कंबु - शंख। रीसी - ईर्ष्या। कुंदै - खराद। पुछारि - मोरनी। परेवा - कबूतर। हिय काढ़ि - सीना तान कर। सांच - सांचा। बाग तुरंग - घोड़े की लगाम। तमचूर - मुर्गा। सकारे - प्रातःकाल। तिसि रेखा - तीन रेखाएं। लीक - रेखा। धनि - सुन्दरी। मेराऊ - मुलाना, समाप्ता। कंठसिरी - कंठ में पहना जाने वाला आभूषण। अभरन - आभरण, आभूषण।

प्रसंग - पद्मावती के कानों की शोभा का वर्णन करने के उपरांत अब हीरामन उसकी ग्रीवा की सुन्दरता का बखान करता है।

व्याख्या - हीरामन तोता राजा रत्नसेन से कहता है - हे राजा ! अब मैं पद्मावती की शंख के आकार की ग्रीवा के सौन्दर्य का वर्णन करता हूं। शंख भी उसकी सुन्दरता को देख ईर्ष्या से जलने लगते हैं क्योंकि वह शंख से भी अधिक सुन्दर है। उसकी गर्दन की सुडौलता को देखकर लगता है जैसे किसी शीशी को सोने के तारों में बांध दिया गया हो। उसकी चिकनी त्वचा को देख लगता है कि जैसे खराद पर तराश कर बनायी गयी हो। उसकी ग्रीवा मोरनी की गर्दन से भी अधिक सुन्दर है, तभी तो मोरनी भी उसे देखकर ठगी-सी, स्तब्ध रह जाती है। जब कबूतर सीना फुलाकर खड़ा होता है तो उसकी फूली, गदरायी गर्दन बड़ी लुभावनी लगती है। पर पद्मावती की ग्रीवा का सौन्दर्य उस कबूतर की गर्दन से भी अधिक बढ़ा-चढ़ा है। लगता है विधाता ने बड़े धैर्य से अपने चाक पर चढ़ा कर, और अद्भुत सांचे में ढाल कर उसका निर्माण किया है। जैसे घोड़े की लगाम खींचने पर घोड़े की गर्दन तन जाती है और वह तनी हुई गर्दन सबको आकृष्ट करने लगती है, उसी प्रकार पद्मावती की गर्दन की छवि भी बड़ी मोहक है। उसके सौन्दर्य को देख मोर और मुर्गे भी अपनी हार मान गये हैं, स्वीकार कर रहे हैं कि पद्मावती की ग्रीवा उनकी गर्दन से अधिक सुन्दर है। अपनी हीनता पर लज्जित हो पराज्य-जन्य ग्लानि के कारण वे सुबह-शाम करुणा भरे स्वर में अपना दुःख प्रकट करते रहते हैं। पद्मावती की ग्रीवा में तीन रेखाएं स्पष्ट दिखाई देती हैं। उसकी गर्दन की त्वचा इतनी कोमल तथा पारदर्शी है कि जब वह पान की पीक निगलती है तो उसकी लाल रेखा स्पष्ट दिखाई देती है। इस प्रकार विधाता ने उसे सौन्दर्यमयी ग्रीवा प्रदान की है। अब देखना यह है कि विधाता ऐसी सुन्दर रमणी का विवाह किस सौभाग्यशाली पुरुष से कराता है, वह पत्नी के रूप में किसे प्राप्त होती है।

पद्मावती अपने कंठ में दो आभूषण धारण किये है - कंठ श्री तथा मातियों की माला। न मालूम किस तपस्वी-साधक को उसकी तपस्या-साधना के फलस्वरूप इस रमणी को प्राप्त करने का वरदान मिलेगा। और वह उसका कंठहार बनेगी।

Rani Vishwa Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेष –

1. उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलंकार।

2. कवि का लोक–जीवन से परिचय तथा पशु–पक्षियों के शरीरावयवों की जानकारी।

3. ग्रीवा की सुडौलता बताने के लिए एक बार कुंद का तथा दूसरी बार चाक का प्रयोग पुनरुक्ति दोष है। दोनों में एक ही बात कही गयी है।

10. **कनक–दंड दुइ भुजा कलाई। जानौं फेरि कुंदेरै भाई॥**
कदलि–गाभ कै जानौ जोरी। औ राती ओहि कंवल–हथोरी॥
जानो रकत हथेरी बूड़ी। रवि परभात तात, वै जुड़ी॥
हिया काढ़ि जनु लीन्हेसि तथा। रुहिर भरी अंगुरी तेहि साथा॥
औ पहिरे नग–जरी अंगूठी। जब बिनु जीउ, जीउ ओहि मूठी॥
बाहूं कंगन टाड़ सलोनी। डोलत बांह भाक गति लोनी॥
जानौ गति बेड़िन देखराई। बांह डोलाइ जीउ लेउ जाइ॥
भुज–उपमा पोंनार नहिं, खीन भयउ तेहि चिंत।
ठावहि ठांव बेध भा, ऊबि सांस लेइ निंत॥

शब्दार्थ – कनक – स्वर्ण, सोना। दंड – छड़। कुदैरे – खराद। कदलि–गाभ – केले के नरम कल्ले जो बहुत कोमल, चिकने तथा गदराये होते हैं। राती – लालिमायुक्त। हथोरी –हथेली। बूड़ी – डूबी, सिक्त। जूड़ी – शीतल। टाड़ –बाहों में पहना जाने वाला एक आभूषण। लोनी – लावण्ययुक्त। बेड़िन – नाचने वाली स्त्री, बंजारा जाति की स्त्री। पोंनार – पद्मनाल, कमल, की नाल। खीन – क्षीण। बेध – कांटे। ऊबि – जल से ऊपर उठकर।

व्याख्या – पद्मावती की दोनों भुजाएं और कलाइयां कितनी सुंदर थी मानो स्वर्ण–दंड से बनी हुई हो। उनकी सुडौलता, मसृणता, कोमलता देख कर लगता था जैसे विधाता ने उन्हें बनाने के बाद खराद पर चढ़ाकर सुडौल तथा चिकना रूप दिया हो। उन भुजाओं की मसृणता, गदरायापन और सुडौलता देखकर लगता था जैसे वे हाड़–मांस की न होकर केले के नरम कल्लों से बनी हों। उसकी अरुणिम रंग की हथेलियां रक्तिम वर्ण के कमल के समान शोभायमान थीं। या फिर लगता था जैसे रक्त में डुबोकर निकाली गयी हों। उनकी लाली के सम्मुख प्रभातकालीन सूर्य की लालिमा और उसकी किरणों का सौन्दर्य भी फीका लगता था। बाल–सूर्य भी गुणों तथा सौन्दर्य में उसकी हथेलियों की समानता नहीं कर सकता क्योंकि सूर्य गरम होता है जबकि उसकी हथेलियों का स्पर्श शीतल तथा सुखद था। उनकी लालिमा देखकर कभी–कभी ऐसा भी लगता था जैसे किसी ने अपना रक्त–रंजित हृदय निकाल कर उन हथेलियों पर रख दिया हो और उसके रक्त से वे लाल हो गयी हैं। हथेलियों की अंगुलियों भी लाल रंग की थी। उन अंगुलियों में वह रत्नजड़ित अंगूठी पहने हुए थी। यह संसार प्राणविहीन, निष्प्रभ तथा श्रीहीन हो रहा है क्योंकि उसके प्राण तो पद्मावती ने अपनी मुट्ठी में बंद कर रखे हैं। उसकी सुन्दर भुजाओं को कंगन, बाजूबंद, टड्डे आदि आभूषण अलंकृत कर रहे थे। उनके कारण उसकी भुजाओं की शोभा और बढ़ गयी थी वह अपनी भुजाओं को लीला–भाव से हिलाती–डुलाती थी तो लगता था जैसे बंजारा जाति की कोई नर्तकी नृत्य करते समय नृत्य की मुद्रा में अपनी भुजाओं से विविध भाव प्रकट कर रही है। अपनी इसी भाव–भंगिमा से वह सबका मन जीत लेती है, उन्हें मुग्ध कर उनके प्राणों पर अपना अधिकार कर लेती है। उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर लोग अपने प्राण न्यौछावर करने को तैयार हो जाते हैं।

पद्मावती की भुजाओं की तुलना कमल–नाल से करना भी उचित नहीं है क्योंकि उसकी भुजाएं गुण तथा रूप दोनों में कमल–नाल से भी अधिक सुन्दर हैं। कदाचित् अपनी तुच्छता का अहसास कर, स्वयं को पद्मावती की भुजाओं की तुलना में हीन मानकर ही वह लज्जा तथा चिन्ता के कारण दिन–पर–दिन क्षीण होजी जा रही है, उसका शरीर कंटकित हो गया है (कमल–नाल में कांटों की तरह रोंए होते हैं) और लज्जा के कारण पहले तो वह जल में अपना मुख छिपाती है पर बाद में दम घुटने के कारण व्याकुल होने पर

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वह उसे पुन: जल के ऊपर कर लेती है। (कमल-नाल पानी में डूबी रहती है पर उसका ऊपरी भाग सदा जल से बाहर रहता है। जल की सतह ऊंची होने पर वह भी जल के ऊपर उठती जाती है)।

विशेष –

1. उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलंकार।

2. हथेलियों को रक्त में डूबा बताना, रक्तरंजित हृदयों को धारण करने का कारण लाल होना वीभत्स रस की सृष्टि करता है जो शृंगार रस का विरोधी रस है, अत: यह काव्य-दोष है, पर इसका कारण कवि पर फारसी की मसनवियों का प्रभाव है।

3. भुजा-संचालन की तुलना बेड़िनी के नृत्य-प्रदर्शन से करना भी भोंडा तथा कुरुचिपूर्ण है।

4. सारा संसार उसकी मुट्ठी में है, उसके बिना जगत् प्राणविहीन है – इससे संकेत मिलता है कि कवि ने पद्मावती को ईश्वर का प्रतीक माना है।

11. **लंक पुहुमि अस आहि न काहू। केहरि कहौ न ओहि सरि ताहू॥**
बसा लंक बरनै जग झीनी। तेहि तें अधि लंक वह खीनी॥
परिहंस पियर भए तेहि बसा। लिए डंक लोगन्ह कहं डसा॥
मानहुं नाल खंड दुइ भए। दुहूं बिच लंक-सार रहि गए॥
हिय के मुरे चलै वह तागा। पैग देत कित सहि सक लागा ?
छुद्रघंटिका मोहहिं राजा। इन्द्र-अखाड़ आइ जानु बाजा॥
मानहुं बीन गहे कामिनी। गावहिं सबै राग रागिनी॥
सिंधु न जीता लंकि सरि, हारि लीन्ह बनवासु।
तेहि रिस मानुस-रकत पिए, खाइ मारि कै मांसु॥

शब्दार्थ – लंक – कटि, कमर। पुहुमि – पृथ्वी। केहरि – सिंह। सरि – समान। बसा – बर्र (ततैया)। झीनी – पतली। परिहंस – ईर्ष्या, द्वेष। पियर – पीली। हिस के मुरे – हृदय में भावों का संचालन होने पर, भाव-परिवर्तन होने पर। तागा – सूत, कमल नाल के तारों के समान कटि। पैग देत – कदम आगे बढ़ाने, चलने। छुद्रघंटिका – घूंघरुओं वाली करधनी। सिंघ – शेर। हारि लीन्ह – पराजय भावना के कारण।

प्रसंग – पद्मावती के वक्षस्थल, पेट और पीठ की सुन्दरता का वर्णन करने के बाद तोता उसके कटि-प्रदेश की शोभा का वर्णन करता है।

व्याख्या – विश्व में पद्मावती की कटि जैसी कमर किसी भी अन्य रमणी की नहीं है। सिंह की कमर भी उसकी समता नहीं कर सकती। संसार के लोगों की मान्यता है, विश्वास है कि बर्र की कटि बहुत पतली होती है परन्तु पद्मावती की कमर तो उससे भी अधिक पतली है। बर्र में पीत वर्ण होने का कारण यह है कि वह अपनी हीन-भावना, ईर्ष्या-भाव तथा चिन्ता के कारण पीली पड़ गई है, उसका रक्त सूख गया है। अपना आक्रोश, अपनी झुंझल वह लोगों को डस कर प्रकट करती है। उसके डंक मारकर लोगों को कष्ट पहुंचाने का कारण उसका यही ईर्ष्या-भाव तथा झुंझल है। उसकी कटि की क्षीणता देखकर लगता है जैसे वह हाड़-मांस की बनी न होकर कमल-नाल के महीन सूतों से बनी हो। (कमल-नाल के दो टुकड़े करने पर उन दोनों के बीच महीन सूत दिखाई देते हैं) यह कटि इतनी पतली, दुर्बल तथा क्षीण है कि हृदय के भावों का भार भी सहन नहीं कर पाती। जब हृदय के भाव-परिवर्तन होता है या भाव उमड़ते हैं तो भी उनके भार के कारण उसकी कमर लचकने लगती है। जो इतनी क्षीण है वह पग आगे रखने, चलने का कष्ट कैसे सह सकती है ? यदि वह चले तो हो सकता है कमल-नाल के सूतों से बनी उसकी कमर टूट ही जाए। वह अपनी इस पतली कमर में घुंघरुओं वाली करधनी पहने हुए है। उस किंकिणी-रव घुंघरुओं की संगीत-ध्वनि को सुनकर देश-विदेश के राजा मुग्ध हो उठते हैं; उस

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मोहक स्वर को सुनकर लगता है जैसे इन्द्रलोक के वाद्ययंत्रों से निकली संगीत लहरी सुनाई दे रही है या कोई कामिनी हाथ में वीणा लिए उसके स्वरों के साथ-साथ स्वयं भी गा रही हो। वीणा तथा कामिनी के कंठ से विभिन्न राग-रागिनियों में निकले समवेत संगीत-स्वर सम्पूर्ण वातावरण को मादक बना रहे हों।

सिंह के जंगल में जाकर रहने, वहां के पशुओं का शिकार कर उनका मांस खाने तथा मानवों की हत्या कर उनका रक्त पीने के पीछे मुख्य कारण यही है कि वह पद्मावती की कटि का सौंन्दर्य देख लज्जित हो उठा, पराजय-भावना के कारण हिंसा करने लगा, प्रतिहिंसा की भावना ने उसे खुंख्वार बना दिया।

विशेष -

1. उत्प्रेक्षा अलंकार।

2. कटि की क्षीणता बताने के लिए जिन उपमानों को चुना गया है वे कवि की कल्पना-शक्ति तथा बहुज्ञता का परिचायक है।

3. शेर के जंगल में रहने तथा हिंस्र पशु बनने के जो कारण बताये गये हैं कि कवि की मौलिक उद्भावना का परिणाम हैं और उसकी प्रशंसा करनी ही होगी।

6.4 मूल पाठ

सिंहल-दीप-वर्णन खण्ड

सिंघल दीप कथा अब गावौं। औ सो पदुमिनि बरनि सुनावौं।
बरनक दरपन भांति बिसेखा। जेहि जस रूप सो तैसेइ देखा।
धनि सो दीप जहं दीपक नारी। औ सो पदुमिनि दइअं अवतारी।
सात दीप बरनहिं सब लोगू। एकौ दीन न ओहि सरि जोगू।
दिया दीप कहौं तस नाहीं। पूज न लंक दीप परिछाहीं।
दीप कुसस्थल आरन परा। दीप महुस्थल मानुस हरा।
सब संसार परथमैं आए सातौं दीप।
एकौ दीप न उत्तिम सिंघल समीप॥ 1॥

गंधपलेन सुगन्ध नरेसू। सो राजा यह ताकर देसू।
लंका सुना जो रावन राजू। तेहु चाहि बड़ ताकर साजू।
छप्पन कोटि कदक दर साजा। सबै छत्रपति ओरंगन्ह राजा।
सोरह सहस घोर घोरसारा। सावंकरन बालका तुखारा।
सात साहस हस्ती सिंघली। जिमि कबिलास एरापति बली।
असुपती क सिरमौर कहावा। गजपती क आंकुस गज नावा।
नरपती क कहाव नरिंदू। भुअपती क जग दोसर इंदू।
अइस चक्कवै राजा चहूं भै होइ।
सबै आइ सिर नावहिं सरबरि करै न कोइ॥ 2॥

जबहि दीप निअरावा जाई। जनु कबिलास निअर भा आई।
घन अबराउं लाग पहुंचासा। उठै पुहुमि हुति लाग अकासा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

तरिवर सबै मलैगिरि लाए। भै जग छांह रैनि होइ छाए।
मलै समीर सोहाई छाहां। जेठ जाड़ लागै तेहि माहां।
ओहि छांह रैनि होइ आवै। हरिअर सखै अकास दिखावै।
पंथिक जौं पहुंचै सहि धामू। दुख बिसरै सुख होइ बिसरामू।
जिन्ह वह पाई छांह अनूपा। बहुरि न आइ सही यह धूपा।
जिन्ह वह पाई छांह अनूपा। बहुरि न आइ सही यह धूपा।
अस अबराउं सघन घन बरनि न पारौ अन्त।
फूल फरै छहूं रितु जानहु सदा बसंत॥ 3॥

फरे आंब अति सघन सोहाए। और जस फरे अधिक सिर नाए।
कटहर डार पींड सो पाके। बड़हर सोउ अनूप अति ताके।
खिरनी पाकि खांड असि मीठी। जांबु जो पाकि भंवर असि डीठी।
नरिअर फरे फरी खुरहुरी। फुरी जानु इंद्रासन पुरी।
पुनि महु चुवै सो अधिक मिठासू। मधु जस मीठ पुहुप जस बासू।
अरि खजहजा आव न नाऊं। देखा सब रावन अंबराऊं।
लाग सखै जस अंबित साखा। रह लोभाइ सोइ जोइ चाखा।
गुआ सुपारी जायफर सब फर फरे अपूरी।
आस पास धनि इंबिली ओ घन तार खजूरी॥ 4॥

बसहिं पंखि बोलहिं बहु भाषा। करहि हुलास देखि कै साखा।
भोर होत बासहिं चुहचुही। बोलहिं पाड़क एकै तुहीं।
सारौ सुआ सो रहचह करहीं। गिरिहिं परेवा और करबरहीं।
पिउ पिउ लागै करै पपीहा। तुही तुही कह गुडुरू खीहा।
कुहू कुहू कोइल करि राखा। औ भिंगराज बोल बहु भाषा।
दही दही कै महरि पुकारा। हारिल बिनवै आपनि हारा।
कुलकहिं मोर सोहावन लागा। होइ कोराहार बोलहिं कागा।
जावंत पंखि सहे सब बैठे भरि अंबराऊं।
आपनि आपनि भाषा लेहिं दइअ कर नाउं॥ 5॥

पैग पैग पर कुआं बावरी। साजी बैठक औ पांवरीं।
औरु कुंड बहु ठांवहि ठांऊ। सब तीरथ और तिन्ह के नाऊं।
मढ़ मण्डप चहुं पास संवारे। जपा तपा सब आसन मारे।
कोइ रिखेस्वर कोइ सन्यासी। कोइ रामजन कोइ मसवासी।
कोई ब्रह्मचर्ज पंथ लागे। कोई दिगम्बर आछहिं नांगे।
कोइ सुरसती सिद्ध कोइ जोगी। कोइ निरास पंथ बैठ वियोगी।
कोइ महेसुर जंगम जती। कोई एक पखे देबी सती॥
सेवरा खेवरा बानपरस्ती सिध साधक अवधूत।
आसन मारि बैठ सब जारि आतमा भूत॥ 6॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मानसरोदक देखिअ काहा। भरा समुंद अस अति अवगाहा।
पानि मोति अस निरमर तासू। अंब्रित बानि कपूर सुबासू।
लंक दीप कै सिला अनाई। बांधा सरवर घाट बनाई।
खंड खंड सीढ़ी भईं गरेरी। उतरहिं चऊहिं लोग चहुं फेरी।
फूला कंवल रहा होइ राता। चुगहिं हंस ओ केलि कराहीं।
कनक पंखि पैरहिं अति लोने। जानहु चित्त संवारे सोने।
ऊपर पाय चहूं दिसि अंब्रित फर सब रूख।
देखि रूप सरवर कर गई पिआस औ भूख॥ 7॥

पानि भरइ आवहिं पनिहारी। रूप सुरूप पदुमिनी नारी।
पदुम गंध तेन्ह अंग बसाही। भंवर लागि तेन्ह संग फिराहीं।
लंक सिंघनी सारंग नैनी। हंसगामिनी कोकिल बैनी।
आवहिं झुंड सो पांतिहि पांती। गवन सोहाइ सो भांतिहि भांती।
केस मेघावरि सिर ता पाईं। चमकहि दसन बीज की नाईं।
कनक कलस मुख चंद दिपाही। रसह कोड सों आवहिं जाहीं।
जासौं वै हेरहिं चख नारी। बांक नैंन जनु हनहिं कटारी।
मानहु मैंन मुरति सब अछरीं बरन अनूप।
जेन्हिकी ये पनिहारी सो रानी केहि रूप॥ 8॥

ताल तलावरि बरनि न जाहीं। सूझइ वारपार तेन्ह नहीं।
फूले कुमुद केत अजिआरें। जानहुं उए गगन महं तारे।
उतर हिं मेघ चढ़हिं लै पानी। चमकहिं मंछ बीजु की बानी।
पैरहिं पंखि सो संगहि संगा। सेत पीत राते बहु रंगा।
चकई चकवा केलि कराहीं। निसि बिछुरहिं औ दिनहिं मिलाहीं।
कुरलहिं सारस और हुलासा। जिअन हमार मुअहिं एक पासा।
केंवा सोन ढेक बग लेदी। रहे अपूरि मीन जल भेदी।
नग अमोल तेन्ह तालन्ह दिनहिं बरहिं जनु दीप।
जो मजरिआ होइ तहं सो पावइ वह सीप॥ 9॥

पुनि जो लाग बहु अंब्रित बारी। फरीं अनूप होइ रखवारी।
नवरंग नींबू सुरंग जंभीरा। औ बादाम बेद अंजीरा।
गलमल तुरंज सदाफर फरे। नारंग अति राते रस भरे।
किसमिस सेब भरे नौ पाता। दारिवं दाख देखि मन राता।
लागि सोहाई हरपारेउरी। ओनइ रही केरन्ह की घउरी।
फरे तूत कमरख औ निउंजी। राय करौंद बैरि चिरउंजी।
सखदराउ छोहारा डीठे। औरु खजखजा खाटे मीठे।
पानी देहिं खंडवानी कुअंहि खांड बहु मेलि।
लागीं घरी रहट की सीचहिं अंब्रित बेलि॥ 10॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पुनि फुलवारी लागि चहुं पासा। बिरिख बेधि चंदन भै बासा।
बहुत फूल फूली घन बेली। केवरा चंपा कुंद चंबेली।
सुरंग गुलाल कदम और कूजा। सुगंध बकौरी गंध्रप पूजा।
नागेसरि जद बरग नेवारि। औ सिंगारहार फुलवारी।
सोन जरद फूली सेवती। रूप मंजरी और मालती।
जाही जूही बकचुन लावा। पुहुप सुदरसन लाग सोहावा।
बोलसिरी बेइलि औ करना। सबहि फूल फले बहु बरना।
तेन्ह सिर फूल चढ़हिं वै जेन्ह थे मनि भागु।
आछहिं सदा सुगंध भे जनु बसंत और फागु॥ 11॥

सिंघल नगर देख पुनि बसा। धनि राजा असि जाकरि दसा।
ऊंची पंवरी ऊंच अवासा। जनु कबिलास इन्द्र कर बासा।
राउ रांक सब घर घर सुखीं। जो देखिअ सो हंसता मुखी।
रचि रचि राखे चंदन चौरा। पोते अगर मेद और केवरा।
सब चौपारिन्ह चंदन खंभा। ओठंधि सभापति बैठे सभा।
जनहु समा देवतन्ह कै जुरी। परी दिस्टि इन्द्रासन पुरी।
सबै गुनी पंडित औ ग्याता। संसकिरत सब के मुख बाता।
अैहिक पंथ सवांरहि जस सिवलोक अनूप।
घर घर नारि पदुमिनी मोहहिं दरसन रूप॥ 12॥

पुनि देखिअ सिंघल की हाटा। नवौ निद्धि लछिमी सब बाटा।
कनक हाट सब कुंहकुंह लीपी। बैठ महाजन सिंघल दीपी।
रचे हंथोड़ा रूपइं ढारी। चित कटाउ अनेग संवारी।
रतन पदारथ मानिक पाती। हीर पंवार सो अनबन जोती।
सोन रूप सब भएउ पसारा। धवलसिरी पोतहिं घर वारा।
औ कपूर बेना कस्तूरी। चंदन अगर रहा भरिपूरी।
जेइं न हाट एहि लीन्ह बेसाहा। ताकहं आन हाट कित लाहा।
कोई करै बेसाहना काहू केर बिकाइ।
कोई चला लाभ सौं कोई सूर गंवाइ॥ 13॥

पुनि सिंगार हाट धनि देसा। कइ सिंगार तहं बैठी बेसा।
मुख तंबोर तन चीर कुसुंभी। कान्ह कनक जराऊ खुभी।
हाथ बीन सुनि मिरिग भुलाहीं। नर मोहहिं सुनि पैगु न जाहीं।
भौंह धनुक तहं नैन अहेरी। मारहिं बान सान सौं फेरी।
अलक कपोल डोल हसि देहीं। लाइ कटाख मारि जिउ लेहीं।
कुच कंचुकि जानहुं जुग सारी। अंचल देहि सुभाबहिं ढारी।
केत खेलारि हारि तेन्ह पासा। हाथ झारि होइ चलहिं निरासा।
चेटक लाइ हरहिं मन जौ लहि गथ है फेंट।
सांठि नाठि उठि भए बटाऊ ना पहिचान न भेंट॥ 14॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लै लै बैठ फूल फुलहारी। पान अपूरब धरे संवारी।
सोंधा सबै बैठू लै गांधी। बहुल कपूर खिरौरी बांधी।
कतहू पंडित पढ़हिं पुरानू। धरम पंथ कर करहिं बखानू।
कतहूं कथा कहै कछु कोई। कतहूं नाच कोड भल होई।
कतहूं छरहटा पेखन लावा। कतहूं पाखंड कांठ नचावा।
कतहूं नाद सबद होइ भला। कतहूं नाटक चेटक कला।
कतहूं काहुं ठग विद्या लाई। कतहूं लेहिं मानुस बौराई।
चरपट चोर धूर गंठिछोरा मिले रहहि तेहि नांच।
जो तेहि नांच सजग भा अगुमन गथ ताकर पै बांच॥ 15॥

पुनि आइअ सिंघल गढ़ पासा। का बरनौं जस लाग अकासा।
तरहिं कुरंभ बासुकि कै पीठी। ऊपर इन्द्रलोक पर डोठी।
परा खोह चहुं दिसि तस बांका। कांपै जांघि जाइ नहिं झांका।
अगम असूझ देखि डर खाई। परै सो सात पतारन्ह जाई।
नव पंवरी बांकी नच खंडा। नवहुं जो चढै जाइ ब्रह्मांडा।
कंचन कोट जरे नग सीसा। नखतन्ह भरा बीजू अस दीसा।
लंका चाहि ऊंच गढ़ ताका। निरखि न जाइ दिस्टि मन थाका।
हिय न समाइ दिस्टि नहिं पहुंचै जानहु ठाढ़ सुमेरू।
कहं लगि कहौं ऊंचाई ताकर कहं तगि बरनौं फेरु॥ 16॥

निति गढ़ बांचि चलै ससि सूरू। नाहि त बाजि होइ रथ चूरू।
पंवरी नवौ बैज्र कइ साजी। सहस सहस तहं बैठे पाजी।
फिरहिं पांच कोटवार सो भंवरी। कांपै पांय चंपत वै पंवरी।
पंवरिहि पंवरि सिंध गढ़ काढ़े। डरपहिं राय देखि तेन्ह ठाढे।
बहुं बनान वै नाहर गढे। जनु गाजहिं चाहहिं सिर चढे।
ग्रहिं पूंछ मारहिं जीहा। कुंजर डरहिं कि गुंजरि लीहा।
कनक सिला गढ़ि सीढ़ी लाईं। जगमगाहिं गढ़ ऊपर ताईं।
नवौ खंड नव पंवरीं औ तहं बज्र केवार।
चारि बसेरें सो चढ़ै सत सौं चढ़ै जो पार॥ 17॥

नवौं पंवरि पर दसौं दुआरू। तेहि पर बाज राज घरिआरू।
घरी सो जैठि गनै घरिआरी। पहर पहर सो आपनि बारी।
जबहिं घरी पूजी वह मारा। घरी घरी घरिआर पुकारा।
परा जी डांड जगत सब डांडा। का निचिंत मांटी कर भांडा।
तुम्ह तेहि चाक चढ़े होइ कांचे। आएहु फिरै न थिर होइ बांचे।
घरी जो भरै घटै तुम आऊ। का निचिंत सोवहि रे बटाऊ।
पहरहि पहर गजर नित होई। हिआ निसोगा जाग न सोई।
मुहम्मद जीवन जब भरन रहंट घरी की रीति।
घरी सो आई ज्यों भरी ढरी जनम गा बीति॥ 18॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

गढ़ पर नीर खीर दुइ नदी। पानी भरहिं जैसे दुरुपदी।
औरु कुंड एक मोंतीचूरू। पानी अंब्रित कीच कपूरू।
ओहि क पानि राजा पै पिआ। बिरिधि होइ नहि जौ लहि जिआ।
कंचन बिरिख एक तेहि पासा। जस कलपमरु इन्द्र कबिलासा।
मूल पतार सरग ओहि साखा। अझर बेलि को पाव को चाखा।
चांद पात और फूल तराईं। होइ उजिआर नगर जहं ताईं।
वह फर पावै तपि कै कोई। बिरिध खाइ नव जीवन होई।
राजा भए भिखारी सुनि वह अंब्रित भोग।
जेइं पावा सो अमर भा न किछु ब्याधि न रोग॥ 19॥

गढ़ पर बसहिं चारि गढ़पती। असुपति गजपति औ नरपती।
सब क धौरहर सोनै साजा। औ अपने अपने घर राजा।
रूपवंत धनवंत सभागे। परस पखान पंवरि तेन्ह लागे।
भोग बेरास सदा सब माना। दुख चिंता कोई जरम न जाना।
मंदिर मंदिर सबकें चौपारी। बैठि कुंवर सब खेलहि सारी।
पांसा ढरै खेल भली होइ। खरग दान सरि पूज न कोई।
भांट वरनि कहि कीरति भली। पावहिं हस्ति घोर सिंघली।
मंदिर मंदिर फुलवारी चोवा चंदन बास।
निसि दिन रहै बसंत भा छहु रितु बारहु मास॥ 20॥

पुनि चलि देखा राज दुआरू। महिं धूबिअ पाइअ नहिं बारू।
हस्ति सिंघली बांधे बारा। जनु सजीव सब ठाढ़ पहारा।
कवनौ सेत पीत रतनारे। कवनौ हर धूप और कारे।
बरनहि बरन गगन जस मेघा। औ तिन्ह गगन पीठ जनु ठेंघा।
सिंघल के बरने सिंघली। एकेक चाहि सो एकेक बली।
गिरि पहार भब्बै गहि पेलहिं बिरिख उपारि झारि मुख मेलहिं।
मात निमत सब गरजहिं बांधे निसि दिन रहहिं महाउत कांधे।
धरती भार न अंगवै पांव धरत उठ हालि।
कुरुंम टूट फन फाटे तिन्ह हस्तिन्ह की चालि॥ 21॥

पुनि बांध रजबार तुरंगा। का भरनौं जस उन्हके रंगा।
लील समुंद चाल जग जानै। हांसुल भंवर किआह बखानै।
हरे कुरंग महुअ बहु भांती। गुर्र कोकाह बलाह सो पांती।
तीख तुखार चांड औ बांके। तरपहिं तबहि तायन बिनु हांके।
मन तें अगुमन डोलहिं बागा। देत उसास गगन सिर लागा।
पावहिं सांस समुंद पर धावहिं। बूड़ न पावं पार होइ आवहिं।
थिर न रहहि रिस लोह चबाहीं। भांजहि पूछि सीस उपराहीं।
अस तुखार सब देख जनु मग के रथवाह।
नैन पलक पहुंचावहि जहं पहुंचा कोउ चाह॥ 22॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

राजा सभा पुनि दीखा बईठी। इंद्र सभा जनु परि गई डीठी।
धनि राजा असि सभा संवारी। जानहु फूलि रही फुलवारी।
मुकुट बंध सब बैठे राजा। दर निशान नित जेन्ह के बाजा।
रूपवंत मनि दिपै लिलाटा। मांथे छात बैठ सब पाटा।
मानहु कंवल सरोवर फूलै। सभा क रूप देखि मन भूलै।
पान कपूर मेद कस्तूरी। सुगंध बास भरि रही अपूरी।
मांझ ऊंच इंद्रासन साजा। गंध्रपसेनि बैठ जहें राजा।
छत्र गगन लहि ताकर सूर तवै जसु आपु।
सभा कंवल जिमि बिगसै मांथे बड़ परतापु॥ 23॥

साजा राजमंदिर कबिलासु। सोने कर सब पुहुमि अकासू।
सात खंड धौराहर साजा। उहै संवारि सकै अस राजा।
हीरा ईंट कपूर गिलावा। औ नग लाई सारग लै लावा।
जांवत सबै उरेह उरेहे। भांति भांति नग लाग उबेहे।
भा कटाव सब अनबन भांती। चित्र होत गा पांतिहि पांती।
लागे खंभ मनि मानिक जरे। जनहु दिय दिन आछत बरे।
देखि धौरहर कर उंजियारा। छपि गे चांद सूर औ तारा।
सुने सात बैकुंठ जस तस साजे खंड सात।
बेहर बेहर भाउ तेन्ह खंड खंड ऊपर जात॥ 24॥

बरनौं राज मंदिर रनिवासु। अछरिन्ह भरा जानु कविलासु।
सोरह सहस पदुमिनी रानी। एक एक तें रूप बखानी।
अतिम सुरूप औ अति सुकुवारा। पान फूल के रहहिं अधारा।
तिन्ह ऊपर चंपावति रानी। महा सुरूप पाट परधानी।
पाट बैसि रह किए सिंगारू। सब रानी ओहि करहिं जोहारू।
निति नव रंग सुरंगम सोई। प्रथमै बैस न सरबरि कोई।
सकल दीप महं चुनि-चुनि आनी। तेन्ह महं दीपक बारह बानी।
कुअंरि बतीसौ लक्खनी अस सब मांह अनूप।
जांवत सिंघल दीपइ सबै बखानइ रूप॥ 25॥

नखशिख खण्ड

कर सिंगार ओहि बरनौं राजा। ओहि क सिंगार ओहि पै छाजा।
प्रथमहि सीस कस्तूरी केसा। बलि बासुकि को औरु नरेसा।
भंवर केस वह मालति रानी। बिसहर लुरहिं लेहिं अरघानी।
बेनी छोरि झारू जौं बारा। सरग पतार होइ अंधियारा।
कोंवल कुटिल केस नग कारे। लहरन्हि भरे भुअंग बिसारे।
बेधे जानु मलैगिरि बासा। सीस चढ़े लोटहिं चहुं पासा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

घुंघुरवारि अलकैं बिख भरीं। सिंकरी पेम चहहिं गियं परीं।
अस फंदवारे केस वै राजा परा सीस गियं फांद।
अस्टौ कुरी नाग ओरगाने भै केसन्हि के बांद॥ 26॥

बरनौं मांग सीस उपराहीं। सेंदुर अबहिं चढ़ा तेहि नाहीं।
बिनु सेंदुर अस जानहुं दिया। उजिअर पंथ रैनि मह किया।
कंचन रेख कसौटी कसी। जनु घन महं दामिनि परगसी।
सुरुज किरिनि जस गगन बिसेखी। जमुना मांझ सरसुती देखी।
खांडै धार रुहिर जनु भरा। करवत लै बेनी पर धरा।
तेहि पर पूरि धरै जौं मोंती। जमुना मांझ गांग कै सोती।
करवत तपा लेहिं होइ चूरू। मकु सो रुहिर लै देइ सेंदूरू।
कनक दुआदस बानि होइ चाह सोहाग वह मांग।
सेवा करहिं नखत औ तरई उअै गगन निसि गांग॥ 27॥

कहौं लिलाट दुइजि कै जोती। दुइजिहि जोति कहां जग ओती।
सहस करां जो सुरुज दिपाई। देखि लिलाट सोउ छपि जाई।
का सरबरि तेहि देउं मयंकू। चांद कलंकी वह निकलंकू।
औ चांदहि पुनि राहु गरासा। वह बिनु राहु सदा परगासा।
तेहि लिलाट पर तिलक बईठा। दूइजि पाट जानहुं धुव डीठा।
कनक पाट जनु बैठेउ राजा। सबै सिंगार अत लै साजा।
ओहि आगें थिर रहै न कोऊ। दहुं काकह अस जुरा संजोऊ।
खरग धनुक औ चक्र बान दइ जग मारन तिन्ह नाउं।
सुनि कै परा मुरुछि कै राजा मो कहं भए एक ठाउं॥ 28॥

भौहैं स्याम धनुक जनु ताना। जासौं हेर मार बिख बाना।
उहै धनुक उन्ह भौहन्ह चढ़ा। कइ हतियार काल अस गढ़ा।
उहै धनुक किरसुन पहं अहा। उहै धनुक राघौ कर गहा।
उहै धनुक रावन संघरा। उहै धनुक कंसासुर मारा।
उहै धनुक बेध हुत राहू। मारा ओहीं सहस्सर बाहू।
उहै धनुक मैं ओपहं चीन्हा। धानूक आपु बेझ जग कीन्हा।
उन्ह भौंहन्हि सरि केउ न जीता। आछरिं छपीं छपीं गोपीता।
भौंह धनुक धनि धानुक दोसर सरि न कराइ।
गगन धनुक जो ऊगवै लाजह सो छपि जाइ॥ 29॥

नैन बांक सरि पूज न कोऊ। मान समुंद अस उलथहिं दोऊ।
राते कवल करहिं अलि भवां। घूमहि मांति चहहिं उपसवां॥
उठहिं तुरंग लेहिं नहिं बागा। चाहहिं उलथि गगन कहं लागा।
पवन झकोरहिं देहिं हलोरा। सरग लाइ भुइं लाइ लहोरा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जग डोलै डोलत नैनाहां। उलटि अड़ार चाह पल माहां।
जबहिं फिराव गंगन गहि बोरा। अस वै भवर चक्र के जोरा।
समुद हिंडोर करहिं जनु झूले। खंजन लुरहिं मिरिग जनु भूले।
सुभर समुंद अस नैन दुइ मानिक भरे तरंग।
आवत तीर जाहिं फिरि काल भवर तेन्ह संग॥ 30॥

बरुनी का बरनौं इभि बनी। सांधे बान जानु दुइ अनी।
जुरी राम रावन के सेना। बीच समुंद भए दुइ नैना।
बारहिं पार बनावरि सांधी। जासौं हेर लाग बिख बांधी।
उन्ह बानन्ह अस को को न मारा। बेधि रहा सगरौं संसारा।
गंगन नखत जस जाहिं न गने हैं सब बान ओहि के हने।
धरती बान बेधि सब राखी। साखा ठाढ़ि देहिं सब साखी।
रोवं रोवं मानुस तन ठाढ़े। सोतहि सोत बेधि तन काढ़े।
बरुनि बान सब ओपहं बेधे रन बन ठंख।
सउजाह तन सब रोवां पंखिन्ह तन सब पंख॥ 31॥

नासिक खरग देउं केहि जोगू। खरग खीन ओहि बदन संजोगू।
नासिक देखि लजानेउ सुआ। सूक आई बेसरि होइ उआ।
सुआ सो पिअर हिरामनि लाजा। औरु भाउ को बरनौं राजा।
सुआ सो नांक कटोर पंवारी। वह कोंवलि तिल पुहुप संवारी।
पुहुप सुगंध करहिं सब आसा। मकु हिरगाइ लेइ हम बासा।
अधर दसन पर नासिक सोभा। दारिवं देखि सुआ मन लोभा।
खंजन दुहुं दिसि केलि करहीं। दहुं वह रस को पाव को नाहीं।
देखि अमिअ रस अधरन्हि भएउ नासिका कीर।
पवन बास पहुंचावै अस रम छांड़ न तीर॥ 32॥

अधर सुरंग अमिअ रस भरे। बिंब सुरंग लाजि बन फरे।
फूल दुपहरी मानहुं राता। फूल झरहिं जब जब कह बाता।
हीरा गहै सो बिद्रुम धारा। बिहंसत जग होइ उजिआरा।
भए मंजीठ पानन्ह रंग लागें। कुसुम रंग थिर रहा न आगें।
अस कै अधर अमिंत भरि राखे। अबहिं अछत न काहू चाखे।
मुख तंबोल रंग धारहिं रसा। केहि मुख जोग सो अंब्रित बसा।
राता जगत देखि रंग राते। रुहिर भरे आछहिं बिहंसाते।
अमिअ अघर अस राजा सब जग आस करेइ।
केहि कहं कंवल बिगासा को मधुकर रस लेइ॥ 33॥

दसन चौक बैठ तनु हीरा। और बिच बिच रंग स्याम गंभीरा।
जनु भादौं निसि दामिनि दीसी। चमकि उठी तसि भीनी बतीसी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वह जो जोति हीरा उपराहीं। हीरा दीपहिं तो तेहि परिछाहीं।
जेहि दिन दसन जोति निरमई। बहुतन्ह जोति जोति ओहि भई।
रबि ससि नखत दीन्हि ओहि जोति। रतन पदारथ मानिक मोंती।
जहं जहं बिहंसि सुभावहिं हंसी। तहं तहं छिटकि जोति परगसी।
दामिनि दमकि न सरबरि पूजा। पुनि वह जोति औरु को दूजा।
हंसत दसन तस चमके पाहन उठे झरक्कि।
दारिवं सरि जो न कै सका फाटेउ हिया दरक्कि॥ 34॥

रसना कहौ जो कह रस बाता। अंब्रित बचन सुनत मन राता।
हरै सो सुर चात्रिक कोकिला। बीन बंसि बहु बैनु न मिला।
चात्रिक कोकिल रहहि जो नाहीं। सुनि वह बैन लाजि छपि जाहीं।
भरे पेम मधु बोलै बोला। सुनै सो माति घुर्मि कै डोला।
चतुर वेद मति सब ओहि पाहां। रिग जजु साम अर्थबन माहां।
एक एक बोल अरथ चौगुना। इंद्र मोह बरह्मा सिर धुना।
अमर भारथ पिंगल औ गीता। अरथ जूझ पंडित नहिं जीता।
भावसती ब्याकरन सुरसुती पिंगल पाठ पुरान।
वेद भेद सै बात कह तसु जनु लागहिं बान॥ 35॥

पुनि बरनौं का सुरंग कपोला। एक नारंग के दुऔ अमोला।
पुहुप पंक रस अंब्रित साधे। केइ ये सुरंग खिरोरा बांधे।
तेहि कपोल बाएं तिल परा। जेइं तिल देख सो तिलमिल जरा।
जनू घुंघुची वह तिल मरमुहां। बिरह बान सांधा सामुहां।
अगिनि बान तिल जानहुं सूझा। एक कटाख लाख दुइ जूझा।
सो तिल काल मेंटि नहिं गएऊ। अब वह गाल काल जग भएऊ।
देखत नैन परी परिछाहीं। तेहतें रात स्याम उपराहीं।
सो तिल देखि कपोल पर गंगन रह धुव गाड़ि।
खिनहि उठै खिन बूड़ै डोलै नहिं तिल छांड़ि॥ 36॥

स्रवत सीप दुइ दीप संवारे। कुंडल कनक रचे उंजियारे।
मनि कुंडल चमकहिं अति लोने। जनु कौंधा लोकहिं दुहुं कोने।
दुहुं दिसि चांद सुरुज चमकाहीं। नखतन्ह भरे निरंखि नहिं जाहीं।
तेहि पर खूंट दीप दुइ बारे। दुइ धुव दुऔ खूंट बैसारे।
पहिरे खुंभी सिंघल दीपी। जानहुं भरी कचपची सीपी।
खिन खिन जबहिं चीर सिर गहा। कांपत बीज दुहूं दिसि रहा।
डरपहिं देव लोक सिंवाला। परै न बीज टूटि एहि कला।
करहिं नखत सब सेवा स्रवन दिपहिं अस दोउ।
चांद सुरुज अस गहने औरु जगत का कोउ॥ 37॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बरनौं गीवं कूंज कै रीसी। कंजनार जनु लागेउ सीसी।
कुंदे फेरि जानु गिउ काढ़ी। हार पुछारि ठगी जनु ठाढ़ी।
जनु हिय काढ़ि परेवा ठाढ़ा। तेहितें अधिक भाउ गिउ बाढ़ा।
चाक चढ़ाइ सांच जनु कीन्हा। बाग तरंग जानु गहि लीन्हा।
गिउ मंजर तंवचुर जो हारा। वहै पुकारहिं सांझ संकारा।
पुनि तिहि ठाउं परी तिरि रेखा। घूंटत पीक लीक सब देखा।
घनि सो गीव दीन्हेउ बिधि भाऊ। दहुं कासौं लै करै मेराऊ।
कंठसिरी मुकुताहल माला सोहै अभरन गीवं।
को होइ हार कंठ ओहि लागै केइं तपु साधा जीवं॥ 38॥

कनक दंड दुइ भुजा कलाई। जानहुं फेरि कुंदेरें भाई।
कदलि खांभ की जानहुं जोरी। औ राती ओहि कंवल हथोरी।
जानहुं रकत हथोरीं बूड़ीं। रबि परभात तात वह जूड़ी।
हिया काढ़ि जनु लीन्हेसि हाथां। रकत भरी अंगुरी तेहिं साथां।
औ पहिरें नग जरी अंगूठी। जग बिनु जीव जीव ओहि मूठी।
बांहू कंगन टाड़ सलोनी। डोलति बांह भाउ गति लोनी।
जानहुं गति बेड़िन देखराई। बाह डोलाइ जीउ लै जाई।
भुज उपमा पंवनारि न पूजी खीन भई तेहि चिंत।
ठांवहि ठांव बेह भे हिरदैं ऊभि सांस लेइ नित॥ 39॥

हिया थार कुच कंचन लाडू। कनक कचारे उठे करि चाडू।
कुंदन बेल साजि जनु कूंदे। अंब्रित भरे रतन दुइ मूंदे।
बेधे भंवर कंट केतुकी। चाहहिं बेध कीन्ह केंचुकी।
जोबन बान लेहिं नहिं बागा। चाहहिं हुलसि हिएं हठि लागा।
अगिनि बान दुइ जानहु सांधे। जग बेधहिं जौं होहिं न बांधे।
उतंग जंभीर होइ रखवारी। छुइ को सकै राजा कै बारी।
दारिवं दाख फरे अनचाखे। अस नारंग दहुं का कहं राखे।
राजा बहुत मुए तपि लाइ लाइ भुइं माथ।
काहू छुअै न पारे गए मरोरत हाथ॥ 40॥

पेट पत्र चंदन जनु लावा। कुंकुह केसरि बरन सोहावा।
खीर अहार न कर सुकुवांरा। पान फूल के रहै अधारा।
स्याम भुआंगिनि रोमावली। नाभी निकसि कंवल कहं चली।
आई दुहूं नारंग बिच भई। देखि मंजूर ठमकि रहि गई।
जनहुं चढ़ी भंवरन्हि कैं पांती। चंदन खांभ बास कै मांती।
कै कालिंद्री बिरह सताई। चलि पयाग अरइल बिच आई।
नाभी कुंडर बानारसी। सौहं को होइ मीचू तहं बसी।
सिर करवत तन करसी लै लै बहुत सीझे तेहि आस।
बहुत धूम घूंटत मैं देखे उतरु न देइ निरास॥ 41॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वैरिनि पीठि लीन्ह ओइं पाछें। जनु फिरि चली अपछरा काछें।
मलयागिरि कै पीठि संवारी। बेनी नाग चढ़ा जनु कारी।
लहरैं देत पीठि जनु चढ़ा। चीर ओढ़ावा कंचुकि मढ़ा।
बहुं का कहं असि बेनी कीन्ही। चंदन बास भुअगन्ह दीन्ही।
किस्न कै करा चढ़ा ओहि माथें। तब सो छूठ अब छूट न नाथें।
कारी कंवज गहे मुख देखा। ससि पाछें जस राहु बिसेखा।
को देखै पावै वह नागू। सो देख माथें मनि भागू।
पन्नग पंकज मुख गहे खंजन तहां बईठ।
छात सिंघासन राज धन ता कहं होइ जो डीठ॥ 42॥

लंक पुहुमि अस आहि न काहूं। केहरि कहौं न ओहि सरि ताहू।
बसा लंक बरनै जग झीनी। तेहिं तें अधिक लंक वह खीनी।
परिहंस पिअर भए तेहिं बसा। लीन्हे लंक लोगन्ह कहं डंसा।
जानहुं नलिनि खंड दुइ भई। दुहुं बिच लंक तार रहि गई।
हिय सों मोरि चलै वह तागा। पैग देत कत सहि सक लागा।
छुद्र घंटि मोहहिं नर राजा। इंद्र अखार आइ जनु साजा।
मानहुं बीन गहे कामिनी। रागहिं सबै राग रागिनी।
सिंघ न जीता लंक सरि हारि लीन्ह बन बासु।
तेहिं रिसि रकत पिअै मनई कर खाइ मारि कै मासु॥ 43॥

नाभी कुंडर मलै समीरू। समुंद भंवर जस भंवै गंभीरू।
बहुत भंवर बौंडरा भए। पहुंचि न सके सरग कहं गए।
चंदन मांझ कुरंगिनी खोजू। दहुं को पाव को राजा भोजू।
को ओहि लोगि हिवंचल सीझा। का कहू लिखी अैस को रीझा।
तीवइ कंवल सुगंध सरीरू। समुंद लहरि सौंहे तन चीरू।
झूलहिं रतन पाट के झोंपा। साजि मदन दहुं कापहूं कोपा।
अबहिं सो आहि कंवल कै करी। न जनौं कवल भंवर कहं धरी।
बेधि रहा जग बाना परिमल मंद सुगंध।
तेहि अरघानि भंवर सब लुबुधे तजहिं न नीवी बंध॥ 44॥

बरनौं नितंब लंक कै सोभा। औ गज गवन देखि सब लोभा।
जुरे जंघ सोभा अति पाए। केरा खांभ फेरि जनु लाए।
कंवल चरन अति रात बिसेखे। रहहिं पाट पर पुहुमि न देखे।
देवता हाथ हाथ पगु लेहीं। पगु पर जहां सीस तहं देहीं।
मांथे भाग को दहुं अस पावा। कंवल चरन लै सीस चढ़ावा।
चूरा चांद सुरुज उजिआरा। पायल बीच करहिं झनकारा।
अनवट बिछिआ नखता तराईं। पहुंचि सकै को पावन्हि ताईं।
बरनि सिंगार न जानेउ नखसिख जैस अभोग।
तस जग किछौ न पावौं उपमा देउं ओहि जोग॥ 45॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.15 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप निर्गुण प्रेममार्गी धारा, सूफी शब्द का अर्थ, सूफी मत के बारे में जानकारी प्राप्त कर चुके होंगे। इस अंक में आपने 'पद्मावत' महाकाव्य की विस्तृत जानकारी प्राप्त की। 'मानसरोवर खंड' एवं नख-शिख खंड के बारे में पढ़ा।

6.16 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

आलोचनात्मक प्रश्न

1. जायसी के पद्मावत में कवि ने लोक परम्परा और लोक जीवन का अनुसरण किया है। इस कथन की समीक्षा कीजिए।
2. प्रेमाख्यान किसे कहते हैं ?हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य-परम्परा में जायसी 'पद्मावत' का स्थान निर्धारित कीजिए।
3. पद्मावत की प्रेम-पद्धति पर विचार कीजिए।
4. 'लौकिक प्रेम-कथा के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना ही पद्मावत का प्रतिपाद्य है।' इस कथन की सप्रमाण मीमांसा कीजिए।
5. 'जायसी का रहस्यवाद सैद्धान्तिक न होकर भावनात्मक है और उसके कारण उसके काव्य-मूल्य में वृद्धि हुई है।' इस कथन पर विचार कीजिए।
6. 'फारसी की मसनवी शैली तथा अपभ्रंश के चरित काव्यों से प्रभावित होते हुए भी जायसी का पद्मावत मद्यकाव्य कहा जा सकता है।' युक्तियुक्त उत्तर दीजिए।

वस्तुनिष्ठ / अतिलघुत्तरीय प्रश्न

1. पद्मावत की शैली कैसी है ?
2. जायसी ने पद्मावत में कौन-सी पद्धति अपनाई है ?
3. 'पद्मावत' का रूपक तत्त्व क्या है ?
4. 'पद्मावत' में हीरामन तोते का रूपक क्या है ?
5. सूफी मत में किसे साधक का सबसे बड़ा शत्रु कहा गया है।
6. 'सूफी' शब्द से आप क्या समझते हैं ?
7. 'पद्मावत' कथा का आधार कहाँ से लिया गया है ?
8. 'मसनवी पद्धति' से आप क्या समझते हैं ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग–5

इकाई–7 सूरदास

संरचना

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
7.2 सूरदास का जीवनवृत्त
7.3 सूरदास का कर्त्तत्व
7.4 भ्रमरगीत की काव्यपरंपरा
7.5 भ्रमरगीत का काव्यसौन्दर्य
7.6 भ्रमरगीत का भावविधान
7.7 भ्रमरगीत का दार्शनिक पक्ष
7.8 भ्रमरगीत सार
7.8.1 मूल पाठ (पद सं. 21 से 71)
7.8.2 प्रमुख व्याख्याएं
7.9 सारांश
7.10 उपयोगी पुस्तकें
7.11 महत्वपूर्ण प्रश्न
निबंधात्मक /आलोचनात्मक प्रश्न/ लघूत्तरीय प्रश्न / अतिलघूत्तरीय प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

"मेरे प्रिय कवि सूरदास हैं जिनका काव्य मनोहर
युगों–युगों से संचित है जो ऐसी अमर धरोहर
ऐसा अनुपम काव्य चितेरा और किसे जानेंगे।
सूरदास को 'सूर्य' रूप में हम तो पहचानेंगे"

कृष्णभक्त कवियों में सूरदास का स्थान सर्वोपरि है, सर्वतो महान है। वे भारतीय साहित्य के शिखरस्थ कवियों में अग्रणी हैं। उनके द्वारा रचित 'सूरसागर' हिन्दी का 'श्रीमद्भागवत' है। रासलीला जैसे प्रसंगों में सूरदास जयदेव के 'गीत गोविंद' की परंपरा का स्पर्श करते हैं। कृष्ण की बाललीलाओं के वर्णन में सूर की वाणी ऐसे सधे रूप में प्रवाहित हुई है कि वे निर्विवाद वात्सल्यरस सम्राट हैं। यहां आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन बहुत प्रासंगिक है – "सूर की रचना इतनी प्रगल्भ एवं काव्यांगपूर्ण है कि आगे आनेवाले कवियों की उक्तियां सूर की जूठी मालूम पडती हैं।"

सूरदास की प्रतिभा का उत्कर्ष सूरसागर के दसवें स्कंध में परिलक्षित होता है। इसमें कृष्ण के बाल तथा यौवन की क्रीड़ाएं वर्णित हैं। इसमें मुख्य रूप से पांच विषयों पर उनका ध्यान केंद्रित है– (1) बाल लीला (2) गौचारण (3) बंशीवादन (4) रास (5) भ्रमरगीत।

उपर्युक्त सभी प्रसंगों में 'भ्रमरगीत' प्रसंग सबसे विस्तृत एवं मर्मस्पर्शी है। यह प्रसंग सूर की काव्यात्मक प्रतिभा का सर्वोत्कृष्ट शिखर है। 'भ्रमरगीत' के माध्यम से सूर ने उद्धव, कृष्ण, गोपियों को आधार बनाकर जिस काव्य–कथा का सर्जन किया है, वह बहुत मर्मस्पर्शी और उच्च कोटि का है। निर्गुण ईश्वर का परिहास, सगुण ईश्वर का आराधन, कृष्ण के वियोग में गोपियों की व्याकुलता, यशोदा का वात्सल्य आदि भ्रमरगीत प्रसंग को बहुत उच्चकोटि के काव्यत्व से विभूषित करते हैं। यहां सूरदास की भक्ति, उनके दार्शनिक विचार, उनका काव्यचारुत्व, उनकी साधना सहजता और सरलता के साथ अभिव्यक्ति हुई है। वस्तुतः भ्रमरगीत सूर की विलक्षण काव्य प्रतिभा का स्थायी स्मारक है।

इसीलिए आचार्य शुक्ल कहते हैं – "सूर सागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश "भ्रमरगीत" है। भक्त शिरोमणि सूर ने इसमें सगुणोपासना निरूपण बड़े ही मार्मिक ढंग से हृदय की अनुभूति के आधार पर, तर्क पद्धति पर नही किया है।"

Jnanvishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य भक्तिकाल की कृष्णभक्ति काव्य के सबसे बड़े कवि महात्मा सूरदास के काव्यवैशिष्ट्य को स्पष्ट करना है। इसी क्रम में भ्रमरगीत विषयक काव्यवैशिष्टय उजागर करना भी इस इकाई का प्रतिपाद्य है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप :

- सूरदास के जीवनवृत्त से भलीभांति परिचित हो सकेंगे।
- सूरदास के व्यक्तित्व के साथ उनकी प्रमुख रचनाओं के संबंध में भी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- भ्रमरगीत परंपरा में सूर का महत्त्व और स्थान विषयक विविध तथ्यों से परिचित हो सकेंगे।
- भ्रमरगीत काव्य की विविध पक्षीय महत्वपूर्ण विशेषताओं से भलीभांति अभिज्ञ हो सकेंगे।
- 'भ्रमरगीत सार' से मूल चयनित पदों से परिचित हो सकेंगे।
- कतिपय महत्त्वपूर्ण पदों की व्याख्या से परिचित हो सकेंगे।

7.2 सूरदास का जीवनवृत्त

भक्त कवियों ने प्रत्यक्षरूपेण अपने जीवन के सम्बंध में कुछ नहीं कहा है। निःसंदेह सूरदास में भी यही प्रवृत्ति मिलती है। यही कारण है कि उनका कोई प्रामाणिक जीवन–वृत्त आज तक उपलब्ध नहीं है, यद्यपि आलोचकों ने विविध स्रोतों से उनकी एक 'संक्षिप्त सारणी' अवश्य प्रस्तुत कर दी है। इसमें भी प्रायः 'मुंडे–मुंडे मतिर्भिन्ना' वाली स्थिति ही अधिक है।

7.2.1 जन्मतिथि

सूर का जन्म विविध संवतों में माना गया है, यथा संवत् 1535 , 1540, 1620, 1530 तथा 1515 आदि। पुष्टिमार्गीय ग्रंथों के अनुसार सूर आचार्य वल्लभ से केवल 10 दिन छोटे थे और इनका जन्म मंगलवार, पंचमी संवत् 1535 को हुआ था। यह तिथि सम्प्रदाय के विविध लेखों, गोकुलनाथ–कृत 'निजवार्ता' तथा पुष्टिमार्गीय भट्ट गोपिकालंकार के मत से पुष्ट कही गयी है तथा अभी भी मथुरा के श्रीनाथ द्वारे में यह सूर–जन्म–दिवस के रूप में मनायी जाती है। मिश्रबंधु और उनके समर्थक हिन्दी–विद्वान् सूर का जन्म–वर्ष सम्वत् 1540 मानते हैं तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य का इतिहास) 'सूर–सारावली' के कृतित्व काल के आधार पर सम्वत् 1620। बडौदा के विद्वान श्री भट्ट ने इसको सम्वत् 1530 कहा है। समस्त मतों का विश्लेषण करके हजारीप्रसाद द्विवेदी वैशाख शुक्ला पंचमी, मंगलवार, सम्वत् 1535 को ही जन्म–तिथि मानते हैं। डॉ. मुन्शीराम शर्मा (सूरदास और भगवद्–भक्ति) इसको सूर की मरणतिथि बताते हैं।

7.2.2 जन्म स्थान

सूर के जन्म स्थानों पर भी विद्वान एकमत नहीं हैं। यही कारण है कि पांच स्थानों को सूर का जन्म स्थान कहलाने का गौरव प्राप्त है – (1) गोपांचल (गोपांचल, गोपाद्रि अथवा ग्वालियर), (2) मथुरा – समीपस्थ कोई ग्राम (3) रुनकता (4) सीही (5) साही।

'साहित्य–लहरी' में सूर के पूर्वजों का स्थान गोपांचल कहा गया है, जिसको पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने 'ग्वालियर' सिद्ध किया है। कवि मियांसिंह ने (भक्ति – विनोद में) 'मथुरा प्रान्त विप्र कर गेहा, मै उत्पन्न भक्त हरिजेहा' कहकर मथुरा प्रांत का तो उल्लेख किया है, किन्तु निश्चित स्थान नहीं बताया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और डॉ. श्यामसुन्दर दास आदि रुनकता स्थान को सूर का जन्म – स्थान मानते हैं, जो मथुरा के पास ही है। वार्ता–साहित्य, प्राणनाथ–कृत 'अष्टसखामृत' आदि में दिल्ली के समीपस्थ 'सोही' ग्राम को यह गौरव दिया गया है। पं. तोताराम शर्मा इसको बल्लभगढ के पास बताते हैं। श्री राधाकृष्णदास, मिर्योंसिंह, डॉ. नलिनीमोहन सान्याल, डॉ. मुंशीराम शर्मा, आदि भी इसी मत से सहमत हैं। 'सूरशतक' से पूर्णतया स्पष्ट है–

"गोपांचल अंचल बिखै, है साही इक ठांव।
गोचारन हरि करत जहं, सारस्वतन की गांव।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.2.3 नामकरण और प्रारम्भिक जीवन

सूरदास किसी विशेष व्यक्ति का नाम नहीं है और न ही इस नाम का केवल एक कवि हुआ है। जैसा कि सर्वविदित है भारत में किसी भी नेत्रहीन व्यक्ति को सूरदास कहते हैं। जहां तक प्रश्न है, कवि सूरदास का, इस नाम के भी हिन्दी में आठ कवि हुए हैं जिनमें से कुछ तो सूरदास के समकालीन भी थे यथा सूरदास मदनमोहन, सूरदास, रामदास सूरदास बिल्वमंगल आदि। इनमें अन्तिम नाम के भी कई कवि हुए हैं। इसी कारण से एक ओर तो इन सभी का जीवन–वृत्त एक –दूसरे से घुल–मिल गया है और दूसरी ओर 'सूरसागर' वाले सूरदास का प्रामाणिक जीवन–वृत्त भी निश्चित नहीं हो पाया है। जहाँ तक प्रश्न है, अन्तःसाक्ष्यों अर्थात् 'सूरसागर' आदि ग्रंथों में आये कवि नाम का, वे भी एकाधिक हैं। स्वयं 'सूरसागर' के पदों में ही रचयिता कवि के कई नाम मिलते हैं, जैसे सूरज, सूरजदास, सूर, सूरश्याम, सूरदास आदि। कुछ विद्वानों ने 'सूरसागर' आदि ग्रंथों से ही सूरसुजान, सूरसरस, सूरजश्याम आदि नाम भी ढूंढ निकाले हैं, जो एकदम महत्वहीन हैं। परम्परा और अलोचक गण दोनों ही कवि का वास्तविक नाम 'सूरजदास' और प्रचलित नाम 'सूरदास' ही स्वीकार करते हैं।

परम्परागत जनश्रुति और साम्प्रदायिक धार्मिक पुष्टिमार्गीय कुछ ग्रन्थों में सूर के प्रारम्भिक जीवन से संबंधित विविधि कथायें मिलती हैं। वे बाल्यकाल में ही अनाथ हो गये थे और उनको माता–पिता की छात्रछाया अधिक नहीं मिल पायी थी। अल्पावस्था में ही वे घर से निकलकर ग्राम से बाहर किसी कुटी में और कालांतर में गो घाट रुनकता (आगरा–मथुरा) पर बस गये थे। यहीं पर उनकी भेंट महाप्रभु बल्लभाचार्य से हुयी थी।

7.2.4 अंधत्व

सूर अंधे थे, यह बात तो निर्विवाद रूप से सर्वमान्य है। समस्या है जन्मान्ध, परवर्ती, पूर्ण निपट अंध और कम अंध होने की। हिन्दी के अधिकांश आलोचक उनको जन्मान्ध मानते हैं।

(i) "सूर की विरियां निठुर होइ बैठे, जन्म अन्ध कर्‌यो।"

(ii) "रहौ जात एक पतित जनम को आंधरौ सूर सदा को।"

(iii) "करमहीन जनम को अंधौ।"

(iv) "जनम कौ आंधरो सूरदास कौ।"

कुछ दंतकथाओं में माना गया है कि सूर जन्मान्ध नहीं थे, वरन् उन्होंने स्वयं अपनी आंखें फोड़ ली थी। कथा के अनुसार वे कामवश किसी युवती पर मोहित हो गये थे, किन्तु ग्लानिवश अथवा ज्ञानोदय होने पर उन्होंने अपनी आंखें स्वयं फोड़ ली। एक अन्य कथा इस प्रसंग को कुयें में गिर जाने और कृष्णदर्शन करने की घटना से जोड़कर आध्यात्मिक रंग देती है। हिन्दी के अधिकांश आधुनिक विद्वान् सूर को जन्मान्ध नहीं मानते। मिश्रबन्धु, नलिनीमोहन सान्याल, डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा, डॉ. बेनी प्रसाद, डॉ. रामरतन भटनागर तथा डॉ. दीनदयाल गुप्त इसी मत के समर्थक हैं। प्रमाण ? श्री जगमोहन कात्याल ('सूर का अधत्व नामक निबन्ध) के शब्दों में– "सूर ने अपने काव्य में प्राकृतिक उपादानों का, यथा वन–प्रदेश, नदी, समुद्र, गगन, पवन, तड़ाग, ऋतु आदि का जो आंखों देखा–सा वर्णन किया है तथा जीवन की भिन्न–भिन्न स्थितियों, अवस्थाओं तथा रूपों का जो वर्णनादि किया है, उसे देखकर उनके अंधे होने का विश्वास नहीं होता। 'सूर –काव्य' में अनेक सूक्ष्म वर्णन ऐसे हैं, जो केवल कल्पना या अनुभूतिजन्य नहीं हो सकते।

कुछ अन्तःसाक्ष्यों के अनुसार सूर निपट अन्धे नहीं थे। यथा "सूरदास की एक आंखि है, ताहू में कछु कानौ।" फिर भी अधिकांश आलोचक उनको निपट और जन्मांध मानते हैं। यहां तक कहा गया है कि उनके नेत्रों के चिन्ह तक नहीं थे, केवल भौहें थीं।

7.2.5 वैराग्य और सम्प्रदाय प्रवेश

पुष्टिमार्गीय मान्यता के अनुसार सूर बचपन में ही अनाथ होकर गऊघाट पर रहने लगे थे। यहां पर वे लगभग 18 वर्ष की अवस्था तक रहे। यहीं पर उनकी भेंट श्री वल्लभाचार्य से हुई जो इनको अपने साथ मथुरा ले आये। यहां पर उन्होंने गुरु दीक्षा ली और वे पुष्टि–मार्ग–सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए। कालान्तर में 'अष्टछाप' में आकर ये भी भजन गायक हो गये और श्रीनाथ मन्दिर में कृष्ण–कीर्तन करने लगे। यादववंशी नरेश और ग्वालियर – नरेश मानसिंह से भी सूर की मित्रता का सम्बन्ध माना है।

7.2.6 मृत्यु

सूर के मृत्यु–काल पर भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहा है। समुचित प्रमाणों के आधार पर इनका मृत्यु संवत् 1640 ही माना जाता है। इस संबंध में प्रचलित एक कथा के अनुसार अपनी वृद्धावस्था में एक दिन सूर कीर्तन करके

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मंगला के पश्चात ही पारसोली जा पहुंचे। बिट्ठलनाथ जी ने जब उनके सम्बध में पूछा और उनको वास्तविक स्थिति का भान हुआ तो वह कह उठे, "पुष्टिमार्ग को जहाज जात है। आय कछू लैनो होय सो लेउ", यह सुनते ही भक्तगण और संगीसाथी पारसोली के लिए दौड़ पड़े। हाल–चाल पूछे जाने पर सूर ने "खंजन नैन रूप रस माते" भजन गाते–गाते प्राण विसर्जित कर दिये और इस प्रकार 'पुष्टिमार्ग ही क्या, हिन्दी भक्ति काव्य का जहाज' मृत्यु – सागर में अस्त हो गया।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सूर का अधिकांश जीवन–वृत्त पारस्परिक मतभेदों में उलझकर रह गया है। यद्यपि इसको सुलझाने और प्रमाण–पुष्ट बनाने के विविध प्रयास किये जा चुके हैं, फिर भी सूर के प्रामाणिक और सर्वमान्य जीवन–वृत्त निर्धारण की आवश्यकता अभी भी बनी है।

7.3 सूर का कृतित्त्व

सूर के जीवन–वृत्त की भांति उनका कृतित्व भी दीर्घकाल तक अनिश्चित रहा है। कवि के प्रति अतिशय श्रद्धा–भाव, साम्प्रदायिक धार्मिक मान्यताओं, कवि–कृत हस्तलिखित उपलब्ध सामग्री का अभाव आदि विविध कारणों से सूर का कृतित्व वाद–विवाद का विषय बना रहा। सुविधा की दृष्टि से उपलब्ध अथवा विद्वानों द्वारा बतायी गई सूर की काव्य रचनाओं को दो वर्गों में रख सकते हैं। (1) अप्रामाणिक कृतित्व (2) प्रामाणिक कृतित्व।

7.3.1 अप्रामाणिक कृतित्व

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, वार्त्ता–साहित्य, इतिहास–ग्रन्थों और अभी तक प्राप्त सामग्री आदि के आधार पर सूर की निम्नांकित 25 काव्य–कृतियां बतायी जाती हैं –

(1) सूरसारावली, (2) भागवत–भाषा, (3) सूर–रामायण, (4) गोवर्धन लीला अथवा सरस लीला, (5) भ्रमरगीत, (6) प्राणप्यारी, (7) सूरसाठी, (8) सूर के स्फुट पद, (9) एकादशी माहात्म्य, (10) साहित्य लहरी, (11) दशमस्कंध भाषाटीका, (12) मानलीला, (13) नागलीला, (14) दृष्टिकूट पद, (15) सूरपचीसी, (16) नल–दमयन्ती, (17) सूरसागर–सार, (18) दानलीला, (19) राधा–रस–केलिकौतूहल, (20) व्याहलो, (21) सूरशतक, (22) सेवाफल, (23) रामजन्म, (24) सूर–सागर, (25) हरिवंश–टीका।

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, इनमें से कुछ ग्रन्थ तो फुटकर पदो के संकलन हैं, कुछ विशेष अध्याय मात्र, कुछ विषयानुसार संकलन तथा कुछ का नामकरण ही उनको एक ही रचना के विविध अंग बता देता है। इनकी प्रामाणिकता पर विद्वानों में मतभेद मिलता है। सूर साहित्य के अधिकांश अध्येता केवल तीन रचनाओं को प्रामाणिक मानते हैं। शेष सभी रचनायें या तो अप्रामाणिक हैं अथवा इन्हीं तीन रचनाओं के अंश हैं।

7.3.2 प्रामाणिक कृतित्व

सूर की सर्वमान्य प्रामाणिक रचनायें तीन हैं – (1) सूरसारावली, (2) साहित्य लहरी (3) सूरसागर।

सूरसारावली – सूरसारावली को 'सूरसागर सारावली' भी कहा गया है। इसके शीर्ष के कारण दीर्घकाल तक आलोचकगण भ्रमवश इसको 'सूरसागर' का ही एक अंश मानते रहे। विधा की दृष्टि से यह गीत काव्य है यद्यपि इसमें प्रबंध के भी कुछ गुण (यथा सुनिश्चित और सुबद्ध कथा, समुचित आकार और प्रबंधात्मकता आदि) मिलते हैं। इसमें सार और सरसी नामक कुल 1107 छन्द हैं। मूल विषय है – सृष्टि–रचना जिसको होली–रूपक के रूप में प्रदर्शित किया गया है। ग्रन्थारंभ मूलतः "अविगत आदि अनन्त अनुपम अलख पुरुष अविनासी" से हुआ है। प्रमुख वर्ण्य प्रसंग हैं – भगवान का काल पुरुष की अवतारणा, सत्–रज–तम रूपी गुणों का उदय, ब्रह्मा का उद्भव, ब्रह्मा का सृष्टि–सृजन, चौबीस अवतार–वर्णन, ध्रुव, हयग्रीव, प्रíkद आदि भक्तों की कथा, दृष्टिकूट पद, रासलीला, वसंत, होली आदि के आनदोत्सव एवं सारावली पाठ–माहात्म्य आदि। कवि ने इसकी रचना अपनी उम्र के अथवा सम्प्रदाय–प्रवेश के 67वें वर्ष में की थी, जैसा कि निम्न अन्तःसाक्ष्यों से भी स्पष्ट है–

"गुरु परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन।"

× × ×

"सरस सम्वतसर लीला गावै, युगल चरण चित लावै।'

इसी आधार पर इसका रचना–काल सम्वत् 1602 अथवा 1620 माना जाता है। अधिकांश विद्वान इसको न केवल प्रामाणिक, वरन् एक स्वतन्त्र गीति–रचना सिद्ध कर चुके हैं।

साहित्य लहरी – प्रस्तुत ग्रन्थ 118 दृष्टिकूट पदों का संग्रह है। 'साहित्य लहरी' सूरदास के दृष्टिकूट पदों का ग्रन्थ है जिसका संकलन सूर के ही जीवनकाल में हो गया था। इसकी रचना के बाद भी सूर ने 'सूरसागर' में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

दृष्टिकूट पद लिखे और उनको छांटकर लोगों ने बाद में मूल साहित्य में मिला दिया। यह ग्रन्थ यद्यपि 'सूरसागर' का अश कहा जाता है, फिर भी एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है, जो अपनी निजी विशेषताये रखता है।

"पुनि पुनि रसन के रस लेख" वाले अन्तःसाक्ष्य के आधार पर इसके रचनाकाल पर विद्वानों ने विभिन्न मत स्थापित किये हैं। इस सम्बन्ध में **डॉ. हरबंशलाल शर्मा** ने कुछ उदाहरण भी दिये हैं यथा "रसन" को अर्थ आचार्य मुंशीराम शर्मा ने रचना के व्यापारी के आधार पर दो मान कर "साहित्य–लहरी" का रचना–काल संवत् 1629 माना है, किन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने, 'पुनि' के स्थान पर सुनि (शून्य) पाठ मानकर सं. 1606 निर्धारित किया है।

द्रष्टव्य बात यह है कि इस समय कवि की आयु लगभग 72 वर्ष थी और इस आयु में सूर जैसे कवि का श्रृंगारिक रचना कुछ समुचित और मान्य प्रतीत नहीं होती।

जहाँ तक प्रश्न हैं 'साहित्य–लहरी' के वर्ण्यविषय का, बाह्यतः वह रस, अलंकार और नायिका भेद से संबंधित है और मूलतः पुष्टिमार्गीय भक्ति पद्धति से। इसके 108 पद में 108 प्रकार की नायिकायें हैं। नायक हैं– किशोर कृष्ण और प्रधान नायिका राधिका। चन्द्रावली आदि सखियां हैं और कार्य है– लीला। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शब्दों में–

"सदा सर्वात्मना सेव्यो भगवान् गोकुलेश्वरः।
स्मर्तव्यो गोपिकावृन्दैः क्रीड़न्वृन्दावने स्थितः।।"
यही 'साहित्य–लहरी' का वर्ण्य विषय है।

सूरसागर – प्रस्तुत ग्रन्थ प्रबन्धात्मक मुक्तक (पद) शैली में रचित सर्वाधिक विस्तृत और महत्वपूर्ण काव्य रचना है। साम्प्रदायिक दृष्टि से माना गया है कि सूर ने सवा लाख पद लिखे अथवा लिखने की प्रतिज्ञा की थी। निम्न अन्तःसाक्ष्य भी इसी मत की पुष्टि करता है–

"ता दिन ते हरि लीला गाई एक लक्ष पद बन्द।"

कवि के समकालीन कवि हरिराय ने भी कहा है, "सूरदास जी, तुमने जो सवा लाख कीर्तन को मनोरथ कियो है, सौ ते पूरन होय चुकी है।" उपलब्धि की दृष्टि से लगभग 10 हजार पद 'सूरसागर' की वर्तमान प्रतियों में मिलते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'श्रीमद्भागवत' के आधार पर है और इसमें समय–समय पर कहे गये कवि–पद संकलित हैं। प्रधान कथा है – कृष्ण–जीवन । इसकी रचना सम्वत् 1587–1607 के मध्य मानी जाती है। पूर्वार्द्ध में विनय, बाललीला प्रेमलीला, मानलीला, विरहलीला और भ्रमरगीत–विषयक पद हैं तो उत्तरार्ध में नन्द, यशोदा, राधा–माधव मिलन–विषयक। पूर्वार्द्ध में 3494 पद हैं, जिनमें कृष्ण के जन्म से लेकर मथुरा–प्रवास तक की कथा है, जबकि उत्तरार्ध में 138 पदों में शेष कथा संक्षेप में वर्णित है।

यह अकेला ग्रन्थ ही सूर के कीर्तिमान का स्थापक है। भाव और कला, रस और अनुभूति, भाषा और शिल्प, भक्ति और दर्शन, रहस्य और सगुण, न जाने कितनी दृष्टियों से यह ग्रन्थ अपने में विशिष्ट है, महत्वपूर्ण और पथ–प्रदर्शक है। इस तरह सूर का काव्य–कृतित्व, गुण और मात्रा दोनों दृष्टियों से विपुल और समृद्ध है। कवियों में, भक्तमाल के अनुसार, "सूर कवित सुनि कौन कवि जो नहिं सिर–चालन करै" तो प्रभाव की दृष्टि से "किधौं सूर को पद लग्यो, तन–मन धुनत सरीर" की स्थिति है। निःसंदेह सूर और उनका कृतित्व विशिष्ट, महान् गरिमामय और काव्य से सराबोर है।

7.4 भ्रमरगीत की काव्य–परम्परा

7.4.1 भ्रमरगीत काव्य का तात्पर्य

भ्रमरगीत का शब्दार्थ है – भ्रमर–विषयक अथवा भ्रमर को सम्बोधित करके लिखे गये गीत। प्रतीकार्थों में यह भ्रमर रूपी कृष्ण उद्धव विषयक गीत अथवा प्रिय नायक कृष्ण विषयक गीतों के लिए प्रयुक्त हुआ है। कृष्ण काव्य में अंकित कृष्ण–कथा के अन्तर्गत एक प्रसंग है– ज्ञानी उद्धव का गोपियों को समझाना और विरहिणी गोपियों का उद्धव की बातों को निस्सार करके कृष्ण–प्रेम पर अटल बने रहना। इसी कथा–प्रसंग को लेकर लिखा जानेवाला काव्य 'भ्रमरगीत काव्य' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

7.4.2 भ्रमरगीत काव्य का उद्भव

'सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में 'भ्रमरगीत' प्रसंग का सर्वप्रथम उल्लेख **'श्रीमद् भागवत'** के दशम स्कंध के अध्याय 46–47 में मिलता है। इसमें कृष्ण उद्धव को ब्रज–स्थित नंद–यशोदा आदि के पास सान्त्वना देने के लिए भेजते हैं – "सौम्य उद्धव ! तुम ब्रज जाकर मेरे माता–पिता को प्रसन्न करो और विरह की मानसिक व्यथा से पीड़ित ब्रज–बालाओं

Jagadguru Rambhadracharya Viklang Vishwavidyalaya (Deemed University) Chitrakoot

को मेरा संदेश सुनाकर शांत करो।'' उद्धव इस आज्ञा क पालन करते हैं। वे ब्रज में नंद–यशोदा और गोपियों से वार्तालाप करते हैं, गोपिया उत्तर–प्रत्युत्तर देती है तथा उद्धव ज्ञान की महिमा का वर्णन करते हैं। इसी समय एक भ्रमर को समीप में उड़ता देख गोपियाँ भ्रमर के माध्यम से कृष्ण को उपालम्भ देने लगती हैं। उद्धव के ज्ञानोपदेश को ध्यानपूर्वक सुनकर गोपियां संतोष–लाभ करती हैं।

7.4.3 भ्रमरगीत काव्य का विकास

भागवत, के पश्चात् हिन्दी–जगत् में भ्रमर को उपालंभ और विरह–व्यथा के प्रकटीकरण का माध्यम बनाया है – विद्यापति ने। उन्होंने भ्रमरगीत–कथा को नहीं अपनाया है। अपने कुछ फुटकर पदों में 'भ्रमर कला' की चर्चामात्र की है, यथा 'कटक माँझ कुसुम परगास। भ्रमर बिकल नहिं पाबए पास।'' अतएव इनके यहां 'भ्रमर' तो है, भ्रमरगीत नहीं।

7.4.4 भक्तिकाल में

भ्रमरगीत कथा को सर्वप्रथम ग्रहण किया है– महाकवि **सूरदास** ने। भ्रमरगीत की पूरी कथा – कृष्ण का उद्धव को ब्रज भेजना, उद्धव का गोपियों को ज्ञानोपदेश देना, गोपियों द्वारा उसकी अस्वीकृति और अटल प्रेम की प्रतिष्ठा, अपनी पराजय स्वीकार कर उद्धव का वापिस मथुरा आ जाना– कही गयी है। श्री केशवनारायण सिंह के शब्दों में, ''सूर की गोपियां भागवत की गोपियों की तरह गंवारिन नहीं थीं और न भोली–भाली थी। .... उनकी प्रत्येक उक्ति किसी न किसी सिद्धान्त को लेकर ही है, जिसका उत्तर उद्धव के पास नहीं था।''

भक्तिकाल में ही इस विषय पर काव्य–सृजन करनेवाले कुछ अन्य कवि हैं – तुलसीदास, परमानंददास, चतुर्भुजदास, कुंभनदास, गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी, हरिराय, रसखन, मुकुंददास, रहीम, घासीराम, मलूकदास तथा नंददास।

गोस्वामी तुलसीदास ने इस प्रसंग को 'श्रीकृष्ण–गीतावली' के कुछ गीतों में अपनाया है। उन्होंने निर्गुण का प्रत्यक्षतः खंडन तो नहीं किया, किन्तु मान्यता सगुण को ही दी है। साथ ही साथ शुष्क ज्ञान और नीरस भावना की मर्यादित खिल्ली भी उड़ाई है। परमानंददास से लेकर छीतस्वामी तक अष्टछाप के सभी कवियों ने तद्विषयक–फुटकर पद रचे हैं। प्रायः सभी ने सूर का खुला अनुकरण किया है–

''मोहन वह क्यों प्रीति बिसारी।....
हम पर कठिन हृदय अब कीनो, लाल गोवर्धन धारी।
'परमानन्द' बलबीर बिना हम मरत विरह की जारी।।''

हरिराय ने इसी विषय पर 123 दोहों में 'स्नेह लीला' की रचना की है। इसमें भ्रमर का तो पूर्ण अभाव है, हाँ, कुछ व्यंग्य अवश्य है, जो भ्रमर को लक्ष्य करके कृष्ण पर किये गये हैं। रसखान के भ्रमरगीत–विषयक पदों में भावुकता की प्रधानता है। मुकुददास–कृत 'भंवरगीत' तो अभी तक अप्राप्य है और उसके एक – दो पद ही मिलते हैं। रहीम ने इस विषय पर कुछ ब रवै छंद रचे हैं जिनमें विरह की प्रधानता है और गोपिकाएं मुख्यतः मुग्धा नायिका बन गयी हैं :–

''घेरि रह्यौ दिन रतियां बिरह–बलाय।
मोहन की ये बतियां उद्धव हाय।।''

घासीराम के पद गिने–चुने ही हैं तथा **मलूकदास** की 'ऊधौ पचीसी' के भी कुछ ही पद उपलब्ध हैं। सच तो यह है कि सूर के पश्चात् इस परम्परा के सर्वाधिक सशक्त कवि हैं – नंददास।

नंददास ने इसी प्रसंग को लेकर 'भ्रमरगीत' नामक काव्य रचना प्रस्तुत की है। यह 75 छंदों की छोटी सी प्रबन्धात्मक रचना है, जिसमें कथा मूलतः सूर वाली ही है।

विचार–दृष्टि से इसमें ज्ञानमार्ग का खंडन वल्लभ–सम्प्रदाय के पुष्टिमार्गीय तर्कों के आधार पर किया गया है–

''कर्म पाप अरु पुन्य लोह सोसे की बेरी,
पायन बंधन दोउ कोउ मानो बहुतेरी।
ऊंच कर्म तें स्वर्ग है नीच कर्म तें भोग,
प्रेम बिना सब पचि मरै विषय वासना रोग।
सखा सुन स्याम के।''

7.4.5 रीतिकाल में

इस काल में भ्रमरगीत–विषयक फुटकर पद ही अधिक लिखे गये। काव्यात्मकता की दृष्टि से प्रमुख कवि हैं – सेनापति, मतिराम, देव, आलम, घनानंद, ग्वाल कवि, पद्माकर, भिखारीदास।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सेनापति के भ्रमरगीत–विषय छन्दों में बौद्धिकता की प्रधानता है। उन्होंने कुब्जा को विशेष महत्व देकर भी नवीनता का समावेश किया है। मतिराम में अलंकारों की प्रधानता है, जिसमें मुख्यतः श्लेष के द्वारा विलक्षणता उत्पन्न की गयी है। विरह की मार्मिकता, स्पष्टवादिता और चपलता आदि इसके अन्य महत् गुण हैं। देव ने मुख्यतः विरहिणी गोपियों की मनोव्यथा को ग्रहण किया है, किन्तु इसमें भी रीतिकालीन सामान्य नारी का रूप अधिक मुखर है–

''ऊधौ आए ऊधौ आए, हरि कौ संदेसौ लाए,
सुनि गोपी गोप धाए, धीर न धरत है।
बौरी लगी दौरी उठी भौंरी लौं भ्रमरमाती,
राजनीति न गनी, गुरु लोगन दुरत हैं।
है गई विकल बाल बालम वियोग भरी,
जोग की सुनत बात गात ज्यों जरत हैं।
भरि गए भूषन, सम्हारे न परत अंग,
आगे को धरत पग पाछे को परत हैं।''

आलम के कुछ पद मात्र उपलब्ध हैं, जिनमें प्रधानता विप्रलभ शृंगार की है। **घनानंद** ने इसका रीतिकालीन ऊहापरक रूप में ही अंकन किया है। ग्वाल ने 'गोपी पचीसी' में प्रधानता गोपियों और उनके सगुण–प्रेम को दी है। **पद्माकर** में भावकला का सुन्दर सामंजस्य भी है और गोपियों की भाव–विभोरता और सौतियाडाह भी। हाँ, कहीं–कहीं वे अश्लीलता तक पहुँच गये हैं। **मिखारीदास** में बौद्धिकता की प्रमुखता है और उन्होंने सवैया छन्द को ग्रहण किया है।

इनके अतिरिक्त भी इस युग के अनेक कवियों ने इस विषय पर काव्य–सृजन किया है यथा रसनायक (बिरह–विलास), ब्रजनिधि (प्रीति पचीसी), बख्शी हंसराज (विरह–विलास), अक्षर अनन्य (प्रेमदीपिका), नागरीदास (गोपी–प्रेम–प्रकाश), रसरूप (उपालम्भ शतक), प्रेमदास (प्रेमसागर), ब्रजवासीदास (ब्रज–विलास), रसरासि (रसिक पचीसी), हरिदास (श्याम सन्देश), गंगादत्त (लीला सागर), पंजनकुंवरि (बारहमास)।

7.4.6 आधुनिक काल में

आधुनिक काल में इस विषय को अपनानेवाले प्रमुख कवि हैं – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, चौधरी बद्रीनारायण 'प्रेमघन', कवि सत्यनारायण, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, जगन्नाथदास रत्नाकर, डॉ. रामशंकर शुक्ल 'रसाल', डॉ. द्वारकाप्रसाद मिश्र, श्यामसुन्दरलाल दीक्षित।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र मुख्यतः भक्ति और रीतिकालीन पूर्वपरम्परा से प्रभावित परिचालित रहे हैं। **डॉ. श्यामसुन्दरलाल दीक्षित** के शब्दों में, भारतेन्दु की गोपियां बावली नहीं हैं। वे श्रीकृष्ण के संदेश को, निर्गुण की उपासना को, एकदम त्याज्य नहीं मानतीं।'' वापिस लौटकर आए इनके उद्धव भी खीझे से लगते हैं।

"प्रेमघन" ने भी इस विषय पर स्फुट पद लिखे हैं। गोपियों की खीझ, झुंझलाहट और क्षोभ के चित्र बड़े सजीव बन पड़े हैं। कुब्जा पर व्यंग्य इनका भी प्रिय विषय रहा है।

कविवर सत्यनारायण जी ने इस विषय पर बिल्कुल नए रूप में 'भ्रमरदूत' नामक स्वतंत्र ग्रंथ की रचना की। कृष्ण भ्रमर रूप में स्वयं उपस्थित होते हैं और उसी से यशोदा (भारत माता) अपना दुखड़ा रोने लगती हैं। वह तत्कालीन अशिक्षित ग्रामीण का प्रतीक भी बन जाती हैं–

''या बिनु ग्वालिनी को, को हित की बात सुझावै।
अरु स्वतन्त्रता समता सह भ्रातृत्व सिखावै।।
यदपि सकल विधि से सहत दारुण अत्याचार।
पै न कछु मुख सों कहत, कोरे बने गंवार।।
कोउ अगुआ नहीं।।''

× ×

''अबकी गोपी मद भरी, अधर चलै इतराय।
चार दिना की छोहरी, गइ ऐसी गरबाय।।''
जहां देखो तहां।।''

हरिऔध ने अपने 'प्रियप्रवास' नामक महाकाव्य में 'भ्रमरगीत' प्रसंग को 'पवनदूत' के नाम से अंकित किया है। समसामयिक वातावरण से प्रभावित देशहित, लोक–सेवा, समाज–सुधार और कर्त्तव्य परायणता आदि इसकी नवीनतायें अथवा विशिष्टतायें हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मैथिलीशरण गुप्त के 'द्वापर' में शील और विनय की प्रधानता तथा उपालंभ व्यंग्यादि का पूर्ण अभाव है। प्रकारान्तर से गुप्त जी भ्रमरगीत–प्रसग के चित्रण मे भी प्रायः तुलसीदास जी से प्रभावित रहे हैं–

''माधव भी सच्चे हैं सखियो उद्धव भी सच्चे हैं।
हाय ! हमारे आंख कान ही झूठे हैं, कच्चे हैं।''

श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का भ्रमरगीत–प्रसंग पर आधारित ग्रन्थ हैं– 'उद्धव शतक' जिसकी महिमा–गरिमा से सभी परिचित हैं। एक सौ अठारह छन्दों में रचित प्रस्तुत रचना में भक्तिकाल का प्रेम, रीतिकाल की कला–अभिव्यक्ति और आधुनिक काल की तार्किकता एक साथ समाहित हुई मिलती हैं। इसकी सर्वाधिक नवीनता है– इसमें मिलनेवाला उभयपक्षी प्रेम। यहां पर गोपियों की भांति कृष्ण को भी विरहातुर दिखाया गया है।

डॉ. रसाल ने मुक्तक छन्दों में रचित 'रसालमंजरी' में भ्रमरगीत कथा को कहा है। बुद्धिवादिता, भावना, अलंकार और प्रत्युत्पन्नमति का इसमें पर्याप्त समावेश है। **डॉ. द्वारिकाप्रसाद मिश्र** ने भ्रमरगीत–प्रसंग को अपने 'कृष्णायन' नामक महाकाव्य के 'मथुरा कांड' में ग्रहण किया है। यहां पर उद्धव शुष्क निर्गुण–ज्ञान का उपदेश नहीं देते वरन् समानाधिकार भावना का प्रतिनिधित्व करते हैं जो निःसंदेह नवयुग का प्रभाव है। **श्यामसुन्दरलाल दीक्षित** ने भ्रमरगीत कथा को लेकर 'श्याम–संदेश' की रचना की, जिसकी एकमात्र नवीनता है कृष्ण को विरही दिखाना।

7.4.7 सामान्य विशेषतायें

भ्रमरगीत–प्रसंग हिन्दी काव्य का एक विशिष्ट प्रसंग है जिस पर भक्तिकाल से लेकर अद्यतन अनेक ग्रंथ विविध दृष्टियों से रचे गये हैं। पूर्णतया काल्पनिक इस कथा प्रसंग की अनेक सामान्य विशेषतायें भी हैं।

जहाँ तक प्रश्न है काव्यात्मकता का, इसमें विप्रलंभ शृंगार का खुला अवसर है। दूसरे, यह हास्य–व्यंग्यपूर्ण उक्तियां प्रस्तुत करने का अवसर देता है। तीसरे, यह ऐसा विषय है जिसका अन्य भाषा–साहित्यों में पूर्ण अभाव है। 'उपालम्भ काव्य' इसी का प्रमाण है।

'श्रीमद्भागवत्' से लेकर 'श्याम संदेश' तक भ्रमरगीत की एक सुनिश्चित और सुदृढ़ काव्य परम्परा मिलती है। इसका धार्मिक साम्प्रदायिक, सामयिक और साहित्यिक सभी दृष्टियों से विशिष्ट महत्व है। ध्यान से देखें तो इसमें भी सर्वोपरि है, सूरदास और उनका 'भ्रमरगीत'।

आचार्य शुक्ल के शब्दों में –

''ऐसा सुन्दर उपालम्भ काव्य और कहीं नहीं मिलता। ... यह रचना इतनी प्रगल्भ और काव्यांगपूर्ण है कि आगे होनेवाले कवियों की शृंगार और वात्सल्य की उक्तियां सूर की जूठी सी जान पड़ती हैं।''

7.5 भ्रमरगीत का काव्य–सौन्दर्य (काव्य–कला, काव्यगत विशेषताएं

भ्रमरगीत महाकवि सूरदास की रचना है। मूलतः यह उनके 'सूरसागर' का ही एक महत्वपूर्ण काव्यांश है जो लगभग 700 पदों तक व्याप्त है। अपने सर्वथा नवीन विषय, तीव्र रसानुभूति, नव भाषा–शैली आदि विविध गुणों से युक्त होने के कारण यह एक स्वतन्त्र काव्य–रचना बन गई है। फलतः अपने काव्यगत गुणों से यह रचना के काव्य–सौन्दर्य को द्विगुणित करता है, कवि की काव्यगत मान्यताओं अथवा विशेषताओं को मुखर करता है, मूलकृति के काव्य–वैभव की साक्षी देता है और सबसे अधिक कवि और उसकी कृति को लोकप्रिय बनाने में सहायक होता है।

7.5.1 भाव–पक्ष की दृष्टि से

भाव–पक्ष में काव्य का वर्ण्य–विषय, रसानुभूति क्षमता, विचार–प्रकटीकरण और परिवेश–चित्रण आदि आते हैं।

'भ्रमरगीत' का मूल विषय है– कृष्ण–प्रवास से उत्पन्न ब्रज–बालाओं की वियोग स्थिति। यह प्रसंग सर्वप्रथम 'श्रीमद्भागवत' (अध्याय 46–47) में मिलता है फिर भी नवीनता यह है कि सर्वाधिक विस्तार से और बिलकुल नये रूप में इस विषय को सर्वप्रथम सूरदास ने ही ग्रहण किया है। 'भ्रमरगीत' की कथा और घटनायें, पात्र एवं उनके क्रिया–कलाप एवं कवि का कथ्य सब इसी के परिचायक हैं।

7.5.2 रसानुभूति की तीव्रता

रस की दृष्टि से भ्रमरगीत का प्रधान रस है– विप्रलंभ अथवा वियोग शृंगार। इसी के साथ–साथ वात्सल्य, हास्य, भक्ति और करुण आदि कोमल रसों को भी ग्रहण किया गया है। इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम उल्लेखनीय बात तो यह है कि इस प्रसंग को वियोग–प्रधान बनाने का सर्वाधिक और सर्वप्रथम श्रेय सूर को है। दूसरे, इस रचना के सभी पद पूर्णतया मार्मिक, रसानुभूति से युक्त और सहज–स्वाभाविक बन पड़े हैं। कोई सा पद लेलें, किसी भी भाव–स्थिति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

को देखें, यही बात मिलती है। रति के विविध रूप यहां साकार तो हैं ही, न जाने कितनी ऐसी मनःस्थितियां भी यहाँ उपलब्ध है, जिनका अभी तक नामकरण भी नहीं हो पाया है। एकदम सच तो यह है कि रस–निर्वाह और रस–परिपाक दोनों ही दृष्टियों से भ्रमरगीत पूर्णतया भाव सराबोर और सफल काव्य–रचना बन पड़ी है। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** (भ्रमरगीत–सार : भूमिका) का यह कथन अक्षरशः सत्य है, "वात्सल्य और शृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक निरीक्षण सूर ने अपनी बन्द आंखों से किया है उतना किसी और ल्वि ने नहीं। इन क्षेत्रों का कोना–कोना वे झांक आए। .... हृदय से निकली हुई प्रेम की इन तीनों प्रबल धाराओं से सूर ने बड़ा भारी सागर भरकर तैयार किया है।"

7.5.3 भक्ति और दर्शन का समन्वय

सूर पुष्टिमार्गी कवि हैं और 'अष्टछाप' के सर्वोत्तम सखा। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने ठीक कहा है, "आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणायें श्रीकृष्ण की प्रेम–लीला का कीर्तन करने उठीं जिनमें सबसे ऊंची, सुरीली और मधुर झंकार अन्धे कवि सूरदास की वीणा की थी। ये भक्त कवि सगुण उपासना का रास्ता साफ करने लगे। निर्गुण उपासना की नीरसता और अग्राह्यता दिखाते हुए ये उपासना का हृदयग्राही स्वरूप सामने लाने में लग गए।" इसी का एक सशक्त साधन बनकर प्रकट हुआ – सूर–कृत 'भ्रमरगीत'।

भ्रमरगीत में निर्गुण का खण्डन और सगुण का मंडन किया गया है, वह भी शुष्क और नीरस तथ्यों से नहीं वरन् सहज–सरल और एकदम स्वाभाविक तर्कों से, जो एकदम पाठक को रसाभिभूति करके मन के गहरे में उतर जाते हैं। उद्धव का निरंतर निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देकर अपने मत और अनेक उदाहरणों से उसकी पुष्टि करना भी प्रभावशाली है। इससे भी कहीं अधिक स्वाभाविक और प्रभावशाली है– गोपियों द्वारा किया गया निर्गुण का खंडन। यथा–

(i) "निर्गुण कौन देस को बासी ?
मधुकर ! हंसि रामुझाय, रौंह दे बूझति सांच, न हांसी।"

(ii) "रेख न रूप, बरन जाके नहिं, ताको हमैं बतावत।
अपनी कहौ दरस वैसे को तुम कबहुँ हौ पावत ?"

(iii) "बार–बार ये वचन निबारो।
भक्त–विरोधी ज्ञान तिहारो।।"

दूसरी और गोपियां सख्य भाव पर आधारित प्रेमभक्ति की स्थापना करती हैं – उसको लौकिक रूप देकर। सरलता, सहजता और स्वाभाविकता के साथ साथ अनन्यता, एकाग्रता, रमरण, बारय आदि इसकी अपनी विशिष्टतायें हैं। यथा –

(i) "उर में माखन चोर गड़े।
अब कैसहु निकसत नहिं ऊधो ! तिरछे àS जो अड़े।।"

(ii) "अंखियाँ हरि दरसन की भूखी।
कैसे रहे रूप रस रौंची ये बतियां सुन रूखी।"...
बारक वह मुख फेरि दिखाओ दुहि पय पिवत पतूखी।
सूर सिकत हठि नाव चलायो ये सरिता है सूखी।।"

(iii) "गोकुल सबै गोपाल–उपासी।
जोग–अंग साधत जे ऊधो ते सब बसत ईसपुर कासी।।"

उद्धव अपना ज्ञानमार्ग भूल जाते हैं, गोपियों की प्रेम–भक्ति से प्रभावित ही नहीं ओत–प्रोत होते हैं, प्रेमभक्ति का यशोगान करके सगुण–प्रेम की महत्ता को स्वीकार कर लेते हैं–

(i) 'सूर उनके भजन आगे लगै फीको ज्ञान।'
(ii) कटुक कथा लागी मोहिं अपनी, वा रस–सिन्धु समायौ।
(iii) "सूर सकल फीको लागत है देखत वह रसरीति।"
(iv) "धन्य धन्य जो नारी ब्रज की बिनु दरसन इहि टेक।।
देखत उमग्यो प्रेम, यहां की धरी रही सब सेयो।
सूरस्याम हौं रह्यौ ठगो सो, ज्यौं मृग चौको भयो।।"

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में यह है कि, ''सूर का प्रेमपक्ष लोक से न्यारा है। गोपियों के प्रेमभाव की गम्भीरता आगे चलकर उद्धव का ज्ञान–गर्व मिटाती हुई दिखाई पड़ती है। वह भक्ति की एकान्त साधना का आदर्श प्रतिष्ठित करती हुई जान पड़ती है। .... सूरदास सच्चे प्रेम–मार्ग के त्याग और पवित्रता को ज्ञान–मार्ग के त्याग और पवित्रता के समकक्ष रखने में खूब समर्थ हुए हैं, साथ ही उन्होंने उस त्याग को रागात्मिका वृत्ति द्वारा प्रेरित दिखाकर भक्तिमार्ग या प्रेममार्ग की सुगमता भी प्रतिपादित की है।''

7.5.4 प्रकृत–चित्रण की व्यापकता

प्रकृति का यहाँ व्यापक चित्रण है। एक तो 'उद्धव–गोपी–संवाद' के अन्तर्गत प्राकृतिक उदाहरणों से और दूसरे, गोपियों के विरह – भाव की उद्दीप्त करनेवाले प्रकृति के उद्दीपन रूप से। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने ठीक कहा है, ''..... वृन्दावन के करील कुंजों, लोनी–लताओं, हरे–भरे कछारों, खिली हुई चाँदनी, कोकिल–कूजन आदि ... अनुभावों और संचारियों का इतना बाहुल्य और कहां मिलेगा ? ... उनका विरह वर्णन भी ... प्रकृति के खुले क्षेत्र के बीच दूर–दूर तक पहुंचता है।'' कमल, भृंगकीट, पपीहा, चातक आदि प्रथम वर्ग के प्रतिनिधि हैं तो यमुना, कुंज, रात्रि, चांद, बादल, खग–समूह आदि दूसरे वर्ग के। **डॉ. रामरतन भटनागर** (सूर साहित्य की भूमिका) का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि, ''सूर–साहित्य का विकास भी ब्रजप्रकृति की छाया में ही होता है। ब्रज की प्रकृति ने उन्हें केवल उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं के लिये ही सामग्री नहीं दी है, वह उनके काव्य के केन्द्र में प्रतिष्ठित हुई है।'' एकदम सच तो, **डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'** के शब्दों में यह है कि, ''सूर का प्रकृति–वर्णन भक्तिकालीन कवियों में सर्वाधिक व्यापकता और मौलिकता लिये हुये है।''

शिल्प–पक्ष के अन्तर्गत भाषा, छन्द, अलंकार, प्रतीकात्मकता और काव्यरूपादि–विषयक विशेषतायें आती हैं।

7.5.5 नव–भाषा समृद्धि

भ्रमरगीत पूर्णतया ब्रज भाषा का काव्य है। ब्रज–भाषा में यह प्रथम काव्य–कृति है और वह भी इतनी सुन्दर जिसने कि ब्रज भाषा को आगामी चार–पांच वर्षों के लिए काव्य की प्रमुख भाषा बना दिया। भ्रमरगीत में ब्रज–प्रदेश की लोकप्रचलित भाषा अपने विविध गुणों के साथ एक साथ और एकदम विशिष्ट रूप में मुखर मिलती है। इसमें लोक प्रचलित सरल शब्दावली है और देशज के तोडे–मरोडे शब्द भी। यही बात मुहावरों और लोकोक्तियों पर भी चरितार्थ होती है। कवि ने कहीं कहीं नवीन लोकोक्ति – मुहावरे भी बनाये हैं। यथा 'मूरी के पातन के बदले को मुकताहल दैहे।'' शब्द–शक्तियां यूं तो तीनों हैं, किन्तु प्रधानता व्यंजना शब्दशक्ति की है। गोपियों के उपालंभ–विषयक कथन इसी के परिचायक हैं। बोली की मिठास, वाग्वैदग्ध्य, संगीतात्मकता और भावानुकूलता आदि ने भी इस भाषा को नया और समृद्ध बनाया है।

7.5.6 छन्द, अलंकार की स्वाभाविकता

भ्रमरगीत के अधिकांश पद षट्पदी हैं, किन्तु इनमें भी कवि ने विविध छन्दों का प्रयोग किया है। सवैया, छप्पय, रोला आदि ऐसे ही कुछ छन्द हैं। कहीं–कहीं दोहा–चौपाई तथा लोकगीत छन्दों का भी प्रयोग है। सभी में गेयता अथवा संगीतात्मकता आद्योपांत भरी पड़ी है।

सूर के प्रिय अलंकार हैं – उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और सांगरूपक। इनके अतिरिक्त अनेक अन्य प्रकार के शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों ही यहां बहुतायत से मिलते हैं।

7.5.7 प्रतीकात्मकता

भ्रमरगीत की समस्त कथा रूपकात्मक अथवा प्रतीकात्मक है। इसके अनुसार गोपियाँ और राधा अनन्य भक्त की, कृष्ण भगवान के, गोपियों का प्रेम भक्ति का, तथा मधुकर उद्धव भक्तिमार्ग में आनेवाली सांसारिक बाधाओं के प्रतीक हैं। इसी भाँति गोपियों के समस्त उपालंभ मधुकर के माध्यम से कृष्ण और उद्धव के लिए ही कहे गये हैं। निःसंदेह कवि ने आलंकारिकता के रूप में भी प्रतीकों का खुला प्रयोग किया है। सब मिलकर 'भ्रमरगीत' की प्रतीकात्मकता एकदम संयोजित, प्रभावोत्पादक, रागोत्प्रेरक और काव्यशास्त्रीय दृष्टि से भी सफल बन पड़ी है।

7.5.8 नव–गीत शैली

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है, ''सूरसागर'' किसी पहले से चली आती हुई गीत परम्परा का चाहे वह मौखिक ही रही हो – पूर्ण विकास सा जान पड़ता है, चलनेवाली परम्परा का मूल रूप नहीं।'' सूर से पूर्व भी हिन्दी में ही विद्यापति और चंडीदास, जयदेव आदि गीत–शैली में भ्रमर–विषयक पदों की रचना कर चुके थे। फिर भी गीत –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शैली की विशेषतायें उनमें इतनी मात्रा में नहीं मिलती जितनी सूर–काव्य में मिलती हैं। सूर का समस्त काव्य गीतशैली में है। 'भ्रमरगीत' भी इसका अपवाद नहीं है। इसके सभी पद विविध राग–रागनियों में बंधे हैं। अतएव संगीतात्मकता इनमें कूट–कूटकर भरी है और भावोत्प्रेरकता और भावान्विति के विषय में भी यही बात है। अधिकांश पद, षट्पदी होने के कारण, संक्षिप्त आकारवाले हैं। गीति–काव्य–शैली के सभी आवश्यक गुण– अभिव्यंजना शक्ति, भाव–अन्विति, सहज प्रेरणा, गेयता, संक्षिप्त आकार, वस्तु और भाव की सानुपातिकता आदि – भरपूर मात्रा में हैं और निःसंदेह सर्वप्रथम इतने गुणयुक्त बनकर 'भ्रमरगीत' के पदों में ही उपलब्ध हैं।

7.5.9 नव काव्यरूप प्रबन्धोन्मुख मुक्तक

'भ्रमरगीत' वाह्यतः मुक्तक शैली में रचित विविध पदों का संग्रह है। इस आधार पर इसको 'मुक्तक काव्य–रूप' के अन्तर्गत माना जाता है। साथ ही साथ यह भी द्रष्टव्य है कि ये सभी पद परोक्ष शृंखला में जुड़े हैं। उद्धव–कृष्ण वार्ता से लेकर उद्धव की मथुरा वापिसी तक सभी प्रसंग परस्परबद्ध होकर एक सुनिश्चित प्रबन्ध–कथा को जन्म देते हैं। इसके अतिरिक्त सुनिश्चित पात्र, नाटकीय संवादात्मकता, घटना–विकास, शृंगार के वियोग पक्ष की प्रधानता एवं वात्सल्य, हास्य, भक्ति और करुण आदि अन्य रसों का समावेश प्रकृति का व्यापक चित्रण तथा एक सुनिश्चित विचारधारा आदि तत्व इसको प्रबन्ध के समीप पहुँचा देते हैं। सब मिलाकर कह सकते हैं कि 'भ्रमरगीत' में मुक्तक के गुण तो हैं ही साथ ही साथ प्रबन्ध के नाना तत्व भी उपस्थित हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सूर का भ्रमरगीत काव्य भाव और शिल्प दोनों ही पक्षों में विविध विशेषताओं से युक्त है। उन्होंने एक ओर तो इसको काव्य–सौन्दर्य प्रदान किया है और दूसरी ओर इसकी काव्यकला को अपूर्व बनाया है। प्रकारान्तर से ये काव्यगत विशेषतायें ही 'भ्रमरगीत' के काव्य वैभव की परिचायक हैं और इन्हीं से सूर और उनका भ्रमरगीत अत्यधिक लोकप्रिय सिद्ध हुए हैं।

7.6 भ्रमरगीत का भाव–विधान

7.6.1 सूर और भाव–विधान

प्रत्येक कवि भावुक होता है और अपने काव्य से दूसरों के हृदय में भी भावोद्रेक करता है। सूर तो महाकवि थे। वे काव्य रचने में प्रतिज्ञा करके नहीं लगे थे और न ही दूसरों में भावोद्रेक करने की किसी पूर्वनिश्चित धारणा से परिचालित थे। वे तो सरलहृदया भक्त थे, यद्यपि भाव–विभोर होकर उन्होंने जो कुछ कहा, वह काव्य–महान् काव्य बन गया। **श्री नलिनिलोचन शर्मा** (सूरदास) ने ठीक कहा है, "... सूर संयोग से, अनजाने में ही, ऐसे गीत गाते हैं, जिनका कविता के रूप में भी असंदिग्ध महत्व स्वीकार्य होता है।... उनकी वाणी शास्त्र की ओर झुकने पर भी अपनी ताजगी नहीं खोती और जब वह रागात्मक तीव्रता के कारण एक तान बन जाती है, तो अनायास कविता में रूपान्तरित हो जाती है।" इस कथन की सत्यता का सर्वोत्तम परिचायक है– "भ्रमरगीत"।

'भ्रमरगीत' मूलतः कोई स्वतन्त्र रचना नहीं है, वरन् 'सूरसागर' का ही एक भाग है। कृष्ण के मथुरा प्रवास और वहां से उद्धव–आगमन के उपरांत ब्रज की विरहिणी गोपियों द्वारा अभिव्यक्त, भ्रमर को संबोधित करके कहे गये पद समग्रतः 'भ्रमरगीत' कहलाते हैं, जो 'सूरसागर' में पदसंख्या 4078 से पद संख्या 4710 तक, लगभग सात सौ की संख्या में उपस्थित हैं। सभी पद अपने में विशिष्ट हैं और नाना विशेषताओं से युक्त बन पड़े हैं। इनकी वर्ण्यवस्तु अथवा भावगत विशेषताएं, मुख्यतः निम्नांकित हैं–

7.6.2 नवीन वर्ण्य विषय

भ्रमर को माध्यम बनाकर कुछ फुटकर पद तो जयदेव, चंडीदास और विद्यापति भी रच चुके थे। मूलतः यह प्रसंग 'श्रीमद्भागवद्' के अध्याय 46–47 में उपलब्ध है। इसी से सूर ने इस प्रसंग को ग्रहण किया है, किन्तु सर्वथा विस्तृत, नए और मौलिक रूप में। सच तो यह है कि सूर में आकर ही यह प्रसंग पूरा और नवीन वर्ण्य–विषय बना है। कृष्ण की ब्रज–स्मृति, कृष्ण का उद्धव को संदेश देकर ब्रज भेजना, गोपियों की विरह व्यथा, संयोगान्तर्गत सुखद स्मृतियां, उद्धव से वाद–विवाद, भ्रमर–प्रवेश, भ्रमर को माध्यम बनाकर उपालंभ और हास्य व्यंग्यपरक उक्तियां कहना, उद्धव का परास्त होकर ज्ञान के स्थान पर प्रेम–महत्ता को स्वीकार करना एवं मथुरा जाकर कृष्ण से अपनी और गोपियों की स्थिति को बताकर कृष्ण से ब्रज वापिस जाने का अनुरोध करना आदि सम्पूर्ण कथा–प्रसंग में सूर की अपनी मौलिकता है। इस प्रकार सूर ने परम्परागत अधूरे भ्रमरगीत प्रसंग को परिपूर्णता भी प्रदान की और सर्वथा नवीन वर्ण्य–विषय भी बना दिया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7.6.3 गहन, विस्तृत और सुनिश्चित रसाभिव्यक्ति

सूर ने निःसंदेह जीवन की गिनी–चुनी स्थितियों को ही ग्रहण किया है, किन्तु इनमें कवि की पैठ अत्यधिक गहन, विस्तृत और सुनिश्चित है। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** (त्रिवेणी) ने सत्य कहा है, ''यदि हम मनुष्य–जीवन के सम्पूर्ण क्षेत्र को लेते हैं तो सूरदास की दृष्टि परिमित दिखाई पड़ती है पर यदि उनके चुने हुए क्षेत्रों को लेते हैं तो उनके भीतर उनकी पहुँच का विस्तार बहुत अधिक पाते हैं। उन क्षेत्रों में इतना अर्न्तदृष्टि–विस्तार और किसी कवि का नहीं।'' एक शब्द में सूर का चुना हुआ क्षेत्र है– 'रति' नामक स्थायी भाव जिसको साधारणतया 'प्रेम' शब्द से सम्बोधित किया जाता है। काव्याचार्यों ने 'रस–संख्या' को निर्धारित करते हुए रति अथवा प्रेम के कई भेद किए हैं यथा दांपत्य, रति, संतान–रति तथा भगवद्विषयक रति। इसी आधार पर क्रमशः शृंगार, वात्सल्य और भक्ति रसों की कल्पना की गई है। कहना न होगा कि 'भ्रमरगीत' में भी ये तीनों रस अपनी परिपूर्णता के साथ अंकित किये गये मिलते हैं।

शृंगार का शब्दार्थ है – कामोद्रेक अथवा काम वृद्धि की प्राप्ति। **डॉ. नगेन्द्र** (रस सिद्धान्त) के शब्दों में, ''इसके आलम्बन हैं, नायक–नायिका, उद्दीपन है सखी, मंडन, परिहास आदि, अथवा षट्ऋतु, वन, उपवन, चन्द्र आदि, अनुरागपूर्ण, भृकुटि–भंग, हाव–भावादि, अनुभाव हैं, आलस्य, मरण, उग्रता तथा जुगुप्सा को छोड़ अन्य निर्वेद, असूया, धृति, आदि संचारी हैं और स्थायी भाव रति है। संयोग–वियोग (विप्रलंभ) इसके भेद हैं। 'भ्रमरगीत' इन सबका विस्तृत अलबम है यद्यपि प्रधानतया वह वियोग – काव्य है।''

7.6.4 संयोग–शृंगार

संयोग का अर्थ है – नायक–नायिका का साथ रहना। 'भ्रमरगीत' में संयोग–अंकन अपेक्षाकृत अल्प है, क्योंकि यह आद्योपात विप्रलंभ–काव्य है और इसकी सम्पूर्ण कथा वियोगकालीन है। फिर भी स्मृति के माध्यम से कवि ने संयोग शृंगार के भी विविध चित्र इनमें प्रस्तुत किये हैं, यथा –

(i) ''लरिकाई कौ प्रेम कहौ अलि ! कैसे करिकै छूटत ? ...
चंचल चाल, मनोहर चितवनि, वह मुसुकानि मंद धुन गावत।
नटवर भेस नंदनंदन को वह विनोद गृह बन तें आवत।''

× × ×

7.6.5 वियोग शृंगार

वियोग का अर्थ है –नायक–नायिक का बिछुड़ना। काव्य शास्त्रीय दृष्टि से इसके कई भेद हैं, यथा– पूर्वानुराग, मान, प्रवास, करुण और विरहहेतुक। इसी भांति इसकी ग्यारह स्थितियां भी मानी गयी हैं। भ्रमरगीत में ये सभी आद्योपांत देखी जा सकती हैं। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने ठीक ही कहा है कि ''वियोग की जितनी अन्तर्दशायें हो सकती हैं, जितने ढंगों से उन दशाओं का साहित्य में वर्णन हुआ है, और सामान्यतः हो सकता है, वे सब उसके भीतर मौजूद हैं।''

अभिलाषा : ''ऐसे समय जो हरि जू आवहिं।
निरखि निरखि यह रूप मनोहर नैन बहुत सुख पावहिं।।''

× × ×

स्मृति : ''मेरो मन इतनी सूल रही।
ए बतियां छतियां लिखि राखी, जे नंदलाल कहीं।।''

व्याधि : ''बिनु गोपाल बैरन भई कुंजै।
तब वे लता लगति अति सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजैं।।''

मरण : ''अति मलीन वृषभानु–कुमारी।...
छूटे चिकुर बदन कुम्हिलाने, ज्यौं नलिनी हिमकर की मारी।।

मानव–मन की न जाने कितनी ऐसी स्थितियों का वर्णन कवि ने किया है जिनका अभी नामकरण तक नहीं हुआ है। मार्मिकता, स्वाभाविकता और संगीतात्मकता आदि ने इनको रागोत्प्रेरक भी पूरी–पूरी मात्रा में बना दिया है।

उदाहरणार्थ, विरहान्तर्गत नारी मन का असूया, सपत्नी–ईर्ष्या, खीझ, झुंझलाहट, उपालंभ, मान और स्व–विवशता आदि स्थितियाँ न जाने कितने रंग–रूपों में भ्रमरगीत में भरी पड़ी हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में, यह है कि, ''हिन्दी साहित्य में शृंगार का रसराजत्व यदि किसी ने पूर्ण रूप से दिखाया है तो सूर ने। ... शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का इतना प्रचुर, विस्तार और किसी कवि में नहीं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मिलता।'' तथा वियोग की जितनी अन्तर्दशायें हो सकती हैं, जितने ढंगों से उन दशाओं का साहित्य में वर्णन हुआ है और सामान्यतः हो सकता है, वे सब उसके भीतर मौजूद हैं।''

7.6.6 वात्सल्य रस

वात्सल्य रस 'वत्सल' भाव का द्योतक है। 'भ्रमरगीत' प्रसंग में इसके चित्रण का अधिक अवसर नहीं है, किन्तु नंद–यशोदा विषयक कुछ पदों में कवि ने इससे भी श्रेष्ठ रसयुक्त चित्र दिये हैं। इनमें माता–पिता का पुत्र के प्रति तथा पुत्र का माता–पिता के प्रति प्रवासजन्य वात्सल्य वर्णित मिलता है। ये अंश एक ओर तो संवादात्मकता, दूसरी ओर बोली की मिठास और तीसरे ओर अगाध वत्सल (ममत्व) के कारण अत्यन्त मार्मिक बन पड़े हैं। निम्न गिनी–चुनी पंक्तियों में ही तीनों बातें एक साथ समाहित हैं–

(i) पथिक ! संदेशो कहियो जाय।
आवेंगे हम दोनों भैया, मैया जानि अकुलाय।।

(ii) नीके रहियो जसुमति मैया !
आवेंगे दिन चार पाँच में हम हलधर दोउ भैया।।

(iii) संदेसो देवकी सो कहियो !
हौं तो धाय तिहारे सुत की, कृपा करत ही रहियो।

(iv) ऊधो ! मोहि ब्रज बिसरत नाहीं। ...
अनगिन भांति करी बहुलीला, जसुदा नंद निबाहीं।
सूरदास प्रभु मौन àS रहे, यह कहि कहि पछिताहीं।।

भ्रमरगीत का प्रारम्भ भी इस सत्य का द्योतक है कि भ्रमरगीत का समस्त विप्रलंभ वात्सल्यजन्य है। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** के शब्दों में यह है कि, ''वात्सल्य' और 'शृंगार' के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्‌घाटन सूर ने अपनी बंद आंखों से किया है उतना किसी और कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का कोना–कोना वे झांक आये हैं। उक्त दोनों रसों के प्रवर्तक रतिभाव के भीतर की जितनी मानसिक वृत्तियों और दशाओं का अनुभव और प्रत्यक्षीकरण सूर कर सके उतनी का और कोई नहीं।''

7.6.7 भक्ति रस

ईश्वरविषयक रति भक्ति रस का मूलाधार है। आचार्यों ने नवधा भक्ति के रूप में भक्ति के नौ प्रकार माने हैं और दसवां प्रकार प्रेमाभक्ति है। 'भ्रमरगीत' में लौकिक के माध्यम से मूलतः अलौकिक रति (अथवा भक्ति) का अंकन ही किया गया है। गोपियां (भक्त) और श्री कृष्ण (भगवान) इसी के प्रतीक हैं। गोपियों के विरह में नवधा भक्ति के सभी प्रकार देखे जा सकते हैं। कुछ उदाहरण देखिये–

(i) निष्काम भक्ति – ''फिर ब्रज बसहु गोकुलनाथ।
बहुरि न तुमहिं जगाय पठवौं गोधनन के साथ।''

(ii) गुणाहात्म्य – ''पूरनता इन नयनन पूरी।...
हरि अंतर्यामी सब जानत बुद्धि विचारत बचन समूरी।
वै रस रूप रतन सागरनिधि, क्यों मनि पाय खवावत धूरि।''

(iii) सख्य भक्ति – ''लरिकाई को प्रेम कहौ, अलि, कैसे करिके छूटत।''

(iv) आत्मनिवेदन – ऊधो ! स्यामहि तुम लै आओ।
ब्रजजन–चातक प्यास मरत हैं, स्वाति बूंद बरसाओ।।

उद्धव को निर्गुण की भक्ति करने का संदेश और उससे भी अधिक गोपियों का कृष्ण–प्रेम में अटल रहकर सगुण भक्ति की स्थापना भी मूलतः इसी भक्ति रस के अन्तर्गत आते हैं। ''सूर सकल फीको लागत है देखत वह रस रीति'' कहकर स्वयं उद्धव इसी भक्ति (रस) की प्रतिष्ठा करते हैं।

7.6.8 हास्य (व्यंग्य) रस

'भ्रमरगीत' में हास्य–व्यंग्य अपनी परिपूर्णता और उच्च काव्यात्मकता से युक्त रूप में मिलता है। गोपियों की वाचालता, स्पष्टवादिता और केन्द्राभिभूत–गुण ने इसको प्रभावशाली बनाया है तो हृदयगत पीड़ा, नारीत्वमय स्वभाव और सहज–सरल प्रस्तुतीकरण ने स्वाभाविक और सहज। यहां तक कि एक शब्द अथवा वाक्य मात्र से, वक्रोक्ति के सहारे

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ही तीक्ष्ण–नुकीला हास्य–व्यंग्य मुखरित हो जाता है। उदाहरणार्थ 'गाय' और उतारी' जैसे सरल–सहज शब्दों से उत्पन्न हास्य–व्यंग्य देखिये–

(i) "बिन समुझै हम फिर बूझति हैं, एक बार कहौ गाय।"

(ii) "लादि खेप गुन ज्ञान जोग की ब्रज में आय उतारी।"

इसी भाँति विनोदपरक निश्छल हास्य देखिये–

"तुम्हें दिये बहराय इतै को, वह कुब्जा सौ अटके।।"

कहीं–कहीं यह हास्य वाचालता का रूप धारण कर लेता है। (यथा "तुमसों प्रेम कथा को कहिबो मनहु घास") तो कहीं सहज ही मार्मिक बन जाता है (यथा – "मधुकर ! हंसि समुझाय, सौंह दे बूझति साँच, न हांसी)। कहीं–कहीं खीझ झुंझलाहट और नारी–सुलभ रोष में यह हास्य कटु व्यंग्य भी बन गया है। यथा–

"जाय कहौ बूझी कुसलात।
जाके ज्ञान न होय सो मानै, कहीं तिहारी बात।।
कारो नाम, रूप पुनि कारो, कारे अंग सब गात।
जो पै भले होत कहुँ कारे, तौ कत बदलि सुता लै जात।।"

× × ×

"चुप करि रहौ मधुप रस लंपट ! तुम देखे अरु बोऊ।।"

7.6.9 निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध है कि सूर ने ग्राह्य रसों की विस्तृत, गहन और सुनिश्चित अभिव्यंजना की है। **डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित** के शब्दों में,"... सूर काव्य में रस–निर्वाह और रस–परिपाक दोनों पाये जाते हैं। उन्हें हृदय–वृत्ति की गहरी पहचान है।" "निःसंदेह सूर में गहरी सहृदयता और भावुकता है, मार्मिक प्रसंगों की पहचान है, सजीवता है। प्रेम नाम की मनोवृत्ति का जैसा विस्तृत और पूर्ण परिज्ञान सूर को था, वैसा और किसी कवि को नहीं।" **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** के शब्दों में, "हृदय से निकली हुई प्रेम की इन तीनों प्रबल धाराओं से सूर ने बड़ा भारी सागर भरकर तैयार किया है। निःसंदेह उनका भावविधान, कम से कम 'भ्रमरगीत' में विविध विशेषताओं से युक्त है, काव्य और भावमय है, गहन, विस्तृत और व्यापक है और सब मिलाकर अपूर्व और रागोत्प्रेरक है।

7.7 'भ्रमरगीत' का दर्शन

7.7.1 दर्शन और काव्य

'दर्शन' शब्द का साधारण अर्थ है – देखना। साहित्य अथवा काव्य – क्षेत्र में यह शब्द प्रायः दो अर्थों में प्रचलित है – (1) जीवन–दृष्टि तथा (2) जीवन–जगत के पारमार्थिक स्वरूप तथा मानव–जीवन के चरम लक्ष्य का चिंतन, मनन और साक्षात्कार। ध्यान से देखें तो ये दोनों ही अर्थ एक सिक्के के दो पहलू हैं और परस्पर पूरक हैं।

दर्शन जिज्ञासा की देन है और काव्य–आनंद प्राप्ति का साधन। सृष्टि की विचित्रता को देख मानव–मन में जिज्ञासा भाव उठता है जिसकी सन्तुष्टि मानव दार्शनिक संभावनाओं से करता है। निःसंदेह ये बौद्धिक और फलतः शुष्क, नीरस और निरानंदमयी होती हैं। दार्शनिक कवि इन्हीं को रागोत्प्रेरक और हृदयगम्य बनाकर प्रस्तुत करता है। इसी से दर्शन और काव्य का संगम होता है।

7.7.2 सूर–दर्शन के प्रेरणा स्रोत

सूर को दार्शनिक कवि कहा जाता है। कारण ? **'श्री भगवतस्वरूप मिश्र** (सूरदास : 'सूर की दार्शनिकता') के शब्दों में, "हिन्दी में अभी तक आध्यात्मिक दृष्टिकोण को अपनाकर चलनेवाले कवि को ही दार्शनिक कवि कहने की परम्परा है। .... अध्यात्ममूलक भक्ति की अनुभूति को स्वर देने के लिए उसे साकार रूप प्रदान करने के लिए ही सूर ने कविता की है। सूरसागर सूर की इसी आध्यात्मिक अनुभूति का पारावार है। उस पारावार की एक–एक लहर ही सूरसागर का एक–एक पद है।

सूर स्वामी वल्लभचार्य के शिष्य थे और पुष्टिमार्ग के प्रथम स्तम्भ जिनको 'पुष्टिमार्ग का जहाज' तक कहा गया है। वल्लभ से दीक्षा लेकर और प्रेरित होकर ही सूर ने काव्य–सृजन किया है। चौरासी वैष्णव की वार्ता' में स्पष्टतः कहा गया है, "श्री महाप्रभु जी ने प्रथम सूरदास जी को नाम सुनायो, सो समर्पण करवाई और दशम स्कन्ध की अनुक्रमणिका कहीं। .... ताते सूरदास जी को नवधा भक्ति सिद्ध भई। तब सूरदास जी ने भगवत लीला वर्णन करी।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.7.3 'भ्रमरगीत' में दर्शन

'भ्रमरगीत' महाकवि सूर के 'सूरसागर' का महत्वपूर्ण भाग है। यह कवि और दार्शनिक सूर की भावुकता और दार्शनिक विचारों का मिलाजुला संगम है जिसने सूर को महाकवि भी सिद्ध किया और महान् दार्शनिक भी।

'भ्रमरगीत' के दर्शन की सबसे बड़ी द्रष्टव्य बात तो यह है कि इसमें कवि ने प्रत्यक्षतः अपने विचार प्रकट किये हैं। इसी से "भ्रमरगीत में दार्शनिक सिद्धान्तों का कथन नहीं अपितु व्यंजना ही होती है।" सच तो यह है कि अपनी दार्शनिक मान्यताओं को भी कवि ने चरित्रों के माध्यम से मुखरित किया है। इस आधार पर, **श्री रामधारसिंह दिनकर** के शब्दों में, "सूर के उद्धव कृष्ण के उद्धव नहीं, बल्कि कबीर की बुझती हुई निर्गुण परम्परा के प्रतीक हैं। उनकी गोपियां ब्रज की गोपियां नहीं, प्रत्यक्ष सगुणोपासना की उस भावना की प्रतिमायें हैं जो सूर के समय में पूरे उभार पर आ रही थीं।" उसी भांति यहां पर कृष्ण भी ब्रह्मा के प्रतीक हैं (उद्धव के अनुसार निर्गुण ब्रह्म के और गोपियों के अनुसार सगुण ब्रह्म के)। 'उद्धव गोपी संवाद के अन्तर्गत ही उसके विविध रूप, जीव और माया–विषयक मान्यतायें प्रमुख हैं।

ब्रह्म – ब्रह्म के विषय में सूर मुख्यतः वल्लभाचार्य के ब्रह्मवाद' से प्रभावित हैं जिसमें ब्रह्म, जीव और जगत तीनों को ब्रह्मरूप माना जाता है। 'पुष्टि मार्ग' की धारणा इसी पर आधारित है जिसमें **श्री रामचन्द्र तिवारी** के शदों में, "भगवान के अनुग्रह को सब कुछ माना जाता है। जीव को भगवान के अनुग्रह के बिना (पुष्टि के बिना) मुक्ति नहीं मिल सकती। भगवान के पोषण (अनुग्रह) को अधिक महतव देने के कारण ही यह मत 'पुष्टिमार्ग' कहलाता है।"

'भ्रमरगीत' में निर्गुण ब्रह्म का समर्थन करनेवाले एकमात्र चरित्र हैं – उद्धव । प्रारम्भ से ही वे निर्गुण ब्रह्मवादी हैं। ग्रंथारम्भ में ही कृष्ण उनको निर्गुण ब्रह्म का ज्ञान देने के लिये ब्रज भेजते हैं। इसी समय वे निर्गुण ब्रह्म का परिचय देते हैं–

"पूरन ब्रह्म, सकल अविनासी, ताके तुम हो ज्ञाता।
रेख न रूप जाति कुल नाहिं जाके नहिं पितु माता।
यह मत दै गोपिन कहं आवहु विरह नदी में भासति
सूर तुरत यह जाय कहौ तुम ब्रह्म बिना नहिं आसति।"

ब्रज में उद्धव गोपियों में इसी निर्गुण ब्रह्म का प्रचार करते हैं और नाना युक्तियों से निर्गुण ब्रह्म का समर्थन करते हैं। कुछ उदाहरण देखिये–

(i) "करि समाधि अंतर–गति चितवौ, प्रभु को यह उपदेस।
वै अबिगत, अबिनासी, पूरन, घट घट रहे समाय।।
तिहि निश्चय कै ध्यावहु ऐसे सुचित कमल मन लाय।।
यह उपाय करि बिरह तजौगी मिलै ब्रह्म तब आय।
तत्वज्ञान बनु मुक्ति न होई, निगम सुनावत गाय।।
× × ×

(ii) हृदय कमल में जोति बिराजै। अनहद नाद निरंतर बाजै।
इड़ा पिंगला सुखमन नारी। शून्य सहज में बसैं मुरारी।।
माता–पिता नहिं दारा भाई। जल थल घट–घट रहे समाई।।...
वह अव्युत अनंत अबिनासी। त्रिगुन रहति बपु धरे न दासी।।"

गोपियां निर्गुण का विरोध तो नहीं, उसके अस्तित्व और महत्ता से इन्कार भी नहीं करतीं, किन्तु उसको अपने योग्य अथवा अपने को उसके योग्य न मान कर उसको एकदम अस्वीकार कर देती हैं।

सगुण ब्रह्म – ब्रज की गोपियाँ सगुण (कृष्ण) की उपासिका हैं। कारण ? वही उनको सरल, सहज और ग्राह्य प्रतीत होता है। निर्गुण की उपासना न तो उनको उचित लगती है और न वह उनके वश की बात है–

"हमारे कौन जोग व्रत साधै ?
जाकी कहूं थाह नहिं पैरा अगम, अपार अगाधै।"

वे तो स्पष्टतः घोषित करती हैं :

"निर्गुन कौन देश को वासी ? ...
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारी को दासी ?"

वे तो सगुणोपासिका हैं क्योंकि सगुण–उपासना (प्रेम) ही उनके लिए सरलतम है और ऐसे ही सरल उपाय को वे ग्रहण करना चाहती हैं। गोपियां मुख्यतः दो मार्ग अपनाती हैं – (1) विविध सहज स्वाभाविक तर्कों से निर्गुण की निस्सारता और अग्राह्यता दिखाना तथा (2) अपने सगुण के प्रति अटल प्रेमभाव को दिखाना। पहले के अन्तर्गत उनका

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उद्धव और निर्गुण आदि पर किया गया व्यंग्य और उपालंभ आता है, जबकि उनकी विरह स्थिति दूसरे साधन का प्रतिनिधित्व करती है। निर्गुण की अग्राह्यता का एक कारण, डॉ. भगवतस्वरूप मिश्र के शब्दों मे "उद्धव गोपियो को जिस परमतत्व को प्राप्त करने के लिए – जिस अवस्था तक पहुंचने के लिये – ज्ञान और योग का उपदेश देते हैं,वह तो गोपियों को प्रेम के द्वारा अनायास ही प्राप्त है।" उनके लिए अन्य कोई नहीं, वरन वे तो अनन्य भाव से सगुण कृष्ण से प्रेम करती हैं। **श्री रामचन्द्र तिवारी** ने ठीक ही कहा है, "गोपियों का व्यक्तित्व पुष्टिमार्गीय भक्तिभावना के आधार पर ही संघटित किया गया है। "सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह सगुण उनके जीवन में घुला–मिला है, उन्हीं का अंश है और उनके योग्य है–

"को नृप भयो कंस किन मार्‌यो को वसुधौ–सुत आहि ?
वहां हमारे परम मनोहर जीजतु हैं मुख चाहि।
दिन प्रतिदिन जात सहज गोचारन गोप सखा लैं संग।
बासरगत रजनीमुख आवत करत नयन गति पंग।।"

अंत में, उद्धव भी गोपियों के सगुण के प्रति इस अटल और अनन्य प्रेमभाव से प्रभावित होते हैं और निर्गुण – प्राप्ति के ज्ञान–गर्व का परित्याग करते हैं।

जीव – बल्लभ मत और उसके परिणामस्वरूप सूरदास के मतानुसार जीव ब्रह्म का ही अंश है। भक्ति–भाव में भरकर जीव ब्रह्म के सम्मुख आत्मसमर्पण करता है और अपने को तद्नुसार बनाने में सतत् प्रयत्नशील रहता है। मनसा–वाचा कर्मणा वह अनन्य भाव से भरकर ब्रह्म की भक्ति करता है। कोई सांसारिक आकर्षण उसके इस प्रेम–मार्ग में बाधा नहीं बन पाता। सूर की गोपियां इसी जीव–भक्त की प्रतीक हैं और स्थान–स्थान पर इसी की पुष्टि करती हैं यथा–

(i) "हम ऐसी उनके केतिक है अंग प्रसंग सुनहु री आली।"
(ii) "हमारे हरि हारिल की लकरी।
मन बच क्रम नंदनंदन सौं उर यह दृढ़ करि पकरी।।"
(iii) "लोक कानि कुल को प्रभु मिलि के घर बन खेली।"
(iv) "माधव सों न बने मुख मोरे।"
(v) "ऊधो ! इन नयनन नेम लियो।
नंनदनदन सों पतिव्रत बाध्यों दरसत नाहि बियो।"

माया – आचार्य बल्लभ के मत में माया के तीन रूप हैं – 'अविद्या, विद्या और शक्ति–स्वरूपा। इनमें से तीसरी अर्थात् शक्ति–स्वरूपा माया ही 'भूत भगवत् शक्ति' है। यही योगमाया है।

भ्रमरगीत में माया के तीन रूपों के संकेत हैं। सर्वप्रथम उद्धव अविद्या माया का संकेत 'निर्गुण ब्रह्म की स्थापना का पक्ष–समर्थन करते हुए करते हैं। दूसरी के संकेत गोपियां सांसारिक आकर्षण त्याग अपने अटल प्रेम भाव में करती हैं तथा तीसरी को भी वे भक्ति–प्रेम के सम्मुख हेय बताकर अस्वीकार करती हैं। इस माया–अस्वीकृति का मूल कारण है – गोपियों का प्रेमाभक्ति में अटल विश्वास। इस प्रकार **डॉ. हरवंशलाल शर्मा** (सूर और उनका साहित्य) का यह कथन सत्य ही हैं कि, "माया के विषय में सूर ने पर्याप्त मौलिकता दिखायी है।"

7.7.4 निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'भ्रमरगीत' यद्यपि भागवत अथवा नंददास के 'भ्रमरगीत' की भांति तर्काधार पर दार्शनिक मान्यताओं की स्पष्टतः प्रतिष्ठा नही करता, किन्तु परोक्षतः कवि ने अपने दार्शनिक विचार स्थान–स्थान पर व्यक्त किये हैं। निष्कर्षस्वरूप **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** (हिन्दी साहित्य का इतिहास) से सहमत होते हुए कह सकते हैं, "सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश 'भ्रमरगीत' है।.... भक्तशिरोमणि सूर ने इसमें सगुणोपासना का निरूपण बड़े ही मार्मिक ढंग से– हृदय की अनुभूति के आधार पर, तर्क पद्धति पर नहीं – किया है।" एकदम सच तो, **डॉ. भगवतस्वरूप मिश्र** के शब्दों में यह है कि, ... "सूर आध्यात्मिकता के दर्शन लौकिक जीवन में ही कर लेते हैं। लौकिक और अलौकिक, मानव और ईश्वर, जगत और ब्रह्म एवं विधि और निषेध में – सभी में आध्यात्मिक स्तर पर समन्वय हो जाता है। यही सूर की दार्शनिक दृष्टि है।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7.8 भ्रमरगीत सार

7.8.1 मूल पाठ (पद सं. 21 से 71)

राग केदार

गोकुल सबै गोपाल उपासी।
जोग अंग साधत जे ऊधो ते सब बसत ईसपुर कासी।।
यद्यपि हरि हम तजि अनाथ करि तदपि रहति चरननि रसरासी।
अपनी सीतलताहि न छाँड़त यद्यपि है ससि राहु गरासी।।
का अपराध जोग लिखि पठवत प्रेमभजन तजि करत उदासी।
सूरदास ऐसी को बिरहिन माँगति मुक्ति तजे गुनरासी।।21।।

राग धनाश्री

जीवन मुँहचाही को नीको।
दरस परस दिनरात करति हैं कान्ह पियारे पी को।।
नयननि मूँदि–मूँदि किन देखौ बँध्यो ज्ञान पोथी को।
आछे सुंदर स्याम मनोहर और जगत सब फीको।।
सुनौ जोग को का लै कीजै जहाँ ज्यान है जी को ?
खाटी मही नहीं रुचि मानै सूर खवैया घी को।।22।।

राग कान्हरो

आयो घोष बड़ो ब्यापारी।
लादि खेप गुन ज्ञान जोग की ब्रज में आय उतारी।।
फाटक दै कर हाटक माँगत भोरै निपट सुधारी।
धुर री तें खोटो खायो है लए फिरत सिर भारी।।
इनके कहे कौन डहकावै ऐसी कौन अजानी।
अपनो दूध छाँड़ि को पीवै खार कूप को पानी।।
ऊधो जाहु सबार यहाँ तें बेगि गहरु जनि लावौ।
मुँहमाँग्यो पैहो सूरज प्रभु साहुहि आनि दिखावौ।।23।।

जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहैं।
यह ब्यौपार तिहारो ऊधो ऐसेई फिर जैहैं।।
जापै लै आए हौ मधुकर ताके उर न समैहैं।
दाख छाँड़ि कै कटुक निबौरी को अपने मुख खैहैं ?
मूरी के पातन के केना को मुक्ताहल दैहैं।
सूरदास प्रभु गुनहिं छाँड़िकै को निर्गुन निरबैहैं ?।।24।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

राग नट

आए जोग सिखावन पांड़े।
परमारथी पुराननि लादे ज्यों बनजारे टाँड़े।।
हमरी गति पति कमलनयन की जोग सिखै ते रांड़े।
कहो, मधुप, कैसे समायँगे एक म्यान दो खाँड़े।।
कहु षकपद, कैसे खैयतु है हाथिन के सँग गाँड़े।
काकी भूख गई बयारि भखि बिना दूध घृत माँड़े।।
काहे को झाला लै मिलवत, कौन चोर तुम डाँड़े।
सूरदास तीनों नहिं उपजत धनिया धान कुम्हाड़े।।25।।

राग बिलावल

ए अलि! कहा जोग में नीको ?
तजि रसरीति नंदनंदन की सिख निर्गुन फीको।।
देखत सुनत नाहिं कछु स्रवननि, ज्योति ज्योति करि ध्यावत।
सुंदरस्याम दयालु कृपानिधि कैसे हौ बिसरावत ?
सुनि रसाल मुरली सुर की धुनि सोइ कौतुक रस भूलैं।
अपनी भुजा ग्रीव पर मेलैं गोपिन के सुख फूलैं।।
लोककानि कुल को भ्रम प्रभु मेलि मिल कै घर बन खेली।
अब तुम सूर खवावन आए जोग जहर की बेली।।26।।

राग मलार

हमरे कौन जोग ब्रत साधै ?
मृगत्वच, भस्म, अधारि जटा को को इतनो अवराधै ?
जाकी कहूँ थाह नहिं पैए, अगम, अपार, अगाधै।
गिरिधर लाल छबीले मुख पर इते बाँध को बाँधे ?
आसन पवन भूति मृगछाला ध्याननि को अवराधे ?
सूरदास मानिक परिहरि कै राख गाँठि को बाँधै ?।।27।।

राग धनाश्री

हम तो दुँह भाँति फल पायो।
जो ब्रजनाथ मिलै तो नीको नातरु जग जस गायो।।
कहँ वै गोकुल की गोपी सब बरनहीन लघुजाती।
कहँ वै कमला के स्वामी संग मिलि बैठीं इक पाँती।।
निगमध्यान मुनिज्ञान अगोचर, ते भए घोषनिवासी।
ता ऊपर अब साँच कहो धौ मुक्ति कौन की दासी ?
जोग कथा पा लागो ऊधो, ना कहु बारम्बार।
सूर स्याम तजि और भजै जो ताकी जननी छार।।28।।

राग कान्हरो

पूरनता इन नयनन पूरी।
तुम जो कहत स्रवननि सुनि समुझत, ये याही दुख मरति बिसूरी।।।
हरि अंतर्यामी सब जानत बुद्धि बिचारत बचन समूरी।
वै रस रूप रतन सागर निधि क्यों मनि पाय खवावत धूरी।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रहु रे कुटिल, चपल, मधु लंपट, कितब सँदेस कहत कटुकूरी।
कहँ मुनिध्यान कहाँ ब्रजजुवती। कैसे जात कुलिस करि चूरी।।
देखु प्रगट सरिता, सागर, सर सीतल सुभग स्वाद रुचि रूरी।
सूर स्वांतिजल बसै जिय चातक चित लागत सब झूरी।।29।।

राग धनाश्री

हमतें हरि कबहूँ न उदास।
राति खवाय पिवाय अधररस सो क्यों बिसरत ब्रज को बास।।
तुमसों प्रेमकथा को कहिबो, मनहुँ काटिबो घास।
बहिरो तान–स्वाद कह जानै, गूंगो बात मिठास।।
सुनु री सखी, बहुरि फिरि ऐहैं वे सुख बिबिध बिलास।
सूरदास ऊधो अब हमको भयो तेरहों मास।।30।।

तेरो बुरो न कोऊ मानै।
रस की बात मधुप नीरस, सुनु, रसिक होत सो जानै।।
दादुर बसै निकट कमलन के जन्म न रस पहिचानै।
अलि अनुराग उड़न मन बाँध्यो कहे सुनत नहिं कानै।।
सरिता चलै मिलन सागर को कूल मूल द्रुम भानै।
कायर बकै, लोह तें भाजै, लरै जो सूर बखानै।।31।।

घर ही के बाढ़े रावरे।
नाहिंन मीत बियोगबस परे अनवउगे अलि बावरे।
भुख मरि जाय चरे नहिं तिनका सिंह को यहै स्वभाव रे।
स्रवन सुधा मुरली के पोषे जोग जहर न खवाव रे।
ऊधो हमहि सीख का दैहो ? हरि बिनु अनत न ठाँव रे।
सूरजदास कहा लै कीजै थाही नदिया नाव रे।।32।।

राग मलार

स्यामसुख देखे ही परतीति।
जो तुम कोटि जतन करि सिखवत जोग ध्यान की रीति।।
नाहिन कहू सयान ज्ञान में हम यह कैसे मानैं।
कहौ कहा कहिए या नभ को कैसे उर में आनैं।।
यह मन एक, एक वह मूरति, भृंगकीट सम माने।
सूर सपथ दै बूझत ऊधो यह ब्रज लोग सयाने।।33।।

राग धनाश्री

लरिकाई को प्रेम, कहो अलि, कैसे करिकै छूटत ?
कहा कहौं ब्रजनाथ चरित अब अंतरगति यों लूटत।।
चंचल चाल मनोहर चितवनि वह मुसुकानि मंद धुनि गावत।।
नटवर भेस नंदनंदन को वह बिनोद वह बन ते आवत।।
चरनकमल की सपथ करति हौं, यह संदेस मोहिं विष सम लागत।
सूरदास मोहि निमिष न बिसरत मोहन मूरति सोवत जागत।।34।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

राग सोरठ

अटपटि बात तिहारी ऊधौ सुनै सो ऐसी को है ?
अब अहीरि अबला सठ, मधुकर ! तिन्हैं जोग कैसे सोहै ?
बूचिहि खुभी आँधरी काजर, नकटी पहिरै बेसरि।
मुंडली पाटी पारन चाहै, कोढ़ी अंगहि केसरि।।
बहिरो सों पति मतो करै सो उतर कौन पै आवै ?
ऐसी न्याव है ताको ऊधौ जो हमैं जोग सिखावै।।
जो तुम हमको लाए कृपा करि सिर चढ़ाय हम लीन्हें।
सूरदास नरियर जो विष को करहिं बंदना कीन्हें ।।35।।

राग बिहागरो

बरु वै कुब्जा भलो कियो।
सुनि सुनि समाचार ऊधो मो कछुक सिरात हियो।।
जाको गुन, गति, नाम, रूप, हरि हार्‌यो, फिरि न दियो।
तिन आपनो मन हरत न जान्यो हँसि हँसि लोग जियो।।
सूर तनक चंदन चढ़ाय तन ब्रजपति बस्य कियो।
और सकल नागरि नारिन को दासी दाँव लियो।।36।।

राग सारंग

हरि काहे के अंतर्जामी ?
जौ हरि मिलत नहिं यहि औसर, अवधि बतावत लामी।।
अपनी चोप जाय उठि बैठे और निरस बेकामी।
सो कह पीर पराई जानै जो हरि गरुडागामी।
आई उघरि प्रीति कलई सी जैसे खाटी आमी।
सूर इते पर अनख मरति हैं ऊधो, पीवत मामी।।37।।

बिलग जनि, मानहु, ऊधो प्यारे।
वह मथुरा काजर की कोठरि जे आवहिं ते कारे।।
तुम कारे, सुफलकसुत कारे, कारे मधुप भँवारे।
तिनके संग अधिक छबि उपजत, कमलनैन मनिआरे।।
गानहु नील गाट तें काढ़े लै जगुना ज्यों पखारे।
तातें स्याम भई कालिंदी सूर स्याम गुन न्यारे।।38।।

राग सारंग

अपने स्वारथ को सब कोऊ।
चुप करि रहौ, मधुप रस लंपट ! तुम देखे अरु वोऊ।।
औरो कछु सँदेस कहन को कहि पठयौ किन सोऊ।
लीन्हें फिरत जोग जुवतिन को बड़े सयाने दोऊ।।
तब कत मोहन रास खिलाई जो पै ज्ञान हुतोऊ ?
अब हमरे जिय बैठो यह पद "होनी होउ सो होऊ"।।
मिटि गयो मान परेखो ऊधो हिरदय हतो सो होऊ।
सूरदास प्रभु गोकुलनायक चित चिंता अब खोऊ।।39।।

तुम जो कहत सँदेसो आनि।
कहा करौं वा नँदनंदन सों होत नहीं हितहानि ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जोग जुगुति किहि काज हमारे जदपि महा सुखखानि ?
सने सनेह स्यामसुदर के हिलि मिलि कै मन मानि।।
सोहत लोह परसि पारस ज्यों सुबरन बारह बानि।
पुनि वह चोप कहाँ चुंबक ज्यों लटपटाय लपटानि।।
रूपरहित नीरासा निरगुन निगमहु परत न जानि।
सूरजदास कौन बिधि तासों अब कीजै पहिचानि ?।।40।।

राग धनाश्री

हम तौ कान्ह केलि की भूखी।
कैसे निरगुन सुनहि तिहारी बिरहिनि बिरह बिदूखी।।
कहिए कहा यहौ नहिं जानत काहि जोग है जोग।
पा लागों तुमहीं सो वा पुर बसत बावरे लोग।।
अंजन, अभरन, चीर, चारु बरु नेकु आप तन कीजै।
दंड, कमंडल, भस्म, अधारी जो जुबतिन को दीजै।।
सूर देखि दृढ़ता गोपिन की ऊधो यह ब्रत पायो।
कहै कृपानिधि हो कृपाल हो। प्रेमै पढ़न पठायो।।41।।

अँखिया हरि दरसन की भूखी।
कैसे रहैं रूपरसराची ये बतियाँ सुनि रूखी।।
अवधि गनत इकटक मग जोवत तब एती नहिं झूखी।
अब इन जोग संदेसन ऊधो अति अकुलानी दूखी।।
बारक वह मुख फेरि दिखाओ दुहि पै पिवत पतूखी।
सूर सिकत हठि नाव चलायो ये सरिता है सूखी।।42।।

राग सारंग

जाय कहौ बूझी सुकलात।
जाके ज्ञान न होय सो मानै कही तिहारी बात।।
कारो नाम, रूप पुनि कारो, कारे अंग सखा सब गात।
जौ पै भले होत कहुँ कारे तौ कत बदलि सुता लै जात।।
हमको जोग, भोग कुबजा को काके हिये समात ?
सूरदास सेए सो पति कै पाले जिन्ह तेही, पछितात।।43।।

कहाँ लौ कीजै बहुत बड़ाई।
अतिथि अगाध अपार अगोचर मनसा तहाँ न जाई।।
जल बिनु तरंग, भीति बिनु चित्रन, बिन चित ही चतुराई।
अब ब्रज में अनरीति कछू यह ऊधो आनि चलाई।।
रूप न रेख, बदन, बपु जाके, संग न सखा सहाई।
ता निर्गुन सों प्रीति निरंतर क्यों निबहै री माई ?
मन चुभि रही माधुरी नूरति रोम रोम अरुझाई।
हौं बलि गई सूर प्रभु ताके जाके स्याम सुखदाई।।44।।

राग मलार

काहें को गोपीनाथ कहावत ?
जो पै मधुकर कहत हमारे गोकुल काहे न आवत ?
सपने की पहिचानि जानि कै हमहिं कलंक लगावत ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जो पै स्याम कूबरी रीझे सो किन नाम धरावत ?
जयो गजराज काज के औसर औरे दसन दिखावत।
कहन सुनन को हम हैं ऊधो सूर अंत बिरमावत।।45।।

अब कत सुरति होति है, राजन ?
दिन दस प्रीति करी स्वारथ हित रहत आपने काजन।।
सबै अयानि भई सुनि मुरली ठगी कपट की छाजन।
अब मन भयो सिंधु के खग ज्यों फिरि फिरि सरत जहाजन।।
वह नातो टूटो ता दिन ते सुफलकसुत संग भाजन।
गोपीनाथ कहाय सूर प्रभु कत मारत हौ लाजन।।46।।

राग सोरठ

लिखि आई ब्रजनाथ की छाप।
बाँधे फिरत सीस पर ऊधो देखत आवै ताप।।
नूतन रीति नंद नंदन की घरघर दीजत थाप।
हरि आगे कुब्जा अधिकारी ताते है यह दाप।।
आए कहन जोग अवराधो अबिगत कथा को जाप।
सूर सँदेसो सुनि नहिं लागै कहौ कौन को पाप।।47।।

राग सारंग

फेरि फिरि कहा सिखावत बात ?
प्रातकाल उठि देखत, ऊधो, घर घर माखन खात।।
जाकी बात कहत हौं हमसो सो है हमसों दूरि।
ह्याँ है निकट जसोदानंदन प्रान सजीवनमूरि।।
बालक संग लाए दधि चोरत खात खवावत डोलत।
सूर सीस सुनि चौंकत नाहीं अब काहे ना मुख खोलत ?।।48।।

राग धनाश्री

अपने सगुन गोपालै, माई ! यहि बिधि काहे देत ?
ऊधो की ये निरगुन बातैं मीठी कैसे लेत।
धर्म, अधर्म कामना सुनावत सुख और मुक्ति समेत।।
काकी भूख गई मनलाडू सो देखहु चित चेत।
सूर स्याम तजि को भुस फटकै मधुप तिहारे हेत ?।।49।।

राग सारंग

हमको हरि की कथा सुनाव।
अपनी ज्ञानकथा हो, ऊधो ! मथुरा ही लै गाव।।
नागरि नारि भलै बूझैगी अपने बचन सुभाव।
पा लागों, इन बातनि, रे अलि ! उनहीं जाय रिझाव।।
सुनि, प्रियसखा स्यामसुंदर के जो पै जिय सतिभाव।
हरिमुख अति आरत इन नयननि बारक बहुरि दिखाव।।
जो कोउ कोटि जतन करै, मधुकर, बिरहिनि और सुहाव ?
सूरजदास मीन को जल बिनु नाहिंन और उपाव।।50।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

राग कान्हरो

अलि हो ! कैसे कहौं हरि के रूप रसहि ?
मेरे तन में भेद बहुत बिधि रसना न जानै नयन की दसहि।।
जिन देखे ते बचन बिनु, जिन्हैं बचन दरसन न तिसहि।
बिन बानी भरि उमगि प्रेमजल सुमिरि वा सगुन जतहि।।
बार–बार पछितात यहै मन कहा करै जो विधि न बसहि।
सूरदास अंगन की यह गति को समुझावै पाछपद पसुहि।।51।।

हमारे हरि हारिल की लकरी।
मन बच क्रम नंदनंदन सों उर दृढ़ करि पकरी।।
जागत सोवत, सपने सौंतुख कान्ह कान्ह जक री।
सुनतहि जोग लगत ऐसी अलि ! ज्यों करुई ककरी।।
सोई ब्याधि हमैं लै आए देखी सुनी न करी।
यह तौ सूर तिन्हैं लै दीजै जिनके मन चकरी।।52।।

फिरि फिरि कहा सिखावत मौन ?
दुसह वचन अलि यों लागत उर ज्यों जारे पर लौन।।
सिंगी, भस्म, त्वचामृग, मुद्रा, अरु अवरोधन मौन।
हम अबला अहीर, सठ मधुकर ! घर बन जानै कौन।।
यह मत लै तिनहीं उपदेसौ जिन्हैं आजु सब सोहत।
सूर आज लौं सुनी न देखी पोत सूतरी पोहत।।53।।

राग जैतश्री

प्रेमरहित यह जोग कौन काज गायो ?
दीनन सों निदुर बचन कहे कहा पायो ?
नयनन निज कमलनयन सुंदर मुख हेरो।
मूँदन ते नयन कहत कौन ज्ञान तेरो ?
तामें कहु मधुकर ! हम कहा लैन जाहिं।
जामें प्रिय प्राननाथ नंदनंदन नाहीं ?
जिनके तुम सखा साधु बातें कहु तिनकी।
जौनै सुनि स्यामकथा दासी हम जिनकी ।
निरगुन अबिनासी गुन आनि आनि भाखौ।
सूरदास जिय के जिय कहाँ कान्ह राखौ ?।।54।।

राग केदारो

जनि चालौ, अलि, बात पराई।
ना कोउ कहै सुनै या ब्रज में नइ कीरति सब जाति हिराई।।
बूझैं समाचार मुख ऊधो, कुल की सब आरति बिसराई।
भले संग बसि भले भली मति, भले मेल पहिचान कराई।।
सुंदर कथा कटुक सी लागति उपजत उर उपदेस खराई।
उलटी न्याव सूर के प्रभु को बहे जात माँगत उतराई।।55।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

राग मलार

याकी सीख सुनै ब्रज को, रे ?
जाकी रहनि कहनि अनमिल, अलि, कहत समुझि अति थोरे।।
आपुन पद–मकरंद–सुधारस हृदय रहत नित बोरे।।
हमसों कहत बिरस समझौ, है गगन कूप खनि खोरे।।
धान को गाँव पयार तें जानौ ज्ञान विषयरस भोरे।
सूर तो बहुत कहे न रहै रस गूलर को फल फोरे।।56।।

निरखत अंग स्यामसुंदर के बार–बार लावति छाती।
लोचनजल कागद मसि मिलि कै ह्वै गइ स्याम स्याम की पाती।।
गोकुल बसत संग गिरिधर के कबहुँ बयारि लगी नहिं ताती।
तब की कथा कहा कहौं, ऊधो, जब हम बेनुनाद सुनि जाती।।
हरि के लाड़ गनति नहिं काहू निसिदिन सुदिन रासरसमाती।
प्राननाथ तुम कब धौं मिलौगे सूरदास प्रभु बालसंघाती।।57।।

मोहिं अलि दुहूँ भाँति फलहोत।
तब रसअधर लेति मुरली, अब भई कूबरी सौत।।
तुम जो जोगमत सिखवन आए, भस्म चढ़ावन अंग।
इन बिरहिन में कहुँ कोउ देखी सुमन गुहाए मंग।।
कानन मुद्रा पहिरि मेखली धरे जटा आधारी।
यहाँ तरल तरिवन कहँ देखें अरु तनसुख की सारी।।
परम बियोगिनि रटति रैन दिन धरि मनमोहन ध्यान।
तुम तो चलो बेगि मधुबन को जहां जोग को ज्ञान।।
निसिदिन जीजतु है या ब्रज में देखि मनोहर रूप।
सूर जोग लै घर घर डोलौ, लेहु लेहु धरि सूप।।58।।

राग सारंग

बिलग जनि मानौ हमरी बात।
डरपति बचन कठोर कहति, मति बिनु पति यों उठि जात।।
जो कोउ कहत जरे अपने कछु फिरि पाछे पछितात।
जो प्रसाद पावत तुम ऊधो कृस्न नाम लै खात।।
मनु जु तिहारो हरिचरनन तर अचल रहत दिनरात।
सूरस्याम तें जोग अधिक केहि कहि आवत यह बात ?।।59।।

अपनी सी कठिन करत मन निसिदिन।
कहिकहि कथा, मधुप, समुझावति तदपि न रहत नंदनंदन बिन।।
बरजत श्रवन संदेस, नयन जल, मुख बतियाँ कछु और चलावत।
बहुत भाँति चित धरत निठुरता सब तजि और यहै जिय आवत।।
कोटि स्वर्ग सम सुख अनुमानत हरि समीप समता नहिं पावत।
थकित सिंधु नौका के खग ज्यों फिरि फिरि फेरि वहै गुन गावत।।
जे बासना न बिदरत अंतर तेइ तेइ अधिक अनूअर दाहत।
सूरदास परिहरि न सकत तन बारक बहुरि मिल्यो है चाहत।।60।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

राग धनाश्री

रहु रे, मधुकर ! मधुमतवारे।
कहा करौं निर्गुन लै कै हौं जीवहु कान्ह हमारे।।
लोटत नीच परागपंक में पचत, न आपु सम्हारे।
बारंबार सरक मदिरा की अपरस कहा उघारे।।
तुम जानत हमहूँ वैसी हैं जैसे कुसुम तिहारे।
घरी पहर सबको बिलमावत जेते आवत कारे।।
सुंदरस्याम कमलदललोचन जसुमति नंददुलारे।
सूर स्याम को सर्बस अर्प्यो अब कापै हम लेहिं उघारे।।61।।

राग बिलावल

काहे को रोकत मारग सूधो ?
सुनहु मधुप ! निर्गुनकंटक तें राजपंथ क्यों रूँधो ?
कै तुम सिखै पठाए, कुब्जा, कै कही स्यामघन जू धौं।
बेद पुरान सुमृति सब ढूँढौ जुवतिन जोग कहूँ धौं ?
ताको कहा परेखो कीजै जानत छाछ न दूधो।
सूर मूर अक्रूर गए लै ब्याज निबेरत ऊधो।।62।।

राग मलार

बातन सब कोऊ समुझावै।
जेहि बिधि मिलन मिलैं वै माधव सो बिधि कोउ न बतावै।।
यद्यपि जतन अनेक रची पचि और अनत बिरमावै।
जद्यपि हठी हमारे नयना और न देखे भावै।।
बासर निसा प्रानबल्लभ तजि रसना और न गावै।
सूरदास प्रभु प्रेमहिं लगि करि कहिए जो कहि आवै।।63।।

राग सारंग

निर्गुन कौन देस को बासी ?
मधुकर ! हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति, साँच न हाँसी।।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी ?
कैसो बरन भेस है कैसो केहि रस में अभिलासी।।
पावैगो पुनि कियो आपनो जो रे ! कहैगो गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यो ठग्यो सो सूर सबै मति नासी।।64।।

राग केदारो

नाहिंन रह्यो मन में ठौर।
नंदनंदन अछत कैसे आनिए उर और ?
चलत, चितवत, दिवस जागत, सपन सोवत राति।
हृदय ते वह स्याम मूरति छन न इत उत जाति।।
कहत कथा अनेक ऊधो लोकलाभ दिखाय।
कहा करौ तन प्रेम पूरन घाट न सिंधु समाय।।
स्याम गात सरोज आनन अति मृदु हास।
सूर ऐसे रूप कारन मरत लोचन प्यास।।65।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

राग मलार

ब्रजजन सकल स्याम ब्रतधारी।
बिन गोपाल और नहिं जानत आन कहें व्यभिचारी।।
जोग मोट सिर बोझ आनि कै कत तुम घोष उतारी।
इतनी दूरि जाहु चलि कासी जहां बिकति है प्यारी।।
यह संदेस नहिं सुनै तिहारो, है मंडली अनन्य हमारी।
जो रसरीति करी हरि हमसों सो कत जात बिसारी ?
महामुक्ति कोऊ नहिं बूझै जदपि पदारथ चारी।
सूरदास स्वामी मनमोहन मूरति की बलिहारी।।66।।

राग धनाश्री

कहति कहा ऊधो सों बौरी।
जाको सुनत रहे हरि के ढिंग स्यामसखा यह सो री।।
हमको जोग सिखावन आयो, यह तेरे मन आवत ?
कहा कहत री ! मैं पत्यात री नहीं सुनी कहनावत।
करनी भली भलेई जानैं, कपट कुटिल की खानि।
हरि को सखा नहीं री माई ! यह मन निसचय जानि।।
कहाँ रासरस कहाँ जोग जप ? इतनो अंतर भाखत।
सूर सबै तुम कत भई बौरी याकी पति जो राखत।।67।।

राग रामकली

ऐसेई जन दूत कहावत।
मोको एक अचंभो आवत यामें ये कह पावत ?
बचन कठोर, कहत, कहि दाहत, अपनी महत गँवावत।
ऐसी परकृति परति छाँटि की जुवतिन ज्ञान बुझावत।।
आपुन निलज रहत नखसिख लौं एते पर पुनि गावत।
सूर करत परसंसा अपनी, हारेहु जीति कहावत।।68।।

राग धनाश्री

प्रकृति जोइ जाके अंग परी।
स्वानपूँछ कोटिक जो लागै सूधि न काहु करी।।
जैसे काग भच्छ नहीं छाँड़ै जनमत जौन घरी।
धोए रंग जात कहु कैसे ज्यों कारी कमरी।।
ज्यों अहि डसत उदर नहिं पूरत ऐसी धरनि धरी।
सूर होउ सो होउ सोच नहिं, तैसे हैं एउ री।।69।।

राग रामकली

तौ हम मानैं बात तुम्हारी।
अपनो ब्रह्म दिखावहु ऊधो मुकुटपितांबरधारी।।
भजिहैं सब ताको सब गोपी सहि रहिहैं बरु गारी।
भूत समान बतावत हमको जारहु स्याम बिसारी।।
जे मुख सदा सुधा अँचवत हैं ते विष क्यों अधिकारी ?
सूरदास प्रभु एक अंग पर रीझि रहीं ब्रजनारी।।70।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

राग बिलावल

यहै सुनत ही नयन पराने।
जबहिं सुनत बात तुव मुख की रोवत रमत ढराने।।
बारंबार स्यामघन धन ते भाजत फिरत लुकाने।
हमको नहीं पतियात तबहिं तें जब ब्रजु आपु समाने।।
नातरु यहौ काछ हम काछति वै यह जानि छपाने।
सूर दोष हमरे सिर धरिहौ तुम हौ बड़े सयाने।।71।।

7.8.2 प्रमुख व्याख्याएं

(1)

गोकुल सबै – – – – – – – – – – – – – – – – – तजै गुन रासी ।।21।।

संदर्भ – प्रस्तुत पद सूरदास द्वारा विरचित 'सूर सागर' के सर्वोत्कृष्ट अंश का पद है, जो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा संपादित 'भ्रमर गीत सार' से संगृहीत है।

व्याख्या – गोकुल में रहनेवाले सभी निवासी तो गोपालक कृष्ण के उपासक हैं। हे उद्धव ! जो लोग योग के अंगों की साधना करते हैं, वे तो ईश्वर की नगरी काशी में रहते हैं (ब्रज में नहीं। अतएव तुम अपने योग का उपदेश वहीं जाकर दो, यहां नहीं)। यद्यपि हरि ने हमको छोड़कर अनाथ बना दिया है किन्तु फिर भी हम उनके चरण–रस में मग्न हैं। यद्यपि हमको राहु (विरह) ने ग्रस रखा है किन्तु फिर भी चन्द्रमा की भाँति हमने भी अपनी शीतलता (प्रेम–भाव) को नहीं छोड़ा है। हमसे (अनजाने में) क्या अपराध हुआ है जो कृष्ण ने (तुम्हारे द्वारा) हमको योग का संदेश लिख भेजा है तथा प्रेम–भजन को तजने की सलाह देकर हमको (विरक्त साधु की भाँति) उदास बना दिया है। ऐसी कौन विरहिणी है जो अनेक गुणों से युक्त (कृष्ण) को छोड़कर मुक्ति की मांग करेगी ? तात्पर्य यही है कि ब्रज की सभी गोपियां कृष्ण के सम्मुख तो मुक्ति को भी हेय मान्ती हैं, निराकार तो उनके लिये हेय है ही)।

टिप्पणी – (1) प्रेम की अनन्यता, निरीहता, विवशता और परोक्ष व्यंग्य यहां पूर्णतया साकार हो उठे हैं।

(2) द्रष्टव्य यह है कि गोपियाँ योग का विरोध नहीं करतीं, वरन् योग के अधिकारी (अपने को नहीं वरन्) दूसरों को बताती हैं।

(3) यहां पर अनुप्रास (रसरासि), और उदाहरण (चन्द्र–राहु) अलंकार हैं।

(4) भावसाम्य : (i) "मुक्ति–मुक्ता को मोल–माल ही कहा है,
जब मोहन लला पै मन–मानसिक ही वार चुकी।"
– रत्नाकर : उद्धवशतक

(ii) Love knows no subsitute.

(iii) "कहा करौं बैकुण्ठ लै कलपवृक्ष की छांह।
रहिमन ठाक सुहावनो जो प्रीतम गलबांह।।" – रहीम : ग्रन्थावली

(2)

आयो घोष .....दिखावौ।।23।।

संदर्भ :– पूर्ववत्।

प्रसंग :– गोपियां उद्धव को व्यंग्य एवं मजाक में व्यापारी कह कर संबोधित करती है और उन्हें निर्गुण का व्यापार करनेवाला वणिक कहती हैं।

व्याख्या :– इस पद में गोपियाँ निर्गुण को सारहीन और व्यर्थ प्रमाणित करती हुई उद्धव पर व्यंग्य करती हुई कह रही हैं कि आज तो हमारे ग्राम में एक बहुत बड़ा व्यापारी आया हुआ है। उसने ज्ञान और योग आदि की गठरी को यहां लाकर उतार दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह व्यापारी यहीं पर अपना व्यापार आरंभ करेगा। यह तो बड़ा चतुर व्यापारी प्रतीत होता है तभी तो हमसे स्वर्ण लेकर अपना तुच्छ माल हमें जबरदस्ती थोपना चाहता है। सम्भवतः यह हमें पूर्णतः भोली–भाली ग्रामीणाएं समझता है। अरी सखियों, इसे तो प्रारम्भ से ही खोटी कमाई करने की आदत है। उसी आदत का परिणाम है कि यह अपने सिर पर यह बोझा लिए फिरता है। गोपियां कहती है कि इनके बहकावे में कौन आ सकता है? क्योंकि हमारे समूह में कोई भी ऐसी नहीं है जो इसके बहकावे में आकर घाटे का सौदा कर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बैठे। सच भी है कि अपने घर के दूध को छोड़कर खारे कुएं का पानी भला कोई क्यों कर पीना चाहेगा? भाव यह है कि हमारे पास हमारे साकार रूपधारी कृष्ण हैं फिर हम निराकार ब्रह्म का सेवन क्यों करेंगी? गोपियो ने उद्धव से कहा कि हे उद्धव! तुम शीघ्र ही यहां से जाओ, देर मत करो। तुम्हारे पास जो अनमोल वस्तु है, उसका ग्राहक यहां कोई नहीं है। अतः तुम शीघ्र ही इसे वहां ले जाओ जहां इसके ग्राहक हों। वहां तुम्हें तुम्हारी वस्तु समुचित दाम मिल सकेंगे।

टिप्पणी :–

1. प्रस्तुत पद में अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि है।
2. भर्त्सना और समृति संचारियों के प्रयोग से यह अंश आकर्षक बन पड़ा है।
3. समग्र पद में रूपक और अन्योक्ति अलंकार का प्रयोग किया गया है।
4. 'खार कूप को पानी' में दृष्टान्त अलंकार की सुन्दर योजना हुई है।
5. 'हाटक', 'फाटक' क्रमशः अनमोल वस्तु और व्यर्थ वस्तुओं के प्रतीक है।

(3)

आए जोग .....ध्यान कुम्हाड़े।।25।।

सन्दर्भ :– पूर्ववत।

प्रसंग :– उद्धव के ज्ञान का मजाक उड़ाते हुए उन्हें व्यंग्य में बहुत विद्वान की संज्ञा देकर गोपियों ने अपने तर्क से निरुत्तर कर दिया। वे अनेक उदाहरण और दृष्टान्त देते हुए उद्धव की खिल्ली उड़ाती हैं और कहती हैं–

व्याख्या :– उद्धव! तुम व्यर्थ ही ज्ञान के बोझ को लादे–लादे फिर रहे हो। वास्तव में तुम्हे व्यावहारिक जीवन का कोई अनुभव नहीं है। तुम्हारी बातों से तुम्हारी अव्यावहारिकता ही व्यक्त हो रही है। गोपियां कह रही है कि हे उद्धव, तुम हमें अपने योग के इस पुराणों के ज्ञान को उसी प्रकार सिखाने आये हो जिस प्रकार कोई पंडा स्वयं को परोपकारी कहता है, पुराणों के ज्ञान को दूसरों को सिखाता है। तुम अपने इस योग ज्ञान को उसी प्रकार लादकर लाये हो, जिस प्रकार कोई बनजारा अपने माल को लादकर उसे बेचने के लिए स्थान–स्थान पर घूमता रहता है। धर्म के अनुसार केवल विधवाएं ही योग–ज्ञान की अधिकारिणी हैं, हम तो सधवा हैं, अतः हमारा जीवन और हमारी मर्यादा तो कमल के समान सुन्दर नेत्र वाले श्रीकृष्ण ही हैं। गोपियों का अभीष्टार्थ यह है कि हे उद्धव, तुम इतने मूर्ख हो कि हिन्दू धर्म के अत्यधिक प्रचलित नियम को भी नहीं जानते, इसिलिए तो तुम सधवाओं को योगमार्ग का उपदेश दे रहे हो। हे मधुप, तुम्ही बताओ कि एक म्यान में दो तलवारें किस प्रकार समा सकती है ? अर्थात हमारे मन में तो श्रीकृष्ण बसे हुए हैं, अतः तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म के लिए वहां स्थान ही नहीं है। हे भ्रमर, तुम्ही बताओ कि हाथी के समान गन्नों को किस प्रकार खाया जा सकता है? अर्थात् योग–साधना हम जैसी कोमलांगी नारियों से कभी भी नहीं हो सकती हैं। जिस प्रकार कोई भी गन्ने खाने में हाथियों की बराबरी नहीं कर सकता है, वैसे ही हम भी योग साधकों द्वारा किये जाने वाले योग के असम्भव कार्य को नही कर सकती हैं। तुम यह भी बताओ कि दूध, घी और चावल न खाकर केवल वायु–भक्षण करने से किसकी भूख शान्त हुई है? तुम हमें व्यर्थ ही क्यों मुसीबत में डाल रहे हो? सूरदास कहते है कि धनिया, धान और काशीफल ये तीनों एक साथ नही उगा करते हैं। भाव यह है कि जिनका मन भक्ति मार्ग में रम गया हैं, उन पर तुम्हारे ज्ञान का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता है अतः हमें ज्ञानमार्ग का उपदेश देना निरी मूर्खता है।

टिप्पणी :–

1. सूरदास ने इस पद के अन्तर्गत अनेक उदाहरण देकर यह प्रमाणित किया है कि असंभव को सम्भव नहीं बनाया जा सकता।
2. गोपियों के माध्यम से उद्धव के समक्ष जो उदाहरण दिए गये हैं, उनसे यह व्यक्त हो जाता है कि गोपियां कृष्ण को त्यागकर उद्धव द्वारा बताये जा रहे ब्रह्म को स्वीकार नहीं कर सकती हैं।
3. सूरदास ने इस पद में 'एक म्यान दो खाँड़े' और 'हाथिन के सैंग गाँडे' व 'सूरदास तीनों नहि उपजत धनिया धान कुम्हाड़े' में लोकोक्ति अलंकार का प्रयोग किया है। मुहावरे और लोकोक्तियों के साथ प्रयोग के कारण यह पद सूर की व्यंजनायुक्त भाषा का उत्कृष्ट नमूना बन गया है।
4. 'पांड़े' शब्द में विपरीत लक्षण का प्रयोग हुआ है। यहां पाँडे शब्द मूर्ख और अज्ञानी के अर्थ में आया है।
5. सूर ने लोकोक्ति के अतिरिक्त रूपकातिशयोक्ति, श्लेष, उपमा और पर्यायोक्ति अलंकारों का प्रयोग भी इस पद में किया है।
6. 'सूरदास तीनों नहि उपजत धनिया धान कुम्हाँडे' में सूर का सूक्ष्म प्रकृति–निरीक्षण स्पष्ट है। गोपियां यह प्रतिपादित कर रही है कि जिस प्रकार धान वर्षा में होता है, धनिया जाड़े में और काशीफल गर्मी में होता है, उसी प्रकार निर्गुणोपासना और सगुणोपासना एक साथ संभव नहीं है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(4)

लरिकाई को प्रेम.....सोवत जागत।।34।।

संदर्भ :– पूर्ववत्।

प्रसंग :– उक्त पद में गोपियों द्वारा कृष्ण के साथ बचपन की अवस्था को बिताए जाने का उल्लेख है जहां स्नेह, निश्छल, सहज, प्रगाढ़ और स्वाभाविक होता है अपने इसी बालपन के अटूट प्रेम को व्यक्त करते हुए गोपियां कहती हैं–

व्याख्या :– अपने प्रेम की दृढ़ता का निरूपण करती हुई एक गोपी उद्धव से कह रही है कि तुम्ही बताओ कि कृष्ण के प्रति हमारा जो बचपन का प्रेम है वह किस प्रकार छूट सकता है? अब हम कृष्ण की क्रीड़ाओं का क्या वर्णन करें, उनकी स्मृति मात्र से ही हमारा मन व्यथासिक्त हो जाता है। कृष्ण की चंचल चाल, मनोहर चितवन, मधुर मुस्कार, मन्द–मन्द ध्वनि से गाना, नट का सुन्दर वेश बनाना, विनोदपूर्ण क्रीड़ाएं करना और वन से घर को लौटना आदि क्रीड़ाएं आज भी रह–रहकर हमें याद आ रही हैं और अती रहती हैं। मैं कृष्ण के चरण–कमलों की शपथ खाकर कहती हूँ कि हमें तुम्हारा यह योग–संदेश विष के समान कड़वा और पीड़ा देने वाला लगता है। सच तो यह स्थिति है कि मैं कृष्ण की मूर्ति सोते जागते किसी भी समय पलमात्र के लिए भी विस्मृत नहीं कर पाती हूँ। सदैव उन्हीं का ध्यान लगा रहता है और सदैव उन्हें अपने ही पास अनुभव करती रहती हूँ।

टिप्पणी :–

1. बचपन के प्रेम में अधिक दृढ़ता और एकनिष्ठता होती है। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है जिसका प्रतिपादन इस पद में किया गया है।
2. स्मृति आदि संचारी भावों के माध्यम से गोपियों की व्यथा को और उनकी प्रेम–भावना को अधिकाधिक सशक्त और मार्मिक बनाया गया है।
3. इस पद में उपमा अलंकार है।

(5)

अंखिया हरि..... सरिता हैं सूखी।।42।।

संदर्भ :– पूर्ववत्।

प्रसंग :– कृष्ण के प्रेम मे रची बसी गोपिया कृष्ण के बगैर उनके विरह मे एक पल भी नही जी सकती। उनके नेत्र तो कृष्ण के दर्शनों के भूखे हैं। उद्धव से अपनी विरह व्यथा का व्यक्त करती हुई वे कहती हैं–

व्याख्या :– हमारे नेत्र तो कृष्ण के दर्शन करने के लिए व्याकुल है। हम हर कीमत पर कृष्ण–दर्शन चाहती है। हमारी आंखे कृष्ण के रूप और उसके रस अर्थात् प्रेम में डूबी हुई है। जब हमारी यह स्थिति है तो तुम्हारी यह योग की नीरस और रूखी बातें सुनकर हम कैसे धैर्य धारण करें? जब ये आंखे कृष्ण के लौटकर आने की अवधि का एक–एक दिन गिनती हुई टकटकी बांधे मार्ग की ओर देखा करती थीं, उस समय भी इतनी अधिक संतप्त नहीं हुई थीं, परन्तु अब तुम्हारे इस योग के संदेश को सुनकर बहुत अधिक व्याकुल हो गयी हैं। अतः हमारी तुमसे मात्र इतनी सी प्रार्थना है कि तुम हमें कृष्ण के उस मुख के एक बार दर्शन करा दो जिस मुख से वे पत्ते के दोने में दूध दुहकर दुग्धपान किया करते थे। हे उद्धव, तुम हमें योगोपदेश देकर वैसा ही असम्भव कार्य करने के लिए कहने का प्रयत्न कर रहे हो जैसे कोई सूखी हुई नदी की बालू में बलात् नाव चलाने का प्रयत्न करे।

टिप्पणी :–

1. इस पद में कृष्ण की विभिन्न चेष्टाओं, छवियों के अंकन के साथ–साथ विकल्प, चिन्ता और उन्माद संचारी भावों का मार्मिक वर्णन हुआ है। रागानुगाभक्ति में उपास्य के रूप और रस की प्रधानता होती है।
2. यहां भी कृष्ण का रूप और उससे उत्पन्न प्रेमरस ही गोपियों का अभीष्ट है। ऐसी स्थिति में योग का उपदेश गोपियों के लिए अग्राह्य है और उद्धव का वैसा उपदेश देना हास्यास्पद है।
3. इस पद में आई पांचवी पंक्ति में निदर्शना अलंकार है और 'ये सरिता हैं सूखी' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार का विधान हुआ है।
4. सूखी नदी में नाव चलाने का प्रयत्न करने के लौकिक व्यवहार के उदाहरण द्वारा निर्गुण ब्रह्म का निराकरण किया गया है। यह पद विप्रलम्भ शृंगार का पूर्णरूप प्रस्तुत करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)

(6)

हमारे हरि..... मन चकरी।।52।।

संदर्भ :– पूर्ववत्।

प्रसंग :– कृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम एक निष्ठ है। उनका प्रेम दृढ़ प्रतिज्ञ भाव से बहुत परिपक्व है ये उद्धव से कहती हैं कि वे मन कर्म वचन से कृष्ण सिर्फ कृष्ण की आराधना करती हैं–

व्याख्या :– वे कहती हैं कि हमारे लिए तो कृष्ण हारिल पक्षी की लकड़ी की तरह हो गये हैं। भाव यह है कि जिस प्रकार हारिल पक्षी अपने पैरों को जमीन पर नहीं आने देता है, चाहे वह किसी भी अवस्था में क्यों न हो, उसी प्रकार हम भी कृष्ण को अपने चित्त में दृढ़ता से पकड़े हुए हैं, चाहे परिस्थिति कितनी भी विषम क्यों न हो। हमने अपने मन, वचन और कर्म से कृष्ण को अपना रखा है। हमारा समर्पण विशिष्ट है। गोपियां कहती हैं कि हमारी स्थिति तो यह है कि हम सोते–जागते और प्रत्यक्षतः कृष्ण की रट लगाये रहती हैं। अतः हे भ्रमर उद्धव! तुम्हारे मुख से योग की चर्चा सुनते हुए हमें अच्छा नहीं लगता है। उसकी चर्चा हमें वैसी ही लगती है जैसे कड़वी ककड़ी का स्वाद। हे उद्धव, तुम हम युवतियों के लिए यह क्या बीमारी ले आये हो? इसे न तो हमने कभी सुना है और न कभी इसे देखा है। तात्पर्य यह है कि निर्गुण ब्रह्मोपासना हमारे लिए विचित्र और नवीन है। हमसे उसकी क्रियान्विति संभव ही नहीं है। अतः हे उद्धव, आप कृपा करके इस योग की बीमारी, को उन व्यक्तियों को ले जाकर दे दो जिन व्यक्तियों के मन चक्रित और भ्रमित हैं।

टिप्पणी :–

1. इस पद में गोपियों के सहारे निर्गुण ब्रह्म की अवहेलना की गयी है।
2. 'व्याधि' शब्द और 'जिनके मन चकरी' से यह अवहेलना और अधिक पुष्ट हो जाती है।
3. गोपियों के प्रेम की दृढ़ता और विरहजनित प्रलाप स्पष्ट है।
4. पद की चतुर्थ पंक्ति में उपमा अलंकार का सार्थक प्रयोग हुआ है।
5. योग को योग न मानकर रोग मानना अपह्नुति अलंकार की ओर स्पष्ट संकेत कर रहा है।
6. यह पद इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि विचारों में विषमता होने पर जीवन में कड़वाहट आ जाती है।

(7)

निर्गुन कौन – – – – – – – – – – – – मति नासी।।64।।

सदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – गोपियों के न चाहने पर भी उद्धव निरन्तर उनको निराकार ब्रह्म से प्रेम करने का उपदेश देते रहे। समीप उड़ते हुए एक भ्रमर को सम्बोधित करके तथा निर्गुण ब्रह्म का उपहास करते हुए गोपी ने नाना प्रश्नों की झड़ी लगा दी। फलतः उद्धव निरुत्तर हो गये। इसी का चित्रण करते हुए कहा गया है–

व्याख्या – निर्गुण ब्रह्म कौन से देश का निवासी है ? हे भ्रमर (उद्धव) ! (निर्गुण का उपदेश देकर, तुमने जो) हमसे हंसी की है, उनको भली प्रकार से समझाओ। हम तुमसे शपथ देकर सच–सच पूंछती हैं, कोई हंसी नहीं कर रही, कि तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म का पिता और माता कौन हैं ? उनकी पत्नी कौन है और दासी कौन ? उसका वर्ण, वेशभूषा कैसी है तथा वह किस रस का अभिलाषी है ? तात्पर्य यह है कि उसका परिचय क्या है क्योंकि बिना परिचय के उससे प्रेम नहीं किया जा सकता है। (दूसरे, यदि निर्गुण ब्रह्म भी इन सांसारिक परिचय–उपदानों से युक्त है तो फिर वह निर्गुण कहां रहा, सगुण हो गया)। यदि तुमने कोई चुभने वाली बात कहीं तो अपने किये का दण्ड भोगोगे (अर्थात् हम भी ईंट का जवाब पत्थर से देंगी)। गोपियों के इन प्रश्नों को सुनकर उद्धव स्तब्ध रह गये (क्योंकि उनसे कोई ठीक उत्तर नहीं बन सका) और उनकी सारी बुद्धि (वादिता) नष्ट हो गयी।

टिप्पणी – (1) यहां पर गोपियों के माध्यम से कवि ने निर्गुण की निस्सारता को सफल और तर्कसिद्ध अभिव्यक्ति प्रदान की है।

(2) गोपियों के तर्क मीठे भी हैं और पैने भी। पद की प्रथम पंक्ति से ही निर्गुण के प्रति व्यंग्य मुख होने लगता है, प्रश्नों की झड़ी उसको बढ़ाती है, 'बूझति सांच, न 'हांसी' से उद्धव को मूर्ख बनाने की बात लक्षित होने लगती है और पावेगो पुनि ..... तक आते–आते तो गोपियों की नारीसुलभ वाचालता और प्रगल्भता भी प्रकट हो जाती है।

(3) भावसाम्य – (i) अविगत गति कछु कहत न आवै।.....
रूप, रेख गुन जाति जुगुति बिन, निरलम्ब मन चकृत धावै।। – सूरदासः सूरसागर

(4) उद्धव का मौन उनकी पराजय का सूचक है।

(5) यहां पर अन्त्यानुप्रास, छेकानुप्रास, परिकरांकुर तथा विरोधाभास अलंकार हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(8)

नाहिन रह्यौ – – – – – – – – – – लोचन प्यास।।65।।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – गोपियों के हृदय में कृष्ण के प्रति एकनिष्ठ प्रेम है। फलतः वे उद्धव के निर्गुण ब्रह्म से प्रेम करने की सलाह को स्वीकार नहीं करतीं। इस निर्गुण को अस्वीकार करने की अपनी स्वाभाविक विवशता को स्पष्ट करते हुए कोई गोपी (राधा) उद्धव से कहती है–

व्याख्या – (मेरे) हृदय में अब कोई अन्य रिक्त स्थान नहीं है (जिसमें निर्गुण ब्रह्म को प्रतिष्ठित कियाजा सके।) उसमें तो नन्द के पुत्र कृष्ण बसे हुये हैं और उनके रहते हुये भला हृदय में और कौन आ सकता है ? कोई नहीं। (कारण, नारी के हृदय में एकसमय में एक ही व्यक्ति रह सकता है)। यदि हृदय से कृष्ण निकल जायें, चाहे कुछ ही क्षणों को निकलें, केवल तभी किसी और – निर्गुण ब्रह्म को वहां प्रतिष्ठित किया जा सकता है) किन्तु चलते, देखते, दिन में जागते और रात्रि में सोने के साथ – साथ स्वप्नावस्था तक, अर्थात् एक क्षण को भी हृदय में किसी श्याम की यह मूर्ति इधर–उधर नहीं जाती। हे उद्धव ! तुमने निर्गुण ब्रह्म की नाना कथायें कही और सांसारिक लाभ–प्राप्ति के लालच भी दिये, किन्तु क्यो कहूं ? मेरा शरीर तो प्रेम से परिपूर्ण है। मेरे हृदय की गागर में तुम्हारा सिंधु (की भाँति व्यापक) ब्रह्म नहीं समा सकता। सच तो यह है कि कृष्ण का शरीर श्यामल, मुख कमल तथा हास्य सुन्दर तथा अत्यधिक कोमल है अर्थात् कृष्ण में (मेरे मन को अपनी ओर) आकर्षित करने के सभी तत्व उपस्थित हैं। यही कारण है कि उनके ऐसे ही रूप के कारण मेरे नेत्र दर्शन–पिपासा से प्यासे मरते हैं, अर्थात् कृष्ण के रूप–सौन्दर्य के दर्शन करने के इच्छुक रहते हैं।

टिप्पणी – (1) प्रेम की अनन्यता, स्मरण, गुण–कथन आदि अवस्थायें तथा नारी की वाक्कुशलता इस पद में पूर्णतम् रूप में अभिव्यक्ति हुइ है।

(2) इस पद में अनुप्रास, रूपक और स्वभावोक्ति अलंकार हैं।

(3) भावसाम्य – (i) "प्रियतम छवि नैनन बसी पर छवि कहां समाय ?
भरा सराय रहीम लखि, पथिक आप फिरि जाय।" – रहीम : ग्रन्थावली

(ii) "नैनन प्रीतम रमि रहा, दूजा कहा समाय।" – कबीर : बीजक

7.9 सारांश

इस इकाई के माध्यम से भक्तिकाल का सगुण भक्ति काव्यधारा में कृष्णभक्ति के सर्वप्रमुख एवं सर्वतोमहान कवि महात्मा सूरदास और उनके सर्वोत्तम काव्यांश भ्रमरगीत' पर अपेक्षित – प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत की गई। इकाई का सारांश निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है–

- कृष्णभक्ति काव्यधारा के कवियों में सूरदास का स्थान एवं महत्त्व सबसे ऊंचा है। वे भारतीय साहित्य के शिखरस्थ कवियों में अग्रणी हैं।
- हिंदी की गीतकाव्य परंपरा को विकसित करने में सूरदास का विशिष्ट योगदान है।
- सूरसागर के रूप में उन्होंने हिंदी काव्य को अमूल्य रत्न दिया है, जिसके अंतर्गत वर्णित 'भ्रमरगीत' सूरकाव्य का सबसे उत्कृष्ट अंश है।
- भ्रमरगीत सूर की काव्यप्रतिभा का सर्वोच्च शिखर है, जिसमें उन्होंने उद्धव एवं गोपियों को आधार बनाकर कृष्ण की सगुण भक्ति का मनमोहक वर्णन प्रस्तुत किया है।
- निर्गुण और सगुण की विशिष्टता एवं वरीयता परिलक्षित करना इस प्रसंग का प्रतिपाद्य है।
- निर्गुण ईश्वर का उपहास, सगुण की आराधना, गोपियों की विरह व्याकुलता, यशोदा का वात्सल्य आदि पक्ष बहुत सजीव एवं चमत्कारिक रूप में भ्रमरगीत को उत्कृष्टता प्रदान करते हैं।
- उपालंभ काव्य के रूप में भ्रमरगीत अपनी इस काव्य परंपरा में सर्वोत्तम है।
- भ्रमरगीत के माध्यम से सूर के काव्य की उत्कृष्टता, उनका भक्ति, उनकी दर्शन आदि सहजता और बहुत प्रभावी रूप से प्रकट हुए हैं।
- वस्तुतः सूरदास कृष्णकाव्यधारा के सबसे उज्ज्वल नक्षत्र के रूप में प्रतिभाषित हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.10 उपयोगी पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. राधा वल्लभ संप्रदाय – डॉ. विजयेंद्र स्नातक।
3. हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेंद्र।
4. हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास – नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।
5. हिंदी साहित्य – आचार्य श्यामसुन्दरदास।

7.11 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबन्धात्मक/आलोचनात्मक प्रश्न

1. सूरदास का सामान्य परिचय देते हुए उनकी रचनाओं का मूल्यांकन कीजिए।
2. भ्रमरगीत परंपरा में सूर का स्थान एवं महत्त्व निर्धारित कीजिए।
3. भ्रमरगीत का काव्य वैशिष्ट्य उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
4. भ्रमरगीत के भाव विधान पर समीक्षात्मक लेख लिखिए।
5. भ्रमरगीत के दार्शनिक पक्ष पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
6. भ्रमरगीत का साहित्यिक महत्त्व समझाइए।

लघूत्तरीय प्रश्न

1. सूरदास का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. सूरदास की रचनाओं का सामान्य परिचय दीजिए।
3. भ्रमरगीत का आशय स्पष्ट कीजिए।
4. भ्रमरगीत का मुख्य प्रतिपाद्य स्पष्ट कीजिए।
5. भ्रमरगीत की प्रमुख विशेषताओं का नामोल्लेख कीजिए।
6. भ्रमरगीत परंपरा के पांच कवियों का नामोल्लेख कीजिए।
7. उपालंभ का अर्थ समझाते हुए इसे भ्रमरगीत के प्रसंग में स्पष्ट कीजिए।

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1. सूरदास की प्रमुख रचना का नाम लिखिए।
2. सूरदास की किस रचना में और कहां पर भ्रमरगीत का प्रसंग वर्णित है ?
3. सूरदास किस सम्प्रदास में दीक्षित थे ?
4. सूरदास के गुरू कौन थे ?
5. सूरदास को विट्ठलनाथ ने क्या कहा था ?
6. भ्रमरगीत को कैसा काव्य माना जाता है ?
7. भ्रमरगीत का सर्वप्रथम उल्लेख कहां मिलता है ?
8. सूरदास के समकालीन किस कवि ने भ्रमरगीत की रचना की है ?
9. रीतिकाल में भ्रमरगीत परंपरा के प्रमुख कवि कौन हैं ?
10. आधुनिक काल में इस भ्रमरगीत परंपरा की सबसे अच्छी रचना किसे मानते हैं ?
11. सूरदास के भ्रमरगीत प्रसंग के प्रमुख पदों का संपादन किसने किस नाम से किया है ?
12. भ्रमरगीत का भ्रमर कौन है और क्यों ?
13. भ्रमरगीत का अंगीरस कौन सा हैं ?
14. भ्रमरगीत में अन्य किन रसों की अवतारणा हुई है ?
15. 'भ्रमरदूत' किसकी रचना हैं ?
16. 'उधौ पचीसी' किसकी रचना है ?
17. तुलसीदास की किस रचना में भ्रमरगीत प्रसंग आया है ?
18. हरिऔध की किस रचना में 'भ्रमरगीत' प्रसंग को उठाया गया है ?
19. भ्रमरगीत का दर्शन क्या है ?
20. 'उद्धव शतक' किसकी रचना है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग–6

इकाई–8 : तुलसीदास

संरचना

8.0 प्रस्तावना
8.1 उद्देश्य
8.2 तुलसीदास का जीवन परिचय
8.3 तुलसीदास की रचनाएं
8.4 तुलसीदास की लोकप्रियता के कारण
8.5 तुलसीदास की भक्ति एवं दर्शन विषयक मान्यताएं
8.6 रामचरित मानस और उसका उत्तरकांड
8.6.1 वर्ण विषय
8.6.2 रामराज्य की परिकल्पना
8.6.3 संत असंत निरूपण
8.7 उत्तरकांड में ज्ञान निरूपण
8.8 उत्तरकांड में भक्ति निरूपण
8.9 उत्तरकांड में दार्शनिक विचार
8.10 उत्तरकांड में सामाजिक चित्रण
8.11 मूलपाठ एवं महत्त्वपूर्ण व्याख्याएं
8.11.1 मूलपाठ (उत्तरकाण्ड – आरंभिक 50 दोहे)
8.11.2 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएं
8.12 सारांश
8.13 उपयोगी पुस्तकें
8.14 महत्त्वपूर्ण प्रश्न
निबंधात्मक / आलोचनात्मक प्रश्न / लघूत्तरीय प्रश्न / अतिलघूत्तरीय प्रश्न

8.0 प्रस्तावना

"रामचरितमानस निर्मित कर दिया जगत को दिव्य प्रकाश
रामभक्ति गंगा प्रवाह का उद्गम थे कवि तुलसीदास।"

संसार के किसी कवि को वह दुलार, प्यार और सम्मान प्राप्त नहीं हुआ जो तुलसी को शताब्दियों से प्राप्त होता रहा है। तुलसी के प्रति जनता की भक्ति दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, तुलसीदास संसार के महान जनकवि हैं। भारतीय समाज की सफलता और दुर्बलता, सम्पन्नता और विपन्नता, पांखड और विडंबना, भूख और दरिद्रता आदि का जो चित्रण तुलसीदास ने किया है वह अद्वितीय है। स्वस्थ यथार्थवाद की दृष्टि से भी तुलसीदास संसार के प्रमुख महान् कवियों में है। आश्चर्य है कि जो महाकवि, महानपंडित, महानचिंतक, महान साधक, महानसिद्ध और महात्मा है, वह महानजनकवि भी है। तुलसीदास संसार के किसी भी महान कवि के साथ बड़ी आसानी से खड़े किए जा सकते हैं।

तुलसीदास वाल्मीकि, कालिदास, व्यास के साथ–साथ भारत के सर्वश्रेष्ठ कवि है। रामचरितमानस, रामायण एवं महाभारत के साथ–साथ भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। संसार साहित्य के एक दर्जन ग्रंथों में मानस का पर्याप्त ऊँचा स्थान है। ऋग्वेद, बाइबिल, रामायण, महाभारत, इलियट, कुरान, शाहनामा, डिवाइनकमेडी, रामचरितमानस, पैराडाइजलॉस्ट, वार एंड पीस जैसे ग्रंथों पर समग्र मानवजाति गर्व कर सकती है। रामचरितमानस का स्थान भी इन सब ग्रंथों में पर्याप्त ऊँचा है। भाषा पर अधिकार, छंदों के प्रयोग, सभी भावों में गति, दार्शनिकता, लोकमंगल, लोकप्रवाह और सबसे बढ़कर एक रस अटूट अद्वितीय भक्तिभावना ने तुलसी को हिंदी का सर्वश्रेष्ठ महाकवि ही नहीं बुद्ध बौर शंकराचार्य के साथ–साथ भारत का सबसे प्रभावशाली लोकनायक बना दिया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स्वामी रामानन्द और उनकी शिष्य परम्परा द्वारा देश में राममक्ति का प्रचार–प्रसार निरन्तर होता चला आ रहा था। स्वामी रामानन्द के शिष्यों ने गुरू द्वारा प्राप्त 'राम नाम' का प्रचार अपने–अपने संस्कारों द्वारा किया। 'राम' शब्द निर्गुण और सगुण दोनों ही मार्ग के अनुयायियों में समान रूप से लोकप्रिय हुआ। निर्गुण–मार्ग शिष्य परम्परा में आनेवाले 'कबीर' और उनके अनुयायियों द्वारा 'राम' नाम की महत्ता का भरपूर प्रचार हो चुका था, पर स्वामी रामानन्द जी का तात्पर्य जिस राम नाम से था और उसके माध्यम से वे जिस भक्ति–मार्ग का प्रवर्तन करना चाहते थे, उसकी महत्ती उपलब्धि तो सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में तुलसीदास के माध्यम से ही हो सकी।

निर्गुण भक्ति–धारा के समानान्तर सगुण भक्ति धारा का विकास स्वामी रामानन्द की शिष्य परम्परा के माध्यम से हो रहा था, पर साहित्य के माध्यम से उसकी पूर्ण प्रतिष्ठा तो उसी समय हुई जबकि तुलसी कृत 'रामचरित मानस' सामने आया। इसके माध्यम से तुलसीदास ने दशरथ के सुत राम को विष्णु का अवतार मानकर केवल सगुण मार्गी भक्ति को पुष्ट ही नहीं किया, बल्कि उन्होंने निर्गुण पंथियों का उत्तर भी दिया। कबीरदास के कथन "दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम को मरम है आना।" का ठीक–ठीक उत्तर तुलसीदास की उक्ति –

'जेहि इमि गावहिं वेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगतहित कोसल पति भगवान।।'

में मिल जाता है। अकेले तुलसीदास के 'रामचरित मानस' ने उत्तर भारत में अपनी लोकप्रियता के कारण सगुण मार्गी भक्ति का जितना प्रचार किया, उतना प्रचार इस सम्प्रदाय के सभी संत एवं कवि मिलकर नहीं कर सके। अपनी इस कृति में इन्होंने अपनी जिस प्रतिभा और पाण्डित्य का परिचय दिया, उससे प्रभावित हो विद्वान उनके महत्त्व को आँकने में अपने को असमर्थ पाते हैं। 'नाभादास' जी ने इन्हें 'कलिकाल का वाल्मीकि', अंग्रेज विद्वान 'स्मिथ' ने इन्हें 'मुगल काल का सबसे महान् व्यक्ति' तथा 'ग्रियर्सन' ने इन्हें 'बुद्धदेव के बाद सबसे बड़ा 'लोक नायक' माना है।

तुलसी की प्रथम रचना 'रामचरितमानस' है तथा अंतिम 'हनुमानबाहु' है, जो उनकी अंतिम अवस्था में लिखी हुई है तथा उनकी भयानक पीड़ा का दस्तावेज है। इसमें उनकी मृत्यु की चीख है। तुलसी की मृत्यु बाहुपीड़ा से हुई थी। समस्त रचनाओं में तुलसी की प्रतिभा का आधार रामचरितमानस, विनयपत्रिका और कवितावली हैं, इनकी एक अन्य रचना रामाप्रश्नावली ज्योतिष से संबंधित है। नाभादास ने तुलसी को 'कलयुग का वाल्मीकि' कहा है।

'रामचरितमानस' के माध्यम से उन्होंने लोकवेद की मर्यादा प्रतिष्ठित की, सबसे पहले उन्होंने वर्णाश्रमधर्म को पुनरुज्जीवित करने का संकल्प किया, उन्होंने संतमत पर इसलिए प्रहार किया, क्योंकि वह श्रुतिसम्मत नहीं था तथा वेदनिंदक था। दृष्टि का जो प्रसार मानव जीवन के उतार–चढ़ाव का जो अनुभव, जिंदगी की जो व्याप्ति, गहराई और वैविध्य रामचरितमानस में मिलता है, वह हिंदी साहित्य के किसी एक काव्य या महाकाव्य में नहीं मिलता है। यही पर वर्णाश्रमधर्म तिरोहित हो जाता है और सामंती अभिजात्य गायब हो जाता है। इसलिए तुलसी जनकवि हैं।

तुलसी ने प्रबंध विधान के लिए अवधी की परंपरा को लिया तथा गीत, कवित्त, सवैया, छप्पय, दोहापद्धति परंपरा को अपनाया, यह ब्रजभाषा की काव्य परंपरा है। तुलसीदास के कलापक्ष पर बच्चसिंह की टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है :

"तुलसीदास रूपकों के बादशाह हैं, जिस प्रकार कुम्हार गीली मिट्टी को चाक पर चढ़ाकर अपेक्षित रूप दे देता है, वैसे ही तुलसीदास भाषा को अपने चाक पर चढ़ाकर मनोकूल रूप दे देते हैं। वर्णाश्रम धर्म की वकालत के अलावा समाज के विभिन्न वर्गों, ऊँची–नीची विषम परिस्थितियों, मानवीय संवेदनाओं, बेरोजगारी, दरिद्रता, अकाल का जितना व्यापक और गहन चित्रण तुलसी ने किया उतना मध्यकाल के दूसरे कवि से नहीं बना। इस प्रतिनिधित्व में उनका अंतर्विरोध भी मिला हुआ है।"

ऐसे जनप्रिय, लोकप्रिय महाकवि का महत्त्व व स्थान शीर्ष पर है, क्योंकि

कवि–कुल–कुमुद–कलाधर–कविता–कानन–केसरी–कविवर–गोस्वामी तुलसीदास रामभक्तिशाखा के विश्रुत एवं अन्यतम कवि हैं।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य तुलसीदास पर महत्त्वपूर्ण समीक्षात्मक सामग्री प्रस्तुत करना है। उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण रचना 'रामचरित मानस' के परिप्रेक्ष्य में उनके साहित्यिक महत्त्व को स्पष्ट करते हुए मानस के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कांड 'उत्तरकांड' पर विशिष्ट आलोचनात्मक सामग्री प्रस्तुत करना इस इकाई का प्रतिपाद्य है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप :

- भक्तिकाल के आधारस्तंभ तुलसीदास के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व से परिचित हो सकेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- भक्तिकाल की सगुण भक्ति काव्यधारा में राम भक्तिकाव्य के सबसे महान संत कवि तुलसीदास का महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- तुलसीदास की महत्त्वपूर्ण उल्लेखनीय कृतियों के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- तुलसीदास की लोकप्रियता के कारणों को भलीभांति जान सकेंगे।
- तुलसीदास के दार्शनिक विचार से पूरी तरह अभिज्ञ हो पाएंगे।
- तुलसी के मानस का महत्त्व तथा उत्तरकांड के परिप्रेक्ष्य में तुलसी के काव्य का वैशिष्ट्य जान सकेंगे।
- उत्तरकांड पर विशेष आलोचनात्मक साम्रगी से परिचित हो सकेंगे।
- समग्रतः तुलसी की काव्य प्रतिभा से पूरी तरह अभिज्ञ हो सकेंगे।

8.2 जीवन परिचय

तुलसीदास का जन्म कब हुआ इसके सम्बन्ध में विद्वान एकमत नहीं हैं। गोसाई चरित और तुलसी चरित के अनुसार तुलसीदास संवत् 1554 में पैदा हुए। शिवसिंह सरोज के अनुसार इनका जन्म सं. 1583 ठहरता है। पं. रामगुलाम द्विवेदी और डॉ. ग्रिअर्सन ने स्वीकार किया है कि तुलसी का जन्म सं. 1589 (अ‍र्थ 1532 ई.) में हुआ था, जो ठीक जान पड़ता है।

डॉ. ग्रिअर्सन ने गोस्वामी जी का जन्म सम्वत् 1589 वि. माना है, परन्तु 'गोसाईचरित' के आधार पर उनका जन्म सम्वत् 1554 वि. है–

पन्द्रह सौ चौवन विषैं, कालिन्दी के तीर।
सावन शुक्ला सप्तमी, तुलसी धरयो शरीर।।

– वेणीमाधवदास कृत **'गोसाईचरित'**

उपर्युक्त दोहे क आधार पर उनकी जन्म–तिथि 1554 मानने से उनकी आयु 126 वर्ष की बैठती है, जो तुलसी जैसे संयमी महात्मा के लिए असम्भव तो नहीं किन्तु कुछ कठिन अवश्य है।

उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में साधारणतया यह दोहा बहुत प्रसिद्ध है –

सम्वत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यौ शरीर।।

पर, 'गोसाईचरित' में इसके उत्तरार्द्ध का पाठ निम्न प्रकार है–

श्रावण श्यामा तीज शनि, तुलसी तज्यौ शरीर।।

श्रावण शुक्ला सप्तमी वास्तव में उनकी जन्मतिथि है, जैसा कि गुसाई चरित के ऊपर दिये गये दोहे से प्रकट होता है।

तुलसी के जन्म स्थान के विषय में अनेक मत हैं। कोई–कोई यह सौभाग्य बाँदा जिलान्तर्गत राजापुर को देता है। रामनरेश त्रिपाठी ने यह स्थान सूकर–क्षेत्र अर्थात् सोरों को दिया है। राजापुर के पक्ष का समर्थन 'तुलसीचरित' और 'शिवसिंह सरोज' ने किया है। यहीं गोस्वामीजी के हाथ की लिखी हुई 'रामचरितमानस' की प्रति विद्यमान कही जाती है। अब कुछ विद्वानों का यह मत होता जा रहा है कि तुलसीदासजी का जन्म तो सोरों में हुआ, परन्तु पीछे से वे राजापुर में जा बसे।

गोस्वामीजी ने साधुवृत्ति स्वीकार कर लेने के पश्चात पर्यटन भी बहुत किया था। आप अयोध्या, चित्रकूट, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर आदि तीर्थस्थानों में गये। कहा जाता है कि आप अपने भाई नन्ददास (दो सौ बावन बैष्णवन की वार्ता में नन्ददास को बड़ा भाई कहा गया है, और तुलसीचरित में उनको गुरुभाई माना गया है) से मिलने ब्रजभूमि गये थे। वहाँ सूरदासजी से उनकी भेंट हुई थी। ऐसा भी प्रसिद्ध है कि पहले सूरदासजी चित्रकूट में तुलसीदास जी से मिले थे। जनश्रुति के अनुसार तुलसीदासजी ने वृन्दावन के एक मन्दिर में श्रीकृष्ण जी की मूर्ति के सम्मुख यह दोहा पढ़ा था–

का बरनऊँ छवि आजु की, भले विराजेउ नाथ।
तुलसी मस्तक जब नये, धनुष बान लेहु हाथ।।

यह सुनकर श्रीकृष्णजी ने ऐसा ही किया। यह दोहा तुलसी के अनन्य भक्तिभाव का परिचायक है।

Uttarakhand Open University, Bhartiya Institute (Deemed University) Ladnun

गोस्वामी जी काशी में अधिक रहे। यहाँ गोपाल मन्दिर, संकटमोचन महावीर, प्रहलाद घाट, असी घाट आदि आपसे सम्बन्धित अनेक स्थान प्रसिद्ध हैं।

कुछ लोगों का कहना है कि मीराबाई ने तुलसीदासजी को अपनी संकटपूर्ण दशा लिखकर भेजी थी और तुलसीदास जी ने उनको नीचे लिखे पद में उत्तर लिखा था–

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही।।

× × ×

तज्यौ पिता प्रहलाद, विभीषन बन्धु, भरत महतारी।
वलि गुरु तज्यौ, सन्त ब्रज वनितनि भई सब मंगलकारी।।

यदि आपका जन्म सम्वत् 1589 माना जाय, तो मीरा और तुलसी के समय में बहुत अन्तर बैठता है, क्योंकि मीरा की मृत्यु सम्वत् 1603 में हुई थी। अतः यह घटना कल्पित ठहरती है। यदि इनकी जन्म तिथि 1554 में मानी जाय, तो यह बात असम्भव नहीं मालूम पड़ती। इसलिए जब तक इसके विरुद्ध कोई अकाट्य प्रमाण न मिले तब तक ऐसी परम्परागत जनश्रुति को एकदम झूठा कहना उचित नहीं है।

जनश्रुति के अनुसार तुलसी के पिता का नाम आत्माराम तथा माता का नाम हुलसी है।

रहीम का यह दोहा तो प्रसिद्ध ही है–

सुरतिय नरतिय नागतिय, अस चाहिस सब कोय।
गोद लिये हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय।।

बाबा रघुवरदास के 'तुलसीदास' के अनुसार इनके पिता का नाम मुरारिमिश्र, कुलगुरु का नाम तुलसीराम तथा इनका नाम तुलाराम ठहरता है। कुछ लोगों के अनुसार इनके गुरू का नाम नरहरिदास था। अपने गुरू को इन्होंने नर रूप हरि कहा है – 'बन्दउँ गुरु पद कञ्ज, कृपासिन्धु नर रूप हरि'।

'तुलसीचरित' में तुलसी का नाम तुलाराम बताया गया है। 'विनयपत्रिका' में 'रामबोला नामु हौं गुलाम रामसाहि कौ' (तुलसी ग्रन्थावली, भाग 2, पृष्ठ 227) कहा है। इसके अनुसार उनका नाम 'रामबोला' प्रमाणित होता है। सम्भव है बाल्यावस्था में साधुसंसर्ग में रहने के कारण साधु लोग इन्हें रामबोला नाम से पुकारते रहे हों।

कवितावली में – 'जायो कुलमंगल' तथा 'दियो सुकुल जनम शरीर' आदि छन्दों से – स्पष्ट है कि तुलसी का जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था।

बाल्यकाल घर से बहिष्कृत किये जाने के कारण तुलसी का बाल्यकाल बड़ी कठिनाई में बीता है। इधर–उधर माँगकर ही पेट भरते होंगे, जैसा कि कवितावली से प्रकट होता है–

जाति के, सुजाति के, कुजाति के, पेटागि बस,
खाए टूक सबके विदित बात दुनी सो।

× × ×

बारे तें ललात विललात द्वार–द्वार दीन,
जानत हौं चारिफल चारिहूँ चनक को।

(**तुलसी–ग्रन्थावली,** भाग 2, पृष्ठ 219)

सं. 1583 में गोस्वामीजी ने विवाह किया। इनकी स्त्री का नाम रत्नावली प्रसिद्ध है। गोस्वामीजी अपनी पत्नी में अनुरक्त थे, अतः उसे पीहर न भेजते थे। एक बार वह बिना कहे ही उनकी अनुपस्थिति में अपने भाई के साथ पीहर चली गयी। जब उन्हें ज्ञात हुआ तो वे भी वहाँ को चल दिये और बहुत सी कठिनाइयों को पार करते हुए आधी रात के समय वहाँ पहुंचे। जैसे ही वह अपनी पत्नी से मिले, वह बहुत लज्जित हुई और उसने कहा–

''लाज न आवत आपको, दौरे आयहु साथ।
धिक्–धिक् ऐसे प्रेम को, कहा कहहुँ हौं नाथ।।
अस्थि चरम मय देह मम, तामें ऐसी प्रीति।
होती जो श्रीराम महँ, होति न तो भयभीति।।''

यह सुनकर वे उसी क्षण लौट पड़े और विरक्त हो गये। आपने संवत् 1597 में वैराग्य लिया और 19 वर्ष तक देशाटन और तीर्थयात्रा करते रहे। पर्यटन करते हुए एक बार आपकी भेंट अपनी पत्नी से फिर हुई थी। गोस्वामी जी तो उसे पहचान न सके पर पत्नी अपने पति को कब भूल सकती थी। उसने गोस्वामीजी से पूजा का सामान लाने के लिए पूछा। परन्तु तुलसीदासजी ने कहा कि हमारी झोली में सब सामान है। तब पत्नी ने कहा–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

खरिया खरी, कपूर सब, उचित न पिय ! तिय त्याग।
कै खरिया मोहि मेल कै, विमल विवके विराग।।

(**तुलसी–ग्रन्थावली**, भाग 2, पृष्ठ 126)

यह सुनता था कि तुलसीदासजी ने झोली की सब वस्तुएं गरीबों को बाँट दी।

पहले तो भाषा में लिखने के कारण तुलसीदास जी की पण्डित समाज में विरोध का सामना करना पड़ा था, किन्तु उन्होंने किसी की परवाह नहीं की, वे अपने निश्चय पर डटे रहे। ''कुमया कछु हानि न औरन की, जो पै जानकी नाथ दया करिहैं।'' पीछे से उनको आदर मिलने लगा था, और शायद खाने–पीने की भी कठिनाई नहीं रही थी।

तुलसीदासजी के अन्तिम दिन बड़े दुःख से बीते थे। काशी में महामारी फैली थी, उनका बड़ा विशद वर्णन आपने किया है।

बाहु–पीड़ा के कारण तो उन्होंने आर्त होकर भगवान से प्रार्थना की थी–

पाँय पीर, पेट पीर, बाहु पीर, मुँह पीर,
जरजर सकल शरीर पीर भई। (**तुलसीदास–ग्रन्थावली,** भाग 2, पृष्ठ 262)

हनुमानजी से अपना निजी सम्बन्ध बतलाते हुए उन्होंने बड़ा मधुर उपालम्भ दिया था–

चेरो तेरो तुलसी 'तू मेरो' कह्यो राम दूत,
ढील तेरी, वीर मोहि पीर तें पिराति है। (**तुलसीदास–ग्रन्थावली,** भाग 2, पृष्ठ 260)

प्रयाण–काल में उनको क्षेमकरी (सफेद चील) के दर्शन हुए थे–

'पेखि सप्रेम पयानप समय सब सोच विमोचन क्षेमकरी है।'

8.3 गोस्वामी तुलसीदास के ग्रन्थ

गोस्वामी तुलसीदास ने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, जिनका संक्षिप्त परिचय निम्नवत है–

1. रामचरितमानस (सं. 1631) – 'रामायण' नाम से तुलसीदास जी का यह ग्रन्थ सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसी ग्रन्थ के आधार पर तुलसी को महाकवि की महती पदवी से विभूषित किया जाता है, और उन्हें विश्वविश्रुत माना जाता है। इसके रचनाकाल का उल्लेख स्वयं कवि ने कर दिया है–

संवत सोलह सौ इकतीसा। करौं तथा हरिपद धरि सीसा।।

यह काव्य मुख्यतः दोहा–चौपाई में लिखा गया है। इसमें राम की कथा को सात काण्डों में विभक्त किया गया। इसमें सभी रंगों का प्रयोग सफलता के साथ किया गया है।

2. रामललानहछू (सं. 1643) – 20 सोहर छन्दों का छोटा–सा ग्रन्थ है। बाबू श्यामसुन्दरदास जी ने इसका रचना–काल संवत् 1639 माना है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने इसकी रचना मानस की रचना से 20 वर्ष पूर्व अर्थात् 1611 की मानी है। मिश्रबन्धुओं ने इसके गोस्वामीकृत होने में सन्देह व्यक्त किया है।

3. वैराग्य सन्दीपनी (सं. 1669) – यह 62 छन्दों का छोटा–सा ग्रन्थ है। इसमें सन्त–महन्तों के लक्षण दिये गये हैं।

4. बरवै रामायण (सं. 1669) – इसमें बरवै छन्द में रामचरित लिखा गया है। इसमें 7 काण्ड और 69 छन्द हैं। इसके भी तुलसीकृत होने में संदेह किया जाता है। परन्तु इसमें राम के प्रति ईश्वर–भावना होने के कारण – 'सीयराम पद तुलसी प्रेम बढ़ाय' – यह संदेह कम हो जाता है।

5. पार्वतीमंगल (संवत् 1643) – इसमें शिव और पार्वती के विवाह का वर्णन हैं। इसकी छन्द–संख्या 164 है। मिश्रबन्धुओं ने उसके भी तुलसीकृत होने में सन्देह किया है

6. जानकीमंगल (सं. 1643) – इसमें सीताजी की कथा कही गयी है। इसमें 216 छन्द हैं। इसकी कथा वाल्मीकिय रामायण से प्रभावित है। वाल्मीकिय रामायण की भाँति इसमें भी राम परशुराम से भेंट बरात लौटते समय हुई है।

7. रामाज्ञा प्रश्नावली (सं. 1669) – यह ग्रन्थ शकुन विचारने के लिए बनाया गया है। उनचास दोहों के सात सर्ग हैं। विषय रामायण की ही रामकथा है। यह ग्रन्थ पं. गंगाराम ज्योतिषी के लाभार्थ लिखा गया बताया जाता है।

8. कवितावली – इसका दूसरा नाम 'कवित्त रामायण' है। इसमें कवित्त, सवैया, घनाक्षरी, छप्पय और झूलना आदि छन्द हैं। इनकी संख्या 325 है। उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों में 'कवितावली' और 'हनुमान बाहुक' एक ही में हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कुछ प्रतियों में गोस्वामी जी के अन्तिम काल–सम्बन्धी कुछ छन्द भी हैं। 'कवितावली' के छन्दों की शैलीगत प्रौढ़ता से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कवि की उत्तरकालीन कृति है।

9. गीतावली (सं. 1627) – इसमें अष्टछाप के कवियों की–सी गति–शैली के पद हैं। कथा प्रसंग कुछ भेद के साथ रामायाण में मिलता–जुलता है। इसमें भी 7 काण्ड और 330 छन्द हैं। गीतकाव्य होने के कारण इसमें उन्हीं स्थलों का वर्णन है जिनका सम्बन्ध श्रृंगार, करुणा अथवा वात्सल्य की कोमल भावनाओं से है।

10. कृष्ण गीतावली (संवत् 1626) – इस ग्रन्थ में कृष्ण–कथा का वर्णन है। इसमें कुल मिलाकर 61 पद हैं। इसके भ्रमरगीत के पदों में कुछ सूर के पद भी मिलते हैं।

11. विनयपत्रिका – 'मूल गोसाईचरित' में 'विनयपत्रिका' के स्थान पर 'विनयावली' नाम दिया हुआ है। विद्वानों ने इसका रचना–काल 'रामचरित मानस' के अनन्तर सं. 1636 और 1640 के बीच माना है। इसमें राग–रागिनियों द्वारा देवी–देवताओं के विनय–सम्बन्धी पद लिखे हैं। इसमें कलि–काल के विरुद्ध श्री रामचन्द्र जी के दरबार में अर्जी पेश की गयी है, और दरबारी शिष्टाचार का पूर्ण निर्वाह हुआ है। इसकी रचना बड़ी उत्कृष्ट समझी जाती है। इसमें तीन–सौ के लगभग पद हैं। 'विनयपत्रिका' भक्ति रस का अद्वितीय काव्य माना जाता है। इसकी ब्रजभाषा बड़ी पाण्डित्यपूर्ण तथा संस्कृत–गर्भित है।

12. दोहावली (सं. 1640) – 'तुलसी सतसई' को 'दोहावली' का ही अन्य नाम कुछ विद्वान देते हैं। यह एक संकलन–ग्रन्थ है जिसमें तुलसी द्वारा रचित विभिन्न काव्य–ग्रन्थों में से दोहों को संकलित किया गया है।

8.4 तुलसी का विशद मानवतावादी व्यक्तित्व

तुलसी का विशद मानवतावादी व्यक्तित्व पर विचार करते हुए कह सकते हैं कि भारतीय महापुरुषों के जीवन परिचय के सम्बन्ध में प्रायः गड़बड़ी देखने को मिलती है। इसका प्रधान कारण तो यह है कि ये भारतीय महापुरुष अपना जीवन परिचय प्रकट ही नहीं करना चाहते थे, क्योंकि वे उसे शालीनता, मर्यादा और सिद्धान्त के विपरीत मानते थे। महाकवि तुलसीदास के जीवन परिचय के सम्बन्ध में भी यही कठिनाई है। महाकवि के जन्म, माता–पिता, परिवार, गुरू आदि के सम्बन्ध में अनेक मत और जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। जिन पुस्तकों द्वारा तुलसी के चरित्र पर प्रकाश भी पड़ता है, वे या तो पूर्ण प्रामाणिक नहीं हैं, या उनमें कवि के सम्पूर्ण जीवन वृत्तों का वर्णन नहीं मिलता है। ऐसी स्थिति में उनकी रचनाओं में उनके द्वारा दिए गए संकेतों के आधार पर उनकी प्रामाणिक जीवनी प्रस्तुत की जा सकती है, पर कठिनाई तो यह है कि तुलसी की रचनाओं में तत्सम्बन्धी उल्लेख भी बहुत कम मिलता है। अन्तःसाक्ष्य के आधार पर जीवनी के सम्बन्ध में प्रकाश डालने का कार्य 'रामचरित मानस', 'कवितावली', 'विनयपत्रिका', 'बरवै रामायण', और 'दोहावली' जैसी उनकी रचनाएं करती हैं।

'रामहिं प्रिय पावन तुलसी सी। तुलसीदास हित हिय हुलसी सी।'

उपर्युक्त पंक्ति में तुलसीदास ने 'हुलसी' शब्द का प्रयोग साभिप्राय किया है। यद्यपि विद्वान् लोग इस चौपाइ का अर्थ अपने–अपने ढंग से लगाते हैं, पर यदि इसका सीधा अर्थ लिया जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि तुलसीदास की रामकथा, माता हुलसी के हृदय के समान है। यह हुलसी और कोई नहीं उनकी आदरणीय माँ ही हैं जिसकी पुष्टि जनश्रुति एवं बाह्यसाक्ष्य द्वारा भी हो जाती है। जनश्रुति के आधार पर यह माना जाता है कि कविवर 'रहीम' ने 'तुलसीदास' के एक दोहे का उत्तरार्द्ध रचा था और उसके अनुसार भी तुलसी की माँ का नाम हुलसी ठहरता है–

'सुरतिया नरतिय नागतिय सब चाहत अस होय।
गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय।'

उपुर्यक्त दोहे में 'हुलसी' शब्द में श्लेष है जो यह व्यक्त करता है कि तुलसी की माता का नाम हुलसी प्रसिद्ध था। इनका बचपन का नाम तुलसी नहीं वरन् 'रामबोला' था, जिसका उल्लेख 'विनयपत्रिका' में मिल जाता है–

'राम को गुलाम नाम 'रामबोला' राख्यो राम।
काम इहै नाम हैं, हौं कबहूँ कहत हो।'

ऐसा ही उल्लेख 'कवितावली' में मिल जाता है–

'साहिब सुजान जिन नामहूँ को पच्छ कियेा,
रामबोला नाम हौं गुलाम राम साहि को।'

कहा जाता है कि बचपन में ही तुलसी राम–नाम बराबर लिया करते थे। जनश्रुतियों में तो यहाँ तक कहा गया है कि तुलसी ने पाँच वर्ष के बालक के रूप में उत्पन्न हो जन्मते ही राम नाम का उच्चारण आरम्भ कर दिया था,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जिससे इस अद्‌भुत बालक को रामबोला नाम से पुकारा जाने लगा। यही बचपन का 'रामबोला' आगे चलकर तुलसीदास के नाम से विख्यात हुआ जिसका संकेत 'बरवै रामायण' में मिल जाता है–

'केहि गिनती मँह गिनती जस बन घास।
राज जपत मे तुलसी तुलसी दास'

इसी प्रकार की पंक्ति 'दोहावली' में भी देखने को मिल जाती है–

'राम नाम को कल्पतरु कलि कल्यान निवास।
जो सुमिरत भयो भाँग ते, तुलसी तुलसी दास।'

माता तथा स्वयं के नाम के अतिरिक्त अन्य किसी स्वजन का नाम इनकी रचनाओं में नहीं आया। गुरु–महिमा और उनकी कृपा का उल्लेख उन्होंने अवश्य किया–

मैं पुनि निपज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत।
× × ×
मीज्यो गुरुपीठ अनाइ गहु बाँह बोलि,
सेवक सुखद सदा विरद बहत हौं।
× × ×
बन्दौं गुरु पद कंज कृपा सिन्धु नर रूप हरि।

अतः जिस प्रकार श्लेष के माध्यम से 'हुलसी शब्द तुलसी की माता के नाम का द्योतक माना जाता है, उसी प्रकार 'नर रूप हरि' अर्थात् नरहर्यानन्द को तुलसी का गुरू माना जा सकता है। अपनी जातिपाँति के सम्बन्ध में भी तुलसी ने अपनी रचनाओं में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है, बल्कि झमेले से ऊबकर कहीं–कहीं तो वे जाति व्यवस्था के प्रति अनास्था ही व्यक्त करने लग जाते हैं–

मेरे जाति पाँति न, चहौं, काहूँ की जाति पाँति।
मेरे कोऊ काम को न हौं काहू के काम को।
× × ×
साह ही को गोत, होत है गुलाम को।
× × ×
धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जुलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगारि न ओऊ।
× ×
भक्ति भारत भूमि भले कुल जन्म, सरीर समाज भलो लहि कै।

कुछ पंक्तियाँ ऐसी भी हैं जिनके आधार पर इनका 'शुक्ल' ब्राह्मण होना और भले कुल में जन्म लेना भी निश्चित किया जाता है। 'भक्तमाल' में आये एक पद 'सकल सुकुल संबलित भक्त पद रेनु उपासी' के आधार पर इन्हें, नन्ददास का भाई भी बताया जाता है।

इनकी बाल्यावस्था बड़ी ही संकटमय रही है। जन्मोपरान्त ही माता–पिता का स्वर्गवासी हो जाना और कालांतर में घर से निकाल दिया जाना आदि अनाथ बालक तुलसी के मानसिक क्षोभ को बढ़ाते रहे। अन्तःसाक्ष्य की कतिपय पंक्तियों के आधार पर इनकी जाति और कुल पर तरह–तरह की अटकलबाजियाँ की जाती रही हैं, किन्तु वास्तविकता तो यह है कि इनका जन्म न तो मंगन कुल में हुआ था और न ये माता–पिता की अवैध सन्तान ही थे। हाँ, इतना अवश्य है कि सन्तों का आश्रय ग्रहण करने से पूर्व इन्हें उदरपूर्ति के लिए द्वार–द्वार भिक्षा माँगनी पड़ी और 'जाति–कुजाति' सबके टुकड़े पर जीवनयापन करना पडा। इस ग्लानि और दैन्य–दशा की अभिव्यक्ति तुलसी ने 'कवितावली' और 'विनयपत्रिका' में की है। बाल्यावस्था की ही भाँति उनकी वृद्धावस्था भी बड़ी कष्टदायक सिद्ध हुई। इन्हें महामारी का शिकार होना पड़ा था। पीड़ा के निवारण के लिए इन्होंने राम, शंकर और हनुमान की स्तुति की है। इनकी मृत्यु संवत् 1680 (सन् 1623 ई.) तो सर्वमान्य है, किन्तु कुछ लोगों ने भ्रमवश 'सावन स्यामा तीज सनि' के स्थान पर 'सावन शुक्ला सप्तमी' लिख दिया है, जो अप्रामाणिक है। गोस्वामी जी के परम मित्र एवं काशी के तत्कालीन जमींदार टोडरमल के वंशज 'सावन कृष्णा तीज' को ही उनकी निधन–तिथि स्वीकारते हैं और उसी दिन सीधा देने की प्रथा है। ज्योतिष की गणना के अनुसार भी 'सावन स्याम तीज' शनिवार के ही दिन पड़ती है। 'मूल गोसाई–चरित' के निम्न दोहे में भी इसी तिथि का उल्लेख मिलता है–

'संवत् सोलह सौ असी असी गंग के तीर।
सावन स्यामा तीज सनि, तुलसी तजे सरीर।।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.5 लोकप्रियता का कारण – समन्वय भावना

8.5.1 समन्वित दृष्टि

जिस समय तुलसीदास ने साहित्य–जगत में पदार्पण किया उस समय देश में संक्रान्ति की स्थिति व्याप्त थी। समग्र हिन्दू जाति राजनैतिक संत्रास की विभीषिका से त्रस्त थी। देश की सामाजिक स्थिति छिन्न–भिन्न हो गयी थी– परस्पर द्वेष, ईर्ष्या, और घृणा की भावना बढ़ती जा रही थी। लोगों के हृदय से धार्मिक भावना विलुप्त होने लगी थी और नास्तिकता का प्रभुत्व बढ़ता जा रहा था। देशवासी अपनी संस्कृति को भूलने लगे थे। बात–बात में संन्यासी हो जाना साधारण सी बात थी, परिणाम स्वरूप 'अलख' जगाने वाले साधुओं की भरमार हो गयी। अहं के वशीभूत इन साधुओं ने पंडितों और ब्राह्मणों की बराबरी का दावा किया और वेद, पुराणादि धर्म–ग्रन्थों की निन्दा करने से भी बाज नहीं आये। ऐसी विषम स्थिति में तुलसीदास ने बड़ी ही कुशलतापूर्वक अपने गुरुतर दायित्वों का निर्वाह किया। इस सफलता का कारण उनकी समन्वयात्मक–दृष्टि, सारग्राहिणी प्रतिभा और काव्यात्मक चेतना में ढूंढा जा सकता है। भारतवर्ष नाना परस्पर विरोधी संस्कृतियों तथा विभिन्न धर्मानुयायी अनेक जातियों, उपजातियों का देश है। अतः इस देश का लोकनायक वहीं व्यक्ति हो सकता है जिसमें विशाल समन्वित दृष्टि हो तथा जो शृंखला की टूटी हुई कड़ियों को फिर से मजबूतती के साथ जोड़ने की शक्ति रखता हो। तुलसीदास ऐसे ही व्यक्ति थे, जिन्होंने समाज के विविध स्तरों को बड़े ही निकट से देखा था। उच्च ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर भी उन्हें दरिद्रवत् जीवन बिताना पड़ा था। अशिक्षित जनता, पुराणपंथी पंडितों, दिग्गज आचार्यों और अनेक तपःपूत संन्यासियों के सम्पर्क में उन्हें आने का अवसर प्राप्त हुआ था। बचपन से ही दर–दर भटकने और ठोकर खाने के कारण वे लोक–ज्ञान से तो परिचित हो ही गये थे किन्तु उनका शास्त्रीय ज्ञान भी कम व्यापक नहीं था। 'रामचरितमानस' में जहां अनेक स्थलों पर लोक धर्म की स्थापनाओं का सूक्ष्म निरीक्षण मिलता है, वहीं उनके शास्त्रीय ज्ञान का गम्भीर परिचय भी प्राप्त होता है।

8.5.2 शैवों और वैष्णवों का समन्वय

हमारे यहाँ ब्रह्मा, विष्णु, महेश को क्रमशः सृजक, पालक एवं संहारक माना जाता है। इन्हें मिलाकर त्रिदेव की बड़ी ही महत्वपूर्ण कल्पना की गई है। बाद में चलकर वैष्णव लोग विष्णु को और शैव लोग शंकर को ही सर्वशक्तिमान समझने लगे। इस प्रकार शैव और वैष्णवों का कलह बढ़ता ही गया और तुलसी के समय तक तो यह अपनी चरम सीमा तक पहुंच गया। शैव लोग वैष्णवों से घृणा करने लगे और वैष्णव शैवों से। तुलसीदास ने राम और शिव का परस्पर एक दूसरे का भक्त बताकर बड़े ही कौशल के साथ विवाद को शान्त किया। उन्होंने एक ओर तो शंकर के मुँह से 'सोइ मम इष्ट देव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनिधीरा।' कहलवाकर शिव को राम का अनन्य भक्त बतलाया, वहीं दूसरी ओर राम के मुँह से 'संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास। ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास' अथवा 'सिव द्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न भावा' आदि कहलवाकर राम को शिव का उपासक सिद्ध किया। इतना ही नहीं, रामेश्वरम् में सेतु निर्मित हो जाने पर तुलसी ने राम के द्वारा शिवलिंग की स्थापना एवं अर्चना कराकर राम की अनय शिवभक्ति को भी प्रदर्शित किया।

8.5.3 शाक्त वैष्णव समन्वय

इसी प्रकार शाक्तों और वैष्णवों के परस्पर विरोध को भी गोस्वामी जी ने मिटाया। 'रामचरितमानस' में सीता को ब्रह्म राम को शक्ति के रूप में स्वीकार करके गोस्वामी जी ने अपनी इसी समन्वित दृष्टि का परिचय दिया है। उद्भव, स्थिति संहारकारिणी, क्लेशहारिणी, सर्वश्रेयस्करी, रामवल्लभा सीता' का स्मरण गोस्वामी जी ने आरम्भ में ही कर लिया है। साथ ही सीता के द्वारा शक्ति स्वरूपा पार्वती की स्तुति भी करायी है–

नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाव वेद नहिं जाना।
भव भव विभव पराभव कारिनि। विश्व विमोहनि स्वबस बिहारिनि।

तुलसी के पूर्व स्वामी शंकराचार्य ने अपनी जिस 'अद्वैतवादी' दार्शनिक विचारधारा का प्रचार किया था उसका प्रभाव व्यापक रूप से अन्य विचारधाओं पर भी पड़ा। कालान्तर में विभिन्न वैष्णव आचार्यों ने शंकर के अद्वैतवाद का खण्डन करते हुए अपने–अपने मतों की प्रतिस्थापना की। रामानुजाचार्य ने शंकर के अद्वैतवाद का खण्डन करते हुए अपने 'विशिष्टाद्वैतवाद' का उपस्थापन किया। तुलसी चूँकि रामानुजाचार्य के ही मतानुयायी थे, अतः इन्होंने भी विशिष्टाद्वैतवाद को ही स्वीकार किया और इसीलिए जीव को ईश्वर का अंश मानकर उसे चेतन, अमल और अविनाशी बताया–

ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।
सो माया बस भयेउ गोसाई। बंध्यो कीर मरकट की नाई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इसी प्रकार विशिष्टद्वैतवादियों की भाँति संसार को नित्य शाश्वत एवं अविनाशी बताया है, किन्तु अन्यत्र कई स्थानों पर शकराचार्य के अद्वैतवाद का प्रतिपादन भी मिलता है। यहाँ पर ब्रह्म को सत्य और जगत को मिथ्या घोषित करते हुए शंकर के ही अनुसार अविद्या माया का भी निरूपण किया गया है। स्पष्ट है कि तुलसीदास जी ने अद्वैतवाद एवं विशिष्टाद्वैतवाद में समन्वय स्थापित करते हुए दार्शनिक विवाद को भी शांत किया।

8.5.4 ज्ञान–भक्ति समन्वय

ज्ञान और भक्ति के क्षेत्र में भी गोस्वामी जी की समन्वित दृष्टि स्पष्ट है। पारस्परिक विवाद के कारण ज्ञानी और भक्त एक दूसरे को तुच्छ और नीच समझते थे। ज्ञान की श्रेष्ठता का प्रतिपादन गोस्वामी जी ने इस प्रकार किया:–

कहंहि सन्त मुनि वेद पुराना। नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना।

किन्तु इस ज्ञान की श्रेष्ठता उसकी भक्ति सापेक्षता में ही निहित है। साथ ही ज्ञान की कठिनाई की ओर भी उन्होंने संकेत किया–

'ज्ञान को पंथ कृपान कै धारा'

अथवा

'ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका'

इसी प्रकार भक्ति को ज्ञान से श्रेष्ठ बतलाते हुए उन्होंने लिखा कि –

'भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी'।

इतना होने पर भी गोस्वामी जी ने ज्ञान और भक्ति में किसी प्रकार का भेद स्वीकार नहीं किया है, क्योंकि दोनों ही संसार के कष्ट निवारक कल्याणकारी मार्ग हैं –

'भगतिहिं ज्ञानहिं नहिं कछु भेदा। उभय हरहि भव सम्भव खेदा।'

भक्ति मार्ग श्रेष्ठ और आसान अवश्य है, किन्तु उसे ज्ञान और वैराग्य से युक्त होना चाहिए–

'कहहिं भगति भगवंत कै संजुत ग्यान विराग'

निर्गुण और सगुण का जो विवाद चला आ रहा था, अभी तक उसका कोई समुचित समाधान नहीं हो पाया था। यहाँ तक कि तुलसी के पूर्ववर्ती महाकवि सूर भी इस संघर्ष से वंचित न रह सके। उन्होंने अपने 'भ्रमरगीत' में निर्गुण ब्रह्म का खण्डन करके सगुण ब्रह्म की स्थापना की। तुलसीदास ने ही सर्वप्रथम दोनों में समन्वय उपस्थित किया। यही कारण है कि जहाँ एक ओर उन्होंने ब्रह्म को निर्गुण, निराकार, अद्वैत, अनामय, अविकार आदि स्वीकार किया है, वहीं दूसरी ओर उसे दीनबन्धु, शरणागत वत्सल, भक्त वत्सल तथा दयालु आदि भी कहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि तुलसी ने अपने राम को सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों में देखा है। उन्होंने कहा भी –

''अगुणहि सगुणहिं नाहि कछु भेदा।''

8.5.5 सामाजिक समन्वय

गोस्वामी जी ने राजा–प्रजा के समन्वय, नर और नारायण के समन्वय तथा ब्राह्मण और शूद्र के समन्वय पर भी दृष्टिपात किया है। ब्राह्मण–कुल श्रेष्ठ गुरुवर वशिष्ठ जी को निषादराज से भेंट करते हुए दिखाकर अपनी इसी समन्वित दृष्टि का परिचय दिया है। राजा और प्रजा के पारस्परिक सम्बन्धों को उदारतापूर्वक चित्रित किया है–

'मुखिया मुख सो चाहिए खानपान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल जग तुलसी सहित विवेक।'

8.5.6 साहित्य में समन्वय

गोस्वामी जी ने जिस प्रकार परिवार, समाज, धर्म, संस्कृति और दर्शन आदि में समन्वय उपस्थित किया है उसी प्रकार से साहित्य के क्षेत्र में भी सुन्दर समन्वय किया है। ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं का समन्वित रूप उनके रामचरित मानस में देखने को मिलता है। रामचरित मानस के बीच–बीच में संस्कृत–श्लोकों को रखकर उन्होंने हिन्दी और संस्कृत में समन्वित दृष्टि का परिचय दिया है।

8.5.7 छन्द समन्वय

वर्णिक और मात्रिक छन्दों के प्रयोग द्वारा छन्दों में भी सुन्दर समन्वय किया है। उस समय जितनी भी काव्य–शैलियाँ प्रचलित थीं, प्रायः उन सबका प्रयोग गोस्वामीजी ने न्यूनाधिक रूप में किया है। जायसी की दोहा चौपाई पद्धति पर 'रामचरित मानस' की रचना की गई तो पद पद्धति पर 'विनयपत्रिका' की। इसी प्रकार कवित्त सवैया छप्पय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पद्धति पर 'कवितावली', दोहा पद्धति पर 'दोहावली', बरवै पद्धति पर 'बरवै रामायण' लोकगीत पद्धति पर 'रामललानहछू' आदि लिखकर साहित्य में प्रचलित सभी पद्धतियों में उन्होंने सुन्दर समन्वय किया है। उनका 'रामचरितमानस' अपने आप में समन्वय की एक विराट चेष्टा को स्थान देता है। निष्कर्ष यह कि गोस्वामी तुलसीदास जी उच्चकोटि के समन्वयवादी विचारक एवं कवि थे।

8.5.8 भाषा में समन्वय

तुलसीदासजी की लोकप्रियता का एक कारण उनकी भाषा सम्बन्धी समन्वयात्मक दृष्टि भी है। जिस प्रकार का लोच हमें तुलसी की भाषा में दिखायी पड़ता है, वैसा किसी अन्य कवित की भाषा में मिलना असम्भव है। उनकी भाषा जितनी लौकिक है उतनी ही शास्त्रीय भी है। यही कारण है कि मानस की भाषा एक कम पढ़े–लिखे व्यक्ति के लिये और एक दिग्गज पंडित के लिए समान रूप से ग्राह्य है। जहाँ कहीं उन्हें लोक धर्म की स्थापना करनी पड़ी है। वहाँ पर बोलचाल की सरल भाषा का प्रयोग किया है और दार्शनिक विषयों के विवेचन में संस्कृतनिष्ठ भाषा का। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग गोस्वामी जी की एक बहुत बड़ी विशेषता है। परिचारिका मन्थरा की भाषा में और रानी कैकेयी की भाषा में अन्तर है। इसी प्रकार निषादराज की भाषा सरल, अकृत्रिम और स्पष्ट है किन्तु गुरु वशिष्ठ की भाषा में भाव गाम्भीर्य, संस्कृतनिष्ठता आदि सहज ही देखी जा सकती है। अवधी के दूसरे कवि जायसी की भाषा में इस प्रकार का लचीलापन नहीं मिलता। वहाँ सभी पात्र एक ही भाषा का प्रयोग करते हैं। गोस्वामी जी की भाषा के इसी लचीलेपन को लक्ष्य करके आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने एक स्थान पर लिखा है– ''जहाँ भाषा साधारण और लौकिक होती है, वहाँ तुलसीदास की उक्तियाँ तीर की तरह चुभ जाती हैं और जहाँ शास्त्रीय और गम्भीर होती है वहाँ पाठक का मन चील की तरह मँडराकर प्रतिपादित सिद्धान्त को ग्रहण कर लेता है।''

8.6 तुलसीदास की भक्ति एवं दर्शन विषयक मान्यताएं

तुलसीदास एक ऐसे 'महान कवि' हैं जिनमें भावना और दर्शन का अत्युत्तम समिश्रण हुआ है। डॉ. रामकुमार वर्मा के शब्दों में, ''उन्होंने संस्कृत और दर्शनशास्त्र का बड़ा गम्भीर अध्ययन किया था। .... तत्कालीन साहित्य में कोई भी ऐसा कवि नहीं है, जिसने दर्शनशास्त्र का परिचय इतनें दक्षता के साथ दिया हो।'' तुलसी ने अपने युग के संभवतः सर्वाधिक जागरूक कवि और उच्च–कोटि के अध्येता विचारक थे, साथ ही साथ जीवन के विविध क्षेत्रों को आंख खोलकर देखने–परखने और प्रस्तुत करनेवाले भी। उनका काव्य–कृतित्व–विशेषतः 'रामचरित–मानस' और 'विनयपत्रिका' – इसका सशक्त प्रमाण है।

डॉ. विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने तुलसी के समकालीन विविध सम्प्रदायों, आचार्यों, दर्शन एवं भाव की निम्न तालिका प्रस्तुत की है, जिससे तुलसी दर्शन के निर्णय में पर्याप्त सहायता ली जा सकती है–

8.6.1 श्री सम्प्रदाय

इसके उपसाय नारायण हैं। आगे चलकर रामानन्द जी के प्रभाव से राम–उपसाय बने। तुलसी इन्हें ही परात्पर ब्रह्म मानते हैं, विष्णु का अवतार मात्र नहीं ।

आयार्य शुक्ल के अनुसार रामानुजाचार्य के सिद्धान्त को, अति संक्षेप में, इस रूप में देखा जा सकता है– 'शुद्ध ब्रह्म स्वगत, सजातीय और विजातीय तीनों भेदों से रहित है। किसी वस्तु का अंश उसका स्वगत भेद है, अतः जीव को ब्रह्म का अंश कहना (ब्रह्म ही न कहना) अद्वैत मत के अनुकूल न होकर रामानुज के विशिष्टाद्वैत के अनुकूल है, जिसके अनुसार चिदचिद्विशिष्ट ईश्वर एक ही है। चित् (जीव) और अचित् (जगत्) दोनों ईश्वर के अंग या शरीर हैं। ईश्वर शरीर के इस सूक्ष्म चित् और अचित् से ही स्थूल अचित् अर्थात् अनेक जीवों और जगत् की उत्पत्ति हुई।

8.6.2 सनकादि सम्प्रदाय

इसको दार्शनिक सिद्धान्त को भेदाभेद या द्वैताद्वैत कहा जाता है। इसमें माना जाता है कि जीव एक अवस्था विशेष में ब्रह्मा से अभिन्न है तथा दूसरी अवस्था में भिन्न। रामानुजाचार्य के मत से इसका कई बातों में सादृश्य है। अग्नि और स्फुलिंग का दृष्टांत यहाँ भी ईश्वर और जीव के सम्बन्ध को भिन्नाभिन्न दिखाने के लिये दिया जाता है। जिस प्रकार अग्नि से स्फुलिंग अभिन्न है,किन्तु पृथक् होने से उससे भिन्न भी, उसी प्रकार ब्रह्म और जीव भी भिन्नाभिन्न हैं। इसी प्रकार ब्रह्म अंशी और जीव अंश है। इसी अन्तर के कारण ब्रह्म सर्वशक्तिमान् है और जीव अल्प शक्तिमान् तथा माया से बद्ध यद्यपि ईश्वर की कृपा से वह अपने असली स्वरूप को जान सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इसमें मध्वाचार्य द्वारा द्वैत का सिद्धान्त मान्य हुआ। तथा ईश्वर जीव एवं ईश्वर–जगत् की भिन्न–भिन्न सत्तायें मानी गई। ईश्वर, जीव, जगत् और जीव की अनेकता आदि भेद शाश्वत है।

यह सम्प्रदाय वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित शुद्धाद्वैत के सिद्धान्त को दर्शन के रूप में स्वीकार करता है। जिसमें ब्रह्म का क्षर (जगत्) अक्षर (निर्गुण) एवं पुरुषोत्तम (श्रीकृष्ण) तीन प्रकार का रूप माना जाता है। इन रूपों में ब्रह्मा की तीन स्थितियों को माना गया सत्, चित् और आनन्द (का तिरोभाव और आविर्भाव)। जगत् में सत् आविर्भाव एवं चित् और आनन्द का तिरोभाव माना गया। जीव में आनन्द का तिरोभाव एवं सत्–चित् का आविर्भाव माना गया। जीव भी प्रवाह, मर्यादा और पुष्टि तीन प्रकार के और इनमें संकर होने पर यह आठ प्रकार के माने गये।

भक्तिकाल में उपर्युक्त चार मतों में से किसी भी एक मत अथवा कई मतों के मान्य उपसाय को ही स्वीकार किया जा सकता था। तुलसी द्वैतवादी नहीं हैं। अतः उनका उपसाय मध्वाचार्य का उपसाय नहीं हो सकता। शेष तीन सम्प्रदायों में अद्वैतवादी सिद्धान्त मान्य हैं। अतः तुलसी का उपसाय इन्हीं में मान्य उपसायों में से हो सकता है। तुलसी अपने सभी ग्रन्थों में अपने उपसाय के स्वरूप का निरूपण स्पष्ट शब्दों में करते हैं।

रामचरित मानस के बाल–काण्ड एवं उत्तरकाण्ड तथा विनयपत्रिका में इस प्रसंग पर बहुत विस्तार से कहा गया है। तुलसी उत्तरकाण्ड में वेदों से स्तुति कराते हुए राम के विषय में कहलवा देते हैं :–

जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।

× × ×

अवतार–नर–संसार–भार–विभंजि दारुन–दुख सहे।

कवि ने ईश्वर को सगुण और निर्गुण दोनों कहा है तथा संसार–वृक्ष के रूप में भी देखा है। यह धारणा निश्चित रूप से शुद्धाद्वैत से ली गई ज्ञात होती है। श्रीमद्भागवत का प्रभाव तुलसी के 'रामचरित–मानस' पर देखते हुए यह माना जा सकता है कि वल्लभाचार्य श्रीमद्भागवत् के आधार पर ब्रह्म के क्षर, अक्षर एवं पुरुषोत्तम जो तीन भेद किए उसे तुलसी ने स्वीकार कर लिया। यह बात उसकी समन्वयवादी दृष्टि के अनुकूल भी है।

निर्गुण और पुरुषोत्तम एक ओर अभिन्न हैं, किन्तु तुलसी ने नाथ संतों एवं सूफियों द्वारा निर्गुण के प्रचार की प्रबलता को देखकर उसका किसी सीमा तक सगुण से समन्वय करते हुए विरोध ही किया। सूर आदि कृष्ण–भक्ति शाखा के कवि और आचार्य भी इसका विरोध कर चुके थे। यह परम्परागत दृष्टिकोण में बड़ा भारी परिवर्तन था।

यहाँ एक बात ध्यान में रखने की है कि तुलसी सगुण को सर्वोच्च सत्ता मानकर भी कहीं बैकुण्ठ, गोलोक, क्षीर–सागर जैसे राम निवास की परिकल्पना करते नहीं दिखाई पड़ते हैं।

यहाँ निश्चय ही राम और निर्गुण ब्रह्म अभिन्न दिखाई पड़ते हैं, किन्तु तुलसी राम को निर्गुण ब्रह्म मात्र ही चित्रित करके संतुष्ट नहीं हो सकते थे। उनकी मौलिक दृष्टि यहीं दिखाई पड़ती है। उन्होंने यही निर्गुण और सगुण का चमत्कारिक समन्वय किया।

कैलास बैकुण्ठ और गोलोक में वे अपने उपसाय को बन्द नहीं कर सकते थे और बल्लभ की तरह आविर्भाव–तिरोभाव का परिकल्पना करके ब्रह्म में स्वगत भेद की स्थापना की नयी भूल नहीं कर सकते थे। नाना पुराण निगमागम की सम्मतता की रक्षा करते हुए वे एक ही मार्ग अपना सकते थे और वह था सगुण को निर्गुण की व्यापकता प्रदान कर देना। तुलसी के राम को निर्गुण ब्रह्म समझना बड़ी भूल होगी, वह ऐसा है नहीं। तुलसी ने स्वप्न के सूक्ष्म जगत् की तरह राम–जगत् को व्यापक और सूक्ष्म बताकर आदिम मानस से चली आई समूहावचेतन की भावना को पुनः प्रत्यक्ष कर लिया है।

''हरि व्यापक सर्वत्र समाना, प्रेम तें प्रकट होहिं मैं जाना।
देश काल दिसि विदिसिहु माहीं, कहहु सो कहां जहां प्रभु नाहीं।
अग जग मय सब रहित विरागी, प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी।''

इनकी यह दृष्टि वहां अधिक स्पष्ट है जहां काक–भुशुण्डि बालक राम के मुख में प्रवेश कर जाते हैं। उत्तर–काण्ड का यह प्रसंग राम के रूप को समझने के लिए बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। तुलसी यह तो मान लेते हैं कि राम सर्वव्यापक है और प्रेम से अपने एक राम रूप में ही प्रकट हो जाते हैं, किन्तु वे इस बात को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हैं कि वह शिव, कृष्ण, देवी अथवा किसी अन्य रूप में भी प्रकट होते हैं। उनकी यह दृष्टि उन्हें पुराणों की परम्परा से पृथक् करती है।

राम को सगुण–निर्गुण मान लेने पर माया के साथ उनके सम्बन्ध को दिखाना जटिल कार्य था। अरण्य काण्ड में राम लक्षण के प्रश्नों का उत्तर देते हुए माया के स्वरूप पर भी प्रकाश डालते हैं।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Jodhpur

तुलसी ने माया विषयक अपनी धारणा शैवों की शक्ति और शंकर के समन्वय के रूप में बनाई। निःसंदेह इसमें भी तुलसी की निजी दृष्टि दिखाई पड़ती है। तुलसी जीव को अज्ञानी, अल्पज्ञ और अनेक मानते हैं। उसकी यह स्थिति माया के कारण ही है।

नाथों–संतों का मार्ग ज्ञान–योग का था जो समाज की व्यवस्था को भंग करने में सहायक हो रहा था। सूफी एकान्तिक प्रेम को लेकर एक नयी संस्कृति की स्थापना में लगे थे। अतः तुलसी इनके विरोधी खेमे में जाने के लिये विवश थे। उनके विरोध का कारण यह भी था कि जिस परम्परा को वे बनाये रखना चाहते थे, उस परम्परा में उनके ये विचार आ नहीं पा रहे थे।

तुलसी दर्शनों द्वारा स्वीकृत ज्ञान–परम्परा को ही स्वीकार्य मानते थे।

ज्ञान की महत्ता स्वीकृति कवि की रचनायओं में सर्वत्र है। उत्तरकाण्ड में ज्ञान और भक्ति की चर्चा कवि विस्तार के साथ करता भी है, किन्तु वहाँ वह पहले से निश्चय कर चुका है कि ज्ञान की तुलना में भक्ति को सुगम साधन दिखाना है। वह यह तो मानते हैं कि 'ज्ञानहिं भगतिहिं नहिं कछु भेदा' क्योंकि 'उभय हरहिं भव संभव खेदा' किन्तु जब सापेक्षित रूप से वह दोनों पर विचार करते हैं तब वह भक्ति को निश्चय ही सरल और सुलभ चित्रण करने में अपनी पूरी शक्ति लगा देते हैं।

तुलसी की भक्ति की सरलता इसी में है कि सीधे राम से प्रेम करना है, जिसमें किसी साधन आदि की आवश्यकता नहीं है।

ग्रन्थि को खोलने के लिये ज्ञान–दीपक की आवश्यकता मानी गई हैं, क्योंकि हृदय के अज्ञानान्धकार में बुद्धि इस ग्रन्थि को देख नहीं सकती। इस ज्ञान–दीपक को जलाने के लिये ज्ञान–मार्ग का अनुसरण करना पड़ता है, जो अत्यन्त जटिल और विघ्नपूर्ण है–

ग्यान को पंथ कृपान कै धारा, परत खगेस होइ नहिं बारा।
जो निर्विघ्न पंथ निर्वहई, सो कैवल्य परम पद लहई।

कवि तुलसीदास भक्ति को इसलिये भी अनिवार्य मानते हैं कि ज्ञान के साथ अज्ञान का द्वन्द्व बना ही रहता है। माया उस पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह पाती। यही कारण है कि भक्ति के पक्ष में अपना निर्णय देते हुए वे ज्ञान को पुरुष और भक्ति को नारी के रूप में देखते हैं–

ग्यान बिराग जोग बिग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना।
माया भगति सुनहु तुम दोऊ। नारी वर्ग जानहिं सब कोऊ।।
मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह नीति अनूपा।।

भक्ति–रस ही जीवन में ग्राह्य है–

(1) वाद–विवाद–स्वाद तजि, भजि हरि सरस चरित चित लावही।
(2) हरि माया कृत दोष गुन, बिनु हरि–भजन न जाहिं।
भजिअ राम तजि काम सब, अस बिचारि मन माहिं।।

इस भक्ति से ही ज्ञान–मार्ग द्वारा दुर्लभ मुक्ति स्वतः बलपूर्वक न चाहने पर भी आ जाती है–

राम भजत सोइ मुक्ति गोसाई, अनइच्छित आवइ बरिआई।

× × ×

अस बिचारि हरि–भक्त सयाने, मुक्ति निरादर भगति लुभाने।

तुलसी के व्यापक और गूढ़ दर्शन पर प्रकाश डालने के लिये अनेक ग्रन्थ लिखे गए हैं।

यहां यह स्पष्ट होता है कि तुलसीदास की दर्शन संबधी मान्यताएं बहुत व्यापक हैं, जिनमें उनकी विचारधारा का गहरा प्रभाव है। सच्च अर्थों में तुलसी एक महान भक्त और दार्शनिक कवि हैं।

8.7 रामचरित मानस का उत्तरकांड

'रामचरितमानस' का न केवल भारतीय साहित्य में, वरन विश्व साहित्य में पर्याप्त ऊंचा स्थान है। वह विश्व के अनेक उच्चकोटि के ग्रंथों में अग्रणी है। वह हिंदी का अतुलनीय महाकाव्य है। भारतीय भाषाओं में किसी भाषा के पास 'रामचरित मानस' जैसा श्रेष्ठ ग्रंथ होना उस भाषा के लिए गौरव की बात तो है ही, साहित्य और संस्कृति की दृष्टि से भी उस भाषा के लिए अत्यंत सम्मान का विषय है। समग्र भारतीय वांड्.मय में वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत के पश्चात् 'रामचरितमानस' लोकप्रियता और महत्ता की दृष्टि से सर्वोपरि है। आयामों की व्यापकता और विराटता के साथ 'रामचरित मानस' भारतीय संस्कृति का गौरव ग्रंथ है, जिसकी सर्वव्यापी अपार लोकप्रियता से पूरा भारतीय समाज

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

गहराई से प्रभावित है। उसकी लोकप्रियता और महत्ता धर्मग्रंथ के रूप में तो है, एक उत्कृष्ट महाकाव्य के रूप में भी वह हिंदी काव्यजगत में प्रतिष्ठित एवं समादृत है। तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के माध्यम से भक्ति, ज्ञान, कर्म आचार, संस्कृति, शील तथा जीवन के अन्य उदात्त मूल्यों को जिस व्यापकता के साथ निरूपित किया है, वह उसे संसार साहित्य के श्रेष्ठ ग्रंथों में प्रतिष्ठित करवाता है। यहां गीता प्रेस गोरखपुर के संस्थापक–संचालक स्वर्गीय हनुमानप्रसाद पोद्दार की टिप्पणी बहुत सटीक और प्रासंगिक प्रतीत होती है –

'रामचरित मानस' का स्थान हिंदी साहित्य में ही नहीं, जगत के साहित्य में निराला है। उसके जोड़ का, ऐसा ही सर्वांग सुंदर, उत्तम काव्य के लक्षणों से युक्त, साहित्य के सभी रसों का आस्वादन कराने वाला, काव्यकला की दृष्टि से भी सर्वोच्च कोटि का तथा आदर्श गृहस्थ जीवन, आदर्श, राजधर्म, आदर्श पारिवारिक जीवन, आदर्श भ्रातृधर्म के साथ–साथ सर्वोच्च भक्तिज्ञान, त्याग वैराग्य तथा सदाचार सगुण, साकार भगवान की आदर्श मानवलीला तथा उनके गुण, प्रभाव, रहस्य तथा प्रेम के गहन तत्व को अत्यंत सरल, रोचक एवं ओजस्वी शब्दों में व्यक्त करनेवाला कोई दूसरा ग्रंथ हिंदी भाषा में ही नहीं, कदाचित संसार के किसी भाषा में आजतक नहीं लिखा गया। भक्ति, ज्ञान, नीति, सदाचार का जितना प्रचार जनता में इस ग्रंथ से हुआ है, उतना कदाचित किसी ग्रंथ में नहीं हुआ।'' 'रामचरित मानस' इस दृष्टि से संभवतः अपनी तरह का अकेला ग्रंथ है, जिस पर इतनी उत्कृष्ट और अत्यधिक टीकाएं लिखी गई हैं। उदात्त भावनाओं की उच्च स्तरीय अभिव्यक्ति के कारण इस ग्रथ को जितने श्रद्धालु पाठक प्राप्त है, उतने किसी ग्रथ को नहीं।

हिन्दी साहित्य में काव्यत्व एवं साहित्यिकता की दृष्टि से भी रामचरितमानस उच्चकोटि का महाकाव्य स्वीकार किया जाता है, जिसमें साहित्यिकता के संरक्षण एवं काव्यत्व के अनुरक्षण का जैसा प्रयास दृष्टिगत होता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। 'मानस' का सार्वभौम–सहज–सरल भक्ति निरूपण, उसका सर्वरस निष्पत्ति, काव्य वैभव, उसकी अनूठी अलंकार योजना, कलात्मक अभिव्यक्ति, आदर्श एवं उदात्त जीवनमूल्यों की स्थापना आदि पक्ष उसे एक विलक्षण महाकाव्य के रूप में समादृत करते हैं।

वैसे तो पूरा मानस ही प्रत्येक दृष्टि से महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय है, उसके सारे कांड ही पठनीय, मननीय एवं विचारणीय हैं, पर तीन कांड अनेक कारणों से विशिष्ट कहे जा सकते हैं– बालकांड, अयोध्याकांड एवं उत्तरकांड। बालकांड अपनी कलात्मक दृष्टि एवं मानस की भूमिका होने के कारण महत्वपूर्ण है, तो अयोध्याकांड आदर्शवादी भावनाओं की अभिव्यक्ति के कारण उल्लेखनीय है। उत्तरकांड भक्ति–दर्शन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण तो है ही, मानस का उपसंहार होने के कारण वह कांड पूरे 'मानस' का निचोड़ है, जिसमें तुलसीदास विश्वकवि की महत् भूमिका में दिखाई देते हैं। 'रामचरितमानस' का 'उत्तरकाण्ड' इस महाकाव्य का 'उपसंहार है। इसमें कवि ने भरत–मिलाप, रामराज्य, गरुड–मोह, भुशुण्डि, ज्ञान–भक्ति, कलियुग आदि का वर्णन करके अपने इस काव्य को पुराणों की परम्परा में प्रस्थापित किया है, क्योंकि प्रायः पुराणों में 'कलियुग' का वर्णन अवश्य दिया जाता है, परन्तु अंतर यही है कि पुराणों में यह वर्णन भविष्य के संकेत के रूप में मिलता है, जबकि गोस्वामीजी ने इसे वर्तमान काल के रूप में लिखा है। इस प्रकार 'उत्तरकाण्ड' में हमें राम कथा से भिन्न तुलसी के कतिपय वे विचार भी मिलते हैं, जो भारतीय संस्कृति के उज्ज्वलतम अंग हैं और जिनका निरूपण कवि ने इस महाकाव्य को अधिकाधिक लोकप्रिय एवं लोकोपकारक बनाने के लिए किया है।

8.7.1 वर्ण्य विषय

'उत्तरकाण्ड' तुलसीकृत 'रामचरितमानस' का एक विस्तृत कांड है। यद्यपि इसका आकार 'बालकाण्ड' और 'अयोध्याकाण्ड' से छोटा है, तथापि यह काण्ड 'मानस' के अन्य सभी काण्डों से विस्तृत है। इसमें 'राम कथा' का उपसंहार है। इसके अन्तर्गत कवि ने विविध प्रसंगों को स्थान दिया है। जैसे, इसमें राम का अयोध्या आगमन, भरत–मिलाप, राम–राज्याभिषेक, विभीषणादि सखाओं की विदाई, राम–राज्य, राम–प्रताप, सन्त–असंत–लक्षण, राम द्वारा अपने पुरजनों को उपदेश, वशिष्ठ और राम का मिलन, राम–कथा महात्म्य, काकभुशुण्डि–चरित्र, गरुण मोह, काकभुशुण्डि गरुड–सम्वाद, हरि–माया, राम–काकभुशुण्डि–संवाद, कलियुग धर्म, ज्ञान महिमा, भक्ति–चिंतामणि का महत्त्व, ज्ञान और भक्ति का अंतर, मानस–रोग, राम–भक्ति की महत्ता आदि प्रसंद आये हैं, जिन पर गोस्वामी तुलसीदास ने बड़ी तत्परता और तल्लीनता के साथ लिखा है। ये सभी प्रसंग जहां एक ओर गोस्वामीजी के मौलिक चिंतन एवं विशद अध्ययन के परिचाक है, वहीं ये सभी प्रसंग संसार के दुःख–दग्ध मानवों के लिए अत्यन्त कल्याणकारी भी हैं। इन सभी प्रसंगों में भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल भाव–रत्नों की माला भी विद्यमान है और मानव–कल्याण हेतु उन बातों का भी निरूपण हुआ है, जिनको अपनाकर दैहिक, दैविक एवं भौतिक तापों से पीड़ित मानव सहज ही मुक्ति प्राप्त कर सकता है। तुलसी ने 'उत्तरकाण्ड' में प्रायः उन सभी प्रश्नों को भी स्थान दिया है, जो

Jawaharlal Nehru Bharati Institute (Deemed University)

प्रायः आज के सांसारिक कष्टों में फंसे हुए मानवों के हृदय में उठा करते हैं। यहां गरुड़जी ने इन्ही प्रश्नों के मध्य यह भी प्रश्न किया है कि 'ज्ञान और भक्ति में क्या अन्तर है?'' इसका उत्तर देकर काकभुशुण्डिजी ने सभी मानवों के लिए 'रामभक्ति' की महत्ता का प्रतिपादन किया है। उत्तरकाण्ड में तुलसी ने उन प्रसंगों को चुना है, जिनके माध्यम से वे यह बताना चाहते है कि शिव, ब्रह्मा, शुकदेव, सनक–सनन्दन–सनतकुमार–सनातन, नारद आदि जो मुनि ब्रह्मतत्व के विचार में परम चतुर हैं, उन सबका यही मत है कि श्रीराम के चरण कमल में स्नेह (भक्ति) होना चाहिए।

8.7.2 रामराज्य की परिकल्पना

'उत्तरकाण्ड' में तुलसी ने राम के राज्य की जो अनुपम कल्पना की है, उसी को महात्मा गांधी ने 'आदर्श राज्य' कहा है। यह 'आदर्श राज्य की कल्पना तुलसी ने इसलिए की, क्योंकि उस समय राज्य शासन अत्यन्त भ्रष्ट हो रहा था, प्रजा बहुत संत्रस्त थी और जन जीवन नाना प्रकार के कष्टों से परिपूर्ण था। तुलसी की यह 'आदर्श राज्य' संबंधी विचारधारा भारतीय संस्कृति की नींव पर स्थित है, क्योंकि इसमें तुलसी ने 'राम–राज्य' का जो निरूपण किया है, वह निस्सन्देह सम्पूर्ण विश्व के लिए अनुकरीण है। तुलसी कहते हैं कि राम के राजसिंहासन पर बैठते ही तीनों लोकों में अपार हर्ष छा गया और सभी व्यक्तियों के समस्त शोक दूर हो गए। उस समय कोई भी किसी से बैर नहीं करता था, क्योंकि राम के प्रताप से विषमता का भाव जाता रहा था और सर्वत्र समता का भाव उत्पन्न हो गया था–

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।
सब नर करहि परस्पर प्रीती। चहहि स्वधर्म निरत श्रुति नीति।।
चारिउ चरन धर्म जग माही। पूरि रहा सपनेहूँ अघ नाही।।
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी।।

राम के राज्य में सभी लोग वर्णाश्रम धर्म का पालन करने लगे थे। सभी वेदमार्ग पर चलते थे और सदा सुखी रहते थे। उन्हें न किसी का भय था, न शोक था और न कोई रोग था। सभी लोक दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से मुक्त हो गए थे। सभी व्यक्ति परस्पर प्रेम करते थे। सभी अपने–अपने धर्म का पालन करते थे और वेदोक्त नीति का पालन करते हुए प्रेम सहित जीवन व्यतीत करते थे। उस समय धर्म अपने चारो चरणों सहित प्रतिष्ठित था। कोई भी व्यक्ति स्वप्न में भी पाप नहीं करता था। सभी स्त्री–पुरुष राम भक्ति में लीन रहते थे और सभी परम गति के अधिकारी हो गये थे।

सिव अब सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म–विचार–विसारद।।
सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम–पद पंकज नेहा।।

रामराज्य में कभी किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती थी अर्थात् सभी पूर्ण आयु भोगते थे। किसी को कोई पीड़ा नहीं थी। सभी के शरीद सुन्दर एवं स्वस्थ रहते थे। उसम समय न कोई दरिद्र था, न दुःखी था, न दीन था, न दुर्बुद्धि था और न लक्षणहीन, अपितु सभी लोग बुद्धिमान एवं शुभलक्षण सम्पन्न थे। सभी व्यक्ति दम्भरहित एवं धर्मरत थे। सभी दयावान, गुणवान, चतुर, पंडित और ज्ञानी थे। सभी कृतज्ञ थे और कोई भी व्यक्ति कपटी और धूर्त नहीं था।

अल्पमृत्यु नहीं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब निरुज सरीरा।।
नहि दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहि कोउ अबुध न लच्छन हीना।।
सब निर्दभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।।
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहि कपट सयानी।।

उस समय संसार भर में जड़ चेतन के अन्तर्गत काल, कर्म, स्वभाव और गुणों द्वारा किए हुए दुःख किसी को भी नहीं भोगने पड़ते थे। राम के उस राज्य की सुख–सम्पत्ति का वर्णन शारदा भी नहीं कर सकती, क्योंकि समस्त प्रजा जन बड़े उदार एवं परोपकारी थे। सभी नर नारी ब्राह्मणों के चरणों के दास थे। सभी पुरुष एक पत्नीव्रत का पालन करते थे और स्त्रियाँ भी मन, बचन, कर्म से पति के हित में लीन रहती थीं। रामराज्य में किसी को भी दण्ड नहीं दिया जाता था। दण्ड केवल सन्यासियों के हाथ में शोभा पाता था, प्रजा–जनों में कोई भेदभाव न था, केवल नृत्य के ही अनेक भेद प्रचलित थे और 'जीतो' शब्द केवल मन के लिए ही सुनने में आता था। वन में वृक्ष सदैव फूलते एवं फलते रहते थे। वहां हाथी और सिंह साथ–साथ विचरण करते थे। अन्य पशु और पक्षी भी अपना स्वाभाविक बैर भुलाकर परस्पर प्रेम से रहते थे। वन में पक्षियों के झुण्ड कलरव करते थे, निर्भय चुगते और आनन्द क्रीड़ा में लीन रहते थे। नाना प्रकार के पशु निडर होकर विचरण करते, चरते और आनन्द में मग्न रहते थे। सर्वत्र शीतल एवं सुगन्धित वायु धीरे–धीरे चलती थी। भौंरे फूलों का रस लेकर मधुर गुंजार करते थे। लता और वृक्ष मांगने पर तुरन्त पुष्प रस टपका देते थे। सभी गायें मनचाहा दूध देती थीं –

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहि एक सँग गज पंचानन।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)/Ladnun

खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।
कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा।।
सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा।।
लता बिटप मागे मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं।।

पृथ्वी सदैव खेती से हरी–भरी रहती थी। त्रेतायुग में सम्पूर्ण सतयुग जैसे आचरण होते थे। यह जानकर कि जगत् की आत्मा के भगवान राम ही आजकल राजा है, पर्वतों ने विविध प्रकार की मणियों भरी खानें प्रकट कर दी थी। सभी नदियां श्रेष्ठ, शीतल, निर्मल, स्वादिष्ट और सुखद जल लेकर बहती थीं। समुद्र अपनी मर्यादा में रहते थे और अपने–अपने तटों पर असंख्या रत्न डाल देते थे, जिन्हे मनुष्य सहज ही प्राप्त कर लेते थे। सभी तालाब कमलों से परिपूर्ण रहते थे। दसो दिशाएं अपने–अपने भाग में अत्यन्त प्रसन्न रहती थी। चन्द्रमा अपनी किरणें पृथ्वी पर फैलाकर कृषि आदि को पुष्ट करता था, सूर्य भी आवश्यकतानुसार धूप प्रदान करता था और मेघ मांगने पर जल देते थे।

ससि सम्पन्न सदा रह धरनी। त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी।।
प्रगटीं गिरिन्ह बिबिधि मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी।।
सरिता सकल बहहि बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी।।
सागर निज मरजादाँ रहहीं। डारहि रत्न तटन्हि नर लहहीं।।
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा।।

वस्तुतः रामराज्य तुलसी की विलक्षण कल्पना है, जो बहुत मोहक और प्रभावी है।

8.7.3 सन्त–असन्त–निरूपण

गोस्वामी तुलसीदास मर्यादावादी समाज सुधारक सन्त थे। वे एक ऐसे समाज की रचना करना चाहते थे, जिमसें सभी लोग वैदिक धर्म के अनुयायी हों, वर्णाश्रम का पालन करनेवाले हों, सभी सज्जन लोग वैदिक धर्म के अनुयायी हों, वर्णाश्रम का पालन करनेवाले हों, सज्जन और धर्म में रत होकर रामभक्त हों। इसीलिए आपने संतों एवं असंतों के लक्षणों का वर्णन करके यह समझाया है कि मानव को अधिक सतों के गुण धारण करके 'सज्जन' बनाना चाहिए और असन्तों अथवा असज्जनों के अवगुणों का परित्याग कर देना चाहिए। इसीलिए वे कहते हैं कि सन्त और असन्त में क्रमशः चन्दन और कुलाड़ी का साथ अन्तर देखा जाता है, क्योंकि कुल्हाड़ी तो चन्दन के वृक्षों को काटने का काम करती है, परन्तु चन्दन अपना गुण देकर उसे भी सुगन्धित बना देता है। इसिलिए चन्दन तो देवताओं के मस्तक पर चढ़ता है और जगत को प्रिय होता है, जबकि कुल्हाड़ी के मुख को यह दण्ड मिलता है कि उसको आग में तपाकर घन से पीटा जाता हैं।

संत असंत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई।।
संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता। अगनित श्रुति पुरान बिख्याता।।
संत असंतन्हि कै असि करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी।।
काटइ परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देह सुगंध बसाई।।

अतः संत लोग क्षमाशील होने के कारण देवों के समान पूज्य होते हैं और संसार भर को प्रिय होते हैं। वे कभी विषयों में लिप्त नहीं होते शील और सद्गुणों की खान होते हैं, सबसे समान भाव रखते हैं और अजातशत्रु होते हैं। वे सदैव मद रहित और बैरागी होते हैं तथा लोभ, अमर्ष, हर्ष और भय को त्याग कर जीवन बिताते हैं। उनका चित्त बड़ा कोमल होता है, वे दीनों पर दया करते हैं और मन–वचन–कर्म से छल–कपट–रहित होकर भगवान की भक्ति करते हैं। वे सबको मान–प्रतिष्ठा देते है और स्वयं मान–रहित रहते हैं। वे कामना रहित होते हैं और निष्काम रहकर सदैव भगवन्नाम जपते रहते हैं। वे शान्ति, वैराग्य, विनम्रता और मुदिता के घर होते हैं और शीतलता, सरलता और मित्रता का बर्ताव करते हैं। वे शर्म, इन्द्रिय–दमन, बारह प्रकार के नियम और नीति से कभी नहीं डिगते तथा वे कभी कठोर वचन नहीं बोलते। उनके लिए निन्दा और स्तुति दोनों समान होती हैं, उनका मन भगवचरणों में ही लीन रहता है, वे गुणों के धाम एवं सुखों की राशि होते हैं तथा भगवान को भी प्राणों के समान प्रिय हाते हैं।

तदनन्तर तुलसी ने असंतो एवं असज्जनों के लक्षणों का निरूपण करते हुए बतालाया है कि उनका साथ सदैव दुःखदाई होता है। उनके हृदय में सदैव अत्यधिक जलन बनी रहती है, क्योंकि वे पराया ऐश्वर्य देखकर सदैव जलते रहते हैं। वे जहां कहीं दूसरो की निन्दा सुनते हैं, वहां ऐसे प्रसन्न होते हैं, मानो उन्हें नवनिधियां प्राप्त हो गई हों। वे काम, क्रोध मद और लोभ में तत्पर रहते हैं, निर्दय, कपटी, कुटिल एवं पापों के घर होते हैं और अकारण सब किसी से बैर रखते हैं। जो उनके साथ भलाई करता है वे उसके साथ भी बुराई किया करते हैं। उनका लेन–देन दोनों व्यवहार झूठ से भरे रहते हैं। उनका झूठ ही भोजन और उनका चबैना भी झूठ ही होता है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ।।
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कंपिलहि घालइ हरहाई।।
खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी।।
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई।।
काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन।।
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों।।

असंत–असज्जन मोर की तरह मीठे बचन तो बोलते हैं, किन्तु उनका हृदय ऐसा कठोर होता है कि महाविषैले सर्प को भी खा जाते हैं और उन पर तनिक भी विष का प्रभाव नहीं होता। वे दूसरों से विद्रोह करते हैं, परस्त्री, पराया धन और परायी निन्दा में आसक्त रहते हैं तथा नीच एवं पापी होते हैं। वे नरदेह धारण करके भी राक्षस होते हैं। उनका लोभ ही ओढ़ना और लोभ भी बिछौना होता है। वे परस्त्री–गमन एवं पेट भरने में ही लीन रहते हैं। उन्हें यमपुर का डर नहीं होता। यदि वे किसी की बड़ाई सुनते हैं, तो लम्बी–लम्बी सांसे लेते हैं, मानो जुड़ी चढ़ आई हो और जब वे किसी पर विपत्ति देखते हैं, तो ऐसे सुखि होते है मानो स्संार भर के राजा हो गए हों, वे स्वार्थपरायण होते हैं, अपने कुटुम्बियों से भी विरोध करते हैं, काम एवं मोह में आसक्त रहते हैं और बड़े क्रोधी होते हैं। वे माता, पिता, गुरू और ब्राह्मण को नहीं मानते। वे स्वयं तो गये गुजरे होते हैं और दूसरों को भी नष्ट किया करते हैं। गुण उन्हें अच्छे नहीं लगते। वे अवगुणों के समुद्र होते हैं। वे मन्दबुद्धि एवं कामी होते हैं। वे वेदों के विदूषक और पराये धन के स्वामी होते हैं। वे ब्राह्मणों, देवों एवं परमेश्वर सभी से द्रोह रखते हैं, उनके हृदय में पाखण्ड और कपट रहते हैं तथा वे ऊपर से सुंदर वेष धारण किया रहते हैं। सज्जनों का साथ प्रत्येक दृष्टि से दुखदाई होता है।

8.8 उत्तरकांड में ज्ञान निरूपण

गोस्वामी तुलसीदास ने 'उत्तरकाण्ड' में ज्ञान और भक्ति का निरूपण बड़ी व्यापकता के साथ किया है। तुलसी का विचार है कि वैसे तो भक्ति और ज्ञान में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि दोनों ही संसार–जन्य कष्टों को दूर करते हैं परन्तु दोनों में पर्याप्त अन्तर भी है। जैसे, ज्ञान, बैराग्य, योग और विज्ञान ये सब पुरुष वर्ग के अन्तर्गत आते हैं और भक्ति स्त्रीवर्ग में आती है। पुरुष का प्रताप सब प्रकार से प्रबल होता है और स्त्री स्वभाव से ही दुर्बल एवं जड़ होती है। अतः जो पुरुष वैराग्यवान और धीरबुद्धि होता है वही स्त्री का परित्याग कर सकता है, परन्तु जो कामी, विषयों में लीन एवं भगवान् से विमुख रहते हैं वे नारी को त्याग नहीं सकते। बड़े–बड़े वैरागी एवं ज्ञानी मुनि भी मृगनयनी के चन्द्रमुख को देखकर विवश हो जाते हैं, क्योंकि यह नारी भगवान की माया का ही रूप होती है। यह पुराणों एवं संतों का मत है कि कभी एक स्त्री दूसरी स्त्री के रूप से मोहित नहीं होती और माया तथा भक्ति दोनों ही स्त्री रूपा है। इसीलिए भक्ति को माया नहीं मोहती। इसके साथ ही भक्ति तो भगवान की प्यारी है और माया एक नाचने वाली नारी है। इसीलिए सभी ज्ञानी–विज्ञानी लोग भक्ति की याचना किया करते हैं। परन्तु माया से मुक्त होने का साधन 'ज्ञान' भी है, जिसकी साधना करना अथवा जिसे प्राप्त करना अत्यन्त कठिन होता है।

तुलसी ने ज्ञान–मार्ग का निरूपण करते हुए उसके सम्पूर्ण अंगों का वर्णन 'ज्ञान–दीपक' के रूपक द्वारा किया है। तुलसी लिखते हैं कि यदि भगवान की कृपा से सात्त्विक श्रद्धा रूपी गाय हृदय रूपी घर में आकर निवास करे, अगणित कल्याणकारक जप, तप, व्रत, यम नियमादि रूपी हरी–भरी घास को चरे और फिर वह भाव रूपी बछड़ा पाकर पिन्हावे, निवृत्ति रूपी नोई से उसे बांधा जाय तथा निर्मल मन रूपी अहीर विश्वास के पात्र में दूध दुहने का कार्य करे। परम–धर्ममय दूध दुहकर निष्कामता रूपी अग्नि से उसे औटाया जाय। फिर क्षमा और सन्तोष रूपी पवन गर्म दूध को ठण्डा करे। तत्पश्चात् समता रूपी जामन देकर धृति उसे जमावे। तदनन्तर प्रसन्न रूपी मथने के बर्तन में डालकर विचार रूपी मथानी से, इन्द्रिय दमन रूपी खम्बे को आधार बनाकर तथा सत्य और प्रिय वाणी रूपी रस्सी से उस दही को मथकर निर्मल, सुभग एवं पवित्र वैराग्य रूपी मक्खन उसमें से निकाला जाय। फिर उस मक्खन को उबालने के लिए शुभाशुभ कर्मरूपी ईंधन द्वारा योग की अग्नि प्रकट की जाय। तब उसमें से ममता रूपी मैल के जल जाने पर ज्ञान रूपी घी शेष रह जाय और उस घी को बुद्धि ठण्डा करे। फिर यह विज्ञानरूपिणी बुद्धि स्वच्छ घी को लेकर चित्त रूपी दीपक तैयार करे और उस दीपक को समता रूपी दृढ़ दीवट पर रखे। तदन्तर कपास से जाग्रत, स्वप्त, सुषुप्ति नाम अवस्थाओं एवं सत्व, रज और तम तीनों गुण रूपी बिनोलों को निकालकर तुरीयावस्था रूपी रुई की सुंदर बड़ी बत्ती बनावे। फिर उस तेज राशि विज्ञानमय दीपक को जलावे, जिसके समीप जाते ही सम्पूर्ण मदादि पतंग जलकर भस्म हो जायें। तत्पश्चात् उस विज्ञानमय दीपक से निरन्तर 'सोअहमस्मि' (मैं वह हूँ) की अखण्ड वृत्ति रूपी प्रचण्ड लौ निकलती रहे। तभी उस दीपक से आत्मानुभवजन्य सुख रूपी प्रकाश चारोंओर फैलेगा, जिससे संसार के उत्पादक भेद

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)

और भ्रम का नाश हो जायेगा। ऐसे विज्ञानमय दीपक से प्रबल अविद्या का मोहादि तक मिट जाता है और प्रकाश पाकर बृद्धि हृदय रूपी घर मे बैठकर अविद्या की गाठ को खोल डालती है। जब यह गाठ खुल जाती है तभी जीवन कृतार्थ हो जाता है।

सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौं हरि कृपाँ हृदयँ बस आई।।
जप तप ब्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा।।
तेई तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ सिसु पाई पेन्हाई।।
नोई निबृति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा।।
परम धर्ममय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई।।
तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै। धृति सम जावनु देई जमावै।।
मुदिताँ मथै विचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी।।
तब मथ काढ़ि लेई नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता।।

इस तरह अज्ञान एवं अविद्या का विनाश ज्ञानरूपी दीपक द्वारा हो जाता है। परन्तु जिस समय यह अज्ञान की गांठ छूटने लगती है, उस समय माया अनेक विघ्न उपस्थित करती है। यह पहले तो बहुत सी ऋद्धिया–सिद्धियां भेजती है, जो आकर बुद्धि को लोभ दिखाती है। ये ऋद्धि–सिद्धि कलबल और छल करके ज्ञान दीप के पास जाती हैं और अपने अंचल की वायु से दीपक को बुझा देती हैं। यदि बुद्धि परम सयानी हुई, तो वह अनहित समझकर उनकी ओर दृष्टि नहीं करती। यदि उस मायाजन्य विघ्न से बुद्धि को बाधा न हुई, तब फिर देवता विघ्न डाला करते हैं। समस्त इन्द्रियों के द्वार इस हृदय रूपी घर के झरोखे हैं और प्रत्येक झरोखे पर इन्द्रियों के देवता धरना दिये बैठे रहते है। ये देवता जब विषय रूपी हवा का झोंका आता हुआ देखते है, तब हड़पूर्वक किवाड़ें खोल देते हैं और उससे विज्ञान दीप बुझ जाता है। जब विषय–समीर बुद्धि को बेचैन कर देती है, तब भला ज्ञान दीपक को कौन फिर से जला सकता है? तब फिर अज्ञानी होकर जीवन अनेक प्रकार के सांसारिक कष्ट भोने लगता है। इसीलिए माया को अत्यन्त दुस्तर कहा जाता है। इसी कारण 'ज्ञान' के बारे में कहना कठिन है, समझना कठिन है और साधना करना तो और भी कठिन है, क्योंकि 'घुणाक्षर न्याय' से यदि कभी सफलता भी मिल जाती है, तो फिर अनेक विघ्न उपस्थित हुआ करते हैं। इसीलिए ज्ञान के मार्ग को कृपाण की धार कहा जाता है, क्योंकि इस मार्ग से गिरते देर नहीं लगती। परन्तु जो इस ज्ञान मार्ग को निर्विघ्न निबाह ले जाता है वही अन्त में कैवल्य मुक्ति रूपी परंपद को प्राप्त कर लेता है।

ज्ञानपंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होई बहिं बारा।।
जो निर्विघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परमपद लहई।।

वस्तुतः इस प्रकार तुलसी ने ज्ञान मार्ग की जटिलता एवं दुरूहता का अत्यन्त रोचक एवं मार्मिक निरूपण किया है और यह सिद्ध किया है कि ज्ञान से मोक्ष तो मिलता है, परन्तु कितनी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। एक तो माया ज्ञानी पर अपना प्रभाव सरलता से स्थापित कर लेती है, क्योंकि ज्ञानी माया को अपने बल से जीतना चाहता है, तब माया भी बाधा डालने में अपना बल दिखाती है। दूसरे, साधक जैसे–जैसे कर्म, ज्ञान, साधनादि से अपने ऐश्वर्य, तेज, प्रताप आदि को बढ़ाता है, वैसे ही ही वैसे उसमें मान, मद आदि और भी प्रचण्ड रूप में बढ़ते जाते हैं। इससे वह ज्ञान मार्ग में सफल नहीं होता और देवताओं के उपद्रवों का शिकार बन जाता है। तीसरे, जैसे ही जीवन ज्ञान दीप के प्रकाश में अपनी अविद्या–तम का शिकार बन जाता है, ज्ञान–मार्ग द्वारा अपना कल्याण नहीं कर पाता। चौथे, ज्ञान प्राप्ति के लिए तुलसी ने जिस सात्विकी श्रद्धा, धर्माचरण– जप, तप, योग, यम, नियम, निवृत्ति, विश्वास, निर्मल मन, निष्काम भाव, संतोष, क्षमा, धृति, मुदिता, विचार, दम, सत्य, विमल, वैराग्य, विज्ञानरूपिणी बुद्धि आदि के द्वारा ज्ञान दीपक के तैयार होने का वर्णन किया है, उसके लिए कितनी अधिक साधना एवं कितने जटिल विधान की आवश्यकता होती है, तब कहीं ज्ञान की प्राप्ति होती है और फिर ज्ञान प्राप्त होने का पता लगते ही माया अपनी ऋद्धि–सिद्धि द्वारा जो भयंकर उत्पात करती है उनसे बचना कठिन है। कहा जा सकता है कि तुलसी ने उत्तरकांड में ज्ञान का विशद निरुपण किया है।

8.9 उत्तरकांड में भक्ति निरूपण

गोस्वामी तुलसीदास ने ज्ञान मार्ग की जटिलता एवं दुरूहता का निरूपण करके यह बताया कि भगवद्भक्ति ही वह साधना है, जिससे बिना प्रयत्न एवं प्रयास किए हुए ही संसार की मूल अविद्या का नाश हो जाता है। जेसे भोजन भूख मिटाने के लिए किया जाता है और उस भोजन को जठराग्नि पचा देती है, वैसे ही हरिभक्ति सुगम एवं सुखदाई है। फिर भला ऐसा कौन मूढ होगा जिसे यह भक्ति अच्छी न लगे। परन्तु यह भक्ति कैसी होनी चाहिए –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अविद्या नासा।।
भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचवह जठरागी।।
अति हरि भगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सोहाई।।

इसके लिए तुलसी ने लिखा है कि यह सेवक–सेव्य भाव की भक्ति होनी चाहिए अर्थात् अपने को सेवक और भगवान राम को सेव्य मानकर ही उनकी भक्ति करनी चाहिए। इस सेवक–सेव्य भाव की भक्ति के बिना संसार से उद्धार नहीं होता।

सेवक–सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।।

तुलसी की दृष्टि से यह भक्ति चिन्तामणि के समान है, क्योंकि राम भक्ति रूपी चिन्तामणि जिसके हृदय में दिन–रात ऐसा परम प्रकाश रहता है कि फिर उसे दीपक, घी, बत्ती आदि की आवश्यकता नहीं होती, मोह रूपी दरिद्रता उसके पास नहीं आती और लोभ रूपी पवन उसे कभी बुझा नहीं पाती। उससे प्रबल अविद्या का अन्धकार मिट जाता है, समस्त मदादि पतंग समुदाय हार जाते हैं और कामादि दुष्ट उसके पास नही फटकते। उसके लिए विष अमृत तुल्य हो जाता है और शत्रु मित्र हो जाते है। इस भक्ति रूपी चिन्तामणि के बिना संसार में कोई सुख नहीं पाता और समस्त मानस रोग इसी से नष्ट हो जाते हैं। जिसके हृदय में यह भक्ति चिन्तामणि रहती है उसे स्वप्न में भी लेशमात्र दुःख नही भोगना पड़ता।

यह भक्ति रूपी चिन्तामणि प्राप्त कैसे होती है? इसके लिए तुलसी कहते है कि वैसे तो यह चिन्तामणि संसार में प्रकट है, फिर भी रामकृपा के बिना उसे कोई प्राप्त नहीं कर पाता। इसकी प्राप्ति के उपाय भी बड़े सुगम हैं, परन्तु हतभागी लोग उन्हें भी ठुकरा देते हैं। अब उपाय बतलाते हुए तुलसी कहते है कि वेद पुराण पवित्र पर्वत है, नाना प्रकार की रामकथाएं उन पर्वतों की सुंदर–सुंदर खानें हैं। सज्जन इन खानों के मर्म को जानने वाले हैं। सज्जनों की बुद्धि ही कुदाली है। ज्ञान और वैराग्य दो नेत्र हैं। जो प्राणी भाव सहित इसे खोजता है वह निश्चय ही सब सुखों की खान इस भक्ति रूपी चिन्तामणि को प्राप्त कर लेता है। यहाँ 'ब्रह्म' ही क्षीरसागर है, 'ज्ञान', मंदराचल पर्वत है और 'सन्त' देवता है, जो उस सागर का मंथन करके कथा रूपी अमृत निकाल देते हैं, जिसमें 'भक्ति' की ही मिठास भरी होती है। अतएवं जो वैराग्य रूपी ढाल लेकर ज्ञान रूपी तलवार से मद–मोह रूपी शत्रुओं को मारकर विजय प्राप्त करते हैं, वह 'भगवान की भक्ति' ही है–

ब्रह्म पयोनिधि मन्दर, ज्ञान सन्त सुर आहि।
कथा सुधा मथि काढ़हि, भगति मधुरता जाहि।।
विरति चर्म असि ज्ञान मद, लोभ–मोह–रिपु मारि।
जय पाइअ सो हरि भगति, देखु खगेस विचारि।।

इसी भक्ति के बारे में गोस्वामीजी ने भगवान् राम के मुख से अपने पुरजनों के सम्मुख भी यही कहलाया है कि जो लोग इहलोक और परलोक दोनों में सुख चाहते हैं, उन्हें यह दृढ़ता के साथ समझ लेना चाहिए कि यह भक्ति मार्ग अत्यन्त सुगम और सुखदायक है। वेद और पुराणों में भी ऐसा ही कहा गया है, क्योंकि ज्ञान का मार्ग तो अत्यन्त कठिन है, उसकी सिद्ध में अहंकारादि अनेक विघ्न आते हैं।

उसका साधन भी कठिन है, फिर उसमें मन के लिए कोई आधार भी नहीं होता। अनेक कष्ट झेलने पर कोई मुश्किल से ही उस मार्ग में सफल होता है, फिर भी भक्तिहीन होने से वह भगवान को भी प्रिय नहीं होता। भक्ति स्वतंत्र है और सभी सुखों की खान है, किन्तु बिना सत्संग के इसे कोई पा नहीं सकता। साथ ही बिना पुण्य समूह के सन्त भी नहीं मिलते। वैसे सत्संग संसार के कष्टों का अन्त करनेवाला होता है–

जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू।।
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई।।
ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका।।
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्ति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ।।
भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहि प्रानी।।
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता।।

तत्पश्चात् तुलसी ने भक्त के उन आचरणों का भी उल्लेख किया है, जिनके फलस्वरूप भगवान अपने भक्त के वश में रहते हैं। यहाँ श्रीराम कहते हैं कि उसे अनारम्भ अर्थात् सभी प्रकार के उद्योगों का परित्याग करने वाला होना चाहिए, अनिकेत अर्थात् घर हीन होना चाहिए, अमानी अर्थात् मान–रहित होना चाहिए, अनघ अर्थात् निष्पाप होना चाहिए, अरोष अर्थात् क्रोधहीन होना चाहिए, दक्ष और विज्ञानी होना चाहिए, उसका प्रेम सदैव सज्जनों के सत्संग में होना चाहिए, उसे स्वर्गपर्यन्त सम्पूर्ण विषयसुख और मोक्ष को भी तृण के समान तुच्छ समझना चाहिए, उसे न तो कभी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हठ करनी चाहिए और न कभी शठता, सभी प्रकार के कुकर्मों से सदैव दूर रहना चाहिए। इस प्रकार जो भक्त मेरे गुण समूह और नाम मे लीन रहता है, ममता मोह को त्याग देता है, वह परानन्द राशि को प्राप्त होता है और उसका सुख वही जानता है।

यही बात मुनि बशिष्ठ भी कहते हैं कि जप, तप, नियम, योग, वर्णाश्रम–धर्म, वेदोक्त अनेक शुभकर्म, ज्ञान, दया, धर्म, तीर्थस्थान आदि जितने भी धर्म–कर्म वेदों और सज्जनों ने बताये हैं तथा अनेक शास्त्र, वेद और पुराण पढ़ने एवं सुनने का एक ही फल है कि भगवान के चरणों में निरन्तर प्रेम होना चाहिए। यही समस्त साधनों का सुन्दर फल है। भला कही मैले से धोने से मैल छूट सकता है? क्या जल को मथेन से कोई घी पा सकता है। अतः बिना प्रेमाभक्ति रूपी जल के अन्तःकरण का मैल कभी दूर नहीं होता–

जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा।।
ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लहि धर्म कहत श्रुति सज्जन।।
आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका।।
तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर।।
छूटइ मल कि मलहि के धोएँ। घृत कि पाव कोइ बारि बिलोएँ।।
प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई।।
सोइ सर्बग्य तग्य सोइ पंडित। सोइ गुन गृह बिग्यान अखंडित।।
दच्छ सकल लच्छन जुत सोई। जाकें पद सरोज रति होई।।

इसी कारण वही सर्वज्ञ है, वही तत्वज्ञ है, वहीं पंडित है, वही गुणों का घर है, वही अखण्ड विज्ञानी है और वही चतुर एवं समस्त शुभ लक्षणों ये युक्त है, जिसका प्रेम भगवान के चरण कमलों में हैं। इसिलिए भगवान राम ने काकभुशुंडि से भी कहा है कि "अब माया से उत्पन्न सभी भ्रम तुमको नहीं व्यापेंगे। तुम मुझे अनादि, अजन्मा, मायिक गुणों से रहित और दिव्य गुणें की खान ब्रह्म समझना। हे काक! सुनो, मुझे भक्त सदैव प्रिय हैं, ऐसा विचार कर तन, वचन और मन से मेरे चरणों में अटल प्रेम करना, इतना ही नहीं मैं तुझसे बराबर सत्य कहता हूँ कि मुझे सेवक के समान कोई भी प्रिय नहीं है। भक्ति हीन ब्राह्मण ही क्यों न हो, वह मुझे कदापि प्रिय नही है और भक्तिवाला अत्यन्त नीच भी प्राणी क्यों न हो, वह मुझे प्राणों के समान प्रिय है ऐसी मेरी आदत है। इसलिए मैं तुझसे सत्य कहता हूँ कि पुरुष हो या नपुंसक, स्त्री हो या चराचर कोई जीव, जो भी व्यक्ति कपट छोड़कर मुझे सर्वतोभावेन भजता है, वही मुझे परम प्रिय है। मुझे पवित्र सेवक प्राणप्रिय होता है। ऐसा विचार कर सब आशा–भरोसा छोड़कर मेरा भजन करो। यह है तुलसी की अचल एवं अटल भक्ति, जिसका विशद निरूपण उत्तरकाण्ड में किया गया है। यहां तुलसी की विशद मानवतावादी, सर्वकल्याणकारी दृष्टि परिलक्षित होती है।

8.10 उत्तरकांड में दार्शनिक विचार

उत्तरकाण्ड में तुलसी के दार्शनिक विचार भी अत्यन्त स्पष्टता, गुरुता एवं मार्मिकता के साथ व्यक्त हुए हैं। तुलसी ने सर्वप्रथम 'राम' को ही यहाँ ब्रह्म कहा है, जो नर रूप धारण करके रघुकुल के राजा बने हैं।

परमात्मा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल भूषन भूपा।।

तुलसी के ये ही राम सर्वत्र व्यापक हैं, ब्रह्म हैं, माया आदि विकारों से रहित हैं, वाणीपति हैं, माया मोह से परे हैं और परमेश्वर हैं। वे ही व्यापक और व्याप्त हैं, अखण्ड हैं, अनन्त हैं, अखिल अमोघ शक्तिसम्पन्न हैं, षडैश्वर्यसम्पन्न निर्गुण हैं, अखिल ब्रह्माण्डादि से भी बड़े हैं, वाणी ओर इन्द्रियों से परे हैं, सर्वदर्शी हैं, निन्दा व दोष से रहित हैं, अजित हैं, ममता रहित हैं, निराकार हैं, मोह रहित हैं, सुख की राशि हैं, प्रकृतियों से परे हैं, सर्वसमर्थ हैं, सर्वउरवासी हैं, चेष्टा रहित हैं, विकारहीन हैं, अविनाशी हैं और भक्तों के लिए नृप का शरीर धारण करके साधारण मनुष्यों के समान पावन चरित्र करते हैं। वे सीतापति अखण्ड ज्ञानस्वरूप हैं। माया उनके ही वश में रहती है। वे सर्वथा स्वतंत्र हैं और एक हैं। वे भक्तवत्सल भी हैं। इतना ही नहीं, तिर्यक, देव मनुष्य, असुर आदि सम्पूर्ण जड़, चेतन जीवों के वे ही उत्पादक हैं और सभी जीवों पर सदैव समान दया भाव रखते हैं, परन्तु जो सर्वस्व त्याग कर उनकी शरणागति में जाता है उसे वे अधिक प्रेम करते हैं। वे अनन्त कामदेवों के समान सुन्दर शरीरधारी हैं, अनन्त कोटि दुर्गाओं के समान असंख्य शत्रुओं के विनाशक हैं, असंख्य इन्द्रों के समान उनका भोग विलास है और असंख्य आकाशों के समान वे अनन्त विस्तार वाले हैं। असंख्य पवनदेवों के समान उनका विशाल बल है। असंख्य सूर्यों के समान उनका प्रकाश है। असंख्य चन्द्रमाओं के समान वे सुन्दर, शीतल एवं शयनकारी है। असंख्य कालों के समान वे अत्यन्त दुस्तर, दुर्गम हैं और असंख्य अग्नियों के समान वे दुराधर्ष और षडैश्वर्यसम्पन्न हैं। वे प्रभु असंख्य पातालों के समान अथाह हैं तथा असंख्य यमों के समान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विकराल हैं। उनका स्मरण अनन्त कोटि तीर्थों के समान पवित्र करने वाला हैं और सम्पूर्ण पाप समूह का नाशक है। वे राम करोड़ो हिमालयो के समान अचल एव अगणित समुद्रो के समान गहरे है। वे असख्य कामधेनुओ के समान समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। असंख्य शारदाओं के समान उनमें चतुरता है। असंख्या ब्रह्माओं के समान उनमें सृष्टि रचना की निपुणता है। करोड़ों विष्णुओं के समान वे पालनकर्त्ता हैं। असंख्य रुद्रों के समान वे संहारकर्ता हैं। असंख्य कुबेरों के समान वे धनवान हैं। करोड़ों मायाओं के समान वे माया प्रपंच के आधार हैं। असंख्य शेषों के समान ब्रह्माण्डों का बोझ धारण करने वाले हैं और कहाँ तक कहा जाय, जगदीश, राम, सीमा और उपमा से रहित है। इस प्रकार तुलसी ने ब्रह्म राम का अत्यन्त विस्तारपूर्वक निरूपण किया है।

दूसरे 'जीव' के बारे में तुलसी का विचार यह है कि जीवन ईश्वर का अंश है, अविनाशी है, चेतन है, स्वभावतः निर्मल है और सुखराशि है। परन्तु माया के वश में होते ही यह तोते और बन्दर की तरह अपने ही से बँध जाता है। जबसे जड़ माया और चेतन जीव का गठबन्धन हुआ है, तभी से यह जीव संसारी हो गया है। अब जब तक इसकी गाँठ नहीं छूटती तब तक यह सुखी नहीं हो सकता–

ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।
सो माया बस भयेउ गुसाई। बंध्यो कीर मरकट की नाई।।
तब ते जीव भएउ संसारी। छूट न ग्रन्थि न होई सुखारी।।

अतः जड़ चेतन सहित जितने भी जीव हैं वे सब माया के वशीभूत हैं। यदि सभी जीवों में एकता अखण्ड ज्ञान रहे, तो फिर ईश्वर और जीव में भेद कहाँ रह सकता है? परन्तु जब ईश्वर की करुणा होती है, तब इस बड़े भाग्य से मनुष्य शरीर प्राप्त होता है। यह मनुष्य का शरीर ही जीवन के लिए भवसागर पार करने के लिए बेड़ा है। भगवान की कृपा अनुकूल पवन है और सदगुरू दृढ़ नाव का कर्णधार है। इतना जानकर भी जो जीव भवसागर से नही पार होता, वह कृतघ्न है, मंदबुद्धि है और आत्महत्या करने वालों की गति को प्राप्त होता है। भवसागर से पार होने के लिए राम कथा का नित्य श्रवण करना सबसे सरल उपाय है। अतः संसार में फिर ऐसा कौन कान वाला होगा जिसे राम का चरित्र अच्छा न लगे। जिनको राम कथा नहीं भाती, वे जीव जड़ हैं और अपनी आत्मा की हत्या करने वाले हैं। यही कारण है कि हजारो मनुष्यों में से कोई एक धर्मव्रत का पालन करने वाला होता है। संसार में ब्रह्म में लीन होने वाले विज्ञानी जीव का मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। इसके अतिरिक्त धर्मात्मा, वैरागी, ज्ञानी, जीवनमुकत और ब्रह्मलीन विज्ञानी जीवों में से भी यह प्राणी मिलना और भी दुर्लभ है, जो मदपाश रहित रामभक्ति में परायण हो। इसी कारण तुलसी की दृष्टि में रामचन्द्र के भजन बिना यदि कोई जीव निर्वाण प्राप्त करना चाहता है तो वह ज्ञानी भी बिना पूँछ एवं सींग का पशु है। इसीलिए तुलसी फिर करते है कि मनुष्य शरीर के समान कोई शरीर नहीं है। चर–अचर सभी जीवन इसकी याचना करते हैं, यह नरक, स्वर्ग तथा मोक्ष की सीढ़ी है और ज्ञान, वैराग्य, भक्ति और कल्याण का देने वाला है। परन्तु मनुष्य तन पाकर भी जो जीवन भगवान का भजन नहीं करते, किन्तु विषयों में अनुरक्त हो जाते हैं, वे मन्द ही नहीं अत्यन्त मंद है और वे पारसमणि को हाथ से फेंक कर उसके स्थान पर काँच का टुकड़ा उठा लेते हैं।

तीसरे, 'संसार' के बारे में तुलसी का यह विचार है कि सारा संसार और इसके चराचर जीव सब माया से सम्पन्न हुए हैं।

¨मम माया संभव संसारा। जीव चराचर विविध प्रकारा।।

यह भगवान की माया ही अनेक ब्रह्माण्ड एवं अनेक लोकों की रचना करती है। इस जगत की विलक्षता का वर्णन करते हुए काकभुशुण्डि कह रहे हैं कि मैंने भगवान के उदर में कई विलक्षण ब्रह्माण्ड देखे, उन ब्रह्माण्डों में भी अनेक विलक्षण लोक देखे, जिनमें करोड़ों ब्रह्मा और शिव, अगणित तारागण, सूर्य और चन्द्रमा, अगणित लोकपाल, अगणित यम, अगणित काल, अगणित विशाल पर्वत और विस्तृत पृथ्वी, असंख्य समुद्र, नदी तालाब और वन देखे, जिनका आर पार नहीं था। और भी विचित्र सृष्टि का विस्तार देखा। देवता, मुनि, सिद्ध, नाग, नर, किन्नर और जड चेतन सहित चारों प्रकार के जीव भी देखे। जो कभी न देखा था, न सुना और जो मन में भी समा सके, वह सब अपूर्व आश्चर्य देखा। प्रत्येक लोक में भिन्न–भिन्न विधाता, भिन्न–भिन्न विष्णु, शिव, मनु, दिग्पाल, मनुष्य, गंधर्व, भूत बेताल, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, ब्याल, नाना जाति के देवता और दैत्य तथा विभिन्न जाति के जीव भी देखे। अनेक पृथ्वी, नदी, समुद्र, तालाब, पर्वत और पंचभौतिक सृष्टि वहां अन्य ही प्रकार की थी। प्रत्येक भुवन में पृथक–पृथक अवधपुरी, सरयू, नर–नारी, दशरथ, कौशल्या, भरतादिक चारों भाई भी देखे और प्रत्येक ब्रह्माण्ड में मैं रामावतार और उनकी बाल–केलि देखता फिरा। इस तरह भगवान की माया ही संसार की जननी है। यहाँ कोई भी ऐसा नही है, जिसे मान–मद ने पीड़ा रहित छोड़ा हो, युवावस्था के ज्वर ने जिसे संतृप्त न किया हो, ममत्व ने जिसका नाश न किया हो, मत्सर ने जिसके कलंक न लगाया हो और शोकरूपी पवन ने जिसे हिलाया न हो? यहाँ किसको चिन्ता रूपी साँपिन ने नहीं खाया है, किसे माया नहीं व्यापी, किस धैर्यशाली के शरीर रूपी लकड़ी में मनोरथ रूपी घुन नही लगा तथा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पुत्रेषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा ने किसकी बुद्धि मलिन नहीं की? इस प्रकार इस जगत में माया का परिवार बड़ा बलवान और असख्य है। इससे ब्रह्मा और शिव भी डरते रहते हैं और का तो कहना ही क्या?

'मोक्ष साधन' के बारे में तुलसी का स्पष्ट मत है कि ज्ञान मार्ग द्वारा कैवल्य परमपद या मोक्ष पाना अत्यन्त दुर्लभ है, परन्तु राम भजन के द्वारा स्वतः इच्छा नर होने पर भी यह प्राप्त हो जाता है। जैसे, बिना भूमि के जल नहीं रह सकता, वैसे ही बिना भगवद्भक्ति के मोक्ष सुख नहीं मिलता। इसीलिए तुलसी का मत यह है कि बड़े–बड़े चतुर व्यक्ति का निरादर करके भक्ति पर लुभाए रहते हैं, क्योंकि भक्ति से बिना प्रयत्न और प्रयास के ही संसार की मूल अविद्या का विनाश हो जाता है। वह भक्ति भी सेवक–सेव्य–भाव की 'दास्य' भक्ति होनी चाहिए अर्थात् उन भगवान राम के चरणों में अचल भक्ति होनी चाहिए, जो चेतन के जड़ और जड़ को चेतन करने में सर्वथा समर्थ हैं। यह भक्ति जिसे प्राप्त हो जाती है उसके हृदय में निरन्तर परम प्रकाश विद्यमान रहता है, वहां मोह रूपी दरिद्रता आ नहीं सकती ओर लोभ रूपी पवन उसे बुझा नहीं पाती। उसकी अविद्या का अन्धकार मिट जाता है और कामादि दुष्ट उसके पास नहीं आते यह भक्ति सदैव सन्तों के सत्संग से मिलती है। साथ ही सद्गुरू के वचनों में दृढ़ विश्वास, विषयों से पूर्ण वैराग्य और श्रद्धा के उदय होने से भक्ति रूपी संजीवनी प्राप्त होती है, जो जीवों के सम्पूर्ण मानस रोगों का नाश कर देती है। यह राम भक्ति कब आती है? तुलसी कहते हैं जब मन निरोग हो जाता है, हृदय में वैराग्य रूपी बल बढ़ जाता है, उत्तम बृद्धि रूपी भूख नित्य नवीन होकर बढ़ती जाती है, विषयों की आशा रुपी दुर्बलता जाती रहती है और जब प्राणी निर्मल ज्ञान रूपी जल से स्नान करने लगता है, तभी उसके हृदय में राम भक्ति का उदय होता है। मोक्ष के लिए एकमात्र भक्ति ही सबसे बड़ा साधन है।

कहेउँ ग्यान सिद्धांत बुझाई। सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई।।
राम भगति चिंतामनि सुंदर। बसई गरुड़ जाके उर अंतर।।
परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती।।
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा।।
प्रबल बिद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई।।
खल कामादि निकट नहिं जाहिं। बसइ भगति जाके उर माहीं।।
गरल सुधसम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई।।
ब्यापहि मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी।।

8.11 उत्तरकांड में सामाजिक चित्रण

तुलसी ने कलियुग के वर्णन के माध्यम से यहां सामाजिक स्थिति का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है। तुलसी का कथन है कि इस समय सभी सद्ग्रंथ लुप्त हो रहे हैं, पाखण्डियों ने अपनी बुद्धि से गढ़–गढ़कर बहुत से मार्ग बना लिए हैं, सब लोग मोह के वश में हो गये हैं और शुभ कर्मों को लोभ ने डस लिया है। चारों वर्णों एवं चारों आश्रमों के धर्म नहीं रह गये हैं और सब स्त्री–पुरुष वेद के विरोध में लगे रहते हैं। ब्राह्मण वेदों के बेचनेवाले और राजा प्रजा को खा जानेवाले हो गये हैं। कोई भी वेद की आज्ञा नहीं मानता, जिसे जो अच्छा लगता है, उसी को वेद मार्ग कहता है और जो गाल बजाता है वहीं पण्डित कहलाता है। जिसके कार्यों का मूल ही मिथ्या है और जो ऐसे कार्यों एवं दम्भों में अनुरक्त है उसी को सब सन्त कहते हैं। जो पराया धन हरण करे, वही चतुर कहलाता है, जो दम्भ करे वहीं बड़ा आचारी है और जो झूठ बोले तथा उस झूठ को हँसी–दिल्लगी समझे वही बड़ा गुणवान कहलाता है। जो शुद्धाचरण, सदाचार और आचर–विचार से हीन है तथा वेदमार्ग का परित्याग किए हुए हैं, वे ही ज्ञानी और वैरागी कहलाते हैं। जिनके बड़े–बड़े नाखून एवं बड़ी–बडी जटाएं हैं वे ही तपस्वी कहलाते हैं।

बरन धर्म नहि आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत अब नर नारी।।
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहि मान निगम अनुसासन।।
मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।।
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई।।
सोइ सयान जोपरधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी।।

जो अमंगल वेश और अमंगल आभूषण धारण करें तथा जो मद्य, मांस आदि भक्ष्याभक्ष्य खाते हैं वे ही योगी और सिद्ध पुरुष माने जाते हैं, उनकी ही मान्य प्रतिष्ठा होती है और वे ही पूज्य माने जाते हैं। जो अपकारी एवं चुगलखोर हैं, उनका ही बड़ा महत्व है और वे ही प्रतिष्ठा के योग्य माने जाते हैं। जो मन, कर्म, वचन से झूठी डींग मारा करते हैं वे ही वक्ता माने जाते हैं। सभी मनुष्य स्त्री के पूरे वश में होकर नट के बन्दर की तरह नाचते–फिरते हैं। ब्राह्मणों को

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शुद्र ज्ञानोपदेश करते हैं ओर जनेऊ डालकर कुत्सित दान लेते हैं। सभी मनुष्य काम, क्रोध और लोभ में तत्पर हो गये हैं और देवता, ब्राह्मण, वेद और सतों का विरोध करते हैं। सुदर गुणधान एव सुदर रूप सम्पन्न पति को छोड़कर अभागिन स्त्रियां पर–पुरुष के साथ रति करती हैं। सुहागिन स्त्रियाँ तो आभूषण हीन रहती हैं और विधवाओं के नित्य नये श्रृंगार होते हैं। गुरू और शिष्य का संबंध अन्धे और बहिरे जैसा हो गया है, क्योंकि शिष्य सुनता नहीं और गुरू देखता नहीं। गुरू शिष्यों का धन तो हरण करते हैं, किन्तु उनका शोक हरण नहीं करते। माता–पिता बालकों को पास बुलाकर पेट भरने का धर्म सिखाते हैं। जो परस्त्री में रत, कपट, चतुर, मोह–द्रोह–ममता में लिपटे हुए हैं वे ही मनुष्य अभेद वक्ता ज्ञानी कहलाते हैं। आप तो गये बीते हैं ही और जो कोई सन्मार्ग का प्रतिपालन करता हैं उसे भी वे नष्ट करते हैं। तेली, कुम्हार, चाण्डाल, भील, बहेलिए, कोल और कलवार जो वर्णों में नीच एवं अधम हैं, वे स्त्री मरने पर अथवा सम्पत्ति के नष्ट हो जाने पर सिर मुँडाकर सन्यासी हो जाते हैं और ब्राह्मण निरक्षर, लोभी, कामी, सदाचार–हीन, दुराचारी, शठ और नीच जाति की व्यभिचारिणी स्त्रियों के स्वामी हो गये हैं।

पर त्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने।।
तेइ अभेदबादी ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर।।
आपु गए अरु तिन्हहू घालहिं। जे कहुँ सत मारग प्रतिपालहिं।।
कल्प कल्प भरि एक एक नरका। परहिं जे दूषहिं श्रुत करि तरका।।
जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा।।
नारि मुई गृह संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं सन्यासी।।

शुद्र अनेक प्रकार के जप, तप, व्रत करते हैं तथा व्यास–गद्दी पर बैठकर पुराण कहते हैं। सभी लोग वर्णसंकर हो गये हैं और भिन्न–भिन्न मार्ग पर चलने लगे हैं। इसीलिए सभी लोग दुःख, भय, रोग, शोक और वियोग से कष्ट पा रहे हैं। मोह के वशीभूत लोग वैराग्य और विवेकयुक्त भगवद्भक्ति तथा वेदसम्मत मार्ग पर नहीं चलते और मोहवश अनेक मनमाने मार्ग कल्पित करके उन पर चलते हैं। लोग कुलीन एवं पतिव्रता स्त्री को निकाल देते हैं और मर्यादा त्याग कर दासी को घर में रख लेते हैं। जब से सुसुराल प्यारी लगी है तबसे कुटुम्बी शत्रु रूप हो गये हैं। राजा पाप रत हो गये हैं, उनमें धर्म नहीं रहा और नित्य प्रजा को झूठा एवं निरपराध दण्ड देते हैं। मलिन होने पर भी धनी कुलीन माने जाते हैं। जनेऊ पहन कर लोग 'द्विज' बन जाते हैं और केवल नंगे रहने वाले 'तपस्वी' कहलाते हैं। जो व्यक्ति वेद और पुराणों को नहीं मानता, वही सच्चा भगवद्भक्त और सन्त कहलाता है। कवियों के झुण्ड के झुण्ड दिखाई देते हैं, पर संसार में दाता नहीं, सुना भी नहीं जाता। गुण में दोष लगाने वाले बहुत हैं, किन्तु गुणी कोई भी नहीं दिखाई देता है। यहां बार–बार अकाल पड़ते हैं और अन्न के बिना सब लोग दुःखी होकर मरते हैं। सर्वत्र कपट, हठ, दम्भ, द्वेष, पाखण्ड, मान, मोह, काम, मद आदि व्याप्त हो गए हैं। मनुष्य जप, तप, यज्ञ, व्रत, दान आदि धर्म तामसी वृत्ति से करते हैं। देवता पृथ्वी पर जल नहीं बरसाते, बोने पर भी धान नहीं जमता। स्त्रियां सदैव बालों को ही आभूषण समझ कर उन्हें बढ़ाने एवं संवारने में लगी रहती हैं, उन्हें भूख बहुत सताती है और धन हीन एवं दुखी रहती हैं, फिर भी ममत्व अधिक रहता है। मनुष्य रोगों से दुःखी हैं, कहीं सुख–भोग नहीं रहा है और वे अकारण ही अभिमान और विरोध करते हैं। मानवों की आयु बहुत थोड़ी अर्थात् दस, पांच, पन्द्रह, या पचास वर्ष रह गई है। परन्तु गर्व यह है कि कल्पांत में भी हमारा नाश नहीं होगा। कहीं भी न संतोष है, न विचार और न शीतलता। ईर्ष्या, कठोर एवं कटु वचन तथा लालच सर्वत्र भर गया है और समता चली गई है। सब लोग वियोग एवं विशेष शोक से मर रहे हैं। वर्णाश्रम धर्म के आचरण उठ गये हैं। दम, दान, दया, ज्ञान एवं बुद्धि का अभाव हो गया है, मूर्खता एवं वंचकता अत्यधिक बढ़ गई है। स्त्री–पुरुष सभी शरीर के पालन–पोषण में लगे रहते हैं और दूसरों की निन्दा करने वाले ही संसार में फैले हुए हैं। इस प्रकार यह कलियुग पाप एवं अवगुणों का घर है। परन्तु इसमें एक बहुत बड़ा गुण यह है कि अन्य युगों में जो लोग योग, यज्ञ, पूजन आदि से गति पाते थे वहीं गति अब केवल भगवान का नाम लेने से ही प्राप्त हो सकती है। इसी कारण कलियुग के समान कोई और दूसरा युग नहीं है, क्योंकि इसमें भगवान के निर्मल गुणों का ज्ञान करने से ही मनुष्य अनायास भवसागर से पार हो जाता है।

इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड में दिन प्रतिदिन परिवर्तित होने वाले समाज का अत्यन्त जीता–जागता चित्र अंकित किया है, जो बहुत कुछ आज के यथार्थ जीवन की ओर संकेत कर रहा है, बदलते हुए मूल्यों को प्रकट कर रहा है, बदलती हुई मानव–मनोवृत्तियों का परिचायक है, परिवर्तित आचार–विचारों को बता रहा है, दूषित वातावरण की ओर इंगित कर रहा है, बदलती हुई सामाजिक मान्यताओं का बोध करा रहा है, परिवर्तित मानवीय दृष्टिकोण को समझा रहा है, बदलती हुई धार्मिक भावनाओं का परिचय दे रहा है, परिवर्तित पारिवारिक सम्बन्धों का ज्ञान करा रहा है, बदलती हुई राजनीतिक स्थिति का ज्ञान करा रहा है और जो हमें परिवर्तित सांसारिक गतिविधियों की ओर संकेत कर रहा है। इस आधार पर आज हम यह दृढ़ता के साथ कह सकते हैं कि

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तुलसी कोई साधारण कवि न थे, वरन् भविष्यद्रष्टा थे, क्रान्तदर्शी थे और भगवद्भक्ति सम्पन्न मनीषी सन्त थे।'' उन्होंने 'रामचरितमानस' के उत्तरकांड के माध्यम से जीवन, जगत, समाज, जीव, माया, शील, गुण, व्यवहार, नीति, लोग, धर्म, मनुष्य आदि के विषय में जो विचार प्रकट किए हैं, वे मूल्यवान और अनुकरणीय तो हैं ही, वर्तमान संदर्भों में बहुत प्रासंगिक भी हैं। वस्तुतः तुलसीदास लोकमानस और जनजीवन का व्यापक चित्रण करनेवाले कुशल चितेरे हैं।

8.12 मूलपाठ एवं महत्त्वपूर्ण व्याख्याएं

8.12.1 मूलपाठ

दोहा– रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग।
जहँ तहँ सोचहि नारी नर कृस तन राम बियोग।।
सगुन होहि सुंदर सकल मन प्रसन्न सब केर।
प्रभु आगमन जनाव जनु नगर रम्य चहुँ फेर।।
कौसल्यादि मातु सब मन अनंद अस होइ।
आयउ प्रभु श्री अनुज जुत कहन चहत अब कोइ।।
भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहि बार।
जानि सगुन मन हरष अति लागे करन बिचार।।

रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा।।
कारन कवन नाथ नहि आयउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ।।
अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिन्दु अनुरागी।।
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहीं लीन्हा।।
जौं करनी समुझे प्रभु मोरी। नहि निस्तार कलप सत कोरी।।
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ।।
मोरे जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहि राम सगुन सुभ होइ।।
बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना।।
दोहा– राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत।। 1(क)
बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात।। 1(ख)

देखत हनूमान अति हरषेउ। पुलक गात लोचन जल बरषेउ।।
मन महँ बहुत भाँति सुख मानी। बोलेउ श्रवन सुधा सम बानी।।
जासु बिरहँ सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन गन पाँती।।
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता। आयउ कुसल देव मुनि त्राता।।
रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता सहित अनुज प्रभु आवत।।
सुनत बचन बिसरे सब दूखा। तृषावंत जिमि पाइ पियूषा।।
को तुम्ह तात कहाँ ते आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए।।
मारुतसुत मैं कपि हनुमाना। नामु मोर सुनु कृपानिधाना।।
दीनबंधु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर।।
मिलत प्रेम नहिं हृदयँ समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता।।
कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहि राम पिरीते।।
बार बार बूझी कुसलाता। तो कहुँ देउँ काह सुनु भ्राता।।
एहि संदेस सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउँ कुछ नाहीं।।
नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही।।
तब हनुमंत नाई पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कहु कपि कबहुँ कृपाल गोसाईं। सुमिरहि मोहि दास की नाईं।।
छंद– निज दास ज्यों रघुबंसभूषन
कबहुँ मम सुमिरन कर्‌यो।
सुनि भरत बचन बिनीत अति कपि पुलकि तन चरननन्हि पर्‌यो।।
रघुबीर निज मुख जासु गुन गन कहत अब जग नाथ जो।
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सदगुन सिंधु सो।।
दोहा– राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि हरष न ह्रदयँ समात।2(क)।।
सो.– भरत चरन सिरु नाई तुरित गयउ कपि राम पहिं।
कही कुसल सब जाइ हरषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि।।2(ख)।।

हरषि भरत कोसलपुर आए। समाचार सब गुरहि सुनाए।।
पुनि मंदिर महँ बात जनाई। आवत नगर कुसल रघुराई।।
सुनत सकल जननीं उठि धाईं। कहि प्रभु कुसल भरत समुझाईं।।
समाचार पुरबासिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए।।
दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसी दल मंगल मूला।।
भरि भरि हेम थार भामिनी। गावत चलिं सिंधुरगामिनी।।
जे जैसेहिं तैसेहि उठि धावहि। बाल बृद्ध कहँ संग न लावहि।।
एक एकन्ह कहँ बूझहि भाई। तुम्ह देखे दयाल रघुराई।।
अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा कै खानी।।
बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा। भइ सरजू अति निर्मल नीरा।।
दोहा– हरषित गुर परिजन अनुज भूसुर बृंद समेत।
चले भरत मन प्रेम अति सन्मुख कृपानिकेत।। 3 (क)।।
बहुतक चढ़ीं अटारिन्ह निरखहि गगन बिमान।
देखि मधुर सुर हरषित करहिं सुमंगल गान।। 3 (ख)।।
राका ससि रघुपति पुर सिंधु देखि हरषान।
बढ्‌यो कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान।।3 (ग)

इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर। कपिन्ह देखावत नगर मनोहर।।
सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर यह देसा।।
जद्यपि सब बैकुंठ बखानत। बेद पुरान बिदित जगु जानत।।
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ।।
जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि।।
जा मज्जन ते बिनहि प्रयासा। मम समीप नर पावहि बासा।।
अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुख रासी।।
हरषे सब कपि सुनि प्रभु बानी। धन्य अवध जो राम बखानी।।
दोहा– आवत देखि लोग सब कृपासिंधु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि बिमान।। 4 (क)।।
उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहि जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो हरषु बिरहु अति ताहु।। 4 (ख)।।

आए भरत संग सब लोगा। कृस तन श्रीरघुबीर बियोगा।।
बामदेव बसिष्ठ मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक।।
धाइ धरे गुर चरन सरोरुह। अनुज सहित अति पुलक तनोरुह।।
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरें कुसल तुम्हारिहि दाया।।
सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा। धर्म धुरंधर रघुकुलनाथा।।
गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज। नमत जिन्हहि सुर मुनि संकर अज।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

परे भूमि नहि उठत उठाए। बर करि कृपासिंधु उर लाए।।
स्यामल गात रोम भए ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े।।

छंद– राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदयँ लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुअन धनी।।
प्रभु मिलत अनुजहि सोह मो पहि जाति नहि उपमा कही।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही।।1।।
बूझत कृपानिधि कुसल भरतहि बचन बेगि न आवई।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई।।
अब कुसल कौसलनाथ आरत जानि जन दरसन दिया।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लिया।।2।।

दोहा– पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदयँ लगाइ
लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाइ।।5।।

भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे। दुसह बिरह संभव दुख मेटे।।
सीता चरन भरत सिरु नावा। अनुज समेत परम सुख पावा।।
प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी। जनित बियोग बिपति सब नासी।।
प्रेमातुर सब लोक निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी।।
अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहि कृपाला।।
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी। किए सकल नर नारि बिसोकी।।
छन महि सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहूँ न जाना।।
एहि बिधि सबहि सुखी करि रामा। आगें चले सील गुन धामा।।
कौसल्यादि मातु सब धाई। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई।।

छं0– जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन बन परबस गईं।
दिन अंत पुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं।।
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटीं बचन मृदु बहुबिधि कहे।
गइ बिषम बिपति बियोग भव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे।।

दो0– भेटेउ तनय सुमित्राँ राम चरन रति जानि।
रामहि मिलत कैकई हृदयँ बहुत सकुचानि।। 6 (क) ।।
लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिष पाइ।
कैकई कहँ पुनि पुनि मिले मन कर छोभु न जाइ।। 6 (ख)।।

सासुन्ह सबनि मिली बैदेही। चरनन्हि लागि हरषु अति तेही।।
देहि असीस बूझि कुसलाता। होइ अचल तुम्हार अहिवाता।।
सब रघुपति मुख कमल बिलोकहि। मंगल जानि नयन जल रोकहि।।
कनक थार आरती उतारहिं। बार बार प्रभु गात निहारहि।।
नाना भाँति निछावरि करहीं। परमानंद हरष उर भरहीं।।
कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहि। चितवति कृपासिंधु रनधीरहि।।
हृदयँ बिचारति बारहि बारा। कवन भाँति लंकापति मारा।।
अति सुकुमार जुगल मेरे बारे। निसिचर सुभट महाबल भारे।।

दो0– लछिमन अरु सीता सहित प्रभुहि बिलोकति मातु।
परमानंद मगन मन पुनि पुनि पुलकित गातु।। 7 ।।

लंकापति कपीस नल नीला। जामवंत अंगद सुभसीला।।
हनुमदादि सब बानर बीरा। धरे मनोहर मनुज सरीरा।।
भरत सनेह सील ब्रत नेमा। सादर सब बरनहि अति प्रेमा।।
देखि नगरबासिन्ह कै रीति। सकल सराहहि प्रभु पद प्रीती।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पुनि रघुपति सब सखा बोलाए। मुनि पद लागहु सकल सिखाए।।
गुर बसिष्ट कुलपूज्य हमारे। इन्ह की कृपाँ दनुज रन मारे।।
ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे।।
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे।।
सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। निमिष निमिष उपजत सुख नए।।

दो०– कौसल्या के चरनन्हि पुनि तिन्ह नायउ माथ।
आसिष दीन्हे हरषि तुम्ह प्रिय मम जिमि रघुनाथ।। 8 (क)।।
सुमन बृष्टि नभ संकुल भवन चले सुखकंद
चढ़ी अटारिन्ह देखहि नगर नारि नर बृंद।। 8 (ख)

कंचन कलस बिचित्र सँवारे । सबहि धरे सजि निज निज द्वारे ।।
बंदनवार पताका केतू । सबन्हि बनाए मंगल हेतू ।।
बीथीं सकल सुगंध सिंचाईं । गजमनि रचि बहु चौक पुराईं ।।
नाना भाँति सुमंगल साजे। हरषि नगर निसान बहु बाजे ।।
जहँ तहँ नारि निछावरि करहीं । देहि असीस हरष उर भरहीं ।।
कंचन थार आरतीं नाना। जुबतीं सजें करहि सुभ गाना ।।
करहि आरती आरतिहर कें । रघुकुल कमल बिपिन दिनकर कें ।।
पुर सोभा संपति कल्याना। निगम सेष सारदा बखाना ।।
तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं । उमा सातु गुन नर किमि कहहीं ।।

दो०– नारि कुमुदिनीं अवध सर रघुपति बिरह दिनेस।
अस्त भएँ बिगसत भईं निरखि राम राकेस ।। 9 (क) ।।
होहि सगुन सुभ बिबिधि बिधि बाजहि गगन निसान।
पुर नर नारि सनाथ करि भवन चले भगवान ।। 9 (ख) ।।

प्रभु जानी कैकई लजानी। प्रथम तासु गृह गए भवानी।।
ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा। पुनि निज भवन गवन हरि कीन्हा।।
कृपासिंधु जब मंदिर गए। पुर न नारि सुखी सब भए ।।
गुर बसिष्ट द्विज लिए बुलाई। आजु सुघरी सुदिन समुदाई ।।
सब द्विज देहु हरषि अनुसासन । रामचन्द्र बैठहि सिंघासन ।।
मुनि बसिष्ट के बचन सुहाए । सुनत सकल बिप्रन्ह अति भाए ।।
कहहि बचन मृदु बिप्र अनेका । जग अभिराम राम अभिषेका ।।
अब मुनिबर बिलंब नहि कीजै। महाराज कहँ तिलक करीजै ।।

दो०– तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन सुनत चलेउ हरषाइ।
रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत सँवारे जाइ।। 10 (क) ।।
जहँ तहँ धावन पठइ पुनि मंगल द्रब्य मगाइ।
हरष समेत बसिष्ट पद पुनि सिरु नायउ आइ।। 10 (ख) ।।

अवधपुरी अति रुचिर बनाई। देवन्ह सुमन बृष्टि झरि लाई ।।
राम कहा सेवकन्ह बुलाई । प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई ।।
सुनत बचन जहँ तहँ जन धाए। सुग्रीवादि तुरत अन्हवाए ।।
पुनि करुनानिधि भरतु हँकारे। निज कर राम जटा निरुआरे ।।
अन्हवाए प्रभु तीनिउ भाई । भगत बछल कृपाल रघुराई ।।
भरत भाग्य प्रभु कोमलताई । सेष कोट सत सकहि न गाई ।।
पुनि निज जटा राम बिबराए । गुर अनुसासन मागि नहाए ।।
करि मज्जन प्रभु भूषन साजे। अंग अनंग देखि सत लाजे ।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दो0– सासुन्ह सादर जानकिही मज्जन तुरत कराइ।
दिब्य बसन बर भूषन अँग अँग सजे बनाइ।। 11 (क)।।
राम बाम दिसी सोभति रमा रूप गुन खानि।
देखि मातु सब हरषीं जन्म सुफल निज जानि।। 11 (ख)।।
सुनु खगेस तेहि अवसर ब्रह्मा सिव मुनिबृंद।
चढ़ि बिमान आए सब सुर देखन सुखकंद।। 11 (ग) ।।

प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा। तुरत दिब्य सिंघासन मागा।।
रबि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई ।।
जनकसुता समेत रघुराई । पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई।।
बेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे। नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे।।
प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा। पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा।।
सुत बिलोकि हरषीं महतारी। बार बार आरती उतारी ।।
बिप्रन्ह दान बिबिधि बिधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे।।
सिंघासन पर त्रिभुअन साईं। देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाई ।।

छं0– नभ दुंदंभी बाजहिं बिपुल गंधर्व किंनर गावहीं।
नाचहि अपछरा बृंद परमानंद सुर मुनि पावहीं ।।
भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते।
गहें छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म शक्ति विराजते।। 1।।
श्री सहित दिनकर बंस भूषन काम बहु छबि सोहई।
नव अंबुधर बर गात अंबर पीत सुर मन मोहई।।
मुकुटांगदादि बिचित्र भूषन अंक अंगन्हि प्रति सजे।
अंभोज नयन बिसाल उर भुज धन्य नर निरखंति जे।। 2।।

दो0– वह सोभी समाज सुख कहत न बनइ खगेस।
बरनहि सारद सेष श्रुति सो रस जान महेस।। 12 (क) ।।
भिन्न भिन्न अस्तुति करि गए सुर निज निज धाम।
बंदी बेष बेद तब आए जहँ श्रीराम।। 12 (ख) ।।
प्रभु सर्बग्य कीन्ह अति आदर कृपानिधान।
लखेउ न काहूँ मरम कुछ लगे करन गुन गान।। 12 (ग) ।।

छं0– जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुज बल हने।।
अवतार नर संसार भार बिभंजि दारुन दुख दहे।
जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे।। 1 ।।
तव बिषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे।
भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे।।
जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिबिधि दुख ते निर्बहे।
भव खेद छेदन दच्छ हम कहुँ रच्छ राम नमामहे।। 2।।
जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी।।
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तब जे होइ रहे।
जपि नाम तव बिनु श्रम तरहि भव नाथ सो समरामहे।। 3।।
जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनि पतिनीतरी।
नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावनि सुरसरी।।
ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे।। 4 ।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अब्यक्तमूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
षट कंध साखा पंच बीस अनेक पर्न सुमन घरे।।
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे ।। 5 ।।
जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मनपर ध्यावहीं।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तब सगुन जस नित गावहीं।।
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर मागहीं।
मन बचन कर्म बिकार तजि तब चरन हम अनुरागहीं ।। 6 ।।

दो0– सब के देखत बेदन्ह बिनती कीन्हि उदार।
अंतर्धान भए पुनि गए ब्रह्म आगार ।। 13 (क) ।।
बैनतेय सुनु संभु तब आए जहँ रघुबीर।
बिनय करत गदगद गिरा पूरित पुलक सरीर ।। 13(ख)।।

छं0– जय राम रमा रमनं समनं । भव ताप भयाकुल पाहि जनं ।
अवधेस सुरेस रमेस बिभो । सरनागत मागत पाहि प्रभो ।। 1।।
दससीस बिनासन बीस भुजा । कृत दूरि महा महि भूरि रुजा ।
रजनीचर बृंद पतंग रहे । सर पावक तेज प्रचंड दहे ।। 2।।
महि मंडल मंडन चारुतरं । धृत सायक चाप निषंग बरं ।
मद मोह महा ममता रजनी । तम पुंज दिवाकर तेज अनी ।। 3।।
मनजात किरात निपात किए । मृग लोग कुभोग सरेन हिए ।
हति नाथ अनाथनि पाहि हरे । बिषया बन पावँर भूलि परे ।। 4।।
बहु रोग बियोगन्हि लोग हए । भवदंघ्रि निरादर के फल ए ।
भव सिंधु अगाध परे नर ते । पद पंकज प्रेम न जे करते ।। 5।।
अवलंब भवंत कथा जिन्ह कें । प्रिय संत अनंत सदा तिन्ह कें ।। 6।।
नहि राग न लोभी न मान मदा । तिन्ह कें सम बैभव वा बिपदा ।
एहि ते सब सेवक होत मृदा । मुनि त्यागत जोग भरोस सदा ।। 7।।
करि प्रेम निरंतर नेम लिएँ । पद पंकज सेवत सुद्ध हिएँ ।
सम मानि निरादर आदरहीं। सब संत सुखि बिचरंति मही ।। 8।।
मुनि मानस पंकज भृंग भजे। रघुबीर महा रनधीर अजे ।
तब नाम जपामि नमामि हरी । भव रोग महागद मान अरी ।। 9।।
गुन सील कृपा परमायतनं । प्रनमामि निरंतर श्री रमनं।
रघुनंद निकंदय द्वंद्वघनं । महिपाल बिलोकय दीनजनं।। 10।।

दो0– बार बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग।। 14(क) ।।
बरनि उमापति राम गुन हरषि गए कैलास ।
तब प्रभु कपिन्ह दिवाए सब बिधि सुखप्रद बास ।। 14(ख) ।।

सुनु खगपति यह कथा पावनी। त्रिबिध ताप भव भय दावनी ।।
महाराज कर सुभ अभिषेका । सुनत लहहि नर बिरति बिबेका ।।
जे सकाम नर सुनहि जे गावहि। सुख संपति नाना बिधि पावहि ।।
सुर दुर्लभ सुख करि जग माहि। अंतकाल रघुपति पुर जाहिं ।।
सुनहि बिमुक्त बिरत अरु बिषई । लहहि भगति गति संपति नई ।।
खगपति राम कथा मैं बरनी । स्वमति बिलास त्रास दुख हरनी ।।
बिरति बिबेक भगति दृढ़ करनी । मोह नदी कहँ सुंदर तरनी ।।
नित नव मंगल कौसलपुरी । हरषित रहहि लोग सब कुरी ।।
नित नइ प्रीति राम पद पंकज । सब के जिन्हहि नमत सिव मुनि अज ।।
मंगन बहु प्रकार पहिराए । द्विजन्ह दान नाना बिधि पाए ।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दो0– ब्रह्मानंद मगन कपि सब कें प्रभु पद प्रीति।
जात न जाने दिव तिन्ह गए मास षट बीति ।। 15 ।।

बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं। जिमि परद्रोह संत मन माहीं ।।
तब रघुपति सब सखा बोलाए । आइ सबन्हि सादर सिरु नाए ।।
परम प्रीति समीप बैठारे। भगत सुखद मृदु बचन उचारे ।।
तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुख पर केहि बिधि करौं बड़ाई ।।
ताते मोहि तुम्ह अति प्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे ।।
अनुज राज संपति बैदेही । देह गेह परिवार सनेही ।।
सब मम प्रिय नहि तुम्हहि समाना। मृषा न कहउँ मोर यह बाना ।।
सब कें प्रिय सेवक यह नीति। मोरें अधिक दास पर प्रीति ।।
दो0– अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम ।
सदा सर्बगत सर्बहित जानि करेहु अति प्रेम ।। 16।।

सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। को हम कहाँ बिसरि तन गए ।।
एकटक रहे जोरि कर आगे। सकहि न कछु कहि अति अनुरागे ।।
परम प्रेम तिन्ह कर प्रभु देखा। कहा बिबिधि बिधि ग्यान बिसेषा ।।
प्रभु सन्मुख कुछ कहन न पारहि। पुनि पुनि चरन सरोज निहारहि ।।
तब प्रभु भूषन बसन मगाए। नाना रंग अनूप सुहाए ।।
सुग्रीवहि प्रथमहि पहिराए। बसन भरत निज हाथ बनाए ।।
प्रभु प्रेरित लछिमन पहिराए। लंकापति रघुपति मन भाए ।।
अंगद बैठ रहा नहि डोला। प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला ।।
दो0– जामवंत नीलादि सब पहिराए रघुनाथ ।
हियँ धरि राम रूप सब चले नाइ पद माथ ।। 17(क)।।
तब अंगद उठि नाइ सिरु सजल नयन कर जोरि ।
अति बिनीत बोलेउ बचन मनहुँ प्रेम रस बोरि। 17(ख)।।

सुनु सर्बग्य कृपा सुख सिंधो। दीन दयाकर आरत बंधो।।
मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहि कोंछे घाली।।
असरन सरन बिरदु संभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी।।
मोरे तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता।।
तुम्हहि बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा।।
बालक ग्यान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन नाथ जन दीना।।
नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ। पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ।।
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही। अब जनि नाथ कहहु गृह जाही।।

दो0– अंगद बचन बिनीत सुनि रघुपति करुना सींव।
प्रभ उठाइ उर लायउ सजल नयन राजीव।। 18(क) ।।
निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ।
बिदा कीन्हि भगवान तब बहु प्रकार समुझाइ।। 18(ख) ।।
भरत अनुज सौमित्रि समेता। पठवन चले भगत कृत चेता।।
अंगद हृदयँ प्रेम नहि थोरा। फिरि फिरि चितव राम की ओरा।।
बार बार कर दंड प्रनामा। मन अस रहन कहहि मोहि रामा।।
राम बिलोकनि बोलनि चलनी। सुमिरि सुमिरि सोचत हँसि मिलनी।।
प्रभु रुख देखि बिनय बहु भाषी। चलेउ हृदयँ पद पंकज राखी।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अति आदर सब कपि पहुँचाए। भाइन्ह सहित भरत पुनि आए।।
तब सुग्रीव चरन गहि नाना। भाँति बिनय कीन्हे हनुमाना।।
दिन दस करि रघुपति पद सेवा। पुनि तव चरन देखिहउँ देवा।।
पुन्य पुंज तुम्ह पवनकुमारा। सेवहु जाइ कृपा आगारा।।
अस कहि कपि सब चले तुरंता। अंगद कहइ सुनहु हनुमंता।।
दो0– कहेहु दंडवत प्रभु सैं तुम्हहि कहउँ कर जोरि।
बार बार रघुनायकहि सुरति कराएहु मोरि।। 19(क)।।
अस कहि चलेउ बालिसुत फिरि आयउ हनुमंत।
तासु प्रीति प्रभु सन कही मगन भए भगवंत।।19(ख)।।
कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि।।19(ग)।।

पुनि कृपाल लियो बोलि निषादा। दीन्हे भूषन बसन प्रसादा।।
जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू।।
तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहू पुर आवत जाता।।
बचन सुनत उपजा सुख भारी। परेउ चरन भरि लोचन बारी।।
चरन नलिन उर धरि गृह आवा। प्रभु सुभाउ परिजनन्हि सुनावा।।
रघुपति चरित देखि पुरबासी। पुनि पुनि कहहि धन्य सुखरासी।।
राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका।।
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई।।
दो0– बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहि सदा पावहि सुखहि नहि भय सोक न रोग।।20।।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।
सब नर करहि परस्पर प्रीती। चहहि स्वधर्म निरत श्रुति नीति।।
चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहूँ अघ नाहीं।।
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी।।
अल्पमृत्यु नहीं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा।।
नहि दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहि कोउ अबुध न लच्छन हीना।।
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।।
सब गुन्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहि कपट सयानी।।
दो0– राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं।। 21 ।।

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला।।
भुअन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कुछ बहुत न तासू।।
सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी।।
सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी। फिरि एहि चरित तिन्हहूँ रति मानी।।
सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिबर दमसीला।।
राम राज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा।।
सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी।।
एकनारि ब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी।।
दो0– दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंन्द्र कें राज।। 22।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहि एक सँग गज पंचानन।।
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।
कूजहि खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहि बन करहि अनंदा।।
सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा।।
लता बिटप मागे मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं।।
ससि सम्पन्न सदा रह धरनी। त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी।।
प्रगटीं गिरिन्ह बिबिधि मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी।।
सरिता सकल बहहि बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी।।
सागर निज मरजादाँ रहहीं। डारहि रत्न तटन्हि नर लहहीं।।
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा।।
दो0– बिधु महि पूर मयूखन्हि रबितप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहि जल रामचन्द्र कें राज।। 23।।

कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे।।
श्रुति पथ पालक धर्म धुरंधर। गुनातीत अरु भोग पुरंदर।।
पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभा खानि सुसील बिनीता।।
जानति कृपासिंधु प्रभुताई। सेवति चरन कमल मन लाई।।
जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी। बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी।।
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई।।
जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा बिधि जानइ।।
कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवई सबन्हि मान मद नाहीं।।
उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता। जगदंबा संततमनिंदिता।।
दो0– जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोइ।
राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोइ।। 24।।

सेवहि सानकूल सब भाई। रामचरन रति अति अधिकाई।।
प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं। कबहुँ कृपाल हमहि कछु कहहीं।।
राम करहि भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहि नीती।।
हरषित रहहि नगर के लोगा। करहि सकल सुर दुर्लभ भोगा।
अहनिसि बिधिहि मनावत रहहीं। श्रीरघुबीर चरन रति चहहीं।।
दुइ सुत सुंदर सीताँ जाए। लव कुस बेद पुरानन्ह गाए।।
दोउ बिजई बिनई गुन मंदिर। हरि प्रतिबिंब मनहुँ अति सुंदर।।
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। भए रूप गुन सील घनेरे।।
दो0– ग्यान गिरा गोतीत अज माया मन गुन पार।
सोइ सच्चिदानंद घन कर नर चरित उदार । 25।।

प्रातकाल सरऊ करि मज्जन। बैठहि सभाँ संग द्विज सज्जन।।
बेद पुरान बसिष्ट बखानहि। सुनहि राम जद्यपि सब जानहि।।
अनुजन्ह संजुत भोजन करहीं। देखि सकल जननीं सुख भरहीं।।
भरत सत्रुहन दोनउ भाई। सहित पवनसुत उपबन जाई।।
बूझहि बैठि राम गुना गाहा। कह हनुमान सुमति अवगाहा।।
सुनत बिमल गुन अति सुख पावहिं। बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहिं।।
सब कें गृह गृह होहि पुराना। रामचरित पावन बिधि नाना।।
नर अरु नारि राम गुन गानहि। करहि दिवस निसि जात न जानहि।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दो0– अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज।
सहस सेष नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज।। 26।।
नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा।।
दिन प्रति सकल अजोध्या आवहि। देखि नगरु बिरागु बिसरावहि।।
जातरूप मनि रचित अटारीं। नाना रंग रुचिर गच ढारीं।।
पुर चहुँ पास कोट अति सुंदर। रचे कँगूरा रंग रंग बर।।
नव ग्रह निकर अनीक बनाई। जनु घेरी अमरावति आई।।
महि बहु रंग रचित गच काँचा। जो बिलोकि मुनिबर मन नाचा।।
धवन धाम ऊपर नभ चुंबत। कलस मनहुँ रबि ससि दुति निंदत।।
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं। गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं।।

छं0– मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं बिद्रुम रची।
मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची।।
सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे।।
दो0– चारु चित्रसाला गृह गृह प्रति लिखे बनाइ।
रामचरित जे निरख मुनि ते मन लेहि चोराइ।। 27।।

सुमन बाटिका सबहिं लगाईं। बिबिध भाँति करि जतन बनाईं।।
लता ललित बहुजाति सुहाईं। फूलहि सदा बसंत कि नाईं।।
गुंजत मधुकर मुखर मनोहर। मारुत त्रिबिधि सदा बह सुंदर।।
नाना खग बालकन्हि जिआए। बोलत मधुर उड़ात सुहाए।।
मोर हंस सारस पारावत। भवननि पर सोभा अति पावत।।
जहँ तहँ देखहिं निज परिछाहीं। बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं।।
सुक सारिका पढ़ावहिं बालक। कहहु राम रघुपति जनपालक।।
राज दुआर सकल बिधि चारू। बीथीं चौहट रुचिर बजारू।।

छं0– बाजार रुचिर न बनई बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए।
जहँ भूप रमानिवास तहँ की संपदा किमि गाइए।।
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर जे।।
सब सुखी सब सच्चरित सुंदर नारि नर सिसु जरठ जे।।
दो0– उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर।
बाँधे घाट मनोहर स्वल्प पंक नहिं तीर।। 28।।

दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पिअहि बाजि गज ठाटा।।
पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहि अस्नाना।।
राजघाट सब बिधि सुंदर बर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर।।
तीन तीर देवन्ह के मंदिर। चहुँ दिसि तिन्ह के उपबन सुंदर।।
कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी। बसहिं ग्यान रत मुनि संन्यासी।।
तीर तीर तुलसिका सुहाई। बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई।।
पुर सोभा कछु बरनि न जाई। बाहेर नगर परम रुचिराई।।
देखत पुरी अखिल अघ भागा। बन उपबन बापिका तड़ागा।।

छं0– बापीं तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं।
सोपान सुंदर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं।।
बहु रंग कंज अनेक खग कुजहिं मधुप गुंजारहीं।
आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हंकारहीं।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दो0– रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा रहीं अवध सब छाइ।। 29।।

जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परसपर इहइ सिखावहिं।।
भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि। सोभा सील रूप गुन धामहि।।
जलज बिलोचन स्यामल गातहि। पलक नयन इव सेवक त्रातहि।।
धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि। संत कंज बन रबि रनधीरहि।।
काल कराल ब्याल खगराजहि। नमत राम अकाम ममता जहि।।
लोभ मोह मृगजूथ किरातहि। मनसिज करि हरि जन सुखदातहि।।
संसय सोक निबिड़ तम भानुहि। दनुज गहन घन दहन कृसानुहि।।
जनकसुता समेत रघुबीरहि। कस न भजहु भंजन भव भीरहि।।
बहु बासना मसक हिम रासिहि। सदा एकरस अज अबिनासिहि।।
मुनि रंजन भंजन महि भारहि। तुलसिदास के प्रभुहि उदारहि।।

दो0– एहि बिधि नगर नारि नर करहि राम गुन गान।
सानुकुल सब पर रहहि संतत कृपानिधान। 30।।

जब ते राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा।।
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतन मन सोका।।
जिन्हहि सोक ते कहउँ बखानी। प्रथम अबिद्या निसा नसानी।।
अघ उलूक तहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने।।
बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ।।
मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनिहुँ ओरा।।
धरम तड़ाग ग्यान बिग्याना। ए पंकज बिकसे बिधि नाना।।
सुख संतोष बिराग बिबेका। बिगत सोक ए कोक अनेका।।

दो0– यह प्रताप रबि जाके उर जब करइ प्रकास।
पछिले बाढ़हिं प्रथम जे कहे ते पावहिं नास। 31।।

भ्रातन्ह सहित रामु एक बारा। संग परम प्रिय पवनकुमार।।
सुंदर उपबन देखन गए। सब तरु कुसुमित पल्लव नए।।
जानि समय सनकादिक आए। तेज पुंज गुन सील सुहाए।।
ब्रह्मानंद सदा लयलीना। देखत बालक बहुकालीना।।
रूप धरें जनु चारिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा।।
आसा बसन ब्यसन यह तिन्हहीं। रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं।।
तहाँ रहे सनकादि भवानी। तहँ घट सभव मुनिबर ग्यानी।।
राम कथा मुनिबर बहु बरनी। ग्यान जोनि पावक जिमि अरनी।।

दो0– देखि राम मुनि आवत हरषि दंडवत कीन्ह।
स्वागत पूँछि पीत पट प्रभु बैठन कहँ दीन्ह।। 32।।

कीन्ह दंडवत तीनिउँ भाई। सहित पवनसुत सुख अधिकाई।।
मुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी। भए मगन मन सके न रोकी।।
स्यामल गात सरोरुह लोचन। सुंदरता मंदिर भव मोचन।।
एकटक रहे निमेष न लावहिं। प्रभु कर जोरें सीस नवावहिं।।
तिन्ह कै दसा देखि रघुबीरा। स्रवत नयन जल पुलक सरीरा।।
कर गहि प्रभु मुनिबर बैठारे। परम मनोहर बचन उचारे।।
आजु धन्य मैं सुनहु मुनीसा। तुम्हरें दरस जाहिं अघ खीसा।।
बड़े भाग पाइब सतसंगा। बिनहिं प्रयास होहिं भव भंगा।।

दो0– संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कबि कोबिद श्रुति पुरान सदग्रंथ।। 33।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सुनि प्रभु बचन हरषि मुनि चारी। पुलकित तन अस्तुति अनुसारी।।
जय भगवंत अनंत अनामय। अनघ अनेक एक करुनामय।।
जय निर्गुन जय जय गुन सागर। सुख मंदिर सुंदर अति नागर।।
जय इंदिरा रमन जय भूधर। अनुपम अज अनादि सोभाकर।।
ग्यान निधान अमान मानप्रद। पावन सुजस पुरान बेद बद।।
तग्य कृतग्य अग्यता भंजन। नाम अनेक अनाम निरंजन।।
सर्ब सर्बगत सर्ब उरालय। बससि सदा हम कहुँ परिपालय।।
द्वंद्व बिपति भव फंद बिभंजय। हृदि बसि राम काम मद गंजय।।
दो०– परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम।। 34।।

देहु भगति रघुपति अति पावनि। त्रिबिधि ताप भव दाप नासावनि।।
प्रनत काम सुरधेनु कलपतरु। होई प्रसन्न दीजै प्रभु यह बरु।।
भव बारिधि कुंभज रघुनायक। सेवत सुलभ सकल सुख दायक।।
मन संभव दारुन दुख दारय। दीनबंधु समता बिस्तारय।।
आस त्रास इरिषादि निवारक। बिनय बिबेक बिरति बिस्तारक।।
भूप मौलि मनि मंडन धरनी। देहि भगति संसृति सरि तरनी।।
मुनि मन मानस हंस निरंतर। चरन कमल बंदित अज संकर।।
रघुकुल केतु सेतु श्रुति रच्छक। काल करम सुभाउ गुन भच्छक।।
तारन तरन हरन सब दूषन। तुलसिदास प्रभु त्रिभुवन भूषन।।
दो०– बार बार अस्तुति करि प्रेम सहित सिरु नाइ।
ब्रह्म भवन सनकादि गे अति अभीष्ट बर पाइ।। 35।।

सनकादिक बिधि लोक सिधाए। भ्रातन्ह राम चरन सिरु नाए।।
पूछत प्रभुहि सकल सकुचाहीं। चितवहिं सब मारुतसुत पाहीं।।
सुनी यहहिं प्रभु मुख कै बानी। सो सुनि होइ सकल भ्रम हानी।।
अंतरजामी प्रभु सभ जाना। बूझत कहहु काह हनुमाना।।
जोरि पानि कह तब हनुमंता। सुनहु दीनदयाल भगवंता।।
नाथ भरत कछु पूँछन चहहीं। प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं।।
तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ। भरतहि मोहि कछु अंतर काऊ।।
सुनि प्रभु बचन भरत गहे चरना। सुनहु नाथ प्रनतारति हरना।।
दो०– नाथ न मोहि संदेह कछु सपनेहुँ सोक न मोह।
केवल कृपा तुम्हारिहि कृपानंद संदोह।। 36।।

करउँ कृपानिधि एक ढिठाई। मैं सेवक तुम्ह जन सुखदाई।।
संतन्ह कै महिमा रघुराई। बहु बिधि बेद पुरानन्ह गाई।।
श्रीमुख तुम्ह पुनि कीन्हि बड़ाई। तिन्ह पर प्रभुहि प्रीति अधिकाई।।
सुना चहउँ प्रभु तिन्ह कर लच्छन। कृपासिंधु गुन ग्यान बिचच्छन।।
संत असंत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई।।
संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता। अगनित श्रुति पुरान बिख्याता।।
संत असंतन्हि कै असि करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी।।
काटइ परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देह सुगंध बसाई।।
दो०– ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखण्ड।
अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दण्ड।। 37।।

बिषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर।।
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कोमलचित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया।।
सबहि मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी।।
बिगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन।।
सीतलता सरलता मयत्री। द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री।।
ए सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर।।
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष बचन कबहूँ नहि बोलहिं।।
दो0– निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मंदिर सुख पुंज।। 38।।
सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ।।
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई।।
खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी।।
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई।।
काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन।।
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों।।
झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना।।
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा।।
दो0– पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद।।
ते नर पाँवर पापय देह धरें मनुजाद।। 39।।

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्नोदर पर जम पुर त्रास न।।
काहू की जौं सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई।।
जब काहू कै देखहि बिपती। सुखी भए मानहुँ जग नृपती।।
स्वारथ रत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी।
मातु पिता गुर ब्रिप न मानहिं। आपु गए अरु घालहिं आनहिं।।
करहि मोह बस द्रोह परावा। संत संग हरि कथा न भावा।।
अवगुन सिंधु मंदमति कामी। बेद विदूषक परधन स्वामी।।
बिप्र द्रोह पर द्रोह बिसेषा। दंभ कपट जियँ धरें सुबेषा।।
दो0– ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेताँ नाहिं।
द्वापर कछुक बृंद बहु होइहहि कलिजुग माहिं।। 40।।

पर हित सरिस धर्म नहि भाई। पर पीड़ा सम नहि अधमाई।।
निर्नय सकल पुरान बेद कर। कहेउँ तात जानहि कोबिद नर।।
नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा।।
करहिं मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना।।
कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता।।
अस बिचारि जे परम सयाने। भजहिं मोहि संसृत दुख जाने।।
त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक। भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक।।
संत असंतन्ह के गुन भाषे। ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे।।
दो0– सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक।। 41।।

श्रीमुख बचन सुनत सब भाई। हरषे प्रेम न हृदयँ समाई।।
करहिं बिनय अति बारहिं बारा। हनूमान हियँ हरष अपारा।।
पुनि रघुपति निज मंदिर गए। एहि बिधि चरित करत नित नए।।
बार बार नारद मुनि आवहिं। चरित पुनीत राम के गावहिं।।
नित नव चरित देखि मुनि जाहीं। ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं।।
सुनि बिरंचि अतिसय सुख मानहिं। पुनि पुनि तात करहु गुन गानहिं।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सनकादिक नारदहि सराहहिं। जद्यपि ब्रह्म निरत मुनि आहहिं।।
सुनि गुन गान समाधि बिसारी। सादर सुनहिं परम अधिकारी।।
दो0– जीवनमुक्त ब्रह्ममपर चरित सुनहिं तजि ध्यान।
जे हरि कथाँ न करहिं रति तिन्ह के हिय पाषान।। 42।।

एक बार रघुनाथ बोलाए। गुर द्विज पुरबासी सब आए।।
बैठे गुर मुनि अरु द्विज सज्जन। बोले बचन भगत भव भंजन।।
सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कुछ ममता उर आनी।।
नहि अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई।।
सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई।।
जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।।
बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।।
दो0– सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ।। 43।।

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।।
नर तनु पाइ बिसयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं।।
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई।।
आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी।।
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा।।
कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही।।
नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो।।
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।।
दो0– जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाई।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ।। 44।।

जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू।।
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई।।
ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका।।
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्ति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ।।
भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहि प्रानी।।
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता।।
पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा।।
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करइ द्विज सेवा।।
दो0– औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।। 45।।

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा।।
सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई।।
मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा।।
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई।।
बैर न बिग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा अब आसा।।
अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी।।
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा।।
भगति पच्छ हठ नहिं सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई।।
दो0– मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह।
ता कर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह।। 46।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सुनत सुधासम बचन राम के। गहे सबनि पर कृपाधाम के।।
जननि जनक गुर बंधु हमारे। कृपा निधान प्रान ते प्यारे।।
तनु धनु धाम राम हितकारी। सब बिधि तुम्ह प्रनतारति हारी।।
असि सिख तुम्ह बिनु देह न कोऊ। मात पिता स्वारथ रत ओऊ।।
हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी।।
स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं।।
सब के बचन प्रेम रस साने। सुनि रघुनाथ हृदयँ हरषाने।।
निज निज गृह गए आयसु पाई। बरनत प्रभु बतकही सुहाई।।
दो0– उमा अवधबासी नर नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानंद घन रघुनायक जहँ भूप।। 47।।

एक बार बसिष्ट मुनि आए। जहाँ राम सुखधाम सुहाए।।
अति आदर रघुनायक कीन्हा। पद पखारि पादोदक लीन्हा।।
राम सुनहु मुनि कह कर जोरी। कृपासिंधु बिनती कछु मोरी।।
देखि देखि आचरन तुम्हारा। होत मोह मम हृदयँ अपारा।।
महिमा अमिति बेद नहीं जाना। मैं केहि भाँति कहउँ भगवाना।।
उपरोहित्य कर्म अति मंदा। बेद पुरान सुमृति कर निंदा।।
जब न लेउँ मैं तब बिधि मोही। कहा लाभ आगें सुत तोही।।
परमातमा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल भूषन भूपा।।
दो0– तब मैं हृदयँ बिचारा जोग जग्य ब्रत दान।
जा कहुँ करिअ सो पैहउँ धर्म न एहि सम आन।। 48।।

जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा।।
ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लहि धर्म कहत श्रुति सज्जन।।
आगम निगम पुरान अनेका। पढे सुने कर फल प्रभु एका।।
तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर।।
छूटइ मल कि मलहि के धोएँ। घृत कि पाव कोइ बारि बिलोएँ।।
प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई।।
सोइ सर्बग्य तग्य सोइ पंडित। सोइ गुन गृह बिग्यान अखंडित।।
दच्छ सकल लच्छन जुत सोई। जाकें पद सरोज रति होई।।
दो0– नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु।। 49।।

अस कहि मुनि बसिष्ट गृह आए। कृपासिंधु के मन अति भाए।।
हनूमान भरतादिक भ्राता। संग लिए सेवक सुखदाता।।
पुनि कृपाल पुर बाहेर गए। गज रथ तुरग मगावत भए।।
देखि कृपा करि सकल सराहे। दिए उचित जिन्ह जिन्ह तेइ चाहे।।
हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पाई। गए जहाँ सीतल अवँराई।।
भरत दीन्ह निज बसन डसाई। बैठे प्रभु सेवहि सब भाई।।
मारुतसुत तब मारुत करई। पुलक वपुष लोचन जल भरई।।
हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी।।
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई।।
दो0– तेहि अवसर मुनि नारद आए करतल बीन।
गावन लगे राम कल कीरति सदा नबीन ।। 50।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.12.2 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएं

(1)

रहेउ – समाना।।1।।"

संदर्भ – प्रस्तुत काव्य पंक्तियां रामभक्ति गंगा प्रवाह के सर्वोच्च कवि भक्त शिरोमणि महात्मा तुलसीदास की अमर वाणी से निस्सृत 'रामचरित मानस' के 'उत्तरकाण्ड से अवतरित है।

प्रसंग – राम के वनवास की अवधि समाप्त होनेवाली है। रावण का समूल विनाशकर राम अयोध्या वापस लौट रहे हैं। इधर प्रतीक्षारत भरत की व्याकुलता बढ़ती जा रही है। उनसे अब और अधिक प्रतीक्षा नहीं होती। उनकी इसी मनोव्यथा का बहुत स्वाभाविक वर्णन यहां किया गया है।

व्याख्या – राम के अयोध्या वापस लौटने में एक दिन शेष है। भरत की विहवलता एवं व्यग्रता बढ़ती जा रही है। वे सोचते हैं कि अब एक ही दिन की अवधि बाकी है। मेरे मन में बहुत दुःख हो रहा है। अभी तक प्रभु श्रीराम क्यों नहीं आए। क्या कारण हो सकता है, उनके नहीं लौटने का ? भरत कहते हैं कि मुझसे अधिक भाग्यशाली तो भाई लक्ष्मण हैं जो राम के चरणों के इतने निकट हैं। लगता है कि मुझे कपटी अथवा कुटिल मानकर राम ने अपने साथ नहीं लिया। कहीं ऐसा तो नहीं कि मेरे कार्यकलापों से राम को कष्ट हुआ। यदि ऐसा हुआ तो मुझे युगों–युगों तक ठिकाना नहीं मिल सकेगा। यदि मुझमें कुछ अवगुण जाने–अनजाने रहा हो, तो मैं जानता हूं वे प्रभु हैं, बहुत मृदुल स्वभाव के हैं, मुझे क्षमा कर देंगे। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है, बल्कि मन में दृढ़ विश्वास हो रहा है कि राम मुझे अवश्य मिलेंगे। ऐसा शुभ–शगुन भी हो रहा है। यदि राम के आने की अवधि समाप्त हो जाए और मैं तब तक जीवित रहूं, तो मेरे जैसा अधम कोई न होगा।

टिप्पणी – (1) भाई की भाई के प्रति व्यग्रता परिलक्षित है।
(2) भरत की व्यग्रता एवं विह्वलता यहां व्यक्त हुई है।
(3) भरत का मनोविज्ञान यहां सहज एवं स्वाभाविक रूप में व्यक्त हुआ है।
(4) प्रतीक्षा के क्षण कितने कठिन होते हैं, इसका स्पष्ट संकेत है।
(5) अवधी भाषा का सुंदर प्रयोग है।
(6) चौपाई छंद है ।
(7) 'शांत रस' की अभिव्यक्ति हुई है।

भाव साम्य – प्रतीक्षा कितनी कठिन होती है, यहां इस भाव को लक्षित किया गया है–
"कहते हैं कि मौत से बदतर है इंतजार
मेरी तमाम उम्र कटी इंतजार में"

(2)

इहां मानुकुल – – – – – – – – – – – – – – – – राम बखानी।।4।।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – दिग्विजय के पश्चात अयोध्या वापस लौटकर राम अगंद, हनुमान आदि अपने सभी सहायकों को अयोध्या का भ्रमरण करा रहे हैं तथा अयोध्या नगरी का महात्म्य वर्णित करते हुए कहते हैं –

व्याख्या – हे अंगद, हे लंकेश (विभीषण), हे कपीश, यह नगर अयोध्या बहुत ही सुन्दर नगरी है। सुंदर के साथ–साथ यह अतिपवित्र और पुनीत नगरी है। इसके कारण यह पूरा प्रदेश बहुत सुन्दर और सुहावना लगता है। वैसे तो वेदों, पुराणों में स्वर्ग का वर्णन मिलता है, वहां अनेक तरह के स्वर्ग का बखान किया गया है, किंतु हमारी इस अवधपुरी (अयोध्या)के समान कोई नहीं है। यह रहस्य की बात है,जो सबको नहीं पता है। यह मैं आप लोगों से कहता हूं। मुझे अपनी जन्मभूमि यह पुरी सबसे सुंदर और अच्छी लगती है। इसके उत्तर में सरयू नदी प्रवाहित होने से इस नगरी का गौरव और महत्व बढ़ जाता है।

राम अपने मित्रों, सहायकों से यह बात स्पष्ट रूप से कहते हैं कि जो सरजू में स्नान कर लेता है वह बिना किसी अन्य प्रयास के मेरे समीप स्थान प्राप्त कर लेता है। नेरा निकटस्थ हो जाता है। मुझे यहां के लोग बहुत प्रिय हैं, जो हर तरह से सुखी–प्रसन्न होकर यहां चैन से रहते हैं, राम के मुख से अवधपुरी की इतनी प्रशंसा सुनकर सभी उपस्थित लोग बहुत प्रसन्न हुए, क्योंकि स्वयं राम ने उस नगर की प्रशंसा की है।

टिप्पणी – (1) तुलसीदास ने राम के ह्रदय में अवस्थित मातृभूमि – प्रेम को प्रकट करवाया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(2) राम के माध्यम से जन्मभूमि, मातृभूमि, स्वराष्ट्र, स्वदेश के प्रति उत्कट लगाव प्रकट हुआ है।
(3) कौन है जिसे अपनी मातृभूमि प्यारी नहीं लगती –
" अपि स्वर्णमयी लंका न में लक्षमण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।"
(4) राम के द्वारा सरयू नदी का महत्त्व स्पष्ट करवाया गया है।
कहा भी गया है–
षटवर्षसहस्राणां काशी वासस्य यत्फलम्,
तत्फलमाप्नोति कलौ सरयू दर्शन कृते।"
(5) जहां राम हैं वहां क्या कुछ नहीं है–
"यत्र रामो भयं नास्ति नास्ति तत्र पराभवः।"
(6) पुर के निवासियों के प्रति राम का सहज प्रेम प्रकट हो रहा है।
(7) अवधी भाषा का सफल प्रयोग परिलक्षित हो रहा है।
(8) अपने गांव–घर आए अतिथियों को नगर भ्रमण करवाना लोक परंपरा है।

(3)

**कंचन कलस – – –

गई थी। सभी नर–नारी राम की भक्ति करते थे और इस तरह परम पद के अधिकारी बन गए थे। कोई स्वप्न में भी पाप नहीं करता था। किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती थी, सभी लोग पूर्ण आयु प्राप्त करने वाले स्वस्थ, सुदर एव निरोग थे। राम के राज्य में कोई दरिद्र न था, दुखी न था, दीन न था और लक्षणहीन नहीं था। सब लोग बुद्धिमान, दयावान, गुणी, चतुर और सुंदर लक्षणों से युक्त थे। सभी लोग ज्ञानी और कृतज्ञ थे। कोई भी कृतघ्न नहीं था। यह सब राम राज्य का प्रभाव एवं प्रताप था।

टिप्पणी – (1) आदर्श रामराज्य का उल्लेख किया गया है।

(2) राम के प्रताप से कोई भी दुखी प्राणी का न होना, राम का राजा के रूप में कुशल नेतृत्वकर्त्ता की छवि धारण करना, प्रकट करता है।

(3) इसी राम राज्य की कल्पना गांधी जी किया करते थे।

(4) राम का आदर्श सर्वोच्च एवं हितकारी है।

(5) राम के होने से सभी दुखों से मुक्ति मिल जाती है–

"यत्ररामो भयंनास्ति नास्ति तत्र पराभवः।"

(5)

फूलहिं–फरहि – – – – – – – – – – – – – – – – – **दिसा विभागा ।।23।।**

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – राम के राज्य में केवल मनुष्य ही नहीं, वरन् पशु–पक्षी वृक्ष, नदी, खेत, सभी प्रसन्न हैं। उनकी यह प्रसन्नता उनमें दिखाई भी दे रही है। वे अनुकूल परिणाम देकर अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं–

व्याख्या – वन में वृक्ष सदैव फूलते एवं फलते रहते थे। वहां हाथी और सिंह साथ–साथ विचरण करते थे। अन्य पशु और पक्षी भी अपना स्वाभाविक बैर भुलाकर परस्पर प्रेम से रहते थे। वन में पक्षियों के झुण्ड कलरव करते थे, निर्भय चुगते और आनन्द क्रीड़ा में लीन रहते थे। नाना प्रकार के पशु निडर होकर विचरण करते, चरते और आनन्द में मग्न रहते थे। सर्वत्र शीतल एवं सुगन्धित वायु धीरे–धीरे चलती थी। भौंरे फूलों का रस लेकर मधुर गुंजार करते थे। लता और वृक्ष मांगने पर तुरन्त पुष्प रस टपका देते थे। सभी गायें मनचाहा दूध देती थी।

पृथ्वी सदैव खेती से हरी–भरी रहती थी। त्रेतायुग में सम्पूर्ण सतयुग जैसे आचरण होते थे। यह जानकर कि जगत् की आत्मा के भगवान राम ही आजकल राजा हैं, पर्वतों ने विविध प्रकार की मणियों भरी खानें प्रकट कर दी थी। सभी नदिया श्रेष्ठ, शीतल, निर्मल, स्वादिष्ट और सुखद जल लेकर बहती थी। समुद्र अपनी मर्यादा मे रहते थे और अपने–अपने तटों पर असंख्या रत्न डाल देते थे, जिन्हे मनुष्य सहज ही प्राप्त कर लेते थे। सभी तालाब कमलों से परिपूर्ण रहते थे। दसो दिशाएं अपने–अपने भाग में अत्यन्त प्रसन्न रहती थी। चन्द्रमा अपनी किरणें पृथ्वी पर फैलाकर कृषि आदि को पुष्ट करता था, सूर्य भी आवश्यकतानुसार धूप प्रदान करता था और मेघ मांगने पर जल देते थे।

टिप्पणी – (1) रामराज्य में राम के प्रभावसे जड़–चेतन सभी प्रसन्न और सुखी हैं।

(2) व्यक्ति, पशु, पक्षी, नदियां श्रीराम के प्रताप से प्रसन्न हैं और अपनी ओर से जो भी प्रदान कर सकते हैं, सहर्ष दे रहे हैं।

(3) रामराज्य का आदर्श रूप यहां परलक्षित हो रहा है।

(4) अवधी भाषा का ललित प्रयोग दृष्टिगत है।

(6)

संत न कहीं – **यह दंड ।। 37।।**

संदर्भ – पूर्ववत् ।

प्रसंग – मर्यादावादी महात्मा तुलसी ने 'उत्तरकांड' में सज्जन और असज्जन के भेद को स्पष्ट किया है। उसी संत और असंत के लक्षण व्यक्त करते हुए तुलसी ने कहा है –

व्याख्या – सन्त और असन्त में क्रमशः चन्दन और कुलाडी का सा अन्तर देखा जाता है, क्योंकि कुल्हाड़ी तो चन्दन के वृक्षों को काटने का काम करती है, परन्तु चन्दन अपना गुण देकर उसे भी सुगन्धित बना देता है। इसिलिए चन्दन तो देवताओं के मस्तक पर चढ़ता है और जगत को प्रिय होता है, कुल्हाड़ी के मुख को यह दण्ड मिलता है कि उसकों आग में तपाकर घन से पीटा जाता है।

टिप्पणी – (1) सज्जन और असज्जन का भेद कवि ने स्पष्ट किया है।

(2) सज्जन समाज में पूज्य होते हैं, दुष्ट को सदैव प्रताड़ना मिलती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(3) मनुष्य को सज्जन होना ही चाहिए।
(4) तुलसी ने कहा है –
"संत हृदय नवनीती समाना।"
अन्यत्र भी कहा गया है –
"सज्जनानां हृदयं तु कोमलं नवनीतवत्।"

(7)

विषय अलंपट – – – – – – – – – – – – – – – – – – – नहिबोलहि।।38।।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – क्षमाशील एवं दयावान व्यक्ति के गुणों का बखान करते हुए महाकवि तुलसीदास का अभिमत है–

व्याख्या – संत लोग क्षमाशील होने के कारण देवों के समान पूज्य होते हैं और संसार भर को प्रिय होते हैं। वे कभी विषयों में लिप्त नहीं होते शील और सद्गुणों की खान होते हैं, सबसे समान भाव रखते हैं और अजातशत्रु होते हैं। वे सदैव मन्द रहित और बैरागी होते हैं तथा लोभ, अमर्ष, हर्ष और भय तो त्याग कर जीवन बिताते हैं। उनका चित्त बड़ा कोमल होता है, वे दीनों पर दया करते हैं और मन–वचन–कर्म से छल–कपट–रहित होकर भगवान की भक्ति करते हैं। वे सबको मान–प्रतिष्ठा देते है और स्वयं मान–रहित रहते हैं। वे कामना रहित होते हैं और निष्काम रहकर सदैव भगवन्नाम जपते रहते हैं। वे शान्ति, वैराग्य, विनम्रता और मुदिता के घर होते हैं और शीतलता, सरलता और मित्रता का बर्ताव करते हैं। वे धर्म इन्द्रिय–दमन, बारह प्रकार के नियम और नीति से कभी नहीं डिगते तथा वे कभी कठोर वचन नहीं बोलते।

टिप्पणी – (1) क्षमाशील व्यक्ति समाज में मानसम्मान प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है।
(2) दयावान – सद्गुणी व्यक्ति अपने सत्य मार्ग से कभी नहीं भटकता।
(3) सद्गुणी व्यक्ति समाज की शोभा होता है।
(4) यहां तुलसी के विचार बहुत व्यापक रूप में प्रकट हुए हैं।
(5) अवधी भाषा का सफल प्रयोग हुआ है।
(6) छंद – चौपाई और दोहा प्रयुक्त हुआ है।

(8)

सुनहु – – – – – – – – – – – – – – – – – – – हृदय कठोरा।।39।।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – महात्मा तुलसीदास ने सज्जन और असज्जन के लक्षणों का निरूपण करते हुए कहा है–

व्याख्या – असंतो एवं असज्जनों का साथ सदैव दुःखदाई होता है। उनके हृदय में सदैव अत्यधिक जलन बनी रहती है, क्योंकि वे पराया ऐश्वर्य देखकर सदैव जलते रहते हैं। वे जहां कहीं दूसरो की निन्दा सुनते हैं, वहां ऐसे प्रसन्न होते है मानो उन्हें नवनिधियां प्राप्त हो गई हो। वे काम, क्रोध मद और लोभ में तत्पर रहते है, निर्दयी, कपटी, कुटिल एवं पापों के घर होते हैं और अकारा सब किसी से बैर रखते हैं। जो उनके साथ भलाई करता है वे उसके साथ भी बुराई किया करते हैं। उनका लेन–देन दोनों व्यवहार झूठ से भरे रहते हैं। उनका झूठ ही भोजन और उनका चबैना भी झूठ ही होता है।

वे मोर की तरह मीठे बचन तो बोलते है, किन्तु उनका हृदय ऐसा कठोर होता है कि महा विषैले सर्प को भी खा जाते है और उन पर तनिक भी विष का प्रभाव नहीं होता।

टिप्पणी – (1) असज्जन हमेशा कष्ट देते हैं।
(2) समाज के लिए उनका होना सदैव दुखदायी होता है।
(3) सज्जनों को चंदन के समान शीतल बताकर उन्हें श्रेष्ठ कहा गया है।

(9)

जौ परलोक – – – – – – – – – – – – – – – – – – – द्विज सेवा ।।45।।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – तुलसीदास ने राम के मुख से भक्ति के महात्म्य को स्पष्ट करवाया है। राम कहते हैं–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

व्याख्या – जो लोग इहलोक और परलोक दोनों में सुख चाहते हैं, उन्हें यह दृढ़ता के साथ समझ लेना चाहिए कि यह भक्ति मार्ग अत्यन्त सुगम और सुखदायक है। वेद और पुराणों में भी ऐसा ही कहा गया है, क्योंकि ज्ञान का मार्ग तो अत्यन्त कठिन है, उसकी सिद्ध में अहंकारादि अनेक विघ्न आते हैं–
उसका साधन भी कठिन है, फिर उसमें मन के लिए कोई आधार भी नहीं होता। अनेक कष्ट झेलने पर कोई मुश्किल से ही उस मार्ग में सफल होता है, फिर भी भक्तिहीन होने से वह भगवान को भी प्रिय नहीं होता। भक्ति स्वतंत्र है और सभी सुखों की खान है, किन्तु बिना सत्संग के इसे कोई पा नहीं सकता। साथ ही बिना पुण्य समूह के सन्त भी नहीं मिलते। वैसे सत्संग संसार का अन्त करने वाला होता है।

टिप्पणी – (1) दास्यभाव की भक्ति को सर्वोच्च एवं श्रेष्ट बतलाया गया है।
(2) भक्ति का महत्व एवं महात्म्य स्पष्ट किया गया है।
(3) भक्ति से बड़ा और पुण्यकारी काम दूसरा नहीं।

(10)

जप तप नियम – रति होई।।49।।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – तुलसीदास ने वशिष्ट मुनि से भी तप, जप, नियम आदि का आख्यान करवाया है। वशिष्ट मुनि इसी क्रम में कहते हैं –

व्याख्या – जप, तप, नियम, योग, वर्णाश्रम–धर्म, वेदोक्त अनेक शुभकर्म, ज्ञान, दया, दम, तीर्थस्थान आदि जितने भी धर्म–कर्म वेदों और सज्जनों ने बताये हैं तथा अनेक शास्त्र, वेद और पुराण पढ़ने एवं सुनने का एक ही फल है कि भगवान के चरणों में निरन्तर प्रेम होना चाहिए। यही समस्त साधनों का सुन्दर फल है। भला कही मैले से धोने से मैल छूट सकता है? क्या जल को मथन से कोई घी पा सकता है। अतः बिना प्रेमा भक्ति रूपी जल के अन्तःकरण का मैल कभी दूर नहीं होता।

इसी कारण वही सर्वज्ञ है, वही तत्वज्ञ है, वहीं पंडित है, वही गुणों का घर है, वही अखण्ड विज्ञानी है और वही चतुर एवं समस्त शुभ लक्षणों ये युक्त है, जिसका प्रेम भगवान के चरण कमलों में हैं।

मन–क्रम–वचन से ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणों के चरणों की पूजा करना संसार में सबसे बड़ा पुण्य है। जो कपट छोड़कर ऐसा करता है, उस पर मुनि और देवता भी प्रसन्न होते हैं।

टिप्पणी – (1) जीवन के उदात्त मूल्यों का आख्यान करते हुए यहा जप, तप, नियम आदि का महत्व एव श्रेष्ठत्व प्रतिपादित किया गया है।
(2) भगवत् भक्ति एवं जीवन–शुचिता के लिए जप, नियम आदि आवश्यक हैं।

8.13 सारांश

इस इकाई के माध्यम से भक्तिकाल में सगुणभक्ति के अंतर्गत रामभक्ति काव्यधारा के सबसे महान् कवि तुलसीदास के व्यक्तित्व एवं कर्त्तत्व पर विशिष्ट सामग्री प्रस्तुत की गई। इस इकाई का सारांश निम्नवत् है –

- रामभक्ति काव्यधारा में तुलसीदास भक्तशिरोमणी के रूप में विख्यात इस धारा के सुमेरु संत कवि हैं।
- तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरित मानस' न केवल हिंदी का, वरन् भारतीय साहित्य तथा उससे भी आगे विश्व साहित्य के प्रमुख महाकाव्यों में से एक है। इस रचना के माध्यम से हिंदी कविता की जो उन्नति हुई है, उस पर समूचे हिंदी साहित्य को गर्व है।
- रामचरित मानस के अतिरिक्त तुलसीदास ने 'विनय पत्रिका', 'कवितावली', 'श्रीकृष्ण गीतावली', 'हनुमान बाहुक', 'वरवै रामायण' आदि जैसी महत्त्वपूर्ण कृतियों की रचना की है, जो उनकी काव्य प्रतिभा के प्रमाण हैं।
- तुलसी की लोकप्रियता उनकी समन्वित दृष्टि के कारण है। अपने 'मानस' में आदर्श एवं उदात्त जीवन मूल्यों की स्थापना कर तुलसी ने सामाजिक आचार संहिता प्रस्तुत कर दी है।
- तुलसीदास अपनी काव्यगत विशेषताओं के कारण लोकनायक के रूप में जाने पहचाने जाते हैं।
- तुलसीदास ने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, लोकनीति, आदर्श, सामाजिक समरसता आदि पक्षों पर बहुत व्यापक विवेचन प्रस्तुत किया है।

Jan Nayak Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- इस दृष्टि से 'रामचरित मानस' सम्पूर्ण रूप से महत्त्वपूर्ण है, पर उसका उत्तरकांड पूरे मानस का निचोड़ कहा जा सकता है, जहां उपर्युक्त पक्षों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।
- उत्तरकांड रामचरित मानस का उपसंहार है, जिसके अतर्गत तुलसीदास ने अपने दार्शनिक विचार प्रकट किए हैं, जो प्रत्येक दृष्टि से महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं।
- इसी तरह उत्तरकांड वैराग्य, ज्ञान, भक्ति, मानव धर्म, सज्जन – असज्जन भेद, आदि उदात्त्व मानव मूल्यों की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है, जिस पर तुलसीदास ने व्यापक दृष्टि डाली है।

अपनी इन विशेषताओं के कारण तुलसीदास विश्वकवि के रूप में समादृत हैं और उनकी रचनाएं मानव समाज के लिए पथप्रदर्शक हैं।

8.14 उपयोगी पुस्तकें

1. विश्वकवि तुलसी – डॉ. रामप्रसाद मिश्र
2. हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल
3. त्रिवेणी – आचार्य रामचंद्र शुक्ल
4. हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेन्द्र
5. तुलसी – आधुनिक वातायन से – डॉ. रमेशकुंतल मेघ

8.15 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबंधात्मक / आलोचनात्मक प्रश्न

1. तुलसीदास के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए।
2. तुलसीदास की रचनाओं का विस्तृत परिचय दीजिए।
3. तुलसीदास की लोकप्रियता के कारण स्पष्ट कीजिए।
4. तुलसीदास की समन्वय भावना पर एक निबंध लिखिए।
5. तुलसीदास के दर्शन पर एक लेख लिखिए।
6. उत्तरकांड के आधार पर तुलसी काव्य की विशेषताएं स्पष्ट कीजिए।
7. उत्तरकांड के आधार पर तुलसीदास के भक्ति पर विचार प्रकट कीजिए।
8. उत्तरकांड में सामाजिक चित्रण विषय पर समीक्षात्मक लेख लिखिए।
9. उत्तरकांड में तुलसीदास के ज्ञान और संत असंत विषयक विचारों की समीक्षा कीजिए।
10. उत्तरकांड में व्यक्त तुलसीदास के दर्शन की सनीक्षा कीजिए।

लघूत्तरीय प्रश्न

1. तुलसीदास का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. रामचरित मानस का संक्षेप में महत्त्व स्पष्ट कीजिए।
3. तुलसी की प्रमुख रचनाओं का उल्लेख कीजिए।
4. तुलसी की लोकप्रियता के पांच कारणों का उल्लेख कीजिए।
5. रामचरित मानस के उत्तरकांड का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
6. उत्तरकांड का वर्णविषय स्पष्ट कीजिए।
7. उत्तरकांड में व्यक्त रामराज्य की विशेषताओं को संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।
8. उत्तरकांड के आधार पर सज्जन–असज्जन का भेद निरूपित कीजिए।
9. उत्तरकांड के आधार पर तुलसी की भक्ति की प्रमुख विशेषताएं स्पष्ट कीजिए।
10. उत्तरकांड में समाज का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1. तुलसीदास का जन्म कब और कहां माना जाता है ?
2. तुलसीदास के बचपन का नाम क्या था ?
3. तुलसीदास के माता–पिता कौन थे ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. तुलसीदास किस संप्रदाय से प्रभावित थे ?
5. भक्तिकाल का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य कौनसा है ?
6. तुलसीदास को मुगलकाल का सबसे बड़ा व्यक्ति किसने कहा था ?
7. तुलसीदास किस मुगल शासक के समकालीन थे ?
8. तुलसीदास को बुद्ध के बाद सबसे बड़ा लोकनायक जिसने माना है ?
9. तुलसीदास के गुरू कौन थे ?
10. तुलसीदास को हिंदी का सर्वश्रेष्ठ कवि किसने घोषित किया है ?
11. रामचरित मानस की भाषा कौनसी है ?
12. तुलसीदास किसकी विचारधारा से प्रभावित थे ?
13. तुलसी की प्रथम तथा अंतिम रचना का नाम लिखिए।
14. तुलसी को हिंदी का कैसा कवि माना जाता है ?
15. रामचरित मानस का सबसे अंतिम कांड कौन सा है ?
16. रामचरित मानस में कुल कितने कांड हैं ?
17. तुलसी की भक्ति किस प्रकार की है ?
18. विनयपत्रिका की भाषा कौन–सी है ?
19. रामचरित मानस का प्रधानरस कौन–सा है ?
20. तुलसी काव्य की सर्वप्रमुख विशेषता क्या है ?

•••

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग–7

इकाई–9 बिहारीलाल

संरचना

9.0 प्रस्तावना
9.1 उद्देश्य
9.2 बिहारी का जीवन परिचय
9.3 बिहारी की लोकप्रियता
9.4 बिहारी का काव्यवैशिष्ट्य
9.5 बिहारी का संयोग श्रृंगार वर्णन
9.6 बिहारी काव्य का विरह वर्णन (वियोग श्रृंगार)
9.7 बिहारी काव्य में भक्ति तथा दर्शन
9.8 बिहारी की भाषा
9.9 मूलपाठ एवं महत्त्वपूर्ण व्याख्याएं
9.9.1 मूलपाठ (बिहारी सतसई – आरंभिक 50 दोहे)
9.9.2 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएं
9.10 सारांश
9.11 उपयोगी पुस्तकें
9.12 महत्त्वपूर्ण प्रश्न
निबन्धात्मक / आलोचनात्मक प्रश्न / लघूत्तरीय प्रश्न / अतिलघूत्तरीय प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

"कविता का मतलब है, जो जीवन को नवस्वर दे,
कविता का मतलब है, जो स्फूर्ति चेतना भर दे।
कविता का मतलब शब्दों का जाल नहीं है,
कविता वह है, जो 'गागर में सागर' भर दें।"

रीतिकाल की समूची काव्यपरंपरा में बिहारी के समान लोकप्रियता प्राप्त करनेवाला हिंदी का कोई दूसरा कवि दिखाई नहीं देता। मात्र 726 दोहों के माध्यम से प्रस्तुत एकमात्र रचना 'बिहारी सतसई' जैसा विलक्षण एवं चमत्कारिक ग्रंथ रचकर बिहारी ने जो प्रसिद्धि प्राप्त की, वह अन्य कवियों के लिए ईर्ष्या का विषय है। बिहारी से पूर्व दोहे जैसे लघुआकार का छंद श्रृंगारिक वर्णनों के लिए उपयुक्त न था। बिहारी ने इस दोहा छंद को श्रृंगार के आवरण में लपेटकर ऐसा प्रस्तुत किया कि श्रृंगार के पर्याय के रूप में दोहा इस दृष्टि से सर्वाधिक उपयुक्त छंद माना जाने लगा। बिहारी के दोहे इतने लोकप्रिय हुए कि उनकी तुलना गालिब के शेरों से की जाने लगी और 'बिहारी सतसई' को हिंदी का 'दिवान–ए–गालिब' की संज्ञा दी जाने लगी।

बिहारी को मूलतः श्रृंगारी कवि माना जाता है। रीतिकाल का पूरा परिवेश श्रृंगार का परिवेश है। संभवतः इसीलिए इस कालखंड को श्रृंगार काल भी कहा जाता है। लक्षणग्रंथों के निर्माण की अधिकता के कारण आचार्य शुक्ल ने इस काल को रीतिकाल नाम दिया। इसकाल नामकरण के पीछे उनका आग्रह था कि इससमय रीतिग्रंथों का निर्माण तथा उन्हीं रीतियों के आधार पर काव्यसर्जन इस काल की प्रमुख एवं व्यापक प्रवृत्ति दिखाई देती है। इसी प्रवृत्ति के आधार पर शुक्ल जी ने बिहारी को भी रीतिबद्ध कवियों की श्रेणी में स्थान दिया, जबकि बिहारी ने व्यवस्थित रूप से किसी रीतिग्रंथ या लक्षणग्रंथ का निर्माण नहीं किया था।

बिहारी ने भले ही किसी लक्षण या रीतिग्रंथ का निर्माण नहीं किया था, पर उनमें वह क्षमता एवं काव्यप्रतिभा विद्यमान थी कि वे ऐसा कर सकते थे। उनके द्वारा प्रणीत 'सतसई' के दोहे काव्यांग विवेचन के क्रम में उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में प्रयुक्त किए जा सकते हैं। श्रृंगार के प्रत्येक अंग–उपांग से संबंधित सटीक उदाहरण के रूप में बिहारी के दोहों का उल्लेख किया जा सकता है। ऐसी उल्लेखनीय कृति 'सतसई' के रचनाकार के रूप में बिहारी रीतिकाल के ही सबसे लोकप्रिय कवि नहीं माने जाते हैं, वरन् सम्पूर्ण हिंदी काव्य में लोकप्रियता की दृष्टि से

Rajiv Gandhi Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तुलसीदास, सूरदास के बाद बिहारी का ही स्थान माना जाता है। रीतिकाल का उत्कृष्ट शृंगारी सर्जन बिहारी के दोहों के माध्यम से सजीव हो उठा है।

रीतिकाल कवियों के जो वर्ग रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध, रीतिमुक्त किए गए हैं,उनमें रीतिसिद्ध कवियों का प्रतिनिधित्व अकेले बिहारी करते हैं, बल्कि यह वर्ग सिर्फ बिहारी के नाम से जाना पहचाना जाता है। रीतिसिद्ध का अर्थ होता है– रीति नियमों – पद्धतियों को ध्यान में रखकर काव्यरचना में प्रवृत्त होना। वस्तुतः, बिहारी रीतिसिद्ध कवि के रूप में रीतिकाल की क्लासिकल कविता के सिरमौर हैं, जिनकी 'सतसई' इसकाल की सबसे उल्लेखनीय एवं महत्त्वपूर्ण कृति स्वीकार की जाती है।

वैसे तो 'सतसई' का काव्य आधार शृंगार है, पर बिहारी ने भक्ति, नीति, लोकव्यवहार, ऋतुवर्णन आदि विषयों पर भी बहुत उत्कृष्ट दोहों की रचना की है, जो उन्की काव्यरुचि एवं बहुज्ञता के उदाहरण कहे जा सकते हैं। उनकी रचनाओं में काव्यरचना के जो विविधपक्ष उजागर हुए हैं, वे उनकी बहुमुखी काव्यप्रतिभा के परिचायक हैं।

शृंगार वर्णन में बिहारी सिद्धहस्त हैं। चाहे शृंगार का संयोगपक्ष हो या वियोग पक्ष, दोनों में बिहारी का काव्यकौशल काव्यत्व की पराकाष्ठा पर पहुंचा हुआ दिखाई देता है। वाग्विदग्धता, उहात्मकता, स्वाभावोक्ति, समासोक्ति, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता आदि से विभूषित बिहारी का काव्य अपने कलात्मक सौंदर्य में चरमशीर्ष पर दृष्टिगत होता है। भाषा, अलंकार गुण आदि की दृष्टि से बिहारी की कविताएं बहुत आकर्षक हैं। वे निःसंदेह रीतिकाल के सर्वोत्कृष्ट कवि के रूप में लोकप्रिय एवं समादृत हैं, जिनका काव्य हिंदी कविता का शृंगार है।

9.1 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से रीतिकाल के सबसे प्रमुख कवि महाकवि बिहारी का विवेचन–विश्लेषण अपेक्षित है। बिहारी ने अपनी 'सतसई' में छोटे से छंद दोहे के माध्यम से जो चमत्कारपूर्ण सर्जन किया है, वह रीतिकाल की समूची काव्यपरंपरा में अनुपम है। बिहारी की चमत्कारिक काव्यप्रतिभा के आलोक में उनका काव्यवैशिष्ट्य प्रतिपादित करना इस इकाई का उद्देश्य है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपः

- रीतिकाल के सबसे लोकप्रिय एवं विलक्षण कवि बिहारी के व्यक्तित्व एवं कर्त्तत्व से भलीभांति परिचित हो सकेंगे।
- बिहारी की ही नहीं रीतिकाल की सर्वश्रेष्ठ कृति 'बिहारी सतसई' के संबंध में विस्तार से जान सकेंगे।
- बिहारी की लोकप्रियता का आधार क्या है , इससे परिचित हो सकेंगे।
- बिहारी के काव्य में संयोग और वियोग दोनों से पूरी तरह अभिज्ञ हो सकेंगे।
- इसके साथ ही बिहारी की भक्तिविषयक अवधारणाएं, दर्शन–विषयक उनकी मान्यताएं, उनकी भाषा एवं सबसे बढ़कर उनकी बहुज्ञता आदि के विषय में विस्तार से जान सकेंगे।
- बिहारी सतसई की महत्त्वपूर्ण व्याख्याओं से परिचित हो सकेंगे।
- समग्रतः बिहारी के विषय में मूल्यांकनपरक सामग्री से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

9.2 बिहारी का जीवन परिचय

रीतिकालीन रीतिसिद्ध कवियों में एक ही नाम सर्वोच्य स्थान पर उभरकर आता है, वह है बिहारी का। मात्र एक रचना 'बिहारी सतसई' लिखकर इतनी प्रसिद्ध प्राप्त करनेवाला रीतिकाल का कोई दूसरा कवि न होगा। बिहारी का जन्म ग्वालियर के पास बसुआ गोविन्दपुर गांव में संवत् 1660 (सन् 1595 ई.) को मानते हैं। पण्डित अंबिकादत्त व्यास ने बिहारी के जीवन–वृत्त से संबंधित एक दोहा लिखा है–

" संवत जुग सररस सहित, भूमि रीति गिन लीन।
कार्तिक सुदि बुध अष्टमी जन्म हमें बिधि दीन।।"

बिहारी का बचपन बूंदेलखण्ड में व्यतीत हुआ था तथा युवावस्था में ये अपनी ससुराल मथुरा में रहे। ऐसा निम्नलिखित दोहे से भी प्रकट होता है–

"जनम ग्वालियर जानिए, खण्ड बुंदेले बाल।
तरुनाई आई सुघर, मथुरा बसि ससुराल।।"

बिहारी के पिता का नाम 'केशवराय' कहा जाता है। कुछ विद्वान इन्हें 'कवि केशवदास का पुत्र होना भी स्वीकार करते हैं, जो तथ्यपरक नहीं प्रतीत होता। कहा जाता है कि इनके पिता ग्वालियर छोड़कर ओरछा चले आए जहां पर बिहारी ने अनेक ग्रंथों का अध्ययन किया। कुछ दिनों बाद इनके पिता वृंदावन आ गए। वृंदावन आकर बिहारी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

का विवाह मथुरा में हो गया। तभी से वे वहीं रहने लगे। वृदावन आगमन के समय शाहजहां ने बिहारी की प्रतिभा की बहुत प्रशंसा की थी। आगरा, आमेर (जयपुर) के अतिरिक्त बूदी राज्य से भी इनका सबध माना जाता है।

जयपुर के महाराजा जयसिंह के निमंत्रण पर बिहारी जयपुर आ गए थे। महाराज की अपनी नवविवाहिता किशोरी रानी के मोहपाश में बंधा हुआ देखकर बिहारी ने उन्हें अपने कर्तव्य का बोध करवाया था। इस क्रम में उन्होंने एक दोहा लिखकर राजमहल में प्रेषित करवाया जिसे सुनकर राजा को अपने कर्तव्य एवं दायित्व का बोध हो गया था। वह दोहा इस प्रकार है–

"नहि पराग नहि मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सों बध्यो, आगे कौन हवाल।।"

इसी तरह यह भी कहा जाता है कि जब जयसिंह दक्षिण भारत में मुगलों की ओर से शिवाजी से लड़ने के लिए प्रस्थान करने लगे, तब बिहारी ने एक अन्योक्ति के माध्यम से राजा को सावचेत किया था–

"स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा, देखि विहंग विचारि।
बाज पराए पानि पर, तू पंछी न मारि।।"

कहा जाता है कि बिहारी को अपने प्रत्येक दोहे पर पुरस्कार मिलता था। वे सामंती जीवन व्यतीत करनेवाले बहुत प्रेमी और रसिक जीव थे। संवत् 1720 (सन्1663) के आस–पास बिहारी की मृत्यु हुई थी।

बिहारी की एकमात्र रचना उनकी 'सतसई' है जो, 'बिहारी सतसई' के नाम से प्रसिद्ध है। उसी एक रचना के आधार पर बिहारी की लोकप्रियता चिरस्थायी है। सतसई के एक–एक दोहे में बिहारी की बहुज्ञता एवं उनकी काव्य प्रतिभा का आभास मिलता है। श्रृंगार रस के ग्रंथों में सतसई का स्थान तो सर्वोच्च है ही, समूचे हिंदी साहित्य में प्रभाव और लोकप्रियता की दृष्टि से 'बिहारी सतसई' का पर्याप्त ऊंचा स्थान है। दो पंक्ति के छोटे छंद दोहे के माध्यम से भावों की जो गंभीरता, अर्थ की जो व्यापकता और गहराई बिहारी ने कुशलतापूर्वक अभिव्यक्त की है, उसकी वजह से ऐसा कहा जाता है–

'सतसइया के दोहरे, ज्यों नाविक के तीर।
देखन में छोटे लगें, घाव करें गंभीर।।"

उर्दू के शेर की तरह मार्मिक और 'वाह–वाह की क्षमता से परिपूर्ण बिहारी के दोहे सुनने वालों पर बहुत गहरा प्रभाव छोड़ते हैं। यही कारण है कि 'सतसई की सर्वाधिक टीकाएं लिखी गई हैं और अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। इस क्रम में मुंशी देवीप्रसाद 'प्रीतम' द्वारा प्रस्तुत 'सतसई' का उर्दू तर्जुमा एक पठनीय और अवलोकनीय ग्रंथ है, जिसे पढ़कर मौलिक काव्य का आनंद मिलता है।

9.3 बिहारी की लोकप्रियता

रीतिकालीन रीतिसिद्ध कवियों में एक ही नाम सर्वोच्च स्थान पर उभर कर आता है, वह है बिहारी का। मात्र एक रचना 'बिहारी सतसई' लिखकर इतनी प्रसिद्धि प्राप्त करनेवाला रीतिकाल का कोई दूसरा कवि न होगा। सतसई के एक–एक दोहे में बिहारी की बहुज्ञता एवं उनकी काव्यप्रतिभा का आभास मिलता है। श्रृंगार रस के ग्रंथों में 'सतसई' का स्थान सर्वोच्च है ही, समूचे हिंदी साहित्य में प्रभाव और लोकप्रियता की दृष्टि से 'बिहारी सतसई' का पर्याप्त ऊँचा स्थान है। दो पंक्ति के छोटे छंद 'दोहे' के माध्यम से भावों की जो गंभीरता, अर्थकी जो व्यापकता और गहराई बिहारी ने कुशलतापूर्वक अभिव्यक्त की है, उसकी वजह से बिहारी को रीतिकाल का सर्वश्रेष्ठ कवि कहा जाता है।

कल्पना की सभाहार शक्ति के परिचायक बिहारी के दोहे गंभीर से गंभीर भाव व्यक्ति करने में पूर्ण समर्थ है :

"दृग उरझत टूटत कुटुम जुरत चतुर चित प्रीत।
परत गाठ दुर्जन हिए, दई नई यह रीत।।"

वे प्रायः सुंदर शब्दों का प्रयोग करते हैं। सामाजिक पदावली युक्त भाषा का प्रवाहपूर्ण चित्र एवं बिंब बिहारी की काव्यकला के स्पष्ट निदर्शन हैं :

"सटपटाति सी ससि–मुखी, मुख घूंघट पर ढांकि।
पावक झर सी झमकि कै, गई झरोखा झांकि।।"

बिहारी ने श्रृंगार के दोनों पक्षों संयोग और वियोग का अत्यन्त सफल चित्रण किया है। संयोग के विविध चित्र जिस तरह अनेक दोहों में उभरे हैं उन्हें देखकर मन मुग्ध हो जाता है :

"बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै भौंहनि हंसे, दैन कहैं नटि जाय।।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शृंगार के विरह वर्णन में बिहारी की काव्यप्रतिमा चरम उत्कर्ष पर पहुंची हुई है। बिहारी के विरह वर्णन में पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण का बहुत मार्मिक चित्रण हुआ है:

"इत आवति चलि जाति उत, चली छ सातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरें सी रहै, लगी उसासन साथ।।"

कलापक्ष के निरूपण में बिहारी की काव्यप्रतिभा बहुत बड़ी–चड़ी हुई है। उनका कलापक्ष बहुत सशक्त और मार्मिक है। दोहा और सोरठा जैसे छोटे आकार के छंद में अलंकार आदि का जो कौशल बिहारी ने प्रदर्शित किया है, वह उन्हें रीतिकाल का बेजोड़ कवि सिद्ध करता है।

'जहाँ तक वर्णों के जुड़ने, एक–एक शब्द में अधिक से अधिक अर्थ भरने, अलंकारों को भाव से जोड़ने का संबंध है। बिहारी की तुलना में आनेवाला कवि संसार में शायद कोई नहीं हुआ। इसीलिए ग्रिअर्सन ने स्वीकार किया था कि यूरोपियन कविता में बिहारी की कविता की समता नही मिलती। भगीरथ मिश्र ने कहा था "हिंदी के कला–प्रधान कवियों में बिहारी सर्वश्रेष्ठ है।"

अलंकारों के महत्त्व को स्वीकार करते हुए बिहारी ने अपनी सतसई में लगभग सभी प्रमुख अलंकारों को सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। विभावना का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

"अंग–अंग नग जगमति, दीपसिखा सी देह।
दिया बढ़ाये हू रहै, बड़े उजेरो गेह।।"

बिहारी ने एक ही दोहे में यमक, वीप्सा और अनुप्रास अलंकारों की छटा बिखेर कर अपने काव्य कौशल का परिचय दिया है :

"रनित भृंग घंटावली, झरित दान मधुनीर।
मंद मंद आवत चल्यौ, कुंजर कुंज समीर।"

आचार्यशुक्ल का कथन है कि – "बिहारी की भाषा चलती होने पर भी साहित्यिक है। वाक्य रचना व्यवस्थित है और शब्दों के रूपों का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर हुआ है। ब्रजभाषा के कवियों ने शब्दों को तोड़ मरोड़कर विकृत कर दिया है। भूषण और देव ने शब्दों का अंगभंग किया और कहीं–कहीं शब्दों का मनमाना प्रयोग भी किया, बिहारी की भाषा इस दोष से मुक्त है।"

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि बिहारी रीतिकालीन कवियों में सर्वोत्तम कलाकार हैं। 'बिहारी सतसई' की लोकप्रियता उर्दू के 'दीवाने गालिब' की तरह है। गालिब के 'अंदाजे बयां और' की तरह बिहारी का अदाज भी अनूठा है, निराला है।

9.4 बिहारी का काव्यवैशिष्ट्य

बिहारी रीतिसिद्ध कवि हैं। अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न और प्रभावित करने के लिए उन्होंने शृंगार रस में चमत्कारपूर्ण रचनाएं प्रस्तुत की हैं। यद्यपि 'सतसई' अनेक संस्कृत ग्रंथों (गाथा, सप्तशती, आर्यासप्तशती, अमरूकशतक आदि) से प्रेरित होकर मुक्तक रूप में प्रस्तुत की गई है, तथापि लोकप्रियता, विलक्षणता और प्रभाव की दृष्टि से इसकी तुलना किसी मुक्तक काव्य से नहीं की जा सकती। रीतिग्रंथ की रचना नहीं करने के बावजूद बिहारी ने अपने दोहों के माध्यम से काव्यांगों के विशिष्ट उदाहरण प्रस्तुत कर अपनी विलक्षण काव्य प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। सतसई में रस अलंकार, रीति, गुण, वक्रोति, ध्वनि, नायिका भेद आदि काव्य के लगभग सभी अंगों से संबंधित उदाहरण मिल जाएंगे। यही कारण है कि रीति काव्य परंपरा का निर्वाह अपने काव्य में करके बिहारी सर्वोच्च रससिद्ध कवि के रूप में समादृत हैं। मुक्तक काव्य की विशेषताओं के क्रम में बिहारी के मुक्तक काव्य की प्रशंसा करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है–

"मुक्तक कविता में जो गुण होना चाहिए वह बिहारी के दोहों में अपने चरम उत्कर्ष को पहुंचा है, इसमें कोई संदेह नहीं। ..... इसमें तो रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं जिनसे हृदयकलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है। यदि प्रबंधकाव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि बिहारी के दोहे मुक्तक के ऐसे ही गुलदस्ते हैं, जिनमें से रस के छींटे बाहर निकलते हैं और सुननेवालों की हृदय कलिका खिल–खिल जाती है।

हालांकि सतसई शृंगार रस की रचना है, पर उसमें भक्ति नीति, वैराग्य आदि से संबंधित दोहे मिलते हैं। भाषा और भाव की कसावट से परिपूर्ण कलात्मक प्रस्तुति के कारण बिहारी के दोहों का प्रभाव जिस रूप में पड़ता है, वैसा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रभाव अनेक प्रसिद्ध कवियों के सवैये और कवित्त का नहीं पड़ता। कल्पना की समाहार शक्ति के परिचायक बिहारी के दोहे गभीर से गभीर भाव व्यक्त करने मे पूर्ण समर्थ है–

"दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीत।
परत गांठ दुर्जन हिए, दई नई यह रीत।।"

भाषा पर असाधारण अधिकार रखनेवाले बिहारी शब्दों के ऐसे पारखी थी कि अंगूठी में नग की भांति वे सटीक और सुंदर शब्दों का प्रयोग करते थे। सामासिक पदावली युक्त भाषा का प्रवाहपूर्ण चित्र एवं बिंब बिहारी की काव्यकला के स्पष्ट निदर्शन है–

"सटपटाति सी ससि–मुखी, मुख घूंघट पट ढांकि।
पावक झर सी झमकि कै, गई झरोखा झांकि।।"

भावानुकूल शब्द चयन के साथ अद्‌भुत लयात्मकता एवं गत्यात्मकता का निर्वाह करने वाले बिहारी के दोहों में लय, गति, भाव एवं भाषा का समन्वय दिखाई देता है।

बिहारी ने श्रृंगार के दोनों पक्षों संयोग और वियोग का अत्यंत सफल चित्रण किया है। संयोग के विविध चित्र जिस तरह उनके दोहों में उभरे हैं उन्हें देखकर मन मुग्ध हो जाता है।

'बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौहं करै भौंहनि हंसे, दैन कहैं नटि जाय।।"

संयोग श्रृंगार के मार्मिक चित्रण में बिहारी की कलात्मक अभिव्यक्ति जितनी सहज है, उतनी ही भाव प्रवणता लिए हुए है। मर्यादा के झीने आवरण तले नायक और नायिका के नेत्र संकेतों से अपने आपसी भाव व्यक्त करने में अभिलाषा, गर्व, हर्ष, अमर्ष, स्मित आदि के जो भाव एक ही दोहे में व्यक्त हुए हैं, वह अतुलनीय हैं–

"कहत नटत रीझत खिझत, मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन में करत हैं नैननि ही सों बात।।"

उर्दू के इस शेर में भी यही भाव देखा जा सकता है–

"आंखे जुबां नहीं हैं मगर बेजुबां नहीं"

नांदसौंदर्य और बिंबविधान के चित्र खींचने में बिहारी इतने सफल हुए हैं कि उनके दोहों के भाव से कोई चित्रकार बहुत मोहक चित्र बना सकता है। संयोग श्रृंगार के इस चित्र में ऐसा देखा जा सकता है–

"कंज नयनि मंजन किए, बैठी व्योरति बार।
कच अंगुरी बिच दीठि दै, चितवत नंद कुमार।।

श्रृंगार के विरह वर्णन में बिहारी की काव्य प्रतिभा चरम उत्कर्ष पर पहुंची हुई है। यद्यपि उनका यह श्रृंगार वर्णन बाह्य पक्ष को अधिक अभिव्यक्त करता है, तथापि वियोग की सभी काव्य शास्त्रीय अवस्थाएं बहुत कुशलता पूर्व उनके दोहों में व्यक्त हुई हैं। बिहारी के विरह वर्णन में पूर्व राग, मान प्रवास और करुण का बहुत मार्मिक चित्रण हुआ है। नायिका–विरह का चित्र देखें–

' इत आवति चलि जाति उत, चली छ सातक हाथ ।
चढ़ी हिण्डोरे सी रहै, लगी उसासन् साथ।"

इतना ही नहीं, कहीं तो मृत्यु भी चश्मा लगाकर विरह में दुबली पतली हुई नायिका को ढूंढ रही है, कहीं विरह ज्वाल में जलती नायिका के शरीर पर गुलाब जल की पूरी शीशी उड़ेल देने पर भी एक छींटा भी नहीं गिर पाता, क्योंकि गुलाब जल शीशी में ही सूख कर रह जाता है। इन उहात्मक–अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रों के साथ–साथ कहीं–कहीं बहुत स्वाभाविक वर्णन भी दृगत होता है–

"कर के मीडे कुसुम लौं, गई विरह कुम्हिलाय।
सदा समीपिनि सखिनहूं नीठि पिछानी जाय।।"

इस तरह के अनगिनत भावचित्र बिहारी की कविता में भरे पड़े हैं, जो उनकी उत्कृष्ट कलात्मक अभिव्यक्ति के सफल उदाहरण कहे जा सकते हैं।

कलापक्ष के निरूपण में बिहारी की काव्य प्रतिभा बहुत बढ़ी–चढ़ी हुई है। उनका कलापक्ष बहुत सशक्त और मार्मिक है। दोहा और सोरठा जैसे छोटे आकार के छंद में अलंकार आदि का जो कौशल बिहारी ने प्रदर्शित किया है, वह उन्हें रीतिकाल का बेजोड़ कवि सिद्ध करता है। अलंकारों के महत्व को स्वीकार करते हुए बिहारी ने अपने सतसई में लगभग सभी प्रमुख अलंकारों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। **यमक** का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

"तो पर वारौं उरबसी, सुनि राधिके सुजान।
तू मोहन के उर बसी, ह्वे उरबसी समान।।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उत्प्रेक्षा का एक उदाहरण देखें–

"सोहत ओढे पीत पट, स्याम सलोने गात।
मनौ नीलमनि सैल पर, आतप पर्‌यो प्रभात।।"

विरोधाभास–

"तंत्रीनाद कवित्तरस, सरसराग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अंग।।"

विभावना–

"अंग–अंग नग जगमति दीपशिखा सी देह।
दिया बढ़ाये हू रहै, बड़े उजेरो गेह।।"

श्लेष–

"अज्यों तरौना ही रह्‌यो, स्रुति सेवत इकरंग।
नाकबास बेसरि लह्‌यों, बसि मुक्तन के संग।।"

इनके अतिरिक्त एक ही दोहे में यमक, वीप्सा और अनुप्रास अलंकारों की छंटा बिखेरकर बिहारी ने अपने काव्य कौशल का परिचय दिया–

"रनित भृंग घंटावली, झरत दान मधुनीर।
मंद मंद आवत चल्यौ, कुंजर कुंज समीर।।"

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि बिहारी रीतिकालीन कवियों में सर्वोच्च हैं। 'बिहारी सतसई' की लोकप्रियता अनूठी है, निराली है।

9.5 बिहारी का संयोग श्रृंगार वर्णन

हिंदी कविता में जितना श्रृंगार वर्णन हुआ – उसमें नायक–नायिकाओं के भेदाभेदों का विवेचन ही अधिक हुआ है। प्रायः आलम्बन का नखशिख–वर्णन, सौन्दर्य–निरूपण, प्रकृति–चित्रण, दूत–प्रेषण एवं हास–परिहास को ही संयोग श्रृंगार में प्राथमिकता दी जाती रही है। विविध प्रकार की क्रीड़ाएं : जैसे– पतंगबाजी, कबूतरबाजी, फाग खेलना, जलक्रीड़ा, आँख–मिचौनी तथा झूला आदि को श्रृंगार की मिलनपरक कविता को विषय रूप में स्वीकार कर लिया गया। बिहारी ने प्रायः इन सभी परम्पराओं को अपनी 'सतसई' में स्थान दिया है। बिहारी ने नायक तथा नायिकाओं के रूप में विश्लेषण एवं उनकी श्रृंगार–सज्जा तथा क्रिया–कलापों पर विशेष ध्यान दिया है। परम्परागत रूप में प्रकृति को भी बिहारी की प्रतिभा ने स्वीकार किया है। प्रकृति प्रायः उद्‌दीपन करने के लिए ही माध्यम स्वरूप मान ली गई। वर्षा एवं शरद् आदि का वर्णन कवि ने मुख्यतः विप्रलम्भ श्रृंगार के लिए किया है। नखशिख वर्णन के प्रसंग में अनेक आभूषण की चर्चा भी बिहारी ने की है।

बिहारी के प्रेमी और प्रेमिका में परस्पर इतनी निकटता है, जिसके कारण वे अपने द्वैत को भी भूल जाते हैं। वास्तव में यही पूर्ण तादात्म्य प्रेमभक्ति के क्षेत्र में भक्त और भगवान का अभेद तथा ज्ञान के क्षेत्र में ज्ञाताज्ञेय का एकीभाव जब तक नहीं हो पाता अर्थात् जब तक प्रेमी भक्ति अथवा ज्ञाता के मन में वेद्यान्तर सम्पूर्ण बना रहता है तबतक वह उनकी चरम श्रेणी तक नहीं पहुंच पाता। बिहारी ने भी एक स्थान पर प्रिया और प्रेमी के भेद को मिटाकर प्रेम के चरम स्वरूप को उपस्थित किया है –

पिय कै ध्यान गही गही, रही वही àS नारि।
आपु आपुही आरसी, लखि रीझति रिझबारि।।

बिहारी की नायिका के पैर में काँटा चुभ गया है, परन्तु उस काँटे को निकालने वाले हैं – प्रियतम नायक, अतः नायिका को शूल की चुभन में भी प्रसन्नता हो रही है, क्योंकि जब तक नायक उस काँटे को बाहर निकालेगा, तब तक उसके शरीर का स्पर्श–सुख तो मिलेगा ही–

इहि काँटे मो पाँइ गड़ि, लीनी मरति जिबाइ।
प्रीति जतावत मीति सौं, मीत जु काढ़यो आई।।

स्पर्श–सुख की इसी भावना को हम पतंग के प्रसंग में देख सकते हैं। नायक की उड़ती पतंग की छाया नायिका के आँगन में आ गई है। यह देखकर वह उसकी छाया पकड़ने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान तक भाग–दौड़ करने लग जाती है। यहां वस्तुतः पतंग की छाया का स्पर्श करने में वह सुख नहीं है, जो यह कल्पना करने में है कि यह पतंग प्रिय का स्पर्श कर चुकी है। अतः इसकी छाया को छू लेना भी सौभाग्य की बात होगी –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उड़ति गुड़ी लखि ललन की, अँगना अँगना माँह।
बौरी लौं दौरी फिरति, छुवति छबीली छाँह।।

बिहारी ने संयोग का चित्रण करने के लिए फाग और झूले को भी अपना साधन बनाया है। फागुन का महीना आ गया है। कहीं नायक, नायिका से होली खेल रहा है, तो कहीं नायिका, नायक के मुख पर गुलाल मल रही हैं अथवा पिचकारी से उसके शरीर को रंग से सराबोर कर रही है –

जज्यौं उझकि झाँपति बदनु, झुकति विहँसि सतराइ।
तत्यों गुलाब मुठी झुठी, झझकावत प्यौ जाइ।।

बिहारी ने आँख–मिचौनी का भी अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। इस प्रसंग में सबसे अधिक आकर्षक तथ्य यह है कि नायक तथा नायिका – दोनों में इतनी प्रगाढ़ प्रीति है कि वे दोनों एक–दूसरे को बिना देखे हुए केवल शारीरिक स्पर्श द्वारा ही पहचान लेते हैं –

दृग मिहचत मृगलोचनी, भर्‌यौ उलटि भुज बाथ।
जानि गई तिय नाथ कै, हाथ परस ही हाथ।।

'स्नान–क्रीड़ा' तथा 'वन विहार' के प्रसंगों में भी शृंगार रस के संयोग–पक्ष का अत्यन्त स्वस्थ चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है–

छिरके माह नबोढ़ दृग, कर–पिचकी–जल–जोर।
रोचन–रंग लाली भई, बियतिय–लोचन कोर।।

घाम घरीक निवारियै, कलित ललित अलिपुंज ।
जमुना तीर तमाल तरु, मिलित मालती कुंज।।

प्रेम के संयोग पक्ष में बिहारी ने मनोवैज्ञानिक चित्रण के साथ सांकेतिक दृश्यों का भी अनुपम मिश्रण कर दिया है। नायिका अपनी मुद्रिका में जटित लघु दर्पण में पड़ते हुए नायक के प्रतिबिम्ब को देखकर ही प्रियदर्शन का लाभ प्राप्त कर लेती है–

कर मुँदरी की आरसी, प्रतिबिम्बित प्यौ पाइ।
पीठि दिएँ निधरक लखै, इक टक डीठि लगाइ।।

इसी प्रकार बिहारी दूसरी युक्ति निकालकर नायक तथा नायिका के पारस्परिक प्रेम को भी विशेष अंगमुद्राओं द्वारा संकेतित कर देते हैं। यहीं बिहारी की अद्‌भुत क्रिया–विदग्धता का परिचय हमें प्राप्त होता हैं। वाणी पर प्रतिबन्ध लगा देखकर नायक तथा नायिका परस्पर नेत्रों के संकेत से ही अपने–अपने मनोगत भावों को स्पष्ट कर देते हैं –

भरे भौन में करत हैं, नैननु हीं सौं बात।

अथवा

लखि गुरुजन बिच कमल सौं, सीस छुवायौ स्याम।
हरि सनमुख करि आरसी हियैं लगाई बाम।।

रूप–सौन्दर्य का चित्रण, आभूषण–वर्णन एवं नखशिख–विवेचन से भी बिहारी के मिलन–शृंगार का व्यापक परिचय उपलब्ध हो जाता है। नायिका के अप्रतिम रूप तथा आंगिक सौकुमार्य के वर्णन में कहीं बिहारी परम्परागत चित्रण करते हैं, तो कहीं–कहीं मौलिक प्रसंगों की उद्‌भावना भी–

भूषण भारु संभारिहै, क्यौं इहिं तनु सुकुमार।
सूधे पाँइ न धर परैं, सोभा ही के भार।।

बिहारी ने दोनों प्रकार की परम्परागत अभिसारिकाओं का वर्णन किया है। साहित्य–शास्त्र में शुक्ल तथा कृष्ण – दोनों प्रकार की अभिसारिकाओं का उल्लेख किया है। बिहारी ने भी इन दोनों को अपने सतसई में प्रस्तुत किया है–

जुवति जोन्ह मैं मिलि गई, नैकु न परति लखाई।
सोधैं कैं डोरनु लगी, अली चली संग जाइ।।

कृष्णाभिसारिका–वर्णन–

अरी, खरी सटपट परी, विधु आधैं मग हेरि।
संग लगैं मधुपनु लई, भागनु गली अँधेरि।।

अभिसारिकाओं के इस चित्रण में बिहारी ने उनके मनोगत भावों की उपेक्षा भी नहीं की है। लज्जा, प्रेम, प्रवणता, किसी के देख लिए जाने का भय तथा उल्लास आदि अनेक भावानुभूतियाँ उन्होंने इन नायिकाओं में अभिव्यंजित कर दी है।

Jaipuria Bharati Institute (Deemed University) Ladhuri

बिहारी ने संयोग शृंगार वर्णन में आलम्बन का तो विशद् वर्णन किया ही है, साथ ही साथ उद्दीपन के चित्र भी उनके दोहों में देखे जा सकते हैं। शृगार रस में बाह्य उद्दीपन चित्रों का अपना विशिष्ट स्थान होता है। रात्रि, प्रभात, नदी, तट, सघन कुँज आदि के वर्णन संयोग – शृंगार के उद्दीपन हैं।

छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधवी गन्ध।
ठौर ठौर झूमत झपत, झौंर–झौंर मधु अन्ध।।
पावस घन अँधियार महि, रह्यौ भेदु नहिं आनु।
राति द्यौस जान्यौ परतु लखि चकई चकवानु।।

'बिहारी–सतई' में अनेक दोहों में बिहारी ने स्वतंत्र रूप से भी प्रेम की परिभाषा, विश्लेषण तथा उसके व्यापक प्रभाव की व्यंजना की है –

दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित्त प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हियैं, दई नई यह रीति।।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि बिहारी प्रेम के संयोग–पक्ष के चतुर चितेरे हैं। उन्होंने अपने इस एकमात्र ग्रन्थ में ही संयोगात्मक प्रेम के अनेक – विधि रूप प्रस्तुत कर दिये हैं। यह बिहारी की विलक्षण प्रतिभा का ही सामर्थ्य है कि दोहे– जैसे छोटे छन्द के माध्यम से नायक–नायिकाओं के रूप–लालित्य का चित्रण उनके मनोभावों का विश्लेषण, विविध शारीरिक मुद्राओं का निदर्शन वे कुशलतापूर्वक कर सके। प्रेम के संयोग–पक्ष के अनेक सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रसंगों की उन्होंने सजीव एवं मार्मिक ढंग से उद्भावना की है।

9.6 बिहारी काव्य का विरह वर्णन (वियोग शृंगार)

काव्यशास्त्र में शृंगार को जो 'रसराज' की पदवी प्रदान की गई है। संस्कृत के आचार्यों ने शृंगार रस को दो भागों में विभाजित किया है– सुखात्मक तथा दुःखात्मक। प्रेम के आचरणस्वरूप संयोग एवं वियोग के रूप में शृंगार की दो श्रेणियाँ की गई हैं। वियोग शृंगार पर व्यापक दृष्टि डालते हुए–

काव्य–शास्त्रियों ने विप्रलम्भ–शृंगार को दस दशाओं में विभक्त किया है–

दशावस्थः स तत्रादावभिलाषोऽथ चिन्तन।
स्मतिर्गुणकथोद्वैगप्रलापोन्मादसज्ज्वरा।।
जडता मरण चेति दुःखस्थं यथोत्तरम।।

अर्थात् – अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, संज्वर (व्याधि), जड़ता तथा मरण।

अभिलाषा – बिछुडे हुए नायक के लिए नायिका द्वारा पुनर्मिलन की अभिलाषा करना।

चिन्ता – हित की अप्राप्त्यवस्था में ध्यान की एकतानता।

स्मृति – प्रिय के साथ किये गये विगत लीलाकौतुक, प्रिय के प्रेमपूर्ण वचन तथा बीती हुई घटनाओं का विरह के क्षणों में स्मरण करना।

गुणकथन – प्रिय के चले जाने पर उसके गुणों (विशेषताओं) का उल्लेख करना।

उद्वेग – अनर्थ की अतिशयता से मन का संभ्रमित होना।

प्रलाप – विरहावस्था में वाच्यावाच्य के भेद को भूलकर अनर्गल बोलना।

उन्माद – प्रियविछोह में कृत्योकृत्य को न पहचानना तथा उन्मत्तवत् आचरण करना।

संज्वर – प्रिय की दूरी में मानसिक एवं दैहिक व्याधियों का सहन करना। काम की इस दशा का वर्णन प्रायः सभी शृंगारी कवि बढ़ा–चढ़ाकर करते हैं।

जड़ता – अनर्थ की असह्यतावश किंकर्तव्यविमूढ़ता आना।

मरण – विरहात्मक प्रेम की अन्तिम दशा मरण है। नायक तथा नायिका में से किसी एक द्वारा प्राणपरित्याग की सूचना मरण दशा से ही दी जाती है। साहित्य में इसका प्रयोग निषिद्ध माना जाता है।

ऐसी दसों दशाएँ नायक अथवा नायक की विरहजनति पीड़ा के उत्तरोत्तर आधिक्य का परिचय देती हैं।

विप्रलम्भ का अन्तिम रूप है– करुणात्मक। विप्रलम्भ–शृंगार रस तथा स्वतन्त्र रूप से वर्णित करुण रस में अत्यन्त सूक्ष्म अन्तर है।

बिहारी आदि प्रायः सभी रीतिकालीन कवियों पर संस्कृत के काव्य–शास्त्र का विशद् प्रभाव पड़ा है। नखशिख–वर्णन, नायक–नायिका वर्णन तथा संयोग–विप्रलम्भ–शृंगार रस के वर्णन करने में हिन्दी कवियों ने संस्कृत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लक्ष्य–लक्षण ग्रन्थों से पर्याप्त सामग्री उधार ली है। बिहारी ने अपने दोहों में विप्रलम्भ–शृंगार का प्रयोग इन्हीं परम्परागत रूढ़ियों के आधार पर किया है।

बिहारी ने अभिलाषहेतुक, मान–प्रवास तथा करुण में से प्रवास का वर्णन ही अधिक किया है। इसका कारण है कि पूर्वराग में विशुद्ध रूप से प्रिय को प्राप्त करने की अभिलाषा रहती है, वहाँ वियोग–व्यथा के लिए स्थान नहीं होता। मान में भी नायक तथा नायिका के बीच कोई विशेष दूरी नहीं होती। यह दूरी भौतिक न होकर, मानसिक अधिक होती है। विरह–व्यथा के चित्रण के लिए भौतिक दूरी का होना भी अपेक्षित है। बिहारी ने करुण विप्रलम्भ – शृंगार का वर्णन अत्यन्त कुशलता से कर दिखाया है। जहाँ पर मरण का अशुभ रूप प्रस्तुत नहीं किया गया हैं–

कहा कहौं बाकी दसा, हरि प्राननु के ईसु।
बिरह ज्वाल जरिबौं लखैं, मरिबौ भई असीसु।।

बिहारी ने पूर्वानुराग, प्रणयमान तथा ईर्ष्यामान का वर्णन भी स्थान–स्थान पर किया है। अनेक स्थलों पर यदि उन्होंने ऊहात्मक विश्लेषण किया है, तो उसके साथ–साथ स्वाभाविक, सहज एवं हृदयस्पर्शी वियोग–व्यथा को भी सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है।

नायिका ने नायक का नाम तथा उसके गुण किसी से सुन लिये हैं, परिणामतः वह उसकी ओर मन–ही–मन आकर्षित हो जाती है, परन्तु लोकमर्यादावश उसे स्पष्ट नहीं कर पाती। यह चित्र बिहारी ने चिन्न दोहे में प्रस्तुत किया है–

नाम सुनत ही àS गयौ, तनु औरै मनु औरु।
दबै नहीं चित चढ़ि रह्यौ, अबै चढ़ाएँ त्यौरु।।

बिहारी ने प्रणयमान की अपेक्षा ईर्ष्यामान का वर्णन अधिक व्यापक रूप में किया है। कलहान्तरिता, खण्डिता, धीराधीरा तथा विप्रलब्धा आदि नायिकाओं के वर्णन इसी प्रसंग में आते हैं। नायक किसी स्थान विशेष पर नायिका से मिलने की प्रतिज्ञा करता है। नायिका सखी के साथ अभिसार के लिए जाती है, परन्तु नायक नहीं आता। वह किसी अन्य नायिका के प्रेम में आसक्त होने के कारण नियत समय और स्थान पर नहीं आ पाता।

नभ लाली चाली निसा, चटकाली धुनि कीन।
रति पाली आली अनत, आये बनमाली न।।

बिहारी ने पूर्वराग और मान की तुलना में प्रवास का वर्णन अत्यन्त व्यापक रूप में किया है।

प्रवास में नायक तथा नायिका की दूरी उनके प्रेम को और अधिक तीव्र कर देती है। यह कहना असंगत होगा कि वियोग में प्रेम की मात्रा में न्यूनता आ जाती है। वस्तुतः विरह में ही प्रेम के क्षेत्र में विस्तार आता है। प्रेमजन्य विरह द्वारा ही प्रेमी का संकुचित हृदय उदार हो जाता है। जड़–चेतन पदार्थ में उसे कोई भेद नहीं प्रतीत होता।

बिहारी के शृंगार रस के वर्णन पर रीतिग्रन्थों का अंकुश अधिक रहा है, पर यत्र–तत्र उनके विरह वर्णन में मौलिक उद्‌भावनाएँ भी मिल जाती हैं, जहाँ चमत्कारपूर्ण ऊहोक्तियों की अपेक्षा हृदय को स्पर्श करनेवाली अनुभूतियों की नियोजना की गई है।

अभिलाषा – बाम बाँह फरकत मिलें, जौ हरि जीवन मूरि।
तौ तोहीं सौं भेंटिहौं, राखि दाहिनी पूरि।।

ध्यान आनि ढिंग प्रानपति, मुदित रहेत दिनराति।
पर कंपति पुलकित पलक, पुलक, पसीजति जाति।।
स्याम सुरति करि राधिका, तकति तरनिजा तीर।
अँसुअन करति तरौंस कौ, खिन खैरौहों नीर।।

गुणकथन – लाल तिहारे बिरह की, अगनि अनूप अपार।
सरसै बरसैं नीर हूँ, मिटै न झर हू झार।।

बिहारी ने एक स्थान पर नायिका के विरह–वर्णन में यह लिखा है कि वह नायक के वियोग में हाथ से मसले हुए फूल जैसी हो गयी है। उसे सखियों के बीच पहचानना अत्यन्त कठिन हो गया है। इसी प्रसंग में आगे चलकर वे कहते हैं कि जिस प्रकार कोई हिंडोले पर झूलनेवाला व्यक्ति कभी ऊपर जाता है, तो कभी नीचे की ओर आता है, उसी प्रकार विरहिणी नायिका भी साँसों के झूले में निरन्तर झूलती रहती है–

इत आवत चलिजात उत चली छ सातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरै सी रहैं, लगी उसांसन साथ।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

यही नहीं, उन्होंने वियोगिनी के उत्तप्त विश्वासों के ताप की आशंका से उसके पड़ोस के घरों को ही सूना करा दिया। बेचारी को शीतलता देने के लिए गुलाबजल का छिड़काव करते समय दासियाँ तथा सखियाँ हैरत मे पड़ जाती होंगी, जबकि उसके शरीर की लपट से वह उड़ जाता होगा।

आड़े दै आले बसन, जाड़े हूँ की रति।।
साहसु कै कै स्नेन बस, सखी सबै ढिंग जाति।।
औंधाई सीसी, सुलखि, बिरह बरनि बिललात।
बिच ही सूखि गुलाबु गौ, छींटौ छुऔ न गात।।

नायिका अपने प्रिय (नायक) को पत्र लिखना चाहती है। उसके मन में अनेक प्रकार के भाव और विचार–द्वन्द्व उठते हैं। वह निश्चित नहीं कर पाती है कि पत्र किस बात से आरम्भ किए जाए। निरन्तर विरह की ज्वाला में चलते रहने के कारण उससे कागज हाथ में नहीं लिया जाता– इस आशंका से कि कहीं वह पत्र भी न जल जाए ! फिर किसी–न–किसी प्रकार वह लिखना भी चाहती है तो उसको अश्रुबोझिल पलकों के छलक पड़ने से पत्र का एक–एक अक्षर मिट जाता है। परिणाम यह होता है कि वह नायक के लिए बिना अक्षरों की, मौन भाषा में लिखी हुई पाती दूती के द्वारा भेज देती है। उसे विश्वास है कि नायक उसके प्रेन की गम्भीरता और तज्जनित दुःख से भली–भाँति परिचित है, अतः उसे ऐसे पत्र पढने में विशेष कठिनाई भी नहीं होगी–

कागद पर लिखत न बनत, कहत सँदेस लजात।
कहिहै सबु तेरौ हियौ, मेरे हिय की बात।।
बिरह बिकल बिनु ही लिखी, पाती दई पठाइ।
आँक बिहीनियौं सींचत, सूनै बाँचत जाइ।।
तर झुरसी ऊपर गरी, कज्जल जल छिटकाइ।
पिय पाती बिनुहीं लिखी, बाँची बिरह बिलाइ।।

नायिका पत्र को ही साक्षात् नायक समझ लेती है। कभी वह उसे प्रिय का प्रियतम समझकर हाथों में लेकर चलती है, तो कभी हृदय से चिपकाकर जैसे उसका आलिंगन करती है–

करि लै चूम चढ़ाइ सिर, उर लगाइ भुज भेंट।
लहि पाती पिय की तिया, बाँचति धरति समेट।।

प्रणय–पत्रिका के प्रसंग के अतिरिक्त बिहारी ने और भी अनेक प्रकार की विरह–व्यंजना की है। इसी प्रकार नायिका–भेद के प्रसगो मे भी विरह के अद्भुत चित्रण मिल जाते है, जहाँ पर कवि का चमत्कार कम तथा सहजानुभूतिपरक प्रेम की व्यंजना अधिक अभिप्रेत हुई है।

इसी भाँति बिहारी ने संभावित विरह का वर्णन भी अपनी सफल लेखनी से किया है।

बिहारी शृंगार रस के अयोग पक्ष के चित्रण करने में उतने ही सफल हुए है, जितने कि संयोग–शृंगार के उपस्थापन में। यद्यपि उन्होंने शास्त्रीय पद्धति तथा बाहरी प्रभाव से आकर्षित होने के कारण परम्परानुगत विरह–वर्णन किया है, तथापित बिहारी एक महाकवि थे।

बिहारी में पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करुण आदि के अतिरिक्त दसों कामदशाओं का वर्णन भी यत्र–तत्र मिलता है। अतः बिहारी के सम्बन्ध में यह कहना असंगत न होगा कि उन्होंने विप्रलम्भ – शृंगार रस का अत्यन्त विशद् वर्णन किया है। उनका विरह वर्णन चमत्कृत कर देनेवाला बेजोड़ एवं अनुपम है। वे शृंगार के सिद्धहस्त कवि के रूप में समादृत हैं।

9.7 बिहारी काव्य में भक्ति तथा दर्शन

भक्ति–भावना की दृष्टि से हम भक्तों को दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं। एक तो वे भक्त कवि हुए, जिन्होंने अपने साहित्यिक जीवन के आदि से अन्त तक केवल ब्रह्म, माया और जीव का ही गुणगान किया, जैसे शंकराचार्य। दूसरी श्रेणी में उन भक्त कवियों को लिया जा सकता है, जिन्होंने मूलतः शृंगार आदि रसों में काव्य–रचना की, परन्तु साथ ही साथ यदा–कदा भक्तिभावना से अभिभूत होकर राम अथवा श्रीकृष्ण का चरित–गान भी किया है। इस वर्ग के अन्तर्गत सूर, तुलसी, बिहारी व देव तथा पद्माकर आदि को लिया जा सकता है।

अनेक सहृदय भक्त–कवियों के ऐसे दोहे तथा पद गिनाए जा सकते हैं, जिनमें उच्च कोटि के दार्शनिक मतों का प्रतिपादन किया गया है। उदाहरण हेतु, बिहारी के निम्न सोरठे को लिया जा सकता है–

हौं समुझ्यो निरधार, यह जगु काँचौ काँच सौ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

एकै रूपु अपार, प्रतिबिम्बित लखियतु तहाँ।।

बिहारी तो मूलतः कृष्ण के भक्त हैं। कृष्ण–भक्ति का उनका इतना व्यापक परिप्रेक्ष्य है, जिसमें सभी साम्प्रदायिक एवं दार्शनिक मत समाहित हो जाते हैं –

अपने अपने मत लगे, वादि मचावत सोरु।
त्यौं त्यौं सबको सेइबौ, एकै नन्दकिशोर।।

बिहारी के यहाँ ज्ञान और भक्ति में, दार्शनिकता एवं साम्प्रदायिक मतों में तथा निर्गुण एवं सगुण में कोई ऊँच–नीच की स्पष्ट विभाजक–रेखा नहीं। निर्गुण की व्यापकता के विषय में बिहारी का निम्न दोहा देखिए–

दूरि भजत प्रभु पीठि दै, गुन बिस्तारत काल।
प्रगटत निरगुन निकट रहि चंग रंग भूपाल।।

यद्यपि रीतिकाल के अधिकांश कवियों पर राधावल्लभ–सम्प्रदाय का प्रभाव पड़ा है, परिणामस्वरूप ब्रजबिहारी श्रीकृष्ण और राधा तथा गोपिकाओं का ही वर्णन उन्होंने अपना अभीष्ट माना। बिहारी का एक दोहा देखिए–

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परै, स्यामु हरित दुति होइ।।
तजि तीरथ हरि राधिका, तन दुति करि अनुरागु।
जिहिं ब्रज केलि निकुँज मगु, पग–पग होत प्रयागु।।

बिहारी अपने आराध्य में इतने लीन हो जाते हैं कि उनके यहाँ उसके स्थूल विभेद भी समाप्त हो जाते हैं। उनके लिए राम और कृष्ण – दोनों में किसी प्रकार का अन्तर ही नहीं रहता –

कौन भाँति रहिहै बिरदु, अब देखिबी मुरारि।
बीघे मौसों आइकै, गीधे गीधहिं तारि।।

बिहारी के भक्तिभावपूर्ण दोहों में वे भी विशेषताएँ मिल जाती हैं, जो भक्तियुगीन कवियों में उपलब्ध होती हैं। कबीर की भाँति बिहारी ने भी भक्तों के बाहरी आडम्बर की खुलकर भर्त्सना की है। 'जप, माला, छापा, तिलक' को उन्होंने कभी विशेष प्रोत्साहन नहीं दिया। इन सब साधनों द्वारा शरीर को पवित्र बनाया जा सकता है– अन्तःकरण को नहीं। जब तक अन्तःकरण पवित्र न होगा, तब तक भक्त कभी भगवान की शरण प्राप्त नहीं कर सकता। कपटरूपी कपाटों को जब तक मन के सदन में, भक्त लगाए रखेगा, तब तक प्रवेश–द्वार के अभाव में हरि अथवा ब्रह्म किस प्रकार आ सकेंगे ?

जप माला छापै तिलक, सरै न एकौ कामु।
मन काँचैं नाचै बृथा, साँचै राँचै रामु।।
सौ लगि या मन सदन में, हरि आवैं किहि बाट।
निपट बिकट जौ लौं लगे, खुलें न कपट कपाट

बिहारी ने परम्परा के अनुसार सत्संगति एवं नामस्मरण को ही माध्यम बनाया है –

अजौं तर्‌यौना ही रह्यौ, स्रुति सेवत इक रंग।
नाक बास बेसरि लह्यौ, बसि मुकुतन के संग।।
पतवारी माला पकरि, और न कछू उपाउ।
तरि संसारि–पयोधि कौं, हरि नावैं करि नाउ।।

बिहारी ने भी आत्मनिवेदन के क्षणों में स्वयं भगवान के सामने दीनातिदीन रूप में प्रस्तुत किया है। जहाँ पर कवि ने राम अथवा कृष्ण को दास्यभाव से नहीं देखा है, वहाँ वह सखा, मित्र अथवा समदृष्टि से देखता है। कहीं–कहीं वह भगवान् से प्रतियोगिता करने लगता है, तो कहीं–कहीं उपालम्भ भी दे डालता है। कभी–कभी वही उन्हें यह भी सूचना दे देता है कि वे उसके मन में प्रवेश न करें, अन्यथा उन्हें दुःखी ही होना पड़ेगा–

मोहि तुम्हैं बाढ़ी बहस, को जीतै जदुराज।
अपने अपने बिरद की, दुहूँ निबाहत लाज।।
करौ कुबत जगु कुटिलता, तजौं न दीनदयाल।
दुःखी होहुगे सरल चित, बसत त्रिभंगीलाल।।
थोरे ही गुण रीझते, बिसराई वह बानि।
तुमहूँ कान्ह मनौ भए, आजु काल्हि के दानि।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है बिहारी मूलतः शृंगारी कवि होने पर भी एक सहृदय भक्त–कवि थे। भक्ति को दार्शनिकता के क्षेत्र से भिन्न करने का कोई मापदण्ड नहीं है। वस्तुतः भक्ति का अगला सोपान ही दर्शन का क्षेत्र है। स्वयं तुलसी ने भी लिखा है– 'ग्यानहिं भगतिहिं नहि कछु भेदा।' किन्तु चूँकि 'ग्यान के पंथ कृपान के धारा' हैं अतः साधक भक्ति–मार्ग को ही अपना लेता है।

कवि ने वेदान्तियों की ही भाँति माया की भर्त्सना की है तथा उसके अनिवार्य साहचर्य का प्रतिपादन भी–

को छूट्यौ इहिं जाल परि, कत कुरंग ! अकुलात।
ज्यौं–ज्यौं सुरझि भज्यौ चहत, त्यौं–त्यौं उरझत जात।।

अतः दुःख में साई का स्मरण तथा सुख में उसका विस्मरण करने से कोई लाभ नहीं हो सकता–

दीरघ साँस न लेहु दुख, सुख साईंहि न भूलि।
दई दई क्यों करतु है, दई दई सु कबूलि।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बिहारी के यत्र–तत्र आए हुए दार्शनिक उद्‌गारों में भी वैसी ही श्रेष्ठता तथा उत्कृष्टता है, जैसी सूर और तुलसी में।

वे मुलतः कवि थे। जीवन भर उन्होंने राधाकृष्ण के नखशिख वर्णन, सौन्दर्य–निरूपण एवं प्रेम–चित्रण पर काव्य रचना की। अपने काव्य रचना काल तथा अवस्था के प्रौढ़ क्षणों में ही उन्होंने इन भक्ति–परक दोहों की रचना की होगी।

बिहारी के इस प्रकार के दोहों में सहज भक्ति–प्रवणता–विधायकता एवं चमत्कारपूर्णता– सभी कुछ श्लाघनीय है। उन्होंने सफल भक्तिपूर्ण दोहों की रचना की अवश्य की, परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि वे हृदय से सौन्दर्य एवं प्रेम के चितरे थे– भक्ति–भावना–मूलक दोहों के एकान्त रचयिता नहीं। उनके भक्तिपरक दोहों में शृंगारी भावों की अभिव्यक्ति व्यापक रूप में देखी जा सकती है।

9.8 बिहारी की भाषा

'बिहारी सतसई' में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलेंगे जिनमें ब्रजभाषा, खड़ीबोली तथा अवधी के भाषगत रूपों का प्रयोग किया गया है। बिहारी ने एक ओर यदि ब्रज–भाषा का साहित्यिक रूप प्रतिष्ठित किया, तो दूसरी ओर उसके शब्द–भण्डार को भी समृद्ध बनाया। बिहारी की ब्रजभाषा में विभिन्न प्रान्तों के शब्दों का प्रचुर प्रयोग भी मिलता है। बिहारी ने कहीं–कहीं व्याकरण के नियमों की उपेक्षा की है।

बिहारी की भाषा का सर्वप्रमुख गुण है कि वह सदा भावों का अनुवर्तन करती हुई चलती है। अनेक कवियों के साथ यह असंगति रहती है कि उनकी भाषा भावों के साथ कदम मिलाकर नहीं चल पाती। परिणाम यह होता है कि व्यापक शब्द भण्डार, शब्द की आत्मा तक का–परिचय, चित्रोपम शैली तथा अनुकरणपूर्ण ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग इन सबके अभाव में कविता उतनी सशक्त नहीं बन पाती, जितनी की पाठक अथवा श्रोता पर स्थानीय प्रभाव छोड़ने के लिए आवश्यक होती है। बिहारी की भाषा सदा भावों के साथ–साथ ही चलती है। भाषा की सामासिकता एवं कल्पना समाहारपूर्णता उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। वे अधिक–से–अधिक तथ्य को कम से कम शब्दों के भीतर प्रस्तुत करने में पूर्णतः समर्थ है। उनकी समस्त पदावली का एक उदाहरण यहां दृष्टव्य है–

सभरस समर संकोच बस, बिबस न ठिक ठहराइ।
फिरि–फिरि उझकति, फिरि चरित, दुरि–दुरि उझकति आइ।।

चित्रोपमता उनकी भाषा की दूसरी विशेषता है। बिहारी इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग अपनी कविता में करते हैं, जिनके द्वारा सुन्दर चित्र पाठकों के सम्मुख बन जाते हैं। यह विशेषता रीतिकाल के कम कवियों में ही मिलती है–

कहलाने एकत बसत, अहि मयूर मृग बाघ।
जगतु तपोवन सौ कियौ दीरघ दाघ निदाघ।।
छकि रसाल–सौरभ सने, मधुर माधवी गंध।
ठौर–ठौर झूमत–फिरत, भौंर–झौंर–मधु अंध।।

बिहारी की भाषा की तीसरी विशेषता है– नाद सौन्दर्य। ऐसे अनेक उदाहरण जुटाए जा सकते हैं, जिनमें हम उच्च कोटि की ध्वनिशीलता देखते हैं। बिहारी ने पवन की सांय–सांय, भृंगों की रणित घंटावली तथा पैर के आभूषणों की झमक–झमक का यथावत् वर्णन किया है–

रनित भृंग घंटावली, झरत दान मधुनीर।
मंद–मंद आवत चल्यों, कुंजर–कुंज समीर।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ज्यौं–ज्यौ आवति निकट निसि, त्यौं–त्यौं खरी उताल।
झमकि–झमकि टहलैं करै, लगी रहचटै लाल।।

'बिहारी सतसई' की भाषा की चौथी विशेषता है– लोकोक्तियों अथवा मुहावरों की प्रयोग–प्रचुरता। वास्तव में जिस कवि की भाषा में जितनी अधिक लाक्षणिकता होगी, जितना अधिक लोकोक्तियों व मुहावरों का प्रयोग होगा, उतनी ही उसकी भाषा में सार्वजनिक प्रभावोत्पादन क्षमता आ जाएगी–

खरी पातरी कान की, कौन बढ़ाऊ आनि।
आक कली न रली करै, अली अली जिय जानि।।
मूड चढ़ाए हूँ रहै, पर्‌यौ पीठि कच भारु।
रहै गरैं परि राखियौ, तऊ हिऐं पर हारु।।

'बिहारी सतसई' की भाषा को देखने से पता चलता है कि उसमें एक ओर शुद्ध संस्कृत के तत्समशब्द हैं, तो दूसरी ओर प्राकृत और अपभ्रंश में प्रयोग किए जानेवाले तद्‌भव शब्दों के प्रयोग भी मिलते हैं, जैसे 'लोचन' का 'लोइन' तथा 'वचन' का 'वयन' आदि–

लगा लगी लोइन करै, मन नाहक बंधि जाति।

बिहारी ने कहीं–कहीं पर शब्दों को विकृत भी किया है।

जज्यौ उझकि झाँपति बदन, झुकति बिहँसि सतराति।
तत्यौं गुलाल झूठी मुठी, झझकावत प्यौ जात।।

इसके विपरीत, बिहारी ने इसका शुद्ध प्रयोग भी किया है–

ज्यौं ज्यौं पटु झटकति हठति, हँसति नचावति नैन।
त्यौं त्यौं निपट उदारहु, फगुआ देत बनैन।।

कहीं–कहीं बिहारी ने कोमल अनुभूतियों का चित्रण करते समय 'टकार' का प्रयोग अवश्य किया है, जो कर्णकटु हो गया है। जैसे–

झटकि चढ़ति उतरति अटा, नैकु न थाकति देह।
भई रहित नट की बटा, अटकी नागर नेह।।

तथा– विकट–निपट जौ लगि जुरे, खुलै न कपट–कपाट।

बिहारी ने दोनों प्रकार की भाषाओं के प्रयोग किए हैं। यदि पात्र अशिक्षित अथवा ग्रामीण हैं, तो ग्राम्य शब्दों का तथा यदि पात्र नागरिक एवं सभ्य हैं, तो भाषा में सुसंस्कृत पदावली का प्रयोग बिहारी ने किया है। शैली का भाषा के साथ समवाय–संबंध है। बिहारी की शैली कहीं–कहीं पर अत्यन्त सरल रूप में आई है, जहाँ उनका लक्ष्य उपदेश–प्रधान रहा है–

नर की औ' नलनीर की, गत एकै करि जोइ।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊँचौ होइ।।

इसके विपरीत, कहीं–कहीं उनकी शैली में थोड़े शब्दों में अधिक से अधिक कहने की प्रवृत्ति के कारण कसावट एव गठन आ जाता है–

खौरि–पनिच भृकुटी धनुष, बधिक–समर तजि कानि।
हनत तरुन मृग तिलक सर, सुरकि भाल भरि तानि।।

सारांश यह है कि बिहारी की भाषा अत्यन्त परिष्कृत एवं प्रौढ़ है। वे ब्रजभाषा के उन इने–गिने कवियों में से हैं, जिनकी भाषा को हम 'मापदण्ड' कह सकते हैं। बिहारी की भाषा में यत्र–तत्र बुन्देलखण्डी, उर्दू–फारसी तथा अवधी के शब्दों का प्रयोग भी अनायास एवं नैसर्गिक रूप से हुआ है। उन्होंने उन्हीं शब्दों का प्रयोग हिन्दी में किया है, जो सर्वत्र प्रचलित है। कहीं–कहीं पर उन्होंने भूषण के समान शब्दो में रूपान्तर भी कर दिया है, परन्तु उससे विकृति अपेक्षाकृत कम आ पाई है। वस्तुतः, बिहारी की भाषा में विविधता दृष्टिगत होती है, उनकी भाषा में कल्पना की समाहार शक्ति का आधिक्य है। डॉ. भगीरथ मिश्र ने ठीक ही कहा है– "रीतिकाल के कलाप्रधन कवियों में बिहारी सर्वश्रेष्ठ है।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9.9 मूलपाठ एवं महत्त्वपूर्ण व्याख्याएं

9.9.1 मूलपाठ

मेरी भव–बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परै, स्यामु हरित–दुति होइ।।1।।

प्रकट भए द्विजराज कुल, सुबस बसे ब्रज आइ।
मेरौ हरौ कलेस सब, केशव केसवराइ।।2।।

तजि तीरथ, हरि राधिका, तन–दुति करि अनुराग।
जिहिं, ब्रज–केलि–निकुंज मग, पग–पग होत प्रयाग।।3।।

सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यहि बानक मो मन सदा, बसौ बिहारीलाल।।4।।

कोऊ कोरिक संग्रहो, कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा, बिपति बिदारनहार।।5।।

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यों–ज्यों बूड़ै स्याम रंग, त्यों–ज्यों उज्जलु होइ।।6।।

जप–माला, छापै, तिलक, सरै न एकौ कामु।
मन काँचै नाचै बृथा, साँचै राचै राम।।7।।

कीजै चित सोई तरे, जिहिं पतितनु के साथ।
मेरे गुन–औगुन–गननु, गनौ न गोपीनाथ।।8।।

हरि कीजै बिनती यहै तुम सौं बारहजार।
जिहिं तिहिं भाँति डर्यौ रह्यौ, पर्यौ रहौ दरबार।।9।।

नितप्रति एकत ही रहित, बैस–बरन–मन–एक।
चहियतु जुगलकिशोर लखि, जुगल अनेक।।10।।

मोहूँ दीजै मोषु, ज्यौं अनेक अधमनु दियौ।
जौ बाँधे ही तोषु, तौ बाँधौ अपने गुननु।।11।।

मै तपाइ त्रयताप सौं, राख्यौं हियौ हमामु।
मति कबहुँक आऐं यहाँ, पुलकि पसीजैं स्यामु।।12।।

तौ लगि या मन–सदन में, हरि आवैं किहिं बाट।
बिकट जटे जौ लगु निपट, खुलै न कपट–कपाट।।13।।

भजन कह्यौ, तातैं भज्यौ, भज्यौ न एकौ बार।
दूरि भजन जातैं कह्यौ, सौ तें भज्यो गँवाय।।14।।

पतवारी माला पकरि, और न कछु उपाउ।
तरि संसार पयोधि कौं, हरि नावैं करु नाउ।।15।।

यह बिरियाँ नहिं और की, तू करिया वह सोधि।
पादुन न चढ़ाइ जिहिं, कीन्हे पार प्योधि।।16।।

मोहि तुम्हें बाढ़ी बहस, को जीतै जदुराज।
अपने–अपने बिरद की, दूहूँ निबाहन लाज।।17।।

या भव पारावर कौ, उलँघि पार को जाइ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तिय छवि छायाग्राहिनी, ग्रहयै बीच ही आइ।।18।

लोपे कोपे इन्द्र लौ, रोपे प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखे सबै गौ गोपी गोपाल।।19।।

ब्रज बासिनु को उचित धनु, जो धन, रुचित न कोइ।
सुचित न आयौ सुचितई, कहो कहाँ तै होइ।।20।।

करौ कुबत जग, कुटिलता, तजौ न दीन दयाल।
दुखी होहुगे सरल हिय, बसत त्रिभंगी लाल।।21।।

दूरि भजत प्रभु पीठि दै, गुन–बिस्तारन–काल।
प्रगटत निर्गुन निकट रहि, चंग रंग भूपाल।।22।।

निज करनी सकुचेहिं कत, सकुचावत इहिं चाल।
मोहूँ सों नित विमुख त्यौं, सनमुख रहि गोपाल।।23।।

गिरि तैं ऊँचे रसिक मन, बूड़े जहाँ हजारु।
वहै सदा पसु नरन कौं, प्रेम पयोधि पगारु।।24।।

मैं समुझ्यौ निरधार, यह जगु काँचौ काँच सौ।
एकै रूप अपार, प्रतिबिम्बित लखियतु तहाँ।।25।।

मोहनि मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति जोइ।
बसत सुचित अंतर तऊ, प्रतिबिम्बित जगु होइ।।26।।

दियौ सु सीस चढ़ाइ लै, लाछी भाँति अएरि।
जापैं सुखु चाहतु लियौ, ताके दुखहिं न फेरि।।27।

कब कौ टेरत दीन àS, होत न स्याम सहाइ।
तुमहूँ लानी जगत गुरु, जग नायक जग बाइ।।28।।

बन्धु भए का दीन के, को तार्‌यौ रघुराइ।
तूठै तूठे फिरत हौ, झूठे बिरद कहाइ।।29।।

नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि।
तज्यौ मनौं तारन–बिरदु, बारक बारनु तारि।।30।।

जम–करि–मुँह–तरहरि पर्‌यौ, इहिं धरहरि चित लाउ।
विषय–तृषा परिहरि अजौं, नर हरि के गुन गाउ ।।31।।

कौन भाँति रहि है बिरदु, अब देखिबी मुरारि।
बीधै मोसों आइ कै, गीधे गीधहिं तारि ।।32।।

जगतु जनायौ जिहिं सकलु, सो हरि जान्यौ नाँहि।
ज्यों आँखिनु सबु देखियै, आँखि न देखी जाँहि।।33।।

दीरघ साँस न लेहु दुख, सुख साईंहिं न भूलि।
दई–दई क्यों करतु है, दई दई सु कबूलि ।।34।

जाकें एकाएक हूँ, जग ब्यौसाइ न कोइ।
सों निदाघ फूलै फरैं, आकु डहडहौ होइ।।35।।

मन मोहन सों मोहु करि, तू घनस्यामु निहारि।
कुंज बिहारी सों बिहरि, गिरधारी उर धारि।।36।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

समै पलटि पलटै प्रकृति, को न तजै निज चाल।
मौ अकरुन करुना करौ, इहिं कपूत कलिकाल।।37।।

कौ छूट्यौ इहिं जाल परि, कत कुरंग अकुलात।
ज्यों–ज्यों सुरझि भज्यौ चहत, त्यों–त्यों उरझत जात।।38।।

अपनें अपने मत लगे, बाद मचावत सोरु।
ज्यों, ज्यों सबकों सेइबौं, एकौ नन्दकिसोरु ।।39।

लटुवा लौ प्रभु कर गहैं, निगुनी गुन लपटाइ।
वहै गुनी कर तै छुटैं, निगुनीयै àS जाइ।।40।।

तौ, बलियै, भलियैं बनी, नागर नन्दकिसोर।
जो तुम नाकै कै लखौ, मो करनी की ओर।।41।।

ज्यो àS हौं प्यौ होउँगौ, हौं हरि अपनी चाल।
हठु न करौं अति कठिन है, मो तारिबौ, गुपाल।।42।।

चिरजीवौ जोरी, जुरै क्यों न सनेह गंभीर।
को घटि ए बृषभानुजा, वे हलधर के बीर।।43।।

थौरें हूँ गुन रीझते, बिसराई बहि बानि।
तुम हूँ कान्ह मनौ भए, आजु काल्हि के दानि।।44।।

जौ न जुगति पिय मिलन की, धूरि मुकति मुँह दीन।
जौ लहियै संग सजन तौ घरक नरक महिं कीन।।45।।

कहा भयौ, जौ बीछुरे, मो मनु तो मन–साथ।
उड़ी जाहु कितहूं तऊ, गुड़ी उडायक हाथ।।46।

अजौं तर्‌यौना ही रह्यो, स्रुतिसेवत इक–रंग।
नाकु बास बेसरि लह्‌यौ, बसि मुकुतनु के संग।।47।

कहलाने एकत बसत, अहि–मयूर, मृग–बाघ।
जगत तपोवन सो कियौ, दीरघ दाघ निदाघ।।48।।

बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन तन माँह।
निरखि दुपहरी जेठ की, छाँहौं चाहति छाँह।।49।।

नाहिंन ये पावक प्रबल, लुवैं–चलत चहुँपास।
मानहुँ बिरहु बसन्त के, ग्रीषम लेत उसास।।50।।

9.9.2 महत्वपूर्ण व्याख्याएं

(1)

मेरी भव–बाधा – दुति होई।।1।।

शब्दार्थ – भवबाधा = सांसारिक कष्ट, नागरि = चतुर। झाँई = प्रतिबिम्ब। परै = पड़ने से। हरित = प्रसन्न।

संदर्भ – प्रस्तुत दोहा बिहारी की अमर लेखनी से प्रस्फुटित 'बिहारी सतसई' से अवतरित है, जो मंगलाचरण के रूप में सतसई का पहला ही दोहा है।

प्रसंग – शृंगार के सिद्धहस्त महाकवि बिहारी ने अपनी रचना 'सतसई' का आरंभ शृंगार की देवी राधा तथा प्रकारांतर से कृष्ण की स्तुति के माध्यम से किया है, जहां वे राधा की वंदना करते हुए कहते हैं–

व्याख्या – (1) वे चतुर राधा मेरे सांसारिक कष्टों का निवारण करें, जिनके शरीर का प्रतिबिम्ब पड़ने से भगवान् कृष्ण के शरीर की आभा भी निष्प्रभ हो जाती है।

(2) वे चतुर राधा मेरी सांसारिक बाधाओं को हटऐं, जिनके शरीर की परछाई को देखकर ही श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व प्रसन्न हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(3) वे राधा नागरि मेरे सांसारिक क्लेशों को दूर करें, जिनका ध्यान करने मात्र से समस्त प्रकार के दुःख तथा पाप निष्क्रम हो जाते हैं।

टिप्पणी – (1) यह दोहा 'सतसई' का मंगलाचरण है।

(2) कवि ने राधा तथा राधा के बहाने कृष्ण की भी वंदना की है।

(3) कवि पर राधावल्लभ सम्प्रदाय का प्रभाव पड़ा हैं अतः राधा की उपासना पर विशेष जोर डाला गया है। साथ ही, बिहारी–सतसई के अधिकांश दोहे नायक–नायिका प्रधान हैं अतः कृष्ण तथा राधा दोनों का ही मंगलाचरण में उल्लेख कर दिया गया है।

(4) 'स्याम–हरित'–दुति' में श्लेष अलंकार की छंटा दर्शनीय है।

(5) 'सतसई' के शृंगार काव्य होने के कारण राधा–कृष्ण की स्तुति स्वाभाविक है।

(2)

तजि तीरथ, हरि – – – – – – – – – – – – – – – – – – **होत प्रयाग।।3।।**

शब्दार्थ – जिहि = जहाँ। मग = मार्ग। प्रयाग = प्रयाग तीर्थ, प्रकृष्ट याग।

संदर्भ – पूर्ववत्

प्रसंग – यहाँ कवि ने राधा–कृष्ण की युगलमूर्ति की उपासना पर बल दिया है।

व्याख्या – अरे मन, तू अनेक तीर्थ – स्थानों का भ्रमण करना छोड़ दे। तू उन कृष्ण तथा राधिका के शरीर की शोभा से प्रेम कर, जिनके चरण–चिह्नों से ब्रज के क्रीड़ा कुंजों के स्थलों पर अनेक प्रयाग–तीर्थ बनते हैं, अर्थात् जिनके पग–संकेतों का ध्यान करने से ही प्रकट यज्ञों का शुभ परिणाम– मोक्ष मिल जाता है।

टिप्पणी – (1) जहाँ पर कवि ने तीर्थ – यात्रा आदि बाह्याडम्बरों का निषेध करके भगवान् कृष्ण एवं राधा के चरणों में रति करने के लिए ही अपने मन को शिक्षा दी है।

(2) बिहारी मूलतः शृंगार कवि हैं, अतः उन्होंने अपनी भक्ति के लिए राधा–कृष्ण को ही श्रेयस्कर माना है।

(3) प्रयाग हिन्दुओं का तीर्थ है। गंगा, यमुना एवं सरस्वती के संगम पर स्नान करने से व्यक्ति पापमुक्त हो जाता है।

(4) यहाँ पर राधा की शोभा से गौरवर्णा गंगा और कृष्ण की शारीरिक छवि से नीलवर्णा यमुना की ओर संकते हैं। सरस्वती का जल अरुण वर्ण का माना है तथा अनुराग (प्रेम) का वर्ण भी लाल है, अतएव राधा–कृष्ण से प्रेम करने से ही त्रिवेणी का पुण्य–लाभ हो जाता है।

(3)

या अनुरागी – – – – – – – – – – – – – – – – – – **त्यों उज्जलु होई ।।6।।**

शब्दार्थ – अनुरागी = प्रेमी, लाल। स्याम = कृष्ण, काला। उज्जलु = पवित्र, श्वेत।

प्रसंग – यहाँ कवि ने कृष्णोपासना पर बल दिया है।

व्याख्या – इस अनुरागपूर्ण हृदय की गति से कोई भी परिचित नहीं हो सकता। जैसे–जैसे यह स्यामरंग (कृष्ण का काला रंग पापों का प्रतीक है) में डूबता जाता है, वैसे ही वैसे यह अधिक उज्ज्वल (पवित्र–शुभ) होता जाता है।

टिप्पणी – (1) यहाँ कवि ने 'बूड़ै' शब्द से इस तथ्य को संकेतित किया है कि मन तब तक शुद्ध नहीं हो सकता, जब तक कि वह निजत्व छोड़कर अपने आराध्य के साथ तदाकार नहीं हो जाता।

(2) इस दोहे को यदि किसी नायिका की उक्ति मान लिया जाय तो यहाँ शृंगार – रस परक अर्थ भी किया जा सकता है।

(3) श्लेष, पुनरुक्ति, अनुप्रास तथा विरोधाभास अलंकार है।

(4) किसी मलिन वस्तु की कालिमा से प्रक्षालन करने पर शुभ्र नहीं बनाया जा सकता है, इसी विरोध को कवि ने श्लेष द्वारा व्यक्ति किया है।

(4)

जप–माला, छापे – – – – – – – – – – – – – – – – – **साँचै राँचै राम।।7।।**

शब्दार्थ – जप = मंत्रस्मरण। छापै = चित्रित करना। सरै = सिद्ध होना। काँचै = कच्चा, कवि काँच का। साँचै = सच्चा।

संदर्भ – पूर्ववत्

व्याख्या – कवि आडम्बरपूर्ण भक्ति का खण्डन करते हुए कहता है कि किसी मन्त्र–विशेष की माला लेकर स्मरण करने तथा मस्तक एवं शरीर के अन्य अंगों पर तिलक–छापे लगाने से तो एक भी काम सिद्ध नहीं हो पाता।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इस प्रकार के भक्त का मन (जो उपर्युक्त कार्य करता है) कच्चा तथा चंचल होता है। राम तो केवल सच्चे हृदय में निवास करके प्रसन्न होते हैं। कच्चा मन तो काँच है, जो कभी भी टूट सकता है अथवा जिसमें नाना नाम रूपात्मक सृष्टि प्रतिबिम्बित होती रहती है। (सच्ची भक्ति का रूपक कवि साँचे से देता है, जिसमें ढलने पर मन दृढ़ हो जाता है।)

टिप्पणी – (1) ब्रह्म तो साधक की अन्तरात्मा का ही दूसरा रूप है।

(2) माया के भ्रमवश जीव उसे कस्तूरी के पीछे दौड़नेवाले हिरण की भाँति नाना उपायों से प्राप्त करने की चेष्टा करता है परन्तु वास्तविक ज्ञान पर उसका भ्रम नाश हो जाता है और वह 'अहं ब्रह्मास्मि' ऐसा ज्ञान को प्राप्त कर लेता है। इसीलिए हमारे यहाँ कहा गया है – 'आत्मन् बिद्धि' अथवा 'आत्मवित् ब्रह्मवै भवति' आद।

(3) अलंकार – श्लेष, रूपक तथा अनुप्रास।

(4) तुलनात्मक – माला फेरत जुग गया, गया न मनका फेर।
कर का मनका डारि दै, मन का मनका फेरी।। – कबीर

(5)

करौ कुबत जग, – – – – – – – – – – – – – – – – – – बसत त्रिभंगी लाल।।21।।

शब्दार्थ – कुबत = कुबात। कुटिलता = वक्रता, बुराई। त्रिभंगीलाल = तीन जगह से टेढ़े।

संदर्भ – पूर्ववत्।

व्याख्या – भक्त भगवान से कहता है कि मैं संसार की समस्त बुराइयों को करता रहूँगा और हे दीनदयाल अपनी नीचता का कभी त्याग नहीं करूँगा, क्योंकि ऐसा न करने से मेरा मन सरल (सीधा) हो जायेगा और आपके त्रिभंगी शरीर को उसमें प्रवेश करने पर कष्ट होगा।

टिप्पणी – (1) यहां बिहारी का वाग्वैदग्ध्य देखते ही बनता है।

(2) भगवान कृष्ण जब मुरली–वादन करते हैं तो उनका शरीर तीन भागों में मुड़ जाता है। कवि को अपने आराध्य का यही रूप इष्ट है। वह नहीं चाहता कि अपने मन को सरल बनाकर अपने भगवान को कष्ट दें, क्योंकि त्रिभंगी वस्तु का प्रवेश भी किसी कुटिल वस्तु में ही सम्भव है।

(3) किसी सीधी वस्तु में किसी टेड़ी वस्तु के जाने से उस टेढ़ी वस्तु को बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

(4) अलंकार – समासोक्ति।

(6)

दीरघ साँस न लेहु – – – – – – – – – – – – – – – – दई दई सु कबूलि ।।34।।

शब्दार्थ – दीरघ = दीर्घ। लेहु = लो। सांईहिं = स्वामी को। दई–दई = दैव–दैव। दई = दी। सु = उसे। कबूलि = स्वीकार कर लो।

संदर्भ – पूर्ववत्।

व्याख्या – कोई गुरू अपने आपदग्रस्त शिष्य को (अथवा कवि अपने मन को) समझाते हुए कहता है कि तुझे दुःख में दीर्घ निःश्वास नहीं लेनी चाहिए और न ईश्वर को भी भुला देना चाहिए। तू इस दुःख को देखकर क्यों 'दैव–दैव' करके पुकारता है ? जो विधाता ने दिया है– सुख थवा दुःख उसे (भगवत्प्रसाद मानकर) स्वीकार कर ले।

टिप्पणी – (1) वास्तविक ज्ञान होने पर व्यक्ति में तितिक्षा उत्पन्न हो जाती है।

(2) वह संसार के सुख–दुखों की अनुभूति से निर्लिप्त होकर जीवन्मुक्त की भाँति रहता है। उसकी दृष्टि में 'सुख दुःखे समें' ही सत्य है।

(3) अलंकार – यमक तथा पुनरुक्ति।

(7)

चिरजीवी जोरी, – – – – – – – – – – – – – – – – – – हलधर के बीर।।43।।

शब्दार्थ – चिरजीवी = चिरंजीवी हों । जुरै = मिली रहे। वृषभानुजा = वृषभानु की पुत्री राधा, गाय। हलधर के बीर = बलराम के भाई कृष्ण, बैल।

संदर्भ – पूर्ववत्।

व्याख्या – (1) यहाँ पर कवि ने राधा और कृष्ण दोनों के तुल्यानुराग के स्थायित्व के प्रति अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि यह जोड़ी चिरजीवी हो, इनका पारस्परिक स्नेह क्यों न गम्भीर रहेगा ? इनमें कौन किससे कम

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है ? यदि ये वृषभानु की पुत्री हैं तो वे हलधर बलराम के भाई हैं। वृषभानु और बलराम – दोनों ही राजा थे, अतः राधा–कृष्ण दोनों ही राजवंशी हैं।

(2) राधा की सखी राधा क कृष्ण के प्रति किए प्रेम का परिहास करती हुई कहती है कि इनका प्रेम–स्थायी क्यों न होगा– अर्थात् तनिक भी न होगा। ये अत्यन्त प्रचण्ड तेजोमय वृषराशि के सूर्य की पुत्री हैं तो ये शेषनाग के अवतार हलधर (बलराम) के भाई हैं, अर्थात् दोनों ही क्रोधी स्वभाव के हैं जो प्रेम के स्थायित्व में बाधक होता है।

(3) कवि यहाँ पर स्वयं भी श्लेष द्वारा राधाकृष्ण के साथ परिहास कर रहा है। यह जोड़ी चिरस्थायी हो। इनका प्रेम गम्भीर बना रहे। इन दोनों में से कोई भी तुलना में कम नहीं है। यदि राधा वृषभ की अनुजा गाय हैं तो कृष्ण हल धारण करने वाले किसानों के वीर (प्रिय बैल) हैं, अर्थात् यह जोड़ी गाय और बैलों की है।

टिप्पणी – (1) शृंगार तथा हास्य रस का एकत्र सम्न्वय द्रष्टव्य है।

(2) अनुप्रास, श्लेष, वक्रोक्ति तथा सम अलंकारों का प्रयोग किया गया है।

(8)

अजौ. तर्‌योना – – – – – – – – – – – – – – – – – – – मुकुतनु के संग।।47।।

शब्दार्थ – तर्‌यौना = कर्णाभूषण, अमोक्ष–प्राप्त। स्रुति = कान, वेद। नाकु = नासिका, स्वर्ग। मुकुतनु = मोती, मुक्त पुरुष।

संदर्भ – पूर्ववत्।

व्याख्या – कोई सगुणोपासक किसी वैदिक भक्त का उपहास करते हुए कहता है कि तुमने अब तक श्रुति रूपी श्रुति (मान रूपी वेद) का ही अध्ययन किया है, अतः तर्‌यौना (एक कणभिरण रूपी संसारी) बने हुए हो। क्या लाभ हुआ उनके एकान्त अध्ययन से ? अरे मुक्ताओं (मोती रूपी मुक्त पुरुषों) का साथ करने पर बेसर जैसे तुच्छों को भी नाकवास (नासिक रूपी स्वर्गधाम) मिल गया है।

टिप्पणी – (1) कान की अपेक्षा नाक का ऊँचा स्थान होता है, किन्तु कान का आभूषण साधारण–सा तर्‌यौना होता है, जबकि नाक का बेसर अधिक मूल्य का होता है।

(2) अलंकार – श्लेष, रूपक तथा व्यतिरेक।

(9)

बैठि रही अति सघन – – – – – – – – – – – – – – – – चाहति छाँह।।49।।

शब्दार्थ – पैठि – प्रविष्ट होकर। छाँहों – छाया भी। तन – शरीर, वृक्ष का तना।

संदर्भ – पूर्ववत्।

व्याख्या – कवि ज्येष्ठ मास की तीव्र धूप को देखकर कहता है कि दोपहर की प्रचण्ड उष्णता को देखकर छाया भी छाँह माँगने लगती है। यही कारण है कि वृक्षों की छाया उनके तन रूपी भवनों में आकर सीमित हो गई है। इसी प्रकार घने काननों की छाँह में छायार्थिनी होकर वृक्षों की छाया दोपहर की घड़ियाँ बिता देती है।

टिप्पणी – (1) तीव्र गर्मियों में वृक्षों की छाया संकुचित हो जाया करती है, वह अपना विस्तार छोड़कर केवल एक दिशा में ही आयामित हो जाती है।

(2) अलंकार – समासोक्ति, रूपक, अत्युक्ति, अनुप्रास तथा ग्रीष्म की तप्तता में स्वभावोक्ति है।

(3) कवि ने प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण करके यह आलम्बनपूर्ण चित्र अंकित किया है।

9.10 सारांश

इस इकाई के माध्यम से रीतिकाल के सबसे प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय कवि बिहारी के विषय में अपेक्षित महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक विवेचन विश्लेषण प्रस्तुत किया गया। प्रस्तुत इकाई का सारांश निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है–

- रीतिकाल के कवियों में बिहारी का स्थान सर्वोपरि है। उनकी रचना 'बिहारी सतसई' को जैसी अपार लोकप्रियता और प्रसिद्धि मिली, वैसी रीतिकाल की अन्य किसी रचना को नहीं।
- दोहा जैसे लघु आकार के छंद में शृंगार की जैसी मौलिक उद्‌भावनाएं बिहारी ने की है, उससे दोहा शृंगारपरक अभिव्यक्ति के लिए सबसे उपयुक्त एवं प्रभावी छंद माना जाने लगा। उर्दू के शेरों की तरह बिहारी के दोहों ने पाठकों – श्रोताओं पर अमिट छाप छोड़ी।
- बिहारी की गणना रीतिकाल के कवियों के तीन वर्गों, रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध, रीतिमुक्त में से रीतिसिद्ध कवियों में की जाती है, जिसके अन्तर्गत उन्होंने काव्यरचना की शास्त्रीय पद्धति को आधार बनाकर काव्यसर्जन किया है।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- भाषा, भाव, छंद, कलात्मकता, काव्योत्कर्ष आदि की दृष्टि से बिहारी रीतिकाल के श्रृंगारी कवियों में सबसे प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय हैं।
- बिहारी की कविता का मुख्य विषय, रीतिकाल की सर्वमान्य विशेषता, श्रृंगार है, जिसके दोनों पक्षों (संयोग एवं वियोग) के वर्णन में बिहारी की काव्यकला का चरम उत्कर्ष देता है।
- श्रृंगार के अतिरिक्त बिहारी ने भक्ति, नीति, आचार, आदि से संबंधित दोहे भी लिखे हैं, जो बहुत कलात्मक और उत्कृष्ट हैं।
- बिहारी को ज्ञान, विज्ञान, कला, ज्योतिष नक्षत्रगणना, संगीत, चित्रकला, नृत्य आदि का भी विशेष ज्ञान था, जो उनकी काव्याभिव्यक्ति में परिलक्षित होता है। इसी कारण से बिहारी को बहुज्ञ कवि कहा जाता है।
- बिहारी के काव्य में भक्ति के साथ–साथ उनकी दर्शन विषयक मान्यताएं भी अभिव्यक्त हुई हैं।
- नायक–नायिका के क्रम में सौंदर्य, नायिका भेद, नायक भेद, ऋतुवर्णन आदि से संबंधित बहुत उत्कृष्ट दोहे रचे हैं।
- अपने उत्कृष्ट काव्यसर्जन, अपने उत्कृष्ट कलात्मक सौंदर्य, अपनी वर्णन कुशलता, अपनी बहुज्ञता आदि के कारण बिहारी रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में समादृत हैं।

9.11 उपयोगी पुस्तकें

1. बिहारी की काव्यकला – डॉ. भगीरथ मिश्र
2. गालिब और बिहारी – पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
3. देव और बिहारी – मिश्रबंधु
4. बिहारी और देव – लाला भगवानदीन
5. रीतिकाव्य की भूमिका – डॉ. नगेन्द्र
6. हिंदी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
7. हिंदी साहित्य का अतीत – आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र

9.12 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबंधात्मक प्रश्न / आलोचनात्मक प्रश्न

1. बिहारी के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर प्रकाश डालिए।
2. बिहारी रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, सिद्ध कीजिए।
3. बिहारी की लोकप्रियता के क्या कारण हैं, स्पष्ट कीजिए ?
4. बिहारी का काव्यवैशिष्ट्य निरूपित कीजिए।
5. बिहारी के काव्य में संयोग वर्णन विषय पर एक समीक्षात्मक निबंध लिखिए।
6. बिहारी–काव्य में वियोग वर्णन का मूल्यांकन कीजिए।
7. बिहारी की काव्यकला पर प्रकाश डालिए।
8. बिहारी काव्य में भक्ति एवं दर्शन संबंधी वर्णनों का मूल्यांकन कीजिए।
9. बिहारी की बहुज्ञता प्रमाणित कीजिए।
10. बिहारी की भाषा पर एक समीक्षात्मक निबंध लिखिए।

लघूत्तरीय प्रश्न

1. बिहारी सतसई का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. बिहारी का संक्षिप्त जीवन परिचय दीजिए।
3. बिहारी ने 'गागर में सागर भरा है' इस कथन का आशय संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।
4. 'सतसइया के दोहरे ज्यों नावक के तीर' का भाव स्पष्ट कीजिए।
5. बिहारी की भक्ति भावना पर लघु लेख लिखिए।
6. बिहारी के विरह वर्णन की तीन प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
7. बिहारी की दार्शनिक मान्यताओं को संक्षेप में समझाइए।
8. बिहारी के संयोग श्रृंगार के तीन उदाहरण लिखिए।
9. बिहारी की भाषा की तीन प्रमुख विशेषताएं स्पष्ट कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1. रीतिकाल का सर्वोच्च कवि किसे माना जाता है ?
2. बिहारी रीतिकाल के कवियों की किस कोटि में आते हैं ?
3. रीतिकाल का प्रथम कवि किसे माना जाता है ?
4. 'बिहारी सतसई' किस प्रकार की रचना है ?
5. 'बिहारी सतसई' में कुल दोहों की संख्या कितनी है ?
6. 'बिहारी सतसई' की रचना किसके निर्देश पर हुई थी ?
7. 'बिहारी सतसई' पर किन ग्रंथों का प्रभाव है ?
8. एक ही रचना के कारण हिंदी कविता में अमर होनेवाला कवि कौन है ?
9. 'बिहारी सतसई' की प्रसिद्धि का प्रमुख कारण क्या है ?
10. 'बिहारी सतसई' किस श्रेणी की रचना है ?
11. 'बिहारी सतसई' की प्रमुख विशेषता क्या है ?
12. 'नावक के तीर' का क्या अर्थ है ?
13. 'बिहारी सतसई' में शृंगार के किस पक्ष का वर्णन सर्वोत्कृष्ट माना जाता है ?
14. बिहारी का जन्मस्थान कहां माना जाता है ?
15. बिहारी ने किस छंद में काव्य सर्जन किया है ?
16. बिहारी की भाषा कौनसी है ?
17. सतसई का अर्थ क्या है ?
18. 'बिहारी सतसई' में शृंगार के अतिरिक्त अन्य किस भाव से संबंधित दोहे सम्मिलित हैं ?
19. रीतिसिद्ध कवि कौन है ?
20. रीतिसिद्ध का अर्थ क्या है ?

●●●

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग–8

इकाई–10 द्रुतपाठ

संरचना

10.0 प्रस्तावना
10.1 उद्देश्य
10.2 द्रुतपाठ के प्रमुख कवि
10.3 अमीर खुसरो
10.4 मीरांबाई
10.5 रसखान
10.6 भूषण
10.7 सेनापति
10.8 सारांश
10.9 उपयोगी पुस्तकें
10.10 महत्वपूर्ण प्रश्न
निबंधात्मक /आलोचनात्मक प्रश्न / लघूत्तरीय प्रश्न / अति लघूत्तरीय प्रश्न

10.0 प्रस्तावना

आदिकालीन साहित्यिक परिवेश में जो व्यापक साहित्य सर्जन हुआ, उसमें सिद्ध,नाथ, जैन, रासो एवं स्वतंत्र (लौकिक) साहित्य का समावेश है। इस काल में रचित स्वतंत्र साहित्य लोकजीवन से संबद्ध होने के कारण अधिक ग्राह्य और लोकप्रिय हुआ। इस कोटि में विद्यापति, मुल्लादाउद एवं अमीर खुसरो का नाम लिया जाता है। खुसरो उर्दू–हिन्दी की परंपरा में दोनों की साझी विरासत के प्रतीक कवि हैं। ब्रजरत्नदास ने उन्हें न केवल हिंदी का, वरन् खड़ी बोली का भी प्रथम कवि घोषित किया है। खुसरो का साहित्य सर्जन लोक जनजीवन की सहज स्वाभाविक. अभिव्यक्ति प्रतीत होता है। इसलिए खुसरो उस काल में आम जनजीवन के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और लोकप्रिय कवि कहे जा सकते हैं, जिन्होंने पहेलियों, मुकरियों के साथ–साथ, इतिहास, संस्कृति, राष्ट्रीय गौरव और राष्ट्रीय स्वाभिमान से संबंधित प्रचुर लेखन–सर्जन किया है। इस दृष्टि से खुसरो का हिंदी के प्राचीन कवियों में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे हिंदी–उर्दू की कड़ियों को जोड़नेवाले सांस्कृतिक और राष्ट्रीय भावाभिव्यक्ति के कवि कहे जा सकते हैं। ऐसे कवि का अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्व रेखांकित किया जा सकता है।

भक्तिकाल के कृष्णभक्त कवियों में मीरां का स्थान पर्याप्त ऊंचा है। उन्होंने कृष्ण की भक्ति में जिस तरह से स्वयं को तन्मय कर दिया वह हिंदी कविता का विरल उदाहरण है। कृष्ण–प्रेम का अनूभूतिजन्य जैसी मार्मिक अभिव्यक्ति मीरां के गीतों में हुई है, वह उन्हें प्रेम–करुणा की साक्षात् मूर्ति प्रमाणित करती है। इस दृष्टि से मीरां के विषय में जानना बहुत सेचक तथा महत्त्वपूर्ण कहा जाएगा।

कृष्णभक्ति के एक अन्य कवि रसखान हैं जो कृष्ण की अनन्य भक्ति में आकंठ डूबे हुए हैं। रसखान की निष्ठा, रसखान का कृष्णप्रेम भक्ति की पराकाष्ठा तक पहुंची हुई है। ऐसे अनन्य कवि का अनुशीलन प्रत्येक दृष्टि से उल्लेखनीय है और महत्त्वपूर्ण कहा जाएगा।

रीतिकाल की श्रृंगारी परिधि में भूषण संभवतः एकमात्र अकेले कवि हैं जो श्रृंगार के परिवेश एवं प्रभाव से अनाकृष्ट वीरकाव्य सर्जन के माध्यम से राष्ट्रीय भाव जगाते रहे। इस दृष्टि से भूषण अप्रतिम एवं अनुपमेय कहे जा सकते हैं। बहुत आश्चर्य है कि जब श्रृंगार के बगैर काव्यरचना करना प्रसिद्धि एवं ख्याति की दृष्टि से जोखिम भरा था, तब भूषण ने वीर काव्य का उत्कृष्ट सर्जन किया और कुल गौरव शिवाजी के शौर्य एवं चरित्र को अपनी कविता का आधार बनाया। ऐसे कवि का हिंदी के मध्यकालीन कवियों में विशिष्ट स्थान है। उनके काव्यसर्जन के विषय में जानना किसी भी दृष्टि से महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय कहा जाएगा।

रीतिकाल की ही समय सीमा में रहते हुए सेनापति ने अपना अलग स्थान सुनिश्चित किया है। सेनापति जैसे कवि का महत्व ही दृष्टियों से रेखांकित किया जा सकता है– एक तो रामकाव्य की परंपरा को आगे बढ़ाने में सेनापति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

का अक्षुण्ण महत्व है, दूसरे शृंगारी विशेषताओं का स्पर्श करते हुए उन्होंने जो ऋतुवर्णन (विशेषतया ग्रीष्म वर्णन) किया है, वह बहुत उच्चकोटि का है। इन द्विविध दृष्टियों से सेनापति बहुत महत्वपूर्ण कवि के रूप मे समादृत है, जिनका परिचय प्राप्त करना किसी भी तरह अमहत्त्वपूर्ण नहीं कहा जाएगा।

10.1 उद्देश्य

'द्रुतपाठ' के रूप में इस इकाई का उद्देश्य आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल के कतिपय ऐसे महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय कवियों का सामान्य परिचय देना है जो इस प्रश्नपत्र के अध्ययन के अंतर्गत नहीं आ सके हैं। बावजूद इसके उनका सर्जन किसी भी दृष्टि से न्यून नहीं कहा जा सकता, बल्कि वे युग विशेष के अतिप्रसिद्ध कवि थे। अपने काल के ख्यातनाम रचनाकार थे। प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य के अध्येता को ऐसे विशिष्ट कवियों के संबंध में सामान्य जानकारी रखने की अपेक्षा की जाती है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत, आप –

- इस प्रश्नपत्र में वर्णितप्राचीन एवं मध्यकालीन प्रमुख कवियों के अतिरिक्त कतिपय अन्य विशिष्ट कवियों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- आदिकालीन कवियों में खुसरो जैसे महत्त्वपूर्ण कवि के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व से परिचित हो सकेंगे।
- कृष्णभक्ति धारा में करुणा की कवयित्री मीरांबाई के विषय में जानकारी कर प्राप्त सकेंगे।
- कृष्णभक्ति के मुसलमान कवियों में विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान के अधिकारी रसखान के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकाल की शृंगारी परंपरा की प्रभावी धारा के मध्य ओजगुण प्रवाहित करनेवाले वीररस के पर्याय महाकवि भूषण के संबंध में विशिष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- रामकाव्य परंपरा एवं रीतिकालीन काव्य के प्रमुख कवि, ग्रीष्म वर्णन के लिए विख्यात सेनापति के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

10.2 द्रुत पाठ के कवि

द्रुतपाठ के अंतर्गत जिन कवियों का चयन इस इकाई के लिए किया गया है, हिंदी कविता के इतिहास और उसकी सुदीर्घपरंपरा में अपना विशेष महत्व और स्थान रखते हैं। ऐसे कवियों में अमीर खुसरो, मीरांबाई, रसखान, भूषण और सेनापति के नाम सम्मिलित हैं, जिनका अध्ययन–चिंतन गहरा अपेक्षित है।

10.3 अमीर खुसरो

खुसरो का वास्तविक नाम 'अबुल हसन यमुनुद्दीन देहलवी' उर्फ अमीर खुसरो था। अमीर खुसरो खड़ीबोली हिंदी के प्रथम कवि माने जाते हैं। विद्वानों ने खुसरो को 'हिन्दुस्तान का तूतिए–हिंद' कहा है। वे प्रत्युत्पन्नमति और मनोरंजन शैली में बात करनेवाले थे। उनका सम्पूर्ण जीवन सूफी धर्म साधना में व्यतीत हुआ। उनका जन्म सन् 1253 ई. में और और मृत्यु 72 वर्ष की अवस्था में सन् 1325 में हुई। खुसरो के नाना 'इमामुदुलमुल्क' और पिता 'अमीर सैफुद्दीन' दोनों ही चिश्ती सम्प्रदाय के प्रसिद्ध सूफी हजरत निजामुद्दीन औलिया के भक्त थे। खुसरो को भी उनके पिता ने औलिया साहब का मुरीद (भक्त) बना दिया। औलिया साहब को खुसरो के प्रति अगाध प्रेम था, उन्होंने अपनी वसीयत में पहले से लिखवा दिया था कि खुसरो की मृत्यु के बाद उन्हे मेरी कब्र के साथ ही दफनाया जाए। पृथ्वीराज की मृत्यु (सन् 1192 ई.) के 90 वर्ष बाद खुसरो ने सन् 1283 ई. के आस–पास अपनी रचनाएं आरम्भ की। इन्होंने गयासुद्दीन से लेकर अलाउद्दीन और कुतुबुद्दीन शाह तक कई पठान बादशाहों का शासन देखा था। वे फारसी के बहुत अच्छे लेखक और अपने समय के प्रसिद्ध कवि थे।

उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में विद्वानों में अनेक विवाद हैं। इसका एकमात्र कारण यही है कि उन्होंने अपनी रचनाएं एकाधिक भाषाओं में की हैं। ये फारसी के तो अच्छे विद्वान थे ही पर उन्होंने उस समय की आम जनता में बोली जानेवाली भाषाओं में भी कविता लिखी है। फारसी और हिन्दी–मिश्रित भाषा में भी इनकी रचनाएं प्राप्त होती है। फारसी और हिन्दी का कोश जो पद्यों में तैयार किया गया है और 'खालिक वारी' के नाम से विख्यात है, कुछ लोगों का कहना है कि इसके रचयिता खुसरो ही हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इन्होंने हिन्दी में पर्याप्त रचनाएं की हैं। खुसरो की हिन्दी रचनाओं में दो प्रकार की भाषा पायी जाती है। ठेठ खड़ी बोल–चाल में उन्होंने पहेलियाँ, मुकरियाँ और दो सुखन रचे हैं, तथा गीतों और दोहों में प्रचलित काव्यभाषा या ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। खुसरो का लक्ष्य जनता का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मनोरंजन करना था, जिससे उनकी भाषा उस काल के कवियों और चारणों द्वारा व्यवहृत रूढ़ियों से जकड़ी काव्यभाषा से भिन्न है।

खुसरो की हिन्दी गद्य में तीन रचनाएं हैं (i) 'खालिकबारी' (ii) हालात–ए–कन्हैया (iii) 'नजराना–ए–हिन्द' लेकिन इनमें से अभी केवल 'खालिकबारी' ही उपलब्ध है, इसके अतिरिक्त हिन्दी में पहेलियों मुकरियों, दो सुखनों, निस्बतों, अनमेलियों एवं ढकोसलों, हिन्दी मिश्रित फारसी गज़लों की संख्या पर्याप्त है। खुसरो हिन्दी रचनाओं का प्रथम संकलन 'जवाहिरे–खुसरवी' नाम से सन् 1918 में मौलाना रशीद अहमद 'सालम' ने अलीगढ़ से प्रकाशित कराया। दूसरा संगह 'खुसरो की हिन्दी कविता' शीर्षक से ब्रजरत्नदास के सम्पादन में 'नागरी प्रचारिणी सभा' काशी से सन् 1822 में प्रकाशित कराया।

खुसरो ने अरबी–फारसी–हिंदी में कोश ग्रंथ लिखा जो बहुत महत्वपूर्ण है। खालिकबारी रचना को खुसरों ने 'गयासुद्दीन बलबन' के पुत्र को भाषा ज्ञान देने के लिए प्रस्तुत किया था। खुसरो में धार्मिक कट्टरता भी थी। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा दिल्ली में हुई। खुसरो की दृष्टि में खड़ीबोली में जो कुछ लिखा उसे दोस्तों में बांट दिया। खुसरो ने स्वीकार किया–

''जुज्में चन्द नज्मे हिन्दवी नस्तें दोस्तां कर्राशुदा'' (लेकिन उन्हें हिन्दी पर गर्व था)

''तर्क हिन्दुस्तानियम, मन हिन्दवीं गोयम जवाब''

बारह वर्ष की अवस्था में बुजुर्ग विद्वान ख्वाजा इज्जुद्दीन ने खुसरो को 'खुसरो सुखन' की उपाधि दी थी (खुसरो सुखन अर्थात सुन्दर काव्य)। खुसरो एक तरफ फारसी में लिख रहे थे, और दूसरी ओर उन्होंने कहा मैं फारसी के प्रसिद्ध कवि 'जामी' के बराबर हूं। यह कवि का आत्म–विस्फोट है। जामी फारसी के प्रख्यात कवि थे। खुसरो उसी समय हिन्दी में लिख रहे थे। खुसरो एक तरफ तो दरबार से सम्बन्ध रखते थे और दूसरी और निजामुद्दीन औलिया के मठ से भी अपना सम्बन्ध रखते थे। उनके विषय में कहा जाता है–

''अमीरी की तो ऐसी की, कि अपना घर लुटा बैठे।
फकीरी की तो ऐसी की, कि तेरे दर पर आ बैठे।।''

खुसरो दो विरोधी तत्वों में समन्वय करनेवाले थे। सामाजिक समन्वय एवं हिन्दू – मुस्लिम एकता पर खुसरो जैसा प्रयास हिन्दी साहित्य में अन्यत्र कहीं भी नहीं दिखाई देता। खुसरो का सम्बन्ध 'लाइन' जाति के तुर्क वंश से था। खुसरो ने तीन राजवंशों (i) गुलाम (ii) खिलजी (iii) तुगलक के उत्थान – पतन को देखा था। खुसरो मलिक छज्जु जलालुद्दीन अलाद्दीन खिलजी और गयासुद्दीन तुगलक के राजकवि थे। खुसरो का दरबार और मठ दोनों से एक जैसा सम्बन्ध था। खुसरों ने अरबी–फारसी–हिन्दी में कोशग्रंथ तैयार किया जो बहुत प्रसिद्ध है। 19 वर्ष की अवस्था तक खुसरों ने अपनी कविताओं का एक संग्रह प्रस्तुत किया जिसको नाम दिया 'तोहफत–उल–सरर। हजरत निजामुद्दीन के शिष्य निजामुद्दीन औलिया थे और औलिया के शिष्य खुसरो थे। खुसरो की एक कन्या थी जो विदुषी थी। खुसरो ने गुलाम, खिलजी और तुगलक के सात बादशाहों का जमाना देखा था। ये सभी योद्धा थे और तलवार के धनी थे।

खुसरो अमीरों में अमीर, फकीरों में फकीर, जनसाधारण के परममित्र थे। हजरत खुसरो का अधिकतर समय अपने सद्गुरू के चरणों में ही व्यतीत होता था। खुसरो का एक प्रसिद्ध दोहा है, जो गुरू की मृत्यु पर कहा है–

''गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने रैन भई चहुं देस।।''

खुसरो का एक अन्य प्रसिद्ध दोहा है –

''खुसरो रैन सुहाग की जागी प्रिय के संग।
तन मेरा मन पीव का दोउ भये एक रंग।।''

''सजन सकारे जायेंगे नैन मरेंगे रोय।
बिधना ऐसी रै कर भोर कभी ना होय।''

काव्यत्व की पराकाष्ठा खुसरो की कविता से मिलती है। उपर्युक्त तीनों पद 'तस्सुक' (ईश्वरीय समर्पण) के पद हैं। खुसरो की मुकरियों की परम्परा को भारतेन्दु ने निभाया। खुसरो 99 ग्रंथों के प्रणेता हैं। खुसरो ने हिन्दी में लिखा इसका कोई प्रमाण नहीं है। वह लोक में प्रचलित है, इसलिए इनकी पंक्तियां प्रामाणिक नहीं हैं, वह जनश्रुतिमूलक हैं। वह पीढ़ी दर पीढ़ी उपलब्ध होता रहा है। गद्य–पद्य दोनों में समान अधिकार रखनेवाले खुसरो मौलिक रचनाकार हैं, इतिहासकार हैं कोशकार हैं, संगीतज्ञ हैं, फारसी काव्य के सिरमौर, ज्ञान एवं विधाओं की खान हैं, सूफी जीवन शैली का सच्चा साकार नमूना हैं। खुसरो का प्रसिद्ध गीत (i) काहे को बाबूल ब्याही विदेश (ii) छाप–तिलक सब छिनी रे तोंसे नैना मिलाय के (iii) अम्मा मेरे बीर को भेजो की सावन आया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

खुसरो की रचनाओं में सबसे प्रसिद्ध रचना है– नूहसिपर। नूहसिपर का अर्थ होता है– नौ आकाश। नौ अध्यायों की यह रचना मुबारकशाह उर्फ कुतुबुद्दीन की फरमाइश पर लिखी गई थी। इसके तीसरे अध्याय का नाम 'किरानुस्सादेन' है, जो भारत स्तुति की बेजोड़ रचना है।

किरानुस्सादेन का अर्थ 'नेक शगुन' या 'दो सौ ग्रहों का मिलन' होता हे। यह मसनवी है। मसनवी काव्य का एक रूप है, जिसमें प्रशंसा की जाती है। खुसरो द्वारा रचित काव्य रूप है (i) रुबाई (ii) गजल (iii) कसीदा (iv) मसनवी

रुबाई चार पंक्तियों का काव्य रूप है। खालिकबारी वैसे तो खुसरो की ही रचना मानी जाती है, लेकिन इसकी प्रमाणिकता संदिग्ध है कि यह उन्हीं की रचना है। खुसरो का एक कथन बहुत प्रसिद्ध है।

''किसवरे हिंदस्त बहिस्ते–ब–जमीं''

किरानुस्सादेन' में लिखा हुआ है संस्कृत एवं अन्य समस्त भाषाओं में श्रेष्ठ बुद्धि और चतुराई का खेल शतरंज का आविष्कार भारत ने किया। भारत में अंकों का विकास एवं शून्य की खोज हुई।भारतीय संगीत विश्वमर में अपना सानी नहीं रखता है। भारत के लोग संसार की किसी भी भाषा को ठीक–ठीक बोलने में समर्थ है। दिल्ली के बारे में कहा– ''इस चमन की कहानियां अगर मक्का सुन पाये, तो वह भी श्रद्धापूर्वक भारत की परिक्रमा करने लग जाए।''

खुसरो हिन्दी–उर्दू के जन्मदाता कहे जाते हैं। खुसरो हिन्दी के पहले शायर हैं। उन्होंने अपने हिन्दी काव्य को संकलित नहीं किया। वह जनश्रुति पर आधारित है। फारसी और हिन्दी की काव्य परम्परा भी खुसरो से प्रारम्भ हुई। खुसरो की 'कही मुकरियों' को भारतेन्दु ने नये रूप में ढालकर व्यंग्यार्थ प्रयुक्त किया। खुसरो की एक पहेली का उदाहरण द्रष्टव्य है।

''खीर पकाई जतन से चरखा दिया चला।
आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजा।'' (खुसरो)

खुसरो के बारे में गालिब का शेर (श्रद्धांजली) है–

''गालिब मेरे कलाम में क्यों कर मजा न हो।
पीता हूँ धोके खुसरो वे शीरी सुखन के पाँव।।''

स्व. प्रो. शैरानी तथा अन्य आलोचक 'खालिकबारी' को खुसरो की रचना नहीं मानते हैं। मीर अपने निकातुश्शुअरा में लिखते हैं कि उनके समय तक खुसरो के हिन्दी गीत अतिलोकप्रिय थे। वस्तुतः खुसरों हिंदी कविता में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

10.4 मीरांबाई

कृष्ण भक्त कवियों में मीरां का बहुत ऊँचा स्थान है। मीरा शब्द में मीर (सरस्वती, सरीता, पृथ्वी आदि का पर्यायवाची है।) पश्चिमोत्तर के अंचल विशेष में आकारान्त शब्दों को अनुस्वार युक्त बोलने के कारण 'मीरा' का 'मीरां' हो गया। मीर से मीरां शब्द बना। मीरां का जन्म (1498–1573) ई. में मेड़ता के निकट कुड़की गाँव राठौड़वंश की मेड़तिया शाखा में हुआ था। इस शाखा के प्रवर्तक रावदूदा थे। मीरा रावदूदा के पुत्र. राव भक्तिसिंह की पुत्री थीं। उन्होंने कृष्ण को बालस्नेही कहा है। मीरा का विवाह राणासांगा के पुत्र भोजराज से हुआ। मीरां को युवावस्था में वैधव्य के कारण वैराग्य प्राप्त हुआ। जीवन की अनेक दुखद घटनाओं ने मीरा को संसार की ओर से हटाया और कृष्ण की ओर उन्मुख किया। मीरा को बचपन से ही अपने गिरधर लाल से लगन लगी थी। मीरा ने स्वयं कई पदों में गिरधर लाल को 'बाल सनेही' कहा है। मीरां माया के प्रपंचजनित लोक–लाज छोड़ कर एकान्त भाव से कृष्ण को समर्पित हो गईं। मीरां को इस भक्ति–साधना के बीच अनेक प्रकार के कष्टों एवं पारिवारिक अत्याचारों को सहन करना पडा। पारिवारिक घटनाओं से ऊबकर मीरांबाई मेवाड़ छोड़कर नेड़ता गईं और फिर मेड़ता से उन्होंने तीर्थयात्रा के लिए प्रस्थान किया और कृष्ण की लीलाभूमि वृन्दावन में पहुंची। वृन्दावन का दर्शन कर मीरां द्वारिका चली गईं और वहीं 'रणछोड़' जी के मन्दिर में आत्मरचित पदों में कृष्ण–लीला और आत्म–विरह वेदना का निवेदन करने लगीं। कहा जाता है कि लगभग संवत् 1603 (सन् 1646 ई.) में मीरांबाई भगवान की मूर्ति में समा गईं।

मीरांबाई के रचित जिन ग्रन्थों 'नरसी जी रो माहरो', 'गीत गोविन्द की हिन्दी टीका, 'राग गोविन्द', 'सोरठ के पद', 'मीरा बाई का मल्हार', 'गर्वा गीत' और फुटकल पदों की चर्चा होती है, उनमें मीरा बाई रचित कृष्णलीला विषयक आत्म विरहानुभूति जनित गीत ही सर्वाधिक लोकप्रिय, प्रामाणिक और प्रतिनिधि हैं। मीरांबाई के इस प्रकार के करीब 200 पद प्राप्त हैं। मीरांबाई के पदों का मुख्य विषय उनकी आभ्यान्तरिक सघन विरहानुभूति का प्रकाशन ही है। इन गीतों में उनके आराध्य मनमोहन के प्रति उनकी प्रेमभावना की विविधि रूपों में अभिव्यक्ति हुई है। श्रीकृष्ण का रूप

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वर्णन और गिरिधर लाल के प्रति मीरा का आत्मसमर्पण मीरांबाई की पदावली के मूल विषय हैं। मीरांबाई के पदों में जीवन का विषाद और भगवत रति का प्रकाशन है। मीरां ने श्रीकृष्ण को अपना आराध्य और पति माना है। मीरा के कुछ पदों में इनके इष्ट देव का निर्गुण रूप भी व्यक्त हुआ है। इसलिए कुछ आलोचक उन्हें सन्तमत में दीक्षित मानते हैं। मीरां के रहस्यवादी गीतों में भी भावों की सचाई, स्पष्टता और भाषा का अनूठा प्रवाह है। इनके कुछ पदों में गोपीभाव की भी झलक मिलती है। अपने अनेक पदों में मीरा ने कृष्ण को अपना 'पिव, 'सैयां', 'भरतार' कहकर सम्बोधित किया है। इस प्रेम–दिवानी मीरां के पदों में भावों की जो सचाई और गहराई है उसका अनेक अन्य रहस्यवादी और भक्त कवियों में अभाव है।

मीरां के काव्य में भाव की सघनता, तरलता किन्तु दृढ़ता का जो उत्कृष्ट रूप मिलता है वह श्लाघ्य है। इनके पदों में अपने मनमोहन के प्रति पूर्वराग और विरहगर्भित प्रेम की सच्ची कहानी गायी गई है। यहां भावों का ऐसा दबाव और प्रबल प्रवाह है कि भाषा सार्थक होकर भी असमर्थ हो गई है। मीरां के काव्य में भाव पक्ष ही प्रबल है, उसमें कला–कुशलता उतनी नहीं है। मीरां के पदों में भावों की जो सचाई और प्राकृत सौन्दर्य है उसे अलंकरण की, साज सँवार की आवश्यकता नहीं, उसकी तो सादगी में ही अद्‌भुत शक्ति है, अनोखा जादू है। फिर भी उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, श्लेष, अनुप्रास आदि अलंकार अनायास ही आकर पदों के माधुर्य को और अधिक मधुर बनाते हैं।

मीरां के पद काव्य की दृष्टि से जितने महत्त्वपूर्ण हैं, संगीत की दृष्टि से उससे भी अधिक महत्वपूर्ण हैं। मीरा ने अपने पदों में सूरदास की ही भाँति विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया है, किन्तु गायन की राग–रागिनी पद्धति ने बीच में उनके रूप में पर्याप्त परिवर्तन कर दिया है। मीरा के जीवन की भाँति उनका काव्य भी संगीतमयी है, जो उनकी आत्मा का संगीत है। मीरां ने सूरदास और तानसेन की भाँति नये रागों का भी निर्माण किया है। मीरा का सम्पूर्ण जीवन एवं काव्य वेदना का प्रगीत है। मीरां की लोकप्रियता का पहला कारण, ऊँचे राजकुल का त्याग करके, साधुओं संतों और भक्तों के बीच सामान्य जन के स्तर पर भक्तिभाव की अभिव्यक्ति, दूसरा कारण, सम्प्रदाय निरपेक्षता, तीसरा कारण, ऐसी भाषा का प्रयोग जो लोकजीवन में रची बसी थी।

कृष्ण काव्यधारा में मीरां का स्थान बहुत ऊँचा है. सूर के बाद बहुत ऊँचा। प्रेम की जो तन्मयता मीरां में दृष्टिगोचर होती है वह संसार की कवयित्रियों में दुर्लभ है। जो स्थान यूनानी कविता में सेफो का है, अरबी कविता में राबिया का है, स्पेनी कविता में टेरेसा का है, तमिल कविता में गोदा का है, वहीं स्थान गुजराती और हिन्दी कविता में मीरां का है। मीरा केवल कवयित्री ही नहीं हैं, महान् नारी भी हैं, नारीत्व का आदर्श हैं। मीरां के प्रेम में पार्थिवता आध्यात्मिकता बन गई है। आज विश्व में जनता की जितनी और जैसी श्रद्धा मीरां को प्राप्त है, उतनी और वैसी किसी कवयित्री को नहीं है। मीरा को संसार की श्रेष्ठ कवयित्रियों में सरलता से प्रतिष्ठित किया जा सकता है। मीरां को अपने गिरधर–गोपाल से सीधा–साधा प्रेम था। प्रेम सबसे बड़ी कला है, (मीरां), प्रेम सबसे बड़ी कविता है। (तुलसी), प्रेम सबसे बड़ी साधना है (नानक), प्रेम सबसे बड़ा दर्शन है (कबीर), मीरा इसे जानती थीं। अनुभूति की तीव्रता तथा अभिव्यक्ति की अकृत्रिमता मीरां से श्रेष्ठ कवयित्री शायद ही कोई हो।''

10.5 रसखान

कृष्णभक्त कवियों में मुसलमान कवि रसखान का महत्त्व और स्थान सर्वोपरि है। उनका समय सोलहवीं सदी का उत्तरार्द्ध है। उनका मूल नाम सैयद इब्राहिम है। इनके भक्तिपरक काव्य पर भारतेन्दु ने लिखा– ''इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिन हिन्दुन वारिये।''

रसखान पर प्रामाणिक वृत्त नहीं मिलता है। उनकी रचना 'प्रेमवाटिका'' में उन्होंने गदर का संकेत किया है। इस आधार पर उनका समय 1855 ई. के आस–पास अनुमित किया जाता है। उनका जन्म संवत् 1590 (सन् 1953) में हुआ । ये दिल्ली के निवासी थे। पठान बादशाही वंश के थे। कहा जाता है, उन्होंने वल्लभ सम्प्रदाय के स्वामी विट्ठलनाथ से दीक्षा ली थी। दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता तथा 'मूलगोसाइचरित' में रसखान का उल्लेख मिलता है। 'प्रेमवाटिका' एवं दानलीला उनकी प्रमुख रचनाएं हैं। उनकी वाणी का संकलन सुजान रसखान नाम से सर्वाधिक प्रसिद्ध है।

एक अन्य ग्रन्थ 'अष्टयाम' सन् 1955 में 'कल्याण' के 'संतवाणी' अंक में प्रकाशित हुआ है। इनका सम्बन्ध शाही खानदान से है। ''छिनहि बादिसा बंस की ठसक छाड़ि रसखान।

प्रारम्भिक जीवन में रसखान किसी अन्य पर आसक्त थे, किन्तु पीछे से इनका भौतिक प्रेम कृष्ण प्रेम में परिणत हो गया। रसखान ने कृष्ण भक्ति काव्य की पद परम्परा को छोड़कर कबीर के सवैया का मार्ग अपनाया। तुलसी इनके

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

समकालीन थे। रसखान पहले कवि है जिन्होंने सवैये में कृष्ण का गुणगान किया है। ब्रज की धरती, पशुपक्षी, वनबाग आदि के प्रति रसखान जैसा प्रेम सूर को छोड़कर अन्य किसी में नहीं है।

कृष्ण भक्तों में रसखान का स्थान बहुत ऊँचा है। हिन्दी के कृष्णकाव्य में सूर और मीरां के बाद रसखान का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। ब्रजभाषा का जो प्रांजल और सरस रूप रसखान ने प्रदान किया है वह अतुलनीय है। सूर ने शब्दों को बडी बेदर्दी से तोडा–मरोडा है। यत्र–तत्र अलंकरण की चेष्टा में भावों को कुछ पीछे भी ढकेला है। रसखान ने न शब्दों को तोड़ा है न मरोड़ा है, न अलंकरण की चेष्टा की है फिर भी उन्होंने जो चाहा बड़ी विदग्धता से कह डाला। रसखान अपनी थोडी सी पदावली में अनुभव की विशालता देखा देते हैं। कहीं वे भक्त की सीमाएं छूते हैं, कहीं उनकी गोपी अनुराग को अनुरक्त करती है, कहीं प्रेम की मोहक ईष्या गागर में सागर उड़ेलती है, कहीं प्रेम अपनी परिभाषा प्राप्त करता है। रसखान की पदावली में भाषा का जो प्रवाह, भावों की जो विराटता है वह उन्हें उच्चकोटि का कवि सिद्ध करती है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय का प्रवर्तन हितहरिवंश गोस्वामी ने 1534 ई. में वृन्दावन में किया था। इसमें प्रेम को ही भक्ति तथा सम्प्रदाय का मूल आधार माना जाता है।

इस सम्प्रदाय में न तो मुक्ति की कोई कामना है, न युक्ति के लिए कोई स्थान। मुख्य रूप से नित्य बिहार दर्शन ही सहचरी का अकाट्य भाव है, जिसकी प्राप्ति केवल प्रेम से होती है।

नित्य बिहार के विधायक केवल चार तत्व है (i) कृष्ण (ii) राधा (iii) सहचरी (iv) वृन्दावन। ये समस्त तत्व रसखान में दृगत होते हैं।

राजनैतिक प्रपंचों की चपेट में आकर दिल्ली के कलह और दुर्भिक्ष के कारण संवत् 1612 (सन् 1555 ई.) के लगभग वृन्दावन आकर बस गये। कहा जाता है कि रसखान एक स्त्री पर आसक्त थे। स्त्री बहुत मानवती थी और इनका अनादर किया करती थी। एक दिन वह श्रीमद्भागवत का फारसी अनुवाद पढ़ रहे थे। उसमें गोपियों के अनन्य और अलौकिक प्रेम को पढ़ इन्हें ध्यान हुआ कि उसी से क्यों न मन लगाया जाय जिस पर इतनी गोपियाँ मरती थीं। इसी बात पर वे वृन्दावन चले आये। सन् 1570 ई. के बाद संभवतः ये वैष्णव हुए। सन् 1614 ई. में 'प्रेमवाटिका' की रचना की। लगभग सन् 1618 ई. के आसपास 'रसखान' की मृत्यु हो गयी।

रसखान की रचनाओं के विषय में विद्वानों में एकमत नहीं है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार इनके ग्रन्थ हैं – (1) रसखान शतक, (2) सुजान रसखान, (3) प्रेमवाटिका और (4) पदावली। प्रेमवाटिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है। 'प्रेमवाटिका' में भक्तियोग के रहस्यपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन तथा गोपी भाव की प्रेमाभक्ति की उत्कृष्टता का प्रदर्शन सरल दोहों में करना रसखान की विलक्षण प्रतिभा का द्योतक है।

रसखान की कविता का मुख्य विषय कृष्ण विषयक रति है। 'प्रेमवाटिका' में रसखान ने प्रेम का सैद्धान्तिक स्वरूप अंकित किया है और अपने सवैयों में उसका क्रियात्मक रूप उपस्थित किया है। रसखान ने प्रेम को त्यागमय और कामनारहित माना है जिसमें प्रेम के आश्रय और आलंबन का तादात्म्य हो जाता है। रसखान ने प्रेमी–प्रेमिका का मानसिक ही नहीं, शरीर के एकत्व का भी समर्थन किया है–

अकथ कहानी प्रेम की, जानत लैली खूब।
दो तनहूँ जहँ एक भय, मन मिलाय महबूब।।

रसखान के सवैये इतने श्रुतिमधुर और भावभरे हैं कि पाठक काव्य – रस में सर्वांग डूबने लगता है। रसखान के सवैयों की सार्थक शब्द योजना, वर्ण मैत्री और चित्र योजना के संयोग से सहज ही ग्राह्य बिंब निर्मित हो गये–

दृग दूनै खिचै रहें कानन लौं, लट आनन पर छहराइ रही।
छकि छैल छबीली छटा छहराइ कै, कौतुक कोटि दिखाइ रही।
झुकि–झूमि झमाकनि चूमि अभी, चहि चाँदनी चंद चुराइ री।
मन भाई रही रसखानि छवि, मन मोहन की तरसाइ रही।।

सम्पूर्ण रागों का कृष्णार्पण कर एकांत भाव से कृष्ण की भक्ति में लीन होने के पश्चात् रसखान का अपने आराध्य कृष्ण की लीला भूमि के कण–कण से अनन्य प्रेम स्थापित हो गया। वे अपने मानव शरीर की सार्थकता गोकुल और वृन्दावन के दर्शन में ही मानने लगे। रसखान ब्रजप्रदेश के तृण, तरु, लता, पशु पक्षी और पत्थर तक से अपना सम्बन्ध जोड़कर सारे संसार की संपति ब्रज की धूलि के समक्ष मूल्यहीन मानने लगे –

"मानुष हौं तो वहीं रसखान बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पशु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नंद की धेनु मँझारन।
पाहन हौं तो वहीं गिरि को जो धरयो कर छत्र पुरंदर धारन।

Jainy Bhavan Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिन्दि कूल कदंब की डारन।।

रसखान की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। फारसी के विद्वान् होने के कारण रसखान के सवैयों में फारसी–अरबी के शब्द भी मिल जाते हैं, पर वे छन्द के बीच में अजनबी नहीं लगते। निश्चय ही रसखान रस–सिद्ध और भाषा–सिद्ध कवि थे।

10.6 भूषण

भूषण रीतिकाल के समस्त कवियों में अकेले वीर रस के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। वे रीतिकाल के प्रसिद्ध कवियों मतिराम, चिंतामणि और जटाशंकर के भ्राता हैं। इसमें इनका क्रम दूसरा है। इनका जन्म संवत् 1660 माना जाता है। चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र ने इन्हें कवि भूषण की उपाधि दी लेकिन निम्न दोहे से ज्ञात होता है कि यह पदवी उन्हें राजा रूद्र ने नहीं राजा के पुत्र हृदयराम ने दी थी–

"कुल सुलंक चित्रकूटपति साहससीय समुद्र।
कवि भूषण पदवी दई हृदयराम सुत रुद्र।।"

यह छंद प्रमाणिक है। शुक्ल जी के अनुसार रूद्र ने दिया है।

नवीन शोधों के अनुसार मतिराम, भूषण, चिंतामणि का क्रम है। शुक्ल के अनुसार चिंतामणि, भूषण, मतिराम का क्रम माना जाता है।

भूषण का आरम्भिक नाम घनश्याम था लेकिन भूषण पदवी के बाद यह इतना प्रसिद्ध हो गया कि वे इसी नाम से विख्यात हो गये। भूषण के काव्य के महानायक शिवाजी हैं। पन्ना के महाराज 'छत्रसाल' के यहाँ भी उनका सम्मान था। पन्ना (मध्यप्रदेश) केशव भी यहीं के थे। कहा जाता है कि छत्रसाल ने भूषण की पालकी में कंधा लगाया था। इस पर उन्होंने कहा–

"शिवा को बखानों कि बखानों छत्रसाल को।"

उनको एक–एक छंद पर शिवाजी से लाखों रुपये मिले। उनकी मृत्यु सम्वत् 1772 में हुई थी। भूषण के ग्रंथों में 'शिवराज भूषण', 'शिवाबावनी', 'छत्रसालदशक' ही मिलते हैं। इनके अतिरिक्त 'भूषण–उल्लास' और 'भूषण हजारा' का भी उल्लेख मिलता है। 'शिवराज भूषण' अलंकार ग्रंथ है। श्रृंगार या नायिका भेद का मुख वीर रस की ओर मोड़ने का श्रेय भूषण को है। 'शिवा बावनी' तथा 'छत्रसाल दशक' पहली बार सन् 1850 में प्रकाशित हुईं।

शुक्लजी के अनुसार भूषण हिन्दू जाति के प्रतिनिधि कवि हैं। भूषण ने शिवाजी का चित्रण जातीय गौरव एवं राष्ट्रीय संस्कृति के रक्षक के रूप में किया है। भूषण ने मुसलमान जाति की निन्दा नहीं की है, यदि निंदा की है तो कट्टर एवं अत्याचारी औरंगजेब की। भूषण ने अकबर, हुमायूं आदि की प्रशंसा की है।

काव्यशास्त्र का निरूपण भूषण के लिए साधनमात्र था साध्य नहीं। भूषण की भाषा में अरबी–फारसी और तुर्की शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग है, क्योंकि यह महाराष्ट्र के महानायक शिवाजी पर लिख रहे थे और वहां ये शब्द सहज उपलब्ध थे।

रीतिकालीन कविता का श्रृंगार के पश्चात सबसे प्रमुख रस वीर है। हिन्दी साहित्य में वीररस के आधार कवि भूषण इस काल के सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। वे रीतिकालीन वीर काव्य के प्रमुख स्तम्भ हैं। उनका ओजस्वी शब्द चयन, उनका इतिहाससम्मत विवरण, उनका अभूतपूर्व युद्ध वर्णन परम्परा बोझिल होने पर भी अत्यन्त प्रभावशाली है। भाषा को भूषण ने बहुत तोड़ा–मरोड़ा है, किन्तु उसकी प्रभावशालिता में व्यवधान नहीं पड़ा है।

भूषण ने अपने वीर काव्य का आधार मध्यकालीन हिन्दू वीरों में दो सर्वश्रेष्ठ पुरुषों शिवाजी एवं छत्रसाल को बनाया है। यही कारण है कि उनका वीर काव्य रीतिकाव्य के मतिराम पद्माकर आदि अन्य कवियों के साधारण राजा–रथियों पर रचे गये वीर काव्यों की तुलना में बहुत अधिक प्रभावशाली है। चाटुकारिता के आधार पर रचित वीर काव्य जीवित नहीं रह सकता। भूषण स्वयं वीर थे और उसी आश्रय में उनकी प्रतिभा पली थी। अन्य कवियों की वीरता विषयक चाटुक्य पूर्ण कृतियाँ भूषण की 'शिवराज भूषण', 'शिवाबावनी' और 'छत्रसालदशक' जैसी कृतियों के सामने खिलवाड़ सी लगती हैं। भूषण का वीर काव्य साहित्यिक महत्त्व ही नहीं रखता ऐतिहासिक महत्व भी रखता है।

रीतिकाल की मूल प्रवृत्ति श्रृंगार होने के बावजूद वीररस में रचना करनेवाले महाकवि भूषण ने वीर रस को रीतिकाल का श्रृंगार के बाद दूसरा सबसे प्रमुख रस बना दिया था। व न केवल रीतिकाल के वरन् पूरे हिंदी साहित्य के वीर काव्य सर्जकों में श्रेष्ठ स्थान के अधिकारी हैं। श्रृंगार के युग में वीर रस में अत्यंत सफल रचना करके भूषण ने अपनी स्वच्छंद वृत्ति का परिचय दिया था। राष्ट्र गौरव, देशप्रेम और स्वाभिमान जैसे उदात्त गुणों का अपने काव्य में समावेष करने वाले महाकवि भूषण जातीय पहचान और प्रतिष्ठा के के कवि के रूप में ख्यात है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भूषण द्वारा रचित तीन ग्रंथों– 'शिवराज भूषण, 'शिवा बावनी' तथा 'छत्रसाल दशक' में 'शिवराज भूषण' अलंकार ग्रंथ है, जिस पर रीतिकाल का प्रभाव है। उपर्युक्त ग्रथों के अतिरिक्त 'भूषण उल्लास', 'भूषण हजारा', एव 'दूषण उल्लास' के रचनाकार के रूप में श्री भूषण का नाम लिया जाता है। भूषण ने आचार्य के रूप में लक्षण ग्रंथ की भी रचना की है, पर उनकी उत्कृष्ट काव्य प्रतिभा का आधार उनका वीर काव्य प्रणयन है। शृंगारी परिवेष में वीर रस की कविताएं लिखना लीक से हटकर एक साहसी कार्य था, जिसमें भूषण को व्यापक ख्याति मिली। वीर रस का बहुत विस्तृ और व्यापक क्षेत्र चुनकर भूषण ने उसके विविध पक्षों का बहुत ही मनोहारी चित्रण किया है। ओजपूर्ण भावों की उत्कृष्ट प्रस्तुति के कारण भूषण की कविताएं पाठकों को उद्वेलित करने में पर्याप्त सफल हैं। वीर रस वर्णन के संदर्भ में भूषण का सर्वाधिक मनोरम चित्र युद्ध के लिए प्रस्थान करनेवाली सेनाओं से संबंधित है–

'तारा सों तरनि धूरि धारा में लगत जिमि,
धारा पर पारा पारावार यों हलत है।

हालांकि भूषण ने कहीं–कहीं बहुत अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन भी किया है–

'दल के दरारन तें कमठ करारे फूटे, केरा कैसे पात बिहराते फन सेष के।''

पर वीर रस की भावना के अनुकूल कहीं–कहीं स्वाभाविक वर्णन भी उनकी रचनाओं में दिखाई देते हैं–

'छूटत कमान और तीर गोली बानन के,
मुसकिल होति मुरचान हूं की ओट में।

ताव दै दै मूंछन कंगूरन पै पांव दै दै,
अरिमुख घाव दै दै कूदि परै कोट मैं।।

वस्तुतः वीर रस के कवि के रूप में भूषण इस काल के गौरव हैं।

10.7 सेनापति –

रामकाव्य परंपरा–निर्वाह के साथ–साथ रीतिकालीन शृंगारी परिवेश को अपने काव्य सर्जन में जीवंत बनाने वाले 'सेनापति' ऋतुवर्णन के श्रेष्ठ प्रस्तोता हैं। उनका जन्म संवत् 1646 (सन् 1589 ई.) के आस–पास माना जाता है। ये अनूप शहर के रहनेवाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण पं. गंगाधर के पुत्र थे। सेनापति इनका कवि नाम जान पड़ता है, पर इनके वास्तविक नाम का कुछ भी पता नहीं है। सेनापति को इसकी बड़ी शिकायत रही कि लोग कविताओं की चोरी करते हैं। केवल उसके गाव ही नहीं चुराते बल्कि सगूची कविता ही उडा लेते हैं। उन्हें अपनी कविताओं को सुरक्षित रखने की बड़ी चिन्ता थी। इसीलिए उन्होंने अपनी रचनाएं अधिकतर कवित्तों में ही की हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'कवित्त रत्नाकर' को कवित्तों की सुरक्षा के लिए किसी राजा को समर्पित किया था। अपने कवित्तों में भी उन्होंने पूर्ववर्ती कवियों का समावेश नहीं होने दिया है। 'ऋतु–वर्णन' जैसा सेनापति ने किया है, वैसा हिन्दी के किसी अन्य शृंगारी कवि ने नहीं। इनके ऋतु वर्णनों में प्रकृति निरीक्षण पाया जाता है।

सेनापति अपने समय के भावुक और सिद्धहस्त कवि तो थे ही, जिससे उनकी रचनाओं में श्लेष, अनुप्रास और यमक अलंकार की छटा देखते ही बनती है। कवित्तों में शब्द–श्लेष की ओर भी इनका विशेष ध्यान रहा है। सेनापति जी ने, राम का उत्कट भक्त होते हुए, कृष्णा तथा शिव का भी गुणगान किया है। राम को नारायणत्व प्रदान करने के सम्बन्ध में ये गोस्वामी तुलसीदास की श्रेणी में आते हैं। उन्होंने रामावतार के लोकोपकारी गुणों का वर्णन विस्तार के साथ किया है।

सेनापति ब्रजभाषा लिखने में बड़े ही सिद्धहस्त थे। श्लिष्ट काव्यलेखन में उन्हें अपूर्व असफलता मिली है। संस्कृत और फारसी के शब्दों का भी इन्होंने प्रयोग किया है। 'कवित्त रत्नाकर' की भाषा में खड़ीबोली के कतिपय रूपों का भी प्रभाव देखने को मिल जाता है।

सेनापति रीतिकाल के अत्यंत प्रतिभा सम्पन्न और समर्थ कवि के रूप में स्वीकार किए जाते हैं, जिनमें भाव प्रवणता का आधिक्य है। सेनापति उनका उपनाम हैं उनके मूल नाम का कोई पता किसी को नहीं है। अपनी अनूठी काव्य कला और मौलिकतासम्पन्न भाव प्रवण काव्य दृष्टि के कारण सेनापति अपने युग के कवियों में अग्रणी माने जाते हैं। 'कवित्त रत्नाकर' के आधार पर अपना परिचय देते हुए सेनापति ने स्वयं कहा–

''सेनापति सोई, सीतापति के प्रसाद जाकी,
सब कवि कान दै सुनत कविताई है।''

सेनापति द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या दो मानी जाती है, जो 'कवित्त रत्नाकर' और 'काव्य कल्पद्रुम' के रूप में प्रसिद्ध है। कुछ लोग इन दोनों ग्रंथों को एक ही ग्रंथ के रूप में स्वीकार करते हैं। 'कवित्त रत्नाकर' सेनापति की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

काव्य प्रतिभा का मेरुदण्ड है। उसका अवलोकन करने पर सेनापति के पाण्डित्य और काव्य प्रतिभा का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। वे सस्कृत साहित्य की काव्य शास्त्रीय परपरा से भलिभाति परिचित थे। रीतिकाव्य–परपरा के आधार पर उन्होंने 'कवित्त रत्नाकर' में श्लेष अलंकार का जो विलक्षण प्रयोग किया है, उसे देखकर यह कहा जा सकता है कि श्लेष वर्णन में उनकी विशेष रुचि है। इसके अतिरिक्त शृंगार, ऋतुवर्णन, रामायण और रामरसायन आदि का वर्णन भी उन्होंने रीति परंपरा के अनुरूप ही किया है। अलंकार संप्रदाय के अनुयायी सेनापति ने अलंकार और रस दोनों के श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

रीतिकालीन कवियों में सेनापति की ख्याति जिस क्षेत्र में सबसे अधिक है, वह है उनका ऋतु वर्णन। ऋतु वर्णन में सेनापति का कोई सानी नहीं है। आलंबन रूप में प्रकृति को जो मोहक चित्र खींचने में सेनापति सफल हुए हैं, वह रीतिकालीन कवियों में उन्हें एक अलग पहचान दिलाता है। लोक जीवन से गहरी संपृक्तता के साथ उनके ऋतु वर्णन में स्वाभाविकता है, सहज प्रवाह है और मौलिकता है। हालांकि उसमें शब्द और अर्थ का चमत्कार भी कम नहीं है, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि वह वर्णन सहज और यथार्थ संपन्न है। उस समय भाषा के प्रचलित मुहावरे और अन्य भाषा के आम प्रचलित शब्दों के प्रयोग से सेनापति की भाषा ओज और प्रवाह से पूर्ण भाव की गंभीरता को बहुत मधुर ढंग से अभिव्यक्त करने में समर्थ है। वर्षा ऋतु का एक चित्र उनकी कविता में अवलोकनीय है–

"दामिनी दमक, सुरचाप की चमक, स्याम,
छटा की झमक अति घेर घनघोर तैं।
कोकिला, कलापी, कूल कूज हैं जित–तित,
सीकर ते सीतल समीर की झकोर तैं।
सेनापति आवन कह्यौ है मनभावन, सु,
लाग्यौ तरसावन विरह–जुर जोर तैं।
आयौ सखि सावन, मदन सरसावन,
लग्यौ है बरसावन सलिल चहुंओर तैं।।

वस्तुतः रीतिकाल की कविता में सेनापति का एक प्रमुख और विशिष्ट स्थान है।

10.8 सारांश

इस इकाई के माध्यम से आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल के कतिपय ऐसे महत्त्वपूर्ण कवियों पर सामान्य विश्लेषण एवं विवेचन प्रस्तुत किया गया, जिनका उल्लेख मुख्य पाठ्यक्रम के अंतर्गत नहीं किया गया था, पर वे अपने युग और काल विशेष के विशिष्ट कवि कहे जाते हैं। द्रुतपाठ के अंतर्गत ऐसे जिन कवियों का परिचय दिया गया उनमें अमीर खुसरो, मीरां, रसखान, भूषण, सेनापति के नाम सम्मिलित हैं। इकाई का सारांश निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है–

- आदिकालीन काव्यरचना के अन्तर्गत जो व्यापक सर्जन हुआ, उसमें स्वतंत्रत काव्य प्रणयन करने वाले कवियों में अमीर खुसरों का नाम बहुत महत्त्वपूर्ण एवं समादृत है।
- खुसरो को खड़ीबोली का प्रथम कवि माना जाता है। उन्हें तूतिए–हिन्द की उपाधि दी गई थी।
- खुसरो अरबी–फारसी तथा हिंदी में रचनाएं करते थे, जिसमें उन्होंने एक कोशग्रंथ की भी रचना की जो महत्त्वपूर्ण है।
- सूफी संत निजामुद्दीन औलिया के शिष्य खुसरो एक ऐसे कवि हैं, जिन्होंने भारतवर्ष की प्रशंसा में बहुत उत्कृष्ट सर्जन किया है।
- सामाजिक समन्वय, हिंदू–मुस्लिम एकता के पक्षधर खुसरो ने इन विषयों पर बहुत लिखा है।
- पहेलियों, मुकरियों आदि के अतिरिक्त खुसरो ने उत्कृष्ट कोटि के दोहे एवं गीतों की रचना की है, जो आम आदमी की जुबान पर चढ़े हैं।
- खालिकबारी, हालाते कन्हैया, नजरानाएं हिंद खुसरो की प्रमख रचनाएं मानी जाती हैं।
- भक्तिकाल को कृष्णभक्ति काव्यधारा में मीरां का स्थान बहुत ऊंचा और समादृत है।
- बचपन से मीरां को इतने कष्ट मिले कि उन्होंने ने स्वयं को कृष्ण के प्रति समर्पित कर दिया और कृष्ण को 'बाल–स्नेही' के रूप में अपना आराध्य बना लिया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)

- मीरां को कृष्ण से सरल एवं सीधा–सादा प्रेम था, जिससे उनकी वाणी भी बहुत सीधी और सरल रूप में कृष्ण का गुणगान करती है।
- मीरां के काव्य में कृष्ण के प्रति बहुत विरहाकुलता और तीव्र अनुभूति है, जिसके कारण उन्हें करुणा की कवयित्री कहा जाता है।
- कृष्ण के प्रति मीरां के हृदय में निश्छल भावुक प्रेम है, जिसके कारण उनकी अभिव्यक्ति भी स्वाभाविक एवं निश्छल है।
- युवावस्था में प्राप्त वैधव्य एवं जीवन में अनेक दुखद घटनाओं ने मीरां को पूर्ण वैराग्य एवं विरक्ति की ओर मोड़ दिया।
- मीरां की रचनाओं में 'नरसी जी रो मायरो', 'गीतगोविन्द की हिंदी टीका', 'राग गोविंद', सोरठ के पद' मीराबाई का मल्लार', 'गर्वागीत' और फुटकल पद सम्मिलित हैं।
- मीरांबाई के पद उनकी आभ्यंतरिक सघन अनुभूतियों को व्यक्त करते हैं, जिनमें तीव्र विरहाकुलता है।
- कृष्णभक्ति काव्यधारा के अंतर्गत रसखान का नाम बहुत आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है।
- हिंदी के मुसलमान कवियों में रसखान का नाम बहुत ऊंचा है।
- रसखना ने कवित्त और सवैया के माध्यम से ब्रजभाषा का माधुर्य उड़ेलकर रख दिया है।
- कृष्णभक्ति में रसखान सी विह्वलता एवं निश्छलता बहुत कम दिखाई देती है।
- एकनिष्ठ भाव से कृष्ण के प्रति गहन समर्पण रसखान को कृष्ण काव्यधारा में विशिष्ट स्थान दिलाता है।
- 'प्रेमवाटिका' और 'सुजान रसखान' रसखान की महत्त्वपूर्ण रचनाएं हैं।
- 'वल्लभ संप्रदाय' में दीक्षित रसखान सखाभाव से कृष्ण की उपासना करते थे।
- भूषण का नाम हिंदी कविता में वीररस के राष्ट्रीय कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं।
- रीतिकाल के श्रृंगारी परिवेश में रहते हुए भी भूषण वीरकाव्य प्रणयन में प्रवृत्त हुए, यह एक क्रांतिकारी और लीक से हटकर कदम था।
- राष्ट्रीय गौरव और स्वाभिमान की अभिव्यक्ति के लिए भूषण ने शिवाजी और छत्रसाल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को अपनी कविता का विषय बनाया।
- कवित्त छंद के माध्यम से ब्रजभाषा में जो प्रशस्तिपरक काव्य भूषण ने रचा है, वह किसी भी साहित्य के लिए गौरव की बात है।
- शिवराज भूषण 'शिवाबावनी', छत्रसाल दशक' भूषण की प्रमुख काव्य रचनाएं हैं।
- राष्ट्रीयता, जातीय गौरव, देशप्रेम, राष्ट्रीय स्वाभिमान भूषण की कविता की प्रमुख विशेषताएं हैं।
- मुक्तक काव्य प्रणयन में सेनापति का स्थान बहुत ऊंचा है।
- यद्यपि सेनापति का संबंध एवं कर्मक्षेत्र कृष्ण की स्थली वृंदावन से था, पर राम की उपासना में उनका मन बहुत रमा।
- रामकाव्य परंपरा में भी सेनापति का उल्लेखनीय स्थान है।
- 'काव्य कल्पद्रुम' एवं 'कवित्त रत्नाकर' सेनापति के प्रमुख ग्रंथ हैं।
- सेनापति की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है, जिसमें तत्सम शब्दों की ओर अधिक झुकाव दिखाई देता है।
- सेनापति का ऋतुवर्णन हिंदी काव्य में बहुत प्रसिद्ध है, जिसमें ग्रीष्म वर्णन बेजोड़ माना जाता है। ऋतुवर्णन से सेनापति की पहचान है।

10.9 उपयोगी पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेन्द्र
3. हिंदी साहित्य का उद्‌भव और विकास – आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी।
4. हिंदी साहित्य का अतीत – आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

10.10 महत्त्वपूर्ण प्रश्न

निबंधात्मक प्रश्न

1. हिंदी कविता में अमीर खुसरो का महत्त्व एवं स्थान स्पष्ट कीजिए।
2. अमीर खुसरो का परिचय देते हुए उनकी उपलब्धियों का उल्लेख कीजिए।
3. कृष्णभक्ति काव्यधारा में मीरां का स्थान निर्धारित कीजिए।
4. मीरां के काव्य की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
5. रसखान के काव्यवैशिष्ट्य पर एक निबंध लिखिए।
6. कृष्णकाव्य में रसखान का महत्त्व प्रतिपादित कीजिए।
7. 'हिंदी के मुसलमान कवियों में रसखान का स्थान पर्याप्त ऊंचा है।' इस कथन का महत्त्व स्पष्ट कीजिए।
8. रीतिकालीन कवियों में भूषण का स्थान निर्धारित कीजिए।
9. भूषण के काव्य की विशेषताएं स्पष्ट कीजिए
10. भूषण के काव्य में राष्ट्रीय भावनाओं को स्पष्ट कीजिए।
11. सेनापति का साहित्यिक महत्त्व समझाइए।
12. सेनापति के काव्य का वैशिष्ट्य प्रतिपादित कीजिए।

लघूत्तरीय प्रश्न

1. खुसरो की रचनाओं का सामान्य परिचय दीजिए।
2. खुसरो का महत्त्व संक्षेप में समझाइए।
3. मीरां काव्य का संक्षिप्त मूल्यांकन कीजिए।
4. मीरां की प्रमुख रचनाओं के नाम लिखिए।
5. मीरां की काव्य भावना पर टिप्पणी लिखिए।
6. रसखान का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
7. रसखान के काव्य पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
8. भूषण की रचनाओं का परिचय दीजिए।
9. भूषण की राष्ट्रीयता पर लघु लेख लिखिए।
10. रामकाव्य में सेनापति का उल्लेख कीजिए।
11. सेनापति के ऋतुवर्णन पर एक लघु निबंध लिखिए।
12. सेनापति का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1. अमीर खुसरो का पूरा नाम लिखिए।
2. खुसरो को कौनसी उपाधि दी गई थी,
3. खुसरो का जन्म कब और कहां हुआ था ?
4. खुसरो किसके शिष्य थे ?
5. खुसरो की प्रमुख रचना कौन–सी है ?
6. खुसरो की मुकरियों और पहेलियों ने आधुनिक काल के किस कवि को प्रेरित – प्रभावित किया ?
7. मीरां का क्या अर्थ है ?
8. मीरां का जन्म कहां हुआ था ?
9. मीरां की सर्वप्रमुख रचना कौनसी है ?
10. मीरां के काव्य में सर्वप्रथम तत्व क्या है ?
11. रसखान का मूल नाम क्या है ?
12. रसखान की प्रमुख रचना का नाम लिखिए।
13. रसखान किस संप्रदाय में दीक्षित थे ?
14. रसखान कहां के निवासी थे ?
15. भूषण का आरंभिक नाम क्या था ?
16. भूषण किस कवि के भाई थे ?
17. भूषण ने किसकी प्रशस्ति में काव्य रचा है ?
18. भूषण की प्रमुख रचना का क्या नाम है ?
19. भूषण किस काल के कवि हैं ?
20. भूषण की काव्य रचना का विषय क्या है ?
21. सेनापति कहां के रहनेवाले थे ?
22. सेनापति किस काव्य परंपरा में माने जाते हैं ?
23. सेनापति का सबसे प्रसिद्ध वर्णन कौनसा है ?
24. सेनापति की प्रसिद्ध रचना कौन–सी है ?

●●●

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैन विश्वभारती संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)

लाडनूँ - 341 306 (राजस्थान)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स्नातकोत्तर (एम.ए.) उत्तरार्द्ध

विषय - हिन्दी

षष्ठम पत्र : प्राचीन काव्य

विशेषज्ञ समिति

1. **प्रो. नन्दलाल कल्ला**
   पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
   जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

2. **प्रो. वेदप्रकाश शर्मा**
   पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
   महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर (राज)

3. **प्रो. जगमालसिंह**
   पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
   मेघालय विश्वविद्यालय, मेघालय (आसाम)

4. **डॉ. ममता खाण्डल**
   सहायक आचार्या, हिन्दी विभाग
   राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, किशनगढ़ (राज.)

5. **प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी**
   निदेशक, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
   जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ (राज.)

6. **प्रो. समणी ऋजुप्रज्ञा**
   आचार्या, जैन विश्वभारती संस्थान,
   लाडनूँ (राज.)

लेखक

डॉ. शम्भूनाथ तिवाड़ी (इकाई – 03, 04, 07–10)

डॉ. ममता खाण्डल (इकाई – 01, 02, 05, 06)

सम्पादक

प्रो. नन्दलाल कल्ला (इकाई– 03, 04, 07–10)

डॉ. शंकरलाल पुरोहित (इकाई– 01, 02, 05, 06)

कापीराइट

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

नवीन संस्करण : 2017

मुद्रित प्रतियां : 500

प्रकाशक

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं–341 306 (राज.)

Printed at

M/s Nalanda Offset,
G1/232, RIICO Industrial Area, Heerawala Ext., Konota, Jaipur (Raj.)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पाठ्यक्रम

समय : 3 घंटे | पूर्णांक : 80+20

प्रस्तावित कवि / कविताएं / पाठ्यग्रंथ

चंद्रवरदायी	:	**पृथ्वीराज रासो** (शशिव्रता विवाह समय)सपां. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. नामवरसिंह
कबीर	:	**कबीर ग्रंथावली** (विभिन्न अंगों से चयित 100 साखियां तथा 25 पद) संपा. डॉ. श्यामसुन्दरदास
जायसी	:	**पद्मावत** (सिंहलदीप एवं नखशिख वर्णन खंड) संपा. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
सूरदास	:	**भ्रमरगीत सार** (21–71 पद / कुल 50 पद)संपा. आचार्य रामचंद्र शुक्ल
तुलसीदास	:	**रामचरितमानस** (उत्तरकांड – आरंभ के 50 दोहे) प्रका. गीताप्रेस, गोरखपुर
बिहारीलाल	:	**बिहारी सतसई** (आरंभ के 50 पद) बिहारी रत्नाकर, संपा. जगन्नाथदास 'रत्नाकर'
द्रुतपाठ	:	अमीर खुसरो, मीरांबाई, रसखान, भूषण, सेनापति।

अंक विभाजन

		अंक
3	व्याख्याएँ	3 × 8 = 24
2	आलोचनात्मक प्रश्न	2 × 10 = 20
5	लघूत्तरी प्रश्न	4 × 4 = 16
20	वस्तुनिश्ठ / अतिलघूत्तरीय प्रश्न	20 × 1 = 20
		80

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	इकाई		पृष्ट सं.
1.	**इकाई 01 :**	प्राचीनकाव्य (आदिकाल)	1
2.	**इकाई 02 :**	चंद्रवरदायी	9
3.	**इकाई 03 :**	मध्यकालीन काव्य – पूर्वमध्यकाल (भक्तिकाल)	59
4.	**इकाई 04 :**	मध्यकालीन काव्य – उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल)	91
5.	**इकाई 05 :**	कबीर	113
6.	**इकाई 06 :**	जायसी	175
7.	**इकाई 07 :**	सूरदास	243
8.	**इकाई 08 :**	तुलसीदास	275
9.	**इकाई 09 :**	बिहारीलाल	319
10.	**इकाई 10 :**	द्रुतपाठ– अमीर खुसरो, मीरांबाई, रसखान, भूशण, सेनापति	340

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न पत्र परिचय

एम.ए. (हिंदी) उत्तरार्द्ध के पंचम प्रष्नपत्र के रूप में प्रस्तुत इस पुस्तक खंड में प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य पर विस्तार से प्रकाष डालने का प्रयास किया गया है। प्राचीन काव्य के अन्तर्गत आदिकालीन साहित्य तथा मध्यकालीन काव्य के अंतर्गत भक्तिकाल एवं रीतिकाल का विस्तष्त आलोचनात्मक परिचय देते हुए संबंधित काल खंड के पाठ्यक्रम – प्रस्तावित कतिपय प्रमुख कवियों पर अपेक्षित प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत की गई है। आदिकाल भक्तिकाल एवं रीतिकाल की सम्पूर्ण सामग्री को अध्ययन की सुविधा से कुल 10 इकाइयों में विभाजित किया गया है, जो निम्नवत् हैं –

इकाई 01. प्राचीन काव्य (आदिकाल)

इकाई 02. चंद्रवरदायी

इकाई 03. मध्यकालीन काव्य – पूर्वमध्यकाल (भक्तिकाल)

इकाई 04. मध्यकालीन काव्य – उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल)

इकाई 05. कबीर

इकाई 06. जायसी

इकाई 07. सूरदास

इकाई 08. तुलसीदास

इकाई 09. बिहारीलाल

इकाई 10. द्रुतपाठ – अमीर सुखरो, मीरांबाई, रसखान, भूषण, सेनापति

उपर्युक्त इकाइयों के माध्यम से विषय–विवेचन के साथ, विषय–संबंधित अन्य पक्षों को विस्तार से समझाया गया है।

इकाई 01 : इस इकाई में आदिकाल से संबधित विवेचन है।

इकाई 02 : इस इकाई में चन्द्रवरदायी और पष्थ्वीराजरासो से संबंद्ध विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

इकाई 03 : इस इकाई में मध्यकालीन काव्य के अन्तर्गत भक्तिकाल पर विस्तष्त रूप से महत्त्वपूर्ण सामग्री देते हुए काल विशेष का प्रामाणिक परिचय करवाया गया है। भक्तिकाल, हिंदी कविता की लंबी यात्रा में बहुत महत्त्वपूर्ण पड़ाव माना जाता है। भक्तिकाल का उदय या आगमन विशेष सामाजिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप एक आंदोलन के रूप में हुआ था, जिसका व्यापक प्रभाव समूचे भारतीय समाज पर पड़ा। इसी परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत इकाई के माध्यम से भक्तिकाल पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

इकाई 04 : इस इकाई में मध्यकालीन काव्य के द्वितीय चरण (उत्तरमध्यकाल) को रीतिकाल के रूप में जाना जाता है, जिसकी पृष्ठभूमि भक्तिकाल के उत्तरार्द्ध में निर्मित होने लगी थी, का विवेचन किया गया है। भक्तिकाल की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लगभग समाप्ति पर कुछ ऐसी परिस्थितियां निर्मित होने लगी थीं, जिनमें भक्ति के सहारे श्रृंगार की प्रवृत्तियां (यद्यपि उन पर भक्ति का आवरण चढ़ा हुआ था) परिलक्षित होने लगी थीं। भक्ति से आच्छादित यही श्रृंगारिक प्रवृत्तियां आगे रीतिकालीन काव्य प्रवृत्तियों के निर्माण में सहायक सिद्ध हुईं रीतिकाल काव्यात्मक विकास की दृष्टि से बहुत उन्नत और प्रौढ़ है। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से रीतिकाल पर भी विशिष्ट प्रामाणिक आलोचनात्मक सामग्री दी गई है। वस्तुतः इस इकाई में मध्यकालीन कविता का विस्तृत परिचय दिया गया है।

इकाई 05 : इस इकाई में कबीर विशयक विस्तृत सामग्री दी गई है।

इकाई 06 : इस इकाई में जायसी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से संबंधित है।

इकाई 07 : इस इकाई में, पूर्वमध्यकाल जिसे प्रवृत्ति के आधार पर भक्तिकाल के रूप में जाना जाता है, कृष्णभक्ति के आधार स्तंभ महाकवि सूरदास पर विशिष्ट आलोचनात्मक सामग्री प्रस्तुत की गई है, सूरसागर के सर्वोत्कृष्ट अंश 'भ्रमरगीत' प्रसंग के परिप्रेक्ष्य में सूरदास की काव्यात्मक प्रतिभा एवं उपलब्धियों का मूल्यांकन करते हुए, 'भ्रमरगीत' के कतिपय चयनित पदपाठ एवं कुछ पदों की प्रामाणिक व्याख्या प्रस्तुत करना इस इकाई में अपेक्षित है।

इकाई 08 : इस इकाई में भक्तिकालीन कविता की सर्वाधिक सशक्त काव्यधारा राममक्ति–काव्यधारा के सर्वतोमहान कवि गोस्वामी तुलसीदास जो हिंदी ही नहीं, भारतीय साहित्य, बल्कि उससे भी आगे विश्वसाहित्य के कतिपय प्रमुख कवियों में परिगणित किए जाते हैं, से संबद्ध विवेचन प्रस्तुत किया गया है। उनके द्वारा प्रणीत 'रामचरित मानस' भारतीय सांस्कृतिक आस्था का आधारग्रन्थ है, जिसका 'उत्तरकाण्ड' पूरे मानस का सार, निचोड़ या नवनीत है। तुलसीदास का अगाध पांडित्य एवं उनका गहन दार्शनिक दृष्टिकोण 'उत्तरकाण्ड' में ही परिलक्षित होता है। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से तुलसीदास एवं उनके ग्रंथ 'रामचरित मानस' के 'उत्तरकांड' पर विशेष आलोचनात्मक सामग्री दी गई है। 'उत्तरकांड' के कुछ प्रमुख अंशों को पाठ्यसामग्री के रूप में प्रस्तुत करते हुए इसी अध्याय में कतिपय प्रमुख अंषों की व्याख्या भी दी गई है।

इकाई 09 : इस इकाई में मध्यकालीन काव्य के 'उत्तरमध्यकाल', जिसे 'रीतिकाल' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है, के सर्वप्रमुख, सर्वाधिक लोकप्रिय कवि बिहारी से संबंधित विवेचन प्रस्तुत किया गया है। लोकप्रियता की दृष्टि से बिहारी एवं उनके द्वारा रचित उनकी 'सतसई' का स्थान शिखर पर है। केवल 726 दोहों की रचना कर, जो लोकप्रियता बिहारी ने अर्जित की, वह हिंदी कविता के इतिहास में दुर्लभ है। इसी लोकप्रिय रचना के आलोक में बिहारी की काव्यकला का मूल्यांकन इस इकाई में किया गया है। 'बिहारी सतसई' के कतिपय प्रमुख दोहों को 'पाठरूप' में देते हुए, उनकी व्याख्या भी इस इकाई में प्रस्तुत की गई है।

इकाई 10 : इस इकाई में द्रुतपाठ के अन्तर्गत आदिकाल, भक्तिकाल, एवं रीतिकाल के कतिपय प्रमुख कवियों से संबद्ध विवेचन प्रस्तुत किया गया है, जिन्होंने अपनी काव्य प्रतिभा के बल पर विशेष कालखंड में विशेष पहचान बनाई। ऐसे कवियों में अमीर खुसरो, मीरांबाई, रसखान, भूषण एवं सेनापति से संबंधित परिचयात्मक एवं आलोचनात्मक सामग्री इस इकाई में प्रस्तुत की गई है। इन कवियों का साहित्यिक परिचय एम.ए. स्तरीय विद्यार्थियों को मिल सके, ऐसा प्रयास इस इकाई के माध्यम से किया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun